लोकगीतों के संदर्भ और आयाम

लेखिका

डॉ० शान्ति जैन

एम०ए० (संस्कृत-हिन्दी), पी-एच०डी०,

डी०लिट्०, संगीत प्रभाकर

रीडर, संस्कृत विभाग

श्री अरविन्द महिला कॉलेज

पटना

प्रकाशन सहयोग

पद्मभूषण डॉ० बिन्देश्वर पाठक

विश्वविद्यालय प्रका

LOKGITON KE SANDARBH AUR ÁYÁM

by

Dr. Shanti Jain

1964

ISBN : 81-7124-214-6
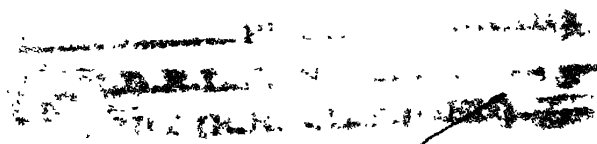
प्रथम सस्

सौजन्य : अमरेन्द्र दूबे

प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी–२२१ ००१

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
चौक, वाराणसी–२२१ ००१

समर्पण

उस सार्वभौम सत्ता को
जिसकी कृपा के बिना
ये स्वर शाश्वत हो ही नहीं सकते।

-**शान्ति जैन**

कोश शैली में विवेचित माटी के गीत

भारतीय संस्कृति की अनूठी धरोहर-- लोकगीत। काव्य रस से ओत-प्रोत, स्वर-सने, लय-लसे, हृदय तल से उभरे, सर्वथा मनोहारी। विविधता में एकता के साक्षात् प्रतीक। भाषाएँ भिन्न, बोलियाँ विभिन्न, किन्तु विषयवस्तु, स्वर-संयोजन तथा लय-प्रवाह में लगभग समानता। इनकी लघुकाय धुनों को सुनकर 'बिहारी सतसई' विषयक यह उक्ति सहज ही मानस में गूँज उठती है--

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर,
देखन में छोटे लगैं, घाव करें गंभीर।

परम्परा से प्राप्त और जन-जीवन से जुड़े इन लोकगीतों में निहित सरस साहित्य को उजागर करने और उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने का प्रथम प्रमुख श्रेय है-- **हिन्दी के** लब्धप्रतिष्ठ कवि पं० रामनरेश त्रिपाठी को। उन्हें इन गीतों के प्रति आकृष्ट किया एक रोचक घटना ने। पूर्वी उत्तर प्रदेश की कुछ ग्रामीण महिलाएँ, अपने परदेसी पतियों को विदा करने, रेलवे स्टेशन पर आई हुई थीं। 'आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे' इस वियोग व्यथा से आक्रान्त वे फूट-फूट कर रोये जा रही थीं। ट्रेन आई और उनके प्रियतमों को लिये आँखों से ओझल हो गई। कुछ देर तक तो वे महिलाएँ भींगी आँखों से उस भागती ट्रेन को निहारती रहीं, पर जब गाड़ी दृष्टि से परे हो गई तो उनका वह विलाप, आलाप में परिणत हो गया। वे गाने लगीं-- 'रेलिया सवति, पिया को लिये जाय रे'। स्टेशन पर बैठे त्रिपाठीजी यह परिवर्तित परिदृश्य देख रहे थे। रेल से सौत की उपमा? कितनी सटीक कितनी विमुग्धकारी? त्रिपाठीजी का कवि हृदय इस अनुपम अभिव्यक्ति से अभिभूत हो उठा। उसी क्षण उन्होंने ठान लिया कि वे इन लोकगीतों का संग्रह एवं प्रकाशन कर जन-जन तक पहुँचाएँगे। उनका वह ऐतिहासिक संकल्प मूर्तिमान हुआ, उनकी 'कविता कौमुदी' के चौथे भाग में, लोकगीतों के संग्रह में। त्रिपाठीजी का वह अभिनव प्रयास, भावी शोधकों के लिये पथ का दीप बन गया--- प्रेरक और मार्गदर्शक।

लोकगीतों में समाहित काव्य रस कितना मधुपगा, कितना विनोदात्मक होता है, इसकी कुछ झलकियाँ---

शाम हो चली है। एक युवक चरवाहा अपने ढेरों के साथ थका-माँदा जंगल से घर की ओर आ रहा है। दिन तो उसने रूखी-सूखी रोटियाँ खाकर बिता दिया था, किन्तु अब वह भूख से बेहाल हो उठा है। पास से गुजरती एक यौवनभार से बोझल सुन्दरी को देख वह कराह उठता है और फिर उसकी तड़प मुखर हो उठती है, उसके इस 'बिरहा' में---

भुखिया क मारी विरहा बिसरिगा, भूलि गइ कजरी कबीर,
देखि के गोरी क मोहनी मुरतिया, उठे न करेजवा में पीर।

भूख ने अब उसे बेसुध कर दिया है। न उसे मादक पावस में गाया जाने वाला

'विरहा' याद आ रहा है और न पावस की प्रियतमा 'कजरी'। यही नहीं 'फागुन मस्त महीना' में गाया जाने वाला 'कबीर' भी वह भूल गया है। और तो और, चढ़ती जवानी में भी, उस चरवाहे को भूख ने इस कदर बेहाल कर दिया है कि गोरी की मोहनी मूरत देखकर भी उसके कलेजे में पीर नहीं उठती। 'भूख' का ऐसा सटीक, सार्थक और मर्मवेधी शब्द-चित्रण शायद ही अन्यत्र उपलब्ध हो।

युवती भी मनचली थी। चुटकी लेती हुई बोली— मरो तुम भूखे। मैं तो अपने प्रियतम को ऐसा भोजन कराऊँगी कि तुम उसका सपना भी नहीं देख सकते। जानते हो, वह क्या होगा? और फिर नहले पर दहला जड़ते हुए गा उठी—

तन मोरा अदहन, मन मोरा चाउर
नयन मूँग के दाल
अपने बलम के जेवना जेंवइबे
बिनु अदहन बिनु आग।

मेरी दहकती देह उबाल खाता पानी है, मेरा मदभरा मन चावल है और मेरे नशीले नयन मूँग की दाल हैं। इन तीनों के मिश्रण से मैं अपने प्रियतम को ऐसा खाना खिलाऊँगी कि वह सर्वरूपेण तृप्त हो जायेगा। मुझे न तो आग की अपेक्षा है, न ही अदहन की। ठेठ बोली में उमड़ते यौवन का कितना मुग्धकारी शब्द चित्रण है, इस गीत में।

सावन-भादों की कजरारी भीगी रातें जब विरहदग्धा नायिका को नागिन-सी डँसने लगती हैं तो सूरदास की यह उक्ति साकार हो उठती है— पिय बिनु नागिन कारी रात'। और परदेसी प्रियतम की याद से आकुल वह विरहिणी उड़ेल देती है अपनी कसक, अपनी टीस, अपनी चिरसंगिनी इस कजली में—

गरजे बरसे रे बादरवा, प्रिय बिन मोहे ना सुहाय।

और मादक चैत? उसकी तो कल्पना करके ही विरहिणी सिहर उठती है। उसके आगमन की आशंका से त्रस्त उसकी मनोव्यथा मुखरित हो उठती है इस 'चैती' में—

आयल चैत उतपतिया हो रामा, पिया घर नाहीं।

सच पूछा जाय तो ये लोकगीत हमारे साहित्य की अमूल्य निधि हैं। उनके भीतर से हमारा इतिहास झाँकता है। वे सही अर्थों में हमारे सामाजिक जीवन के दर्पण हैं। इतिहास शोधक, यदि इन लोकगीतों में निहित सामग्री की छान-बीनकर, समुचित विश्लेषण चयन कर उनका अपेक्षित उपयोग करें तो हमारा इतिहास कहीं अधिक सजीव, संतुलित और सर्वांगीण बन जाएगा।

अब रही इन लोकगीतों के संगीत पक्ष की बात। वह भी कम रोचक नहीं। लोकगीतों की धुनों की, उनकी स्वर संरचना की तथा उनके लयप्रवाह की अपनी विशिष्टताएँ हैं। प्रथम, इनकी बंदिश प्राय: मध्यसप्तक में ही सीमित होती है, वह भी पूर्वार्ध में ही, उत्तरार्ध का स्पर्श यदा-कदा ही होता है। तार एवं मन्द्रसप्तक इनकी परिधि से बाहर ही रहते हैं, कुछ अपवादों को छोड़कर। इसलिये इनका गायन श्रमसाध्य भी नहीं होता। यों तो इन बंदिशों में सभी बारह स्वरों का प्रयोग होता है, किन्तु बहुलता शुद्ध स्वरों की ही होती है।

दूसरे, अधिकांश लोकगीत कहरवा, दादरा जैसे छोटे, किन्तु प्रवहमान तालों में निबद्ध होते हैं। चाल इनकी अक्सर मध्यलय में ही होती है; विलम्बित एवं द्रुतलय में बहुत कम लोकगीत गाए जाते हैं। तीसरे, इन लोकगीतों के स्वर विन्यास और लयदारी में सहज प्रवाह होता है, कोई बनावटीपन नहीं। उनकी सहजता, उनकी भावप्रवणता ही उन्हें इतना चुटीला, इतना मर्मभेदी बना देती है। और अन्तिम, कितने ही लोकगीतों की बन्दिशें कुछ गिने, चुने लोकप्रिय रागों पीलू, भैरवी, तिलक-कामोद आदि के मोहक स्वरगुच्छों में होती हैं।

मेरा अनुमान है कि राग रचना की प्रेरणा भी इन्हीं रंजक लोकगीतों के स्वरगुच्छों से मिली होगी। मतंग मुनि ने राग की जो व्याख्या की है, उससे इस अनुमान की पुष्टि होती है

योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः

लोकगीतों की विशिष्ट धुनों ने कलाकार की कल्पना को कुरेदा होगा और उसने 'स्वर' (आरोह अवरोह), तथा वर्ण (रोचक गायन प्रक्रिया) से विभूषित कर उन्हें जनचित्तरंजक बनाकर 'राग' का जामा पहना दिया होगा। कुछ रागों के नाम जैसे भूपाली, जौनपुरी, पहाड़ी आदि इस तथ्य के स्पष्ट परिचायक हैं कि ये राग उन स्थानों की लोकप्रिय लोकधुनों से ही निर्मित और विकसित हुए होंगे।

पं० रामनरेश त्रिपाठी के ऐतिहासिक लोकगीत संग्रह के बाद से अब तक विभिन्न आंचलिक भाषाओं, बोलियों के लोकगीतों पर कितने शोधप्रबन्ध लिखे गये हैं किन्तु जहाँ तक मुझे ज्ञात है, इन प्रबन्धों में मुख्यतः उनके साहित्य पक्ष का ही विश्लेषण, विवेचन हुआ है। उनका सांगीतिक पक्ष प्रायः अनछुआ ही रह गया है।

डॉ० शान्ति जैन ने अपनी प्रस्तुत पुस्तक 'लोकगीतों के संदर्भ और आयाम' में पहली बार इन गीतों के सौन्दर्य के विश्लेषण विवेचन के साथ उनके सांगीतिक पहलुओं पर भी समुचित प्रकाश डाला है। बहुमुखी प्रतिभा की धनी शान्तिजी भाषाविद् और संगीत मर्मज्ञ दोनों हैं। संस्कृत, हिन्दी तथा अनेक आंचलिक बोलियों पर इनका अच्छा अधिकार है। वह जानी मानी कवयित्री और गीतकार तो हैं ही, स्वयं एक उत्तम कोटि की गायिका भी हैं। अतः उन्होंने अपनी इस कृति में साहित्य और संगीत लोकगीतों के दोनों पक्षों का समुचित, संतुलित और सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत किया है। विभिन्न क्षेत्रों के बिखरे-पसरे लोकगीतों के संग्रह और फिर उनके मनन मंथन में उन्होंने कई वर्षों तक अथक परिश्रम किया है। फलतः उनका यह शोधपरक विश्लेषण और निरूपण हिन्दी भाषा में एक 'मील का पत्थर' बनकर उभरेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

कोश शैली में लिखी, ऐसी अनुपम उपलब्धि एवं सार्थक कृति के लिये शान्तिजी को मेरी हार्दिक बधाई और स्नेहाशीष भी।

समर बहादुर सिंह

'मानस' बी/१२८, इन्दिरानगर
लखनऊ-२२६ ०१६

शुभाशंसा

वेदवाणी से मुखरित, मंत्रों से अभिषिक्त, तपोपूत, तैंतीस कोटि देवताओं की आशीषधारा से सिंचित भारत वसुन्धरा सदियों से विश्व में अपना एक अलग स्वरूप सिंगार लिये खड़ी है। मन्दिरों में गूँजते प्रार्थना के स्वर, मस्जिदों की अज़ान, गुरुद्वारों के शबद कीर्तन, खेतों की लहलहाती फसलों के बीच और घरों में चक्की चलाते हुए हाथों की चूड़ियों की खनक के बीच लोकगीतों के मीठे स्वरों में इस देश की संस्कृति साकार रही है।

शाश्वत सत्य है कि लोकगीतों में हमारे संस्कारों की आत्मा है। श्रुतिपरम्परा की इस विधा में कृत्रिमता का कहीं स्थान नहीं। हर अवसर, हर ऋतु, हर रंग में गाये जाने वाले ये गीत सहज ही लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। भले ही उनकी भाषा समझ से परे हो किन्तु स्वर और लय को भाषा के आधार की अनिवार्यता नहीं होती।

लोकगीतों में संवेदना की वह तपिश है, जिसकी आँच हर हृदय को लगती है। इनमें अनुभूतियों की वह शीतलता है जो संघर्षों से जूझते, श्रमश्रान्त व्यक्ति के लिये सुधा बनकर बरसती है। इनमें कहीं शृंगार रस से लबालब भरे चटकीले गीत हैं, कहीं प्रतीक्षा और वियोग की करुणा से परिपूर्ण, तो कहीं जड़ में प्राण फूँकने वाले ओजभरे स्वर हैं। इनकी नैसर्गिकता में अलौकिक प्रभाव है।

लोकजीवन को मैंने बहुत करीब से देखा है। गाँव के चौपालों में गूँजते गीत मेरे मन प्राण, जीवन में रचे बसे हैं, इसलिये इनके प्रति मेरा रुझान, मेरी ममता सर्वथा स्वाभाविक है। मैंने अपने जीवन में समाज-सेवा का जो व्रत लिया है, उसके साथ संस्कृति सेवा का अवसर पाकर मुझे प्रसन्नता हो रही है। मैं मानता हूँ कि संस्कृति समाज का आइना है, संस्कृति के संरक्षण से ही समाज की सुरक्षा है।

डॉ० शान्ति जैन को मैं लम्बे अरसे से एक संवेदनशील कलाकार, कवयित्री और लेखिका के रूप में जानता हूँ। लोकसंगीत, साहित्य और कविता की इनकी दर्जनों पुस्तकें प्रकाशित हैं। उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ से प्रकाशित इनकी पुस्तक 'चैती' राजभाषा विभाग, बिहार से पुरस्कृत सम्मानित हो चुकी है।

'लोकगीतों के संदर्भ और आयाम' शीर्षक यह वृहदाकार पुस्तक शान्तिजी के पाँच-छ: वर्षों के श्रम का प्रतिफल है। मेरी शुभकामना है—डॉ० शान्ति जैन के इस श्रमसाध्य, समयसाध्य, सांस्कृतिक अवदान का मूल्यांकन सुधीजन के बीच हो और उनकी यह कृति प्राप्य समादर पा सके।

डॉ० बिन्देश्वर पाठक

शाश्वत स्वर

अछोर क्षितिज तक फैला अनन्त आकाश है— लोकगीतों का। अतल सागर जैसी गहराई है— लोकगीतों की। जंगल में उगे पेड़-पौधों की तरह अनादि है— इनका इतिहास। कब ये लोकगीत शब्दों में बँध गए, स्वरों में गुँथ गए, कोई नहीं बता सकता। श्रुति परम्परा ही इनके विकास का माध्यम बनी और लोकगीतों का संगीत पक्ष उसका सबसे बड़ा आकर्षण बना।

यों भी संगीत में वह शक्ति है जो देवताओं को मोह सकती है। आदिदेव भगवान शंकर तो साक्षात् संगीत के देवता ही माने जाते हैं। विष्णु के अवतार भगवान श्रीकृष्ण के वंशीवादन ने भी तो चर-अचर, पशु-पक्षियों को अपने सुर में बहा लिया था। यह सर्वविदित है कि तानसेन ने दीपक राग गाया था, जिससे उनके शरीर में जलन होने लगी और उनकी बेटी ने मल्हार गाकर पानी बरसा कर अपने पिता की वेदना शान्त की। तानसेन के संगीत ने पत्थरों को पिघलाया तो बैजू बावरा ने अपने संगीत के प्रभाव से हरिणियों को अपने पास बुलाया।

लोकगीत सहज उद्भूत संगीतात्मक शब्द योजना है। श्रुति साहित्य की भाषा परम्परा का सबसे प्रामाणिक भाष्य है यह और सच पूछा जाय तो साहित्य और संस्कृति की सभ्यता का आकलन बिना वाचिक परम्परा के संभव नहीं। लोक और शास्त्र के बीच संबंध का इतिहास पुराना है। कालिदास ने शिव-पार्वती के विवाह के अवसर पर ऐसा संकेत दिया है कि सरस्वती ने दो प्रकार के वाङ्मय का प्रयोग किया था— वर की स्तुति के लिये संस्कार पूत वाणी का और वधू की प्रशंसा के लिये सुखग्राह्य वाणी का, तो ऐसा समझा जा सकता है कि लोकगीत का जुड़ाव माता पार्वती से भी है; क्योंकि वह प्रकृति सुता थीं। वैदिक वाङ्मय में भी लोकगीत का महत्त्व वर्णित है।

लोक साहित्य की समानता उपनिषदों से भी की जा सकती है, क्योंकि दोनों में ही सहज सत्य की प्राप्ति का प्रयास देखा जा सकता है। जिस प्रकार उपनिषदों में अनेक विचारकों के चिन्तन-मनन से उत्पन्न सत्य का साक्षात्कार है, उसी प्रकार लोक साहित्य भी कर्मशील लोक जीवन की सामूहिक उपलब्धि है।

'लोक' शब्द को यद्यपि 'Folk' का पर्याय माना गया है, किन्तु सच तो यह है कि इसमें कुछ परम्परागत धारणाएँ अन्तर्भूत हैं, जिनके कारण लोक और संस्कृति को एक ही भाव माना जा सकता है। 'फोकलोर' का अर्थ है एक प्राचीन समाज की वाचिक परम्पराओं, कलाओं और प्रचलित विश्वासों का समूह। इसके अन्तर्गत नृत्य-गीत, जादू-टोना, कथा, पहेली, लोकोक्ति आदि हैं। लोकगीत संभवतः व्यक्तिविशेष

द्वारा रचे गये, जिनका परिष्कार समुदाय द्वारा हुआ।

सूक्ष्म रूप से 'लोक' का अर्थ है – दृश्य जगत् और उसमें सूक्ष्म विचरण। उत्तर वैदिक काल और महाभारत युग में 'लोक' का अर्थ पृथ्वी लोक और उसके निवासियों से किया गया है अर्थात् लोक से लौकिक अर्थ हुआ। 'लौकिक' का अर्थ हुआ इन्द्रियगोचर जीवन। लोक के योग से कई अर्थ हुए, जैसे – लोकगीत, लोकगाथा, लोक-चरित्र, लोकाचार, लोकतंत्र, लोकधर्म, लोकरंजन, लोकवृत्त, लोकसंग्रह आदि। सभी शब्दों में लोक का अर्थ व्यापक मानव व्यवहार है अथवा मूल्य बोध से प्रेरित स्वीकृत व्यवहार की चेतना है।

लोकवार्ता के अन्तर्गत सभी लोक व्यवहार आते हैं, जैसे अनुष्ठान, अनुष्ठान में गेय गीत, ऋतुमंगल और पर्व के केलिगीत, निरर्थक ध्वनिमय गीत, वीरगाथा गान, मुहावरे, नीति वचन आदि। इन सबमें परस्पर संगति है। एक ऐसी संगति जिसमें मनुष्य और प्रकृति एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। संस्कृत नाटकों में ध्रुवागीतियाँ प्रायः लोकगीतियाँ होती थीं। इनमें लोकगीतियों के उपयोग के तीन प्रकार के स्थल हैं—एक ऋतुमंगल अर्थात् वसन्तोत्सव, वर्षामंगल और शरदोत्सव में ऋतुगीत के रूप में; दूसरे संस्कारों के समय मंगल गीतों के रूप में और तीसरे श्रमगीतों के रूप में। संस्कृत काव्य में इन तीनों अवस्थाओं का उल्लेख है। धान रोपने और खेतों की रखवाली करने वाली स्त्रियों से संबंधित गीतियों का उल्लेख कालिदास और भारवि में मिलता है। दधि-मंथन के साथ चलने वाली गीतियों का वर्णन श्रीमद्भागवत में मिलता है। श्रमगीतों का उल्लेख संस्कृत के कई नाटकों में है। इन गीतियों से साहित्य को नई प्राणवत्ता मिली है। तुलसीदास ने लोक-प्रचलित धुनों को अपनाया है। उनके अनगिनत मंगलगीत लोक में प्रचलित हैं। मिथिला में विद्यापति के गीतों का नाम ही 'विदापत गीत' पड़ गया है।

लोक साहित्य की समस्त विधाओं में लोकगीत की अनलंकृत सहज शोभा बरबस ही चित्त को हर लेती है। वैदिक सूक्तों में जैसे मनुष्य और देवता के बीच सामीप्य का भाव है वैसी ही स्थिति लोकगीतों में भी है। इनके संक्षिप्त वर्णन में पूरे परिदृश्य का आभास मिल जाता है।

छापक पेड़ छिउलिया न पतवन झपसल—पलाश का पेड़ पत्तों से ढँक गया है, पत्तों ने पेड़ को छिपा लिया है। इन पंक्तियों से मात्र ग्रीष्म ऋतु का नहीं, बल्कि संतप्त संघर्ष भरे जीवन का आभास मिलता है।

एक स्नेह आश्रय के नीचे किसी हरिणी की कातर पुकार हृदय को छू जाती है। वह कौशल्या से विनती करती है—हे महारानी, तुम मेरे हिरन को न मारकर मुझे मार डालो। उसकी पुकार व्यर्थ हो जाती है, तब वह हरिण की चमड़ी माँगती है, वह भी उसे नहीं मिलता। उसे बस मिलता है हिरन की चमड़ी से बनी खँजड़ी का स्वर, जिसे राम बजाते हैं। खँजड़ी का वह स्वर न केवल हरिणी को, बल्कि मानव मात्र को व्यथित कर देता है। लोकगीतियों की मांगलिकता या करुणा समग्र जीवन के सुख-दुःख की सही पहचान है।

लोकगीत संवेदनशील प्राणी की रागात्मक प्रवृत्ति है, जिसकी सरसता उसके अन्दर पनपते भावावेग के कारण तरंगायित हो उठती है। ये ही भाव संगीत के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। भावपूर्ण इन स्वरलहरियों को जब नियंत्रित तथा व्यवस्थित किया जाता है अथवा जब इन्हें भाव विशेष के अनुरूप रूपायित किया जाता है तो वे सार्थक संगीत-रचनाएँ बन जाती हैं।

लोक संगीत शास्त्र के अनुशासन से परे सहज गति, सहज छन्द, स्वर, लय और धुन से सजा-सँवरा है। स्वच्छ निर्झरिणी है इसकी धारा। स्वर और व्याकरण का शासन इस पर नहीं है किन्तु इसकी लयात्मकता और धुनों का संयोजन अत्यन्त मोहक है। लोकगीतों में किसी तरह का आभिजात्य उसकी सहजता, स्वतंत्रता और स्वच्छन्दता को अवरुद्ध करता है। लोकगीतों की रचना वस्तुत: विचारसंकुल न होकर भाव-प्रधान होती है। लोकगीतों का रचना-संसार मात्र प्रेरणा का स्रोत नहीं, अपितु प्राणप्रद भी है। एक लोकगीत के भाव कितने ऊँचे और कितने मधुर हैं—

"हे सूरज, धीरे-धीरे तपो, जिससे मेरी पत्नी के माथे पर उगा कुंकुम का दूसरा सूरज पिघल न जाये।

हे धरती माता! अपने हृदय को नरम बना लो, जिससे मेरी प्रिया की पीठ सहलाने वाली हथेली में छाले न पड़ जायें।"

लोकगीतों का वर्ण्य विषय अत्यन्त रोचक, सजीव और मार्मिक होता है। बच्चे के जन्म का आयोजन गीतों से होता है। विवाह में गीत की कड़ियों के साथ मंडप छवाया जाता है। गीत की धारा से वर-वधू को स्नान कराकर मंगल तिलक लगाया जाता है। गीत की वेदना से कन्या को विदा किया जाता है। इस अवसर पर पिता के रोने से गंगा में बाढ़ आ जाती है, माँ के रोने से आकाश में अँधेरा हो जाता है और भाई के रोने से उसकी धोती पाँव तक भींग जाती है। इन गीतों में उपमाओं का भंडार है। पिता मानसरोवर हैं, श्वसुर भरे-पुरे भण्डार की भाँति हैं, माँ बहती गंगा हैं तो सास भरी-पुरी बावड़ी हैं, बच्चे गुलाब के फूल हैं तो स्वामी उगते सूरज हैं। इस तरह लोक जीवन की हर साँस में बसे हैं ये लोकगीत, जिनकी संवेदनशीलता मानव मात्र को विभोर कर देती है।

एक राजस्थानी गीत में जड़-प्रकृति में संवेदना की पराकाष्ठा है—

कह लूवां कित जावस्यो
पावस धर पड़ियांह
हिये नवोरा नार रा
बालम बीछड़ियांह।

—कहो हे लू, तुम कहाँ रहोगी जब धरती पर पावस आ जाएगा।

मैं उन नववधुओं के हृदय में रहूँगी, जिनके प्रियतम परदेस गए हैं।

लोकगीतों में समग्र जनजीवन का जीवन्त चित्र होता है। ये भावपूर्ण अमृत कलश हैं। गार्हस्थ्य जीवन का हास-उल्लास, हर्ष-विषाद और सुनहले सपनों का विस्तृत आकाश इन गीतों में हैं। इन्हीं से जीवन को मिलती है—ऊर्जा, जिसके माध्यम

से मानव एक नये रचनासंसार की नींव रखता है। लोकगीतों की कई विधाएँ हैं, तदनुसार कई प्रयोजन भी। वस्तुत: वे लोक जीवन के अंग हैं। केवल मनोरंजन या वैचारिक मन्थन ही उनका लक्ष्य नहीं, बल्कि उनका मूल प्रयोजन तो मानव मात्र के जीवन से जुड़ा है; चाहे वह संस्कारों के रूप में हो; मांगलिक ऋतुओं, व्रतों के रूप में हो; नृत्य और रस के रूप में हो अथवा जाति या श्रमगीनों के रूप में हो; उनकी लय किसी न किसी के साथ अवश्य मिली हुई है। संस्कार-गीतों में जातीय चेतना और पारिवारिक स्नेह-वितान की आश्वस्तता रहती है तो श्रमगीतों में मानव नियति की करुणा होती है; ऋतुगोतों में उल्लास का ज्वार उमड़ता है तो धार्मिक गीतों में चैतन्य शक्ति और भक्ति की अनुभूति होती है। ये कहने को विभिन्न वर्ण्य विषय हैं, किन्तु कभी-कभी ये संश्लिष्ट होकर ये एक दूसरे के पर्याय बन जाते हैं।

लोकगीतों की कुछ खास विशेषताएँ हैं। इनमें प्रश्नोत्तर की परम्परा का सूत्र संभवत: वैदिक सूत्रों और आख्यानों से आया। इनका नाटकीय गठन, सिलसिलेवार घटनाचक्र अद्‌भुत होता है। इनमें वह आकर्षण है जो स्वर्ग के देवताओं को धरती पर उतार कर उन्हें मानव लीला करने को बाध्य करता है। इनमें इतनी सहजता होती है कि अर्थ-प्रतीति में कोई व्यवधान नहीं होता। इनके उपमान हमारे दैनन्दिन उपयोग की वस्तुओं से जुड़े होते हैं। इनके विम्ब-विधान लोक कल्पना की परिधि में आते हैं। जैसे—सोने की थाली, चन्दन की किवाड़ी आदि। कुछ विम्बों से मांगलिकता का पूर्णबोध होता है।

खेलत कूदत बहुअरि निबिया लगाये
रेखिया भिनत गे बिदेसवा हो राम।
फरिगै निबिया लहसि गै डरिया,
तबहू न आये तोर बिदेसिया हो राम।

किशोरावस्था में प्रियतम ने नीम का पेड़ लगाया और युवावस्था में परदेस चले गए। नीम फलने लगी। डालियाँ फलों से झुकने लगीं। फिर भी प्रिय नहीं आए। इसमें प्रेम के एँक बिरवे की सफलता में विलम्ब का स्वाभाविक चित्रण है। इस तरह के विम्ब-विधान का लोक साहित्य में अधिक वैशिष्ट्य इसलिये है कि वह अधिक लौकिक, नैसर्गिक एवं संक्षिप्त होता है। भभकते हुए कुम्हार के आँवे की तरह बेटे के लिये माँ का कलेजा विकल होता है। यह उपमा सहज किन्तु अत्यन्त मार्मिक एवं संवेदनापूर्ण है। कहीं-कहीं ये विम्बविधान अत्यन्त सूक्ष्म और दार्शनिक भावना से परिपूर्ण होते हैं—

गहरी नदिया ए हरिजी,
अगम बहे राम पनियाँ
पियवा जे चललै मोरंग देसवा,
बिहरेला करेजवा।

इसमें अथाह जल और हृदय का अगम्य दु:ख एकाकार है।

लोक साहित्य के अन्तर्गत लोकगीतों के सहज सौन्दर्य के चुम्बकीय आकर्षण ने

बरसों पहले मुझे भी इतना मुग्ध किया कि मैं इनकी अतल गहराइयों में डूबने-उतराने को मचल उठी। सन् १९७९ में उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ के सचिव डॉ० समर बहादुर सिंह ने मुझे एक पुस्तक 'चैती' लिखने का प्रस्ताव भेजा था। वह पुस्तक सन् १९८० में प्रकाशित हुई और १९८३ में बिहार सरकार के राजभाषा विभाग से पुरस्कृत हुई।

इस बीच उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी, लखनऊ के अध्यक्ष डॉ० जयदेव ठाकुर ने 'कजरी' पुस्तक लिखने का प्रस्ताव किया जो १९८१-८२ के दौरान तो लिखी गई, किन्तु उसके प्रकाशन में अपरिहार्य कारणों से विलम्ब हुआ और वह पुस्तक १९९० में मुद्रित हो सकी।

जो हो, चैती पुस्तक के सुपरिणाम ने मुझे लोकगीतों पर विस्तृत काम करने के लिए प्रेरित किया। मैंने कजरी के बाद 'व्रत और त्योहार : पौराणिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि' नामक पुस्तक लिखी जो हिन्दुस्तानी अकादमी, इलाहाबाद से १९८८ में प्रकाशित हुई। यह लोकगीत यात्रा और आगे बढ़ी जो 'ऋतुगीत : स्वर और स्वरूप' के रूप में अयन प्रकाशन, दिल्ली से अक्षरायित हुई। पर जिज्ञासाओं की महत्त्वाकांक्षा को जब पंख लगते हैं तो व्यक्ति अनन्त आकाश में उड़ानें भरने लगता है। इसी जिज्ञासा ने मुझे बाध्य किया कि मैं लोकगीतों का विस्तृत परिचय उनके संदर्भों एवं आयामों के साथ प्रस्तुत करूँ। उसी जिज्ञासा का परिणाम है यह पुस्तक 'लोकगीतों के संदर्भ और आयाम'। इसकी शैली कोश की शैली है किन्तु इसे वर्णक्रम से प्रस्तुत करना कठिन था। इसलिये मैंने इसे विधाओं में बाँटकर ग्यारह अध्यायों में प्रस्तुत किया।

प्रथम अध्याय में लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय और उसके प्रकारों का वर्णन है। द्वितीय अध्याय में विभिन्न प्रदेशों के संस्कार-गीतों का विस्तृत उल्लेख है। तृतीय अध्याय में ऋतुओं के, चतुर्थ अध्याय में व्रत एवं त्योहार के गीतों के संदर्भ हैं। पंचम अध्याय में विभिन्न जातियों में गाये जाने वाले गीतों का उल्लेख है। षष्ठ अध्याय में श्रम-गीतों का वर्णन है। लोक जीवन में प्रचलित बालगीत प्राय: लुप्त हो रहे हैं, इसलिये मैंने उनकी स्मृतियों को जगाकर सँजोने का एक छोटा सा प्रयास किया है। इस क्रम में सप्तम अध्याय बालगीतों को समर्पित है। अष्टम अध्याय में नृत्य-गीतों का परिचय दिया गया है। नवम अध्याय में रसों पर आधारित लोकगीतों का उल्लेख है। दसवें अध्याय के लोकगीतों में धार्मिक भावना का प्रकाश है और ग्यारहवें अध्याय में ऐसे विविध गीतों का परिचय है जो किसी भी समय गाये जा सकते हैं।

इतना होने के बावजूद मैं इस पुस्तक की संपूर्णता का दावा इसलिये नहीं कर सकती, क्योंकि ज्ञान एवं अन्वेषण की कोई सीमा नहीं। ढूँढने पर लोकगीतों के अनगिनत प्रकार और निकल आयेंगे। जितना जो कुछ लिखा गया है, वह अध्ययन के आधार पर है; भ्रमण के आधार पर नहीं; जबकि विभिन्न प्रदेशों की लोक शैली, लोक साहित्य को जानने के लिये 'फील्ड वर्क' आवश्यक है। किन्तु साधन के अभाव में मेरे लिये ऐसा करना संभव नहीं था। इसलिए अपनी शक्ति भर मैं जितना कुछ जुटा सकी

हूँ, पाठकों के सामने प्रस्तुत कर रही हूँ। अगर मेरे इस परिश्रम से पाठकों को अंश भर भी लाभ मिल सका तो मैं अपना प्रयास सार्थक समझूँगी।

पुस्तक लेखनक्रम में जिन लोगों ने सहयोग किया है उनमें बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना के पुस्तकालय अध्यक्ष श्री रवीन्द्रप्रसाद का योगदान उल्लेख्य है। बालगीत अध्याय लिखने के क्रम में डॉ० मधुबाला वर्मा और इतनी बड़ी पाण्डुलिपि को सहेजने-सँवारने में डॉ० विमला सिन्हा ने मदद की है। मैं इन सबके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ। प्रख्यात उपन्यासकार एवं आकाशवाणी के अवकाशप्राप्त महानिदेशक श्री कृष्णचन्द्र शर्मा 'भिक्खु' ने इस पुस्तक को एक सार्थक शीर्षक दिया है। धन्यवाद देकर मैं उनके स्नेह को छोटा कैसे करूँ?

लेखन एवं प्रकाशन में भावनात्मक सहयोग देकर टाइम्स ऑफ इण्डिया के भूतपूर्व वरिष्ठ संवाददाता श्री जितेन्द्र सिंह ने मुझे अनुगृहीत किया है। इस दृष्टि से आचार्य निशान्तकेतु का भी अमूल्य परामर्श मुझे समय-समय पर मिलता रहा है। उनका ऋणी हूँ मैं। ग्रन्थ तो बड़ा हो गया है किन्तु इसके प्रकाशन का साहसिक भार प्रकाशक श्री पुरुषोत्तमदास मोदी ने लेकर मुझे ऋणी बना लिया है।

इस ग्रन्थ के प्रकाशन में बड़ी अड़चनें थीं। पद्मभूषण डॉ० बिन्देश्वर पाठक, जिन्होंने न केवल समाज सुधारक के रूप में अपितु लोक संस्कृति संरक्षक के रूप में भी अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है और जिस सौजन्य से इस ग्रन्थ के प्रकाशन में सहयोग देने को प्रस्तुत हुए, उसके लिये उन्हें आभार देने के लिए मेरे शब्द छोटे पड़ गए हैं।

आकाशवाणी, वाराणसी के अवकाशप्राप्त केन्द्र निदेशक श्री विश्वनाथ पाण्डेय ने इस पुस्तक के प्रकाशक और मेरे बीच सम्पर्क सेतु बनाकर और अपना सौजन्य सहयोग देकर मुझे अनुगृहीत किया है।

लोकगीतों के ये शाश्वत स्वर, 'लोकगीतों के संदर्भ और आयाम' आपके सामने है। पाठकों से मेरा विनम्र अनुरोध है कि इस पुस्तक की त्रुटियों को नज़र अन्दाज़ कर मेरा उत्साहवर्द्धन करेंगे।

शान्ति जैन

रस्तोगी भवन
कदमकुआँ, पटना-३

डॉ० शान्ति जैन

शिक्षा

एम०ए० (संस्कृत, हिन्दी), पी एच०डी०, डी० लिट्, संगीत प्रभाकर (शास्त्रीय गायन)।

कार्यक्षेत्र

(१) जुलाई १९६८ से जुलाई १९७२ तक आकाशवाणी पटना में कार्यक्रम उद्घोषिका।

(२) १७ जुलाई १९७२ से ११ अगस्त १९७४ तक क्रमश: पटना वीमेन्स कॉलेज एवं मगध महिला कॉलेज में संस्कृत व्याख्याता।

(३) ६ मई १९७५ से १८ अप्रैल १९८३ तक बिहार सरकार, शिक्षा विभाग के अन्तर्गत बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् में क्रमश: क्षेत्रीय पदाधिकारी (विद्यार्पन विभाग) एवं अनुसंधान सहायक (लोकभाषा विभाग)।

(४) १९ अप्रैल १९८३ से ३० अप्रैल १९८८ तक मगध विश्वविद्यालय के अन्तर्गत सहजानन्द ब्रह्मर्षि कॉलेज, आरा में संस्कृत व्याख्याता।

(५) १ मई १९८८ से अब तक श्री अरविन्द महिला कॉलेज, पटना के संस्कृत विभाग में संप्रति रीडर के पद पर।

प्रकाशित कृतियाँ

१. कुमारसंभव टीका प्रथम सर्ग, १९६५
२. वेणीसंहार की शास्त्रीय समीक्षा, १९७७
३. एक वृत्त के चारों ओर (कविता संग्रह), १९७८
४. कादम्बरी (रूपान्तर), १९७९
५. चैती (लोकसंगीत), १९८०
६. छलकती आँखें (हिन्दी गीत संग्रह), १९८१
७. साँझ घिरे लागल (भोजपुरी गीत संग्रह), १९८३
८. व्रत और त्योहार . पौराणिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, १९८८
९. पिया की हवेली (हिन्दी गीत संग्रह), १९८९
१०. हथेली का आदमी (कविता संग्रह), १९९०
११. कजरी (लोकसंगीत), १९९१
१२. ऋतुगीत : स्वर और स्वरूप, १९९२

प्रकाशनाधीन पुस्तकें

१. अश्मा (खण्ड काव्य) — प्रेस में
२. धूप में पानी की लकीरें (ग़ज़ल, गीत, कविताएँ) — प्रेस में
३. होली (लोकसंगीत)
४. व्रत और त्योहार की कथाएँ (बाल साहित्य)
५. दसन्तसेना (रूपान्तर)
६. वासवदत्ता (रूपान्तर)
७. कादम्बरी (द्वितीय संस्करण)
देश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लगभग डेढ़ सौ रचनाएँ प्रकाशित।

पुरस्कार एवं सम्मान

१. १९८३ में बिहार सरकार के राजभाषा विभाग से 'चैती' पुस्तक पर पुरस्कार।
२. १९७८ में कहानीकार जैनेन्द्र द्वारा 'छलकती आँखें' गीत संग्रह के लिये सम्मान।
३. पटना की एक साहित्यिक संस्था द्वारा 'साहित्यमणि' की उपाधि।
४. मथुरा की एक संस्था द्वारा 'साहित्य सरस्वती' की उपाधि
५. प्रबुद्ध सांस्कृतिक मंच, पटना द्वारा काव्यकोकिला की उपाधि।
६. पटना की एक संगीत संस्था द्वारा गीतकार के रूप में सम्मानित।
७. 'साहित्यांचल' पटना द्वारा 'गीत गौरव' की उपाधि।
८. १९९७ में रणधीरप्रसाद वर्मा सम्मान साहित्यिक योगदान हेतु।

अन्य क्षेत्रों में योगदान

१. पिछले तीस वर्षों से आकाशवाणी पटना से लोकगीत, सुगम-संगीत, भक्तिगीत, वार्ता, रूपक लेखन, कविता आदि का प्रसारण।
२. आकाशवाणी की स्वीकृत गीतकार।
३. दूरदर्शन दिल्ली एवं पटना से कार्यक्रम प्रसारित।
४. ग्रामोफोन कम्पनी, एच०एम०वी० एवं इनरेको द्वारा स्वयं लिखे एवं गाये गये गीतों के रेकॉर्ड।
५. फ़िल्मों में गीत लेखन — हक के लड़ाई, माई के दुलार, मेरा नाम क्या है (टेली फ़िल्म), अभिशाप (टेलीफ़िल्म)।
६. दुर्गासप्तशती सम्पूर्ण, सुन्दरकाण्ड के कैसेट तीन-तीन भागों में।
७. फ़िल्म 'माई के दुलार' में पार्श्वगायन।
८. 'बोल बम भोले' कैसेट (एच०एम०वी०), छठ गीत कैसेट।
९. 'जय जय वैष्णवि माता हे' कैसेट के दस गीतों की गीतकार (एच०एम०वी०)।

सदस्यता

१. अल्पसंख्यक आयोग, बिहार
२. 'टेम्पुल ऑफ अण्डर स्टैंडिग' (सुलभ इण्टरनेशनल से संबद्ध संस्था)
३. अखिल भारतीय महिला संघ
४. संगीत परिक्रमा

विषयानुक्रमणिका

अध्याय ३

अध्याय १

लोकगीतों का संक्षिप्त परिचय

'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोकदर्शने' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाकर बना है, जिसका अर्थ है — देखने वाला। साधारण जनता के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर हुआ है।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में, ''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान संचित हैं। अर्वाचीन मानव के लिये लोक सर्वोच्च प्रजापति है।''

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'लोक' शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम से न लेकर नगरों व गाँवों में फैली उस समूची जनता से लिया है जो परिष्कृत, रुचिसंपन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन की अभ्यस्त होती है।

डॉ० कुंजबिहारी दास ने लोकगीतों की परिभाषा देते हुए कहा है, ''लोकसंगीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है, जो सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर कम या अधिक आदिम अवस्था में निवास करते हैं। यह साहित्य प्राय: मौखिक होता है और परम्परागत रूप से चला आ रहा है।''

लोकगीतों को मात्र ग्रामगीत कहकर उनकी व्यापकता को कम नहीं किया जा सकता। ये गीत अब गाँव की चहारदीवारी को छोड़ नगरों और महानगरों की सीमा को छू रहे हैं। हिन्दी साहित्य कोश में 'लोकगीत' शब्द के तीन अर्थ किये गये हैं—

१. लोक में प्रचलित गीत,

२. लोकनिर्मित गीत तथा

३. लोकविषयक गीत।

किन्तु वास्तव में लोकगीत का तात्पर्य लोक में प्रचलित गीत ही है, जिसे दो अर्थ दिये जा सकते हैं—१. अवसरविशेष के प्रचलित गीत तथा २. परम्परागत गीत।

लोक द्वारा निर्मित होने पर भी लोकगीत को किसी व्यक्तिविशेष से जोड़ा नहीं जा सकता, क्योंकि रचनाकार को उस गीत में समस्त लोक के व्यक्तित्व को उभारना होता है। लोकसाहित्य वस्तुत: जनता का वह साहित्य है जो जनता द्वारा, जनता के लिये लिखा जाता है।

"The poetry of the people, by the people, for the people."

अंग्रेजी में 'फ़ोक' का अर्थ है— लोक, राष्ट्र, जाति, सर्वसाधारण या वर्गविशेष।

इसीलिए Folk Song के अनुरूप हिन्दी में लोकसंज्ञा दी गई है। अंग्रेजी का Folk Song जर्मनी के Volkslied का अपभ्रंश है। समस्त मानव समाज में चेतन- अचेतन के रूप में जो भावनाएँ गीतबद्ध हुई हैं, उन्हें लोकगीत कहा जा सकता है। डॉ० बार्क ने 'फ़ोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि इससे सभ्यता से दूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है। ग्रिम का कथन है कि लोकगीत अपने आप बनते हैं—

"A folk song composes itself."[1]— *Grimm*

पेरी ने लिखा है कि लोकगीत आदिमानव का उल्लासमय संगीत है।

"The primitive spontaneous music has been called folk-music."[2]— *Perey*

राल्फ वी० विलियम्स का कथन है कि "लोकगीत न पुराना होता है न नया। वह तो जंगल के एक वृक्ष जैसा है, जिसकी जड़ें तो दूर ज़मीन में धँसी हुई हैं, परन्तु जिनमें निरन्तर नई- नई डालियाँ, पल्लव और फल लगते हैं।"

"A Folk Song is neither new nor old, it is like a forest tree with its roots deeply burried in the past, but which continually puts forth new branches, new leaves, new fruits."[3]

लोकगीत हमारे जीवन विकास की गाथा हैं। उनमें जीवन के सुख- दु:ख, मिलन- विरह, उतार-चढ़ाव की भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। सामाजिक रीति एवं कुरीतियों के भाव इन लोकगीतों में हैं। इनमें जीवन की सरल अनुभूतियों एवं भावों की गहराई है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी का कहना है कि लोकगीत का मूल जातीय संगीत में है।

लोकगीतों का विस्तार कहाँ तक है, इसे कोई नहीं बता सकता। किन्तु इनमें सदियों से चले आ रहे धार्मिक विश्वास एवं परम्पराएँ जीवित हैं। ये हृदय की गहराइयों से जन्मे हैं। श्रुतिपरम्परा से ये अपने विकास का मार्ग बनाते रहे हैं। अत: इनमें तर्क कम, भावना अधिक है। न इनमें छन्दशास्त्र की लौहश्रृंखला है, न अलंकारों की बोझिलता। इनमें तो लोकमानस का स्वच्छ और पावन गंगा -यमुना जैसा प्रवाह है। लोकगीतों का सबसे बड़ा गुण यह है कि इनमें सहज स्वाभाविकता एवं सरलता है। इनमें सुख -दु:ख, प्रेम और करुणा के विविध रंग हैं। कहीं पुत्रजन्म के अवसर पर हर्ष -उल्लास के स्वर गूँजते हैं तो कहीं कन्या की विदाई या प्रियवियोग की बेला में करुणा के गीत मुखर होते हैं।

"लोकगीतों में भावों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक और हृदय से निकली हुई लय के साथ होती है। हरे जंगलों में जैसे पंछी उन्मुक्त होकर गाते हैं, उसी प्रकार लोकगीत स्वाभाविक रीति से हृदय से फूटकर निकलते हैं। इनमें सरल काव्य होता है, भावों की खींचतान नहीं होती।"[४]

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है, "लोकगीत की एक- एक बहू के चित्रण पर

१. *Encyclopaedia Brittanica*, Vol IX, पृ० ४४५.

२. वही

३. वही

४. *भारतीय लोकसाहित्य*, डॉ० श्याम परमार

रीतिकाल की सौ-सौ मुग्धाएँ और खण्डिताएँ न्योछावर की जा सकती हैं, क्योंकि ये निरलंकार होने पर भी प्राणमयी हैं और वे अलंकारों से विभूषित होने पर भी निष्प्राण हैं। ये अपने जीवन के लिये किसी शास्त्रविशेष की मुखापेक्षी नहीं हैं। ये अपने आप में परिपूर्ण हैं।''[१]

लोकगीतों में लोक का समस्त जीवन चित्रित है। शिशु के प्रथम क्रन्दन से लेकर जीवन की अन्तिम कड़ी तक के भावचित्र इनमें हैं। भाई से मिलने को व्याकुल बहन की व्यथा-कथा, स्त्रियों का आभूषण-प्रेम, सास, ननद तथा सौत के अत्याचारों से पीड़ित स्त्री की मनोव्यथा, कृषकपरिवार की विपन्नता, वीरों की शौर्यगाथा तथा मिलन-विरह के रंगारंग भाव इन गीतों में मिलते हैं। दूसरे शब्दों में, इन लोकगीतों में जीवन का शाश्वत सत्य झलकता है।

मौखिक परम्परा से विकसित होते हुए इन लोकगीतों को वेदों के समान माना गया है, क्योंकि दोनों ही अधिक मात्रा में श्रव्य हैं। लोकगीतों की शैली सहज होती है और उनमें गेयतत्त्वों की प्रधानता होती है। *एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका* में कहा है कि कोई भी गीत, कैसा भी संगीत लोकसंगीत पर निर्भर है। संगीत की दृष्टि से ये गीत बिना किसी वाद्ययंत्र के स्वाभाविक हृदयस्पर्शी स्वर का प्रतिनिधित्व करते हैं।

डॉ० यदुनाथ सरकार ने लोकगीत की विशेषताएँ बतलाते हुए कहा है, ''प्रबन्ध की द्रुतगति, शब्दविन्यास की सादगी, विश्वव्यापी मर्मस्पर्शी प्राकृतिक मनोव्यथा, सूक्ष्म किन्तु प्रभावोत्पादक चरित्र-चित्रण, क्रीड़ास्थली एवं देशकाल का स्थूल अंकन, साहित्यिक कृत्रिमताओं के न्यूनातिन्यून प्रयोग का सर्वथा बहिष्कार सच्चे लोकगीत की ये नितान्त आवश्यकताएँ हैं।''

महादेवी वर्मा के शब्दों में, ''सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्थाविशेष को गिने-चुने शब्दों में स्वरसाधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है और इस गीत में जब सहज चेतना जुड़ जाती है तो वह लोकगीत बन जाता है। लोकगीत गगनचुम्बी हिमश्रेणियों के बीच में एक ऐसा सजल आलोकोज्ज्वल मेघखण्ड है, जो न तो इनके टूट-टूट कर गिरने वाले शिलाखण्डों से दबता है और न इन श्रेणियों की सीमाओं में आबद्ध होकर ससीम बनता है, प्रत्युत उन चोटियों का शृंगार करता है और संगीतलहरी के प्रत्येक स्पन्दन-कम्पन के साथ उड़कर उस विशालता के कोने-कोने को मादकता का सागर प्रस्तुत करता है।''[२]

''लोकगीत कवि के परोक्षानुभूतिपरक दृष्टिकोण से सहज रूप में उद्भूत संगीतात्मक शब्दयोजना को कहा जा सकता है। मानव-जाति की अनवरत साधना से संजात यह अपौरुषेय साहित्य अपने आपको प्राचीनतम श्रुतिसाहित्य के समकक्ष ही गुरुता का अधिकारी बनाये हुए है अथवा दूसरे शब्दों में, श्रुतिसाहित्य की भाषापरम्परा में यह सबसे प्रामाणिक भाष्य है।''[३]

लोकगीतों का अस्तित्व आदिममानस के अवशेष के कारण है। इसका विवेचन स्पष्ट शब्दों में किया गया है—

१. *हिन्दी साहित्य* की भूमिका, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
२. *सांध्यगीत* की भूमिका, महादेवी वर्मा
३. *हाड़ौती लोकगीत*, डॉ० चन्द्रशेखर भट्ट, पृ० ३०

"In all folk-songs it is a common thing to find that the words are inferior to the tunes and because of this it is often stated that it was the tune which mattered most. This belief is very far from accurate. The truth is that in their passage from mouth to mouth the words have suffered a succession of minor abrasion and modification. The music is remembered more faithfully because to the folk-singer the whole meaning of the song is emotional rather than logical."[1]

लोकसंगीत का उद्भव

लोकसंगीत की परम्परा भारत में अत्यन्त प्राचीन है। संभवतः सृष्टि के आरम्भ से ही इसकी परम्परा रही है। लोकगीतों का बीज हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ *ऋग्वेद* में उपलब्ध होता है। प्राच्य साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख है, उन्हें लोकगीतों का पूर्व प्रतिनिधि कहा जा सकता है। पद्य या गीत के अर्थ में 'गाथा' तथा उसे गाने वाले के अर्थ में 'गाथिन्' शब्द का प्रयोग ऋग्वेद के मंत्रों में मिलता है। बहुत पहले किसी विशिष्ट राजा की सराहना में लोकगीत समाज में प्रचलित थे, वे ही गाथा नाम से साहित्य के एक पृथक् अंग के रूप में जाने गए। *गृह्यसूत्र* में विवाह, सीमन्तोन्नयन तथा यज्ञादि के अवसर पर गाथाएँ गाई जाती थीं। *ब्राह्मण* तथा *आरण्यक* ग्रन्थों में भी गाथाओं का वर्णन मिलता है। गाथाओं का संबंध लोकगीतों से बहुत निकट का जान पड़ता है।

विक्रम संवत् की तीसरी शताब्दी में प्राकृत भाषा का बोलबाला था। लोकगीतों की उन्नति भी उस समय बड़े जोर-शोर से हुई। राजा हाल या शालिवाहन द्वारा संग्रहीत गाथा सप्तशती से विदित होता है कि उस समय लोकगीत गाने और बजाने की प्रथा थी। इन गाथाओं में सरस गीतिकाव्य की झाँकी तथा लोकसाहित्य की माधुरी भी है।

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम-जन्म के समय तथा *श्रीमद्भागवत* में श्रीकृष्ण-जन्म के शुभ अवसर पर स्त्रियों द्वारा मनोरंजक गीत गाने का वर्णन मिलता है। संस्कृत साहित्य में चक्की पीसना, धान कूटना, ढेंकी चलाना, खेती निराना, चरखा कातना आदि समयों में झुण्ड बाँधकर गीत गाने का उल्लेख हुआ है। बारहवीं शताब्दी की एक कवयित्री विज्जका ने धान कूटने वाली स्त्रियों के गीत का बड़ा मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया है—

विलासमसृणोल्लसन् मुसललोलदोः कन्दली
परस्पर परिस्खलद् वलयनिःस्वनोद्‌बन्धुराः ।
लसन्ति कलहुंकृति प्रसभकम्पितोरः स्थल-
त्रुटद्‌गमकसंकुलाः कलभगण्डनी गीतयः ॥

अर्थात् स्त्रियाँ धान कूट रही हैं और साथ-साथ गीत भी गा रही हैं। मूसल उठाने और गिराने के कारण उनकी चूड़ियाँ खन-खन कर रही हैं। उनके वक्षस्थल हिल रहे हैं। मीठी हुंकार की आवाज़ तथा चूड़ियों की खनक से मिलकर उनके गीत विचित्र आनन्द पैदा कर रहे हैं।

1. *Poetry and the People*, Kenneth Richmond, पृ० १८४

महाकवि कालिदास ने एक ओर तो *मेघदूत* में यक्ष के घर के वैभव का चित्र खींचा है तो दूसरी ओर *रघुवंश* में धान के खेत की रखवाली करने वाली स्त्रियों द्वारा ईख की छाया में बैठकर लोकगीतों के गाने का उल्लेख किया है--

इक्षुच्छायानिषादिन्य: तस्य गोप्तुर्गुणोदयम् ।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्योजगुर्यश: ॥[१]

गोस्वामी तुलसीदास के समय विभिन्न संस्कारों के अवसर पर लोकगीत गाने की प्रथा थी। श्रीराम-विवाह के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गीत गाने का उल्लेख है --

गावहिं मंगल मंजुल बानी ।
सुनि कलरव कलकंठ लजानी ॥[२]

सोहर छन्द में उन्होंने *रामललानहछू* की रचना करके लोकगीतों की महत्ता प्रतिपादित की है। श्रीरामचन्द्र के विवाह के अवसर पर गाली गाये जाने का उल्लेख भी तुलसीदास ने किया है -

नारि वृन्द सुर जेंवत जानी ।
लगीं देन गारी मृदु बानी ॥

राजा शिवसिंह के दरबार में विद्यापति ने पंद्रहवीं शताब्दी में मधुर गीत लिखकर रस सृष्टि की है।

सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने १८८६ ई० में 'Some Bhojpuri Folk Songs' में भोजपुरी के बिरहा, जँतसार, सोहर आदि गीतों का उल्लेख किया है।

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लोकगीतों की परम्परा को देखकर इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, "वाल्मीकि, भागवतकार, विज्जका और तुलसीदास इनमें से किसी ने यह नहीं बताया कि वे गीत कौन से थे? अवश्य ही वे वही कंठस्थ गीत रहे होंगे, जो आज भी हैं। समय के अनुसार मात्र इन्होंने भाषा का जामा बदल दिया है। इनके भाव पुराने ही हैं, भाषा भले ही नई हो।"[३]

लोकगीतों की उत्पत्ति के संबंध में कुछ सिद्धान्त इस प्रकार प्रतिपादित किये गये हैं --

(१) आदिमानव ने सर्वप्रथम प्रकृति को देखा। प्रकृति में प्रजनन की शक्ति देखकर उसे सुख, तथा विनाश की शक्ति देखकर दु:ख हुआ। दोनों अवस्थाओं में उल्लास व सान्त्वना के लिये की गई भावव्यंजना लोकगीत के रूप में परिणत हो गई।

(२) संतोष और उल्लास ने लोकगीतों को जन्म दिया। आदिमानव ने आनन्दोत्सव में नाचते समय अपनी मण्डली में कुछ लयबद्ध शब्दों का उच्चारण किया, जिसे दूसरों ने भी गाकर गीत का नाम दिया।

(३) परिश्रम के बोझ को हल्का करने के लिये आदिमानव द्वारा जो गुनगुनाहट शुरू हुई, उसी से लोकगीतों का जन्म हुआ।

१. *रघुवंशमहाकाव्यम्*, ४/२०
२. *रामचरितमानस*, बालकाण्ड, दोहा २९८ के बाद की चौपाई
३. *कविता कौमुदी*, संपादक-रामनरेश त्रिपाठी, तीसरा भाग, *ग्रामगीत*, पृ० ८२

लोकगीतों की रचना किसी व्यक्ति ने की अथवा ये किसी जाति के सामूहिक प्रयास का परिणाम हैं, इसके संबंध में कुछ मत प्रचलित हैं---

(१) समुदायवादी मत वाले ग्रिम कहते हैं कि लोकगीतों की उत्पत्ति व्यक्ति विशेष ने नही की है, बल्कि इसके निर्माण का श्रेय एक समुदाय को है।

(२) विशप पर्सी कहते हैं कि लोकगीतों की रचना चारण या भाटों के द्वारा हुई, जो प्राचीन काल में ढोल या सारंगी पर गाना गाते हुए भीख माँगते थे।

(३) जर्मन विद्वान् श्लेगल लोकगीतों को व्यक्तिविशेष की रचना मानते हैं जबकि डॉ० फ्रान्सिस चाइल्ड का कहना है कि लोकगीतों में व्यक्तिविशेष की वाणी तो मिलती है, उसका व्यक्तित्व नहीं मिलता।

(४) लोकगीतों का उद्गम शहर की चकाचौंध में नहीं, अपितु गाँव की प्राकृतिक सम्पदा की पृष्ठभूमि में होता है। इनकी उत्पत्ति पर अपना मत व्यक्त करते हुए गुजराती विद्वान् झबेरचन्द मेघाणी 'रढ़ियाली रात' में लिखते हैं कि जिस प्रकार हरे जंगलों में पंछी अपने आप गा उठते हैं, वैसे ही लोकगीत स्वाभाविक रूप से हृदय से फूट पड़ते हैं।

इस तरह लोकगीतों में निम्न विशेषताएँ पाई जाती हैं---

१. ये स्वत: उद्‌भूत हैं।

२. लोकगीत आदिम मानव का स्वत: उद्‌गीर्ण संगीत है।

३. ये गीत प्रकृति के उद्‌गार और आर्येतर सभ्यता के वेद हैं।

४. लोकगीत प्राचीन संस्कृति के चित्र हैं और हमारे जीवन-विकास का इतिहास है।

स्पष्ट है कि लोकगीतों की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। कालान्तर में कबीर, धर्मदास आदि सन्तों ने भी लोकवाणी के माध्यम से अथवा लोकगीत शैली में साहित्यजगत् को बहुमूल्य निधियाँ भेंट कीं।

लोकगीतों की साहित्यिकता एवं सांगीतिकता

• महात्मा गाँधी ने कहा था कि वही काव्य और वही समाज चिरजीवी रहेगा, जिसे लोग सुगमता से पा सकेंगे और आसानी से पचा सकेंगे। अत: यदि साहित्य को समूह के साथ विकसित होना है तो उसे लोकसमाज एवं लोकसाहित्य से जुड़ना होगा। वस्तुत: साहित्य लोकगीतों से ही अनुप्राणित होकर सहज होता है और रस का सृजन करता है, क्योंकि लोकगीत अकृत्रिम एवं पूर्ण होते हैं।

लोकगीत गीतिकाव्यों के आरंभिक एवं अविकसित रूप हैं। शब्द और अर्थ के साथ इनमें संगीतात्मक एवं रागात्मक अभिव्यक्ति, संवेदनशीलता और आत्मीयता है। संगीत एवं काव्य की दृष्टि से लोकगीतों का बड़ा महत्त्व है। लोकमानस के स्वाभाविक उल्लास, उमंगें, व्यथा-पीड़ा, परम्परागत रीति-रिवाज तथा काव्य की रसात्मक अनुभूतियाँ लोकगीतों में हैं।

स्वाभाविक रचना के कारण लोकगीतों में व्यंग्य एवं लाक्षणिकता है। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, श्लेष, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों की सुन्दर योजना भी इनमें है। रूपक का एक सुन्दर उदाहरण देखें---

नयन सरोवर, काजर नीर
ढरकि खसल सखि धनिक सरीर ।

लोकगीतों मे स्वाभाविक एवं मौलिक अलंकारों का प्रयोग होता है। उपमान नवीन होते हैं। हिन्दी तथा संस्कृत के प्राचीन कवियों ने आँखों की उपमा खंजन, मीन, मृग तथा कमल से दी है जबकि लोककवि ने इनकी उपमा आम की फाँक से दी है। होठों की उपमा बिम्बफल से न देकर पान के पत्ते से दी गई है। पेट की उपमा पुरइन के चौड़े पत्ते से और पीठ की उपमा धोबी के पाट से दी गई है। किसी स्त्री के जूड़े की उपमा लाठी के हूर से दी गई है। श्लेषालंकार का यत्र तत्र प्रयोग मिलता है। एक पद में 'रस' का प्रयोग 'प्रेम' और 'मधुर' दोनों अर्थों में हुआ है, अत: यमक है। 'भँवर' शब्द का अर्थ 'पति' और 'भ्रमर' होने मे श्लेष है। निर्गुण सम्प्रदाय के गीतों तथा कुछ अन्य लोकगीतों में प्रतीकों की भी अच्छी योजना की गई है।

लोकगीतों में भाषागत विशेषताएँ तो मिलती हैं किन्तु इनका परिष्कृत रूप नहीं मिलता। अनुप्रास, उपमा, रूपक आदि का अच्छा प्रयोग है----

काया की किश्ती बनी रे माया की दुनियार
उठा भँवर गुंजार कै रे नैया घेरी आय ।

इसमें 'क' वर्ण का अनुप्रास है, साथ ही रूपक अलंकार भी है। काया के लिये किश्ती और माया के लिये दुनिया का रूपक बाँधा गया है।

उपमाएँ बड़ी स्वाभाविक और सुन्दर होती हैं- -

राम क मथवा लुटुरिया बहुत नीक लागै हो
जइसे फूलन के बिच बिच कलियाँ बहुत नीक लागै हो ।

उपमान-उपमेय का साम्य बड़ा स्वाभाविक बन पड़ा है। लोहार की दुकान में जैसे लोहा तपता है, वैसे ही किसी भाई की बहन ससुराल में कष्ट पाती है --

लोहरा जरै जैसे लोहरा दुकनियाँ रे ना
मोरी बहिनी जरैं ससुररिया रे ना ।

बहन पसीने से भींगी अपनी मैली कुचैली धोती की तुलना सावन की बदली से करती है--

कपड़ा त देख भइया मोर पहिरवना रे ना
भइया जइसे सवनवाँ कै बदरी रे ना ।

पिता के बिना पुत्री और पति के बिना पत्नी की दुर्दशा का चित्रण सटीक उपमाओं द्वारा किया गया है----

जैसे केवट बिनु नैया चलत है
तैसे बाबुल बिनु बेटी ।
जैसे पीपर केर पत्ता डोलतु है
वैसे पुरुष बिनु नारी ।

लोकगीतों में मार्मिक और ध्वन्यात्मक व्यंजना की बहुलता है। एक विरहिणी

नायिका अपने प्रिय के प्रति अपने भाव इस प्रकार प्रकट करती है --

साजन तेरे हेत अँखिया तो नदिया भई
मन भयो बालू रेत गिर गिर परत कगार ।

पुरवैया के साथ घटाएँ घिर आने पर किसी स्त्री को अपने प्रिय की स्मृति हो आती है। घूँघट के भीतर उसके आँसू ढुलक पड़ते हैं —

कौना बदरिया ओनई रसिया
कौना बरस गये मेह
घुँघटा बदरिया ओनई रसिया
गलुअन बरस गये मेह ।

स्त्री के लिये घूँघट लज्जा तथा शोभा की वस्तु तो है ही, उसकी वेदना का आश्रय भी है। यहाँ रूपक अलंकार है।

विवाह के अवसर पर गाया जाने वाला ध्वनिकाव्य का एक सुन्दर उदाहरण इस प्रकार है -

आजु सोहाग कै रात चन्दा तुम उइहौ
चन्दा तुम उइहौ सुरुज मति उइहौ
आजु करहु बड़ि रात चन्दा तुम उइहौ
धीरे धीरे चलि मेरा सुरुज विलम करि उइहौ ।

लोकगीतों में श्रृंगार और करुण रस के गीतों की प्रधानता रहती है किन्तु वात्सल्य और वीर रस के गीत भी मिलते हैं। आल्हा-ऊदल के गीत तो वीर रस के प्रमाण हैं।

श्रृंगार के क्षेत्र में विरह-वर्णन के प्रति कवियों की विशेष रुचि रही है। बारहमासा तो विरह-वर्णन के लिये प्रसिद्ध ही है। करुण रस की धारा स्त्रीप्रधान गीतों में मिलती है। इस रस का स्थायीभाव शोक होता है। एक विधवा स्त्री के लिये एक पेड़ तक उसका अपना नहीं है, जहाँ वह आश्रय ले सके --

बिगड़ी प्रभु नाथ तोहै बिनु हमरी
नैहर में जो बीरन होतेन
ओनहूँ क करतिउँ आस
ससुरे में जो देवर होतेन
ओनहूँ क करतिउँ आस
दुअरवा जो एकौ रुखवौ होतेन
तो मैं होतिउँ ठाढ़ ।

बच्चे के लिये माँ की ममता इतनी प्रबल होती है कि तनिक भी आँख से ओट होने पर उसके हृदय में तरह-तरह की आशंकाएँ होने लगती हैं—

अंगिया त फाटै बंदै बंद अँचरा करै का
छतिया उठी हहराय ढूँढ़न हम आइन ।

लोकगीतों में प्रतीकों का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। गंगा-यमुना शब्दों का प्रयोग

पवित्रता के संकेत रूप में हुआ है —

ए रानी गंग जमुन मोरी माता
गरब बोली बोलेउ ।

निर्गुण गीतों में आत्मा के लिये पंछी, शरीर के लिये पिंजड़ा आदि प्रतीकों का प्रयोग होता है

सुगना निकल गइल पिजरा से
खाली परल रहल तस्वीर ।

मुहावरों से भी भाषा में चमत्कार आता है। लोकगीतों में इनका भरपूर प्रयोग हुआ है -

मोरे राजा एक होरिल के कारन तू
बोलीहनि मारेउ करेजे मोरे साले ।

तोहरे करमवॉ के कहौं गापी आसिक
चुल्लू भर पनिया में डूबहु रे जी ।

गीतों में उचित शब्दों के चुनाव से भी भावों की व्यंजना में निखार आता है -

बहिनी के रोवे में धरती फटत है
बरसत बड़े बड़े मेह ।

कोई माँ अपना चरम स्नेह पुत्र पर प्रकट करती है

जइसे कोंहार के आँवा त भभकि भभकि रहे
बेटा ओइसन माई के करेजवा त धधकि रहे ।

इस प्रकार लोकगीतो मे बहुत रमणीय काव्य है। उनके भाव बहुत स्वाभाविक हैं। कल्पना तथा भाषा के अनुकूल प्रयोग से उनका सरस संवेदन हुआ है। ध्वन्यात्मक व्यंजना की दृष्टि से उनमें उत्तम काव्य है।

लोकगीत उन वनफूलों की तरह हैं जो स्वतंत्र वातावरण में खिलते और विकसित होते हैं। वे जगण, मगण आदि छन्दशास्त्र के नियमों में नहीं पड़ते, न ही मात्रिक एवं वर्णिक छन्दों में बँधते हैं। लोकगीतकार के मन में जो भाव अनायास आ जाते हैं, उन्हें ही वह शब्दों मे व्यक्त करता है। भारत प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण देश है। प्रकृति की छाया में मीठे मीठे गीत भारत के गाँवों की देन हैं। यहाँ के ग्राम्यगीतों को पुनर्जीवित रखने में लग्न-उत्सवों एवं हिन्दू त्योहारों का भी बहुत बड़ा हाथ है।

लोककवि गीतों में छन्द-विधान की ओर ध्यान नहीं देते। यही कारण है कि कहीं गीत की पंक्ति बड़ी हो जाती है, कहीं बहुत छोटी। किन्तु इससे गीतों की गेयता एवं लयात्मकता में कोई बाधा नहीं आती। इन गीतों को गाते समय कहीं ह्रस्व को दीर्घ, कहीं दीर्घ को ह्रस्व कर दिया जाता है तो किसी पद में अक्षरों की कमी रहने पर हो, रे या रामा आदि पद जोड़ दिये जाते हैं, जो लोकगीतों के लचीलेपन के प्रमाण हैं।

लोकगीतों में भावव्यंजना एवं छन्द-विधान का उचित सामंजस्य है। संयोग शृंगार के वर्णन में प्रायः झूमर के मार्मिक भावों की अभिव्यंजना के लिये लम्बे छन्दों की

आवश्यकता होती है। इसीलिये विपलभ श्रृंगार का वर्णन प्राय: जँतसार एवं निर्गुण गीतों में हुआ है। हास्य रस के लिये लोकगीतो मे गोंड़ जाति द्वारा गाये जाने वाले 'गोड़ऊ' गीत का प्रयोग होता है जिसकी लय तेज होती है।

लोकगीतों में तुकान्त होन के नियम का पालन सभी जगह नहीं होता। पद के अन्त में कहीं समान स्वर मिलते है, कही समान व्यंजन। चैता की पंक्तियो मे 'हो रामा' और मैथिली बटगमनी के गीतो मे 'मजनि गे' शब्दों की पुनरावृत्ति पाई जाती है। जट जटिन के गीतो में 'रे जट्टा' या 'रे जट्टिन' शब्दों की आवृत्ति हाती है। लोकगीतों मे प्राय· रे ना, हो ना, आहो रामा, कि आहो मोरे रामा ए राम, हो राम आदि पदो की आवृत्ति बहुत देखी जाती है। बिरहा के गीतों में प्रथम तथा तृतीय और द्वितीय तथा चतुर्थ पंक्तियो मे तुक पाया जाता है।

भिन्न भिन्न लोकगीतों को विभिन्न लय मे गाया जाता है। झूमर, होली, कजरी बहुधा द्रुत लय में तथा साहर, चैती जँतसार, निर्गुण गीत प्राय विलंबित लय मे गाये जाते हैं। बिरहा आल्हा, लोकगाथा आदि तारस्वर मे गाये जाते हैं जबकि सोहर, जनेऊ, विवाह, जँतसार गेपनो, सोहनी आदि के गीतो में मन्द्र व मध्य स्वर का प्रयोग होता है।

सगीतशास्त्र की दृष्टि से भी लोकगीतो का बहुत महत्त्व है। शास्त्रीय सगीत के विकास में लोकगीतो का महत्त्वपूर्ण योगदान है। टप्पा, दादरा, कीर्तन, भजन आदि लोक सगीत के ऋणी हैं। यद्यपि लोकगीतो में संगीत का सर्वांगीण शास्त्रीय रूप नही मिलता किन्तु लोकसंगीत शास्त्रीय सगीत से सर्वथा पृथक् भी नहीं।

इन लोकगीता मे अधिकतर शास्त्रीय परपरा के कहरवा, दादरा, खेमटा, दीपचन्दा (चाँचर) तथा जततालों का प्रयोग पाया जाता है। अस्सी प्रतिशत गीतों में कहरवा और दादरा का प्रयोग होता हे, जैसे कजरी, झूमर, पूर्वी, पराती, पिड़िया आदि। सोहर, जनेऊ, गोधन, होली, चैती, जँतसार आदि जतताल मे गाये जाते हैं। एक लोकगीत दो भिन्न तालो मे भी गाया जा सकता है जैसे बिदेसिया दीपचन्दा एव जतताल में और झूमर कहरवा एव दादरा दोनो मे गाया जाता है।

प्राय: लोकगीतो मे चार थाटो का अंश अधिक पाया जाता है बिलावल, खमाज, काफी और भैरव। पंजाब के लोकगीतो में भैरवी और तोड़ी थाट का भी प्रयोग हुआ है। भोजपुरी लोकगीतो में कहीं कही भैरव थाट का प्रयोग भी पाया जाता है। चैत के गीतों मे प्राय: खमाज या कल्याण थाट का प्रयोग होता है जबकि छठ एवं होली के गीतो में काफी थाट की प्रमुखता होती है।

लोकगीतों मे प्राय: सात शुद्ध स्वरो तथा कोमल गन्धार और कोमल निषाद स्वरों का प्रयोग होता है। कहीं-कहीं कोमल ऋषभ एवं कोमल धैवत का प्रयोग भी मिलता है। तीव्र मध्यम वाले लोकगीत प्राय: नहीं मिलते। लोकगीतों में तीन, चार या पाँच स्वर ही प्रयुक्त होते हैं, वैसे विकासक्रम में इनकी स्वरपरिधि बढ़ रही है।

लोकधुनें सरल होती हैं किन्तु इनमें खटके, मुर्की, मींड आदि का प्रयोग सौन्दर्यवर्द्धक होता है। लोकधुनों से आसावरी, भैरवी, झिंझोटी, पहाड़ी आदि रागों का जन्म माना जा सकता है।

लोकगीतों में प्रयुक्त होने वाले ताल वाद्य—मादल, ढोलक, नगाड़ा, नौबत, डफ, डमरू, खँजड़ी; तार वाद्य—सारंगी, इकतारा, सितार और सुषिर वाद्य—बाँसुरी, बीन, शहनाई, शंख आदि हैं। उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में लोकसंगीत में प्रयुक्त होने वाले वाद्यों में ढोलक, खँजड़ी, सारंगी, झाँझ, करताल और जोड़ी मुख्य हैं। लोकगीतों का सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्य ढोलक है। बंगाल में चाँदखोल का प्रयोग भी प्रचलित है। होली और आल्हा गाने में ढोलक का प्रयोग विशेष रूप से होता है तो गोपीचन और भरथरी की गाथा गाने वाले साईं लोग सारंगी बजाकर गाते हैं। महाराष्ट्र में लावणी गाने वाले खँजड़ी का प्रयोग करते हैं। निर्गुण या भजन गाने वाले करताल, कठताल या इकतारा लेकर अपनी कला का प्रयोग करते हैं। इकतारे का प्रयोग बंगाल के 'बाउलगान' में भी होता है। राजस्थान में भी विभिन्न वाद्य प्रयोग में आते हैं। खनक या गोपीयंत्र भी बंगाल का एक प्रसिद्ध लोकवाद्य है। इसमें तार तो एक ही होता है किन्तु आकृति इकतारा से भिन्न होती है। यह चमड़े से एक ओर बन्द रहता है। गवैये इसे काँख में दबाकर बजाते हैं। छोटा नागपुर के आदिवासी लोग गीतों को गाते समय नगाड़ों का प्रयोग करते हैं। रस्सी के सहारे वे इसे गले में लटका लेते हैं और छोटी-छोटी लकड़ियों से पीटकर इसे बजाते है।

स्पष्ट है कि लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत संपूर्णता के साथ न होने पर भी स्वर, थाट, राग, तालों की समानता है। शास्त्रीय संगीत पर उसका प्रभाव सर्वमान्य है।

लोकगीत किसी भी प्रदेश के हों, उनमें समान भावधारा, समान सांस्कृतिक तत्त्व, समान धार्मिक भावना एवं समान सौन्दर्यानुभूति होती है। लोकगीतों में निहित साहित्य एवं संगीत का रसास्वादन समान रूप से विभिन्न प्रदेश के लोग करते हैं।

लोकगीतों के प्रकार

लोकसंगीत के अन्तर्गत लोकगीत एवं लोकगाथा हैं किन्तु इनमें स्वरूपगत एवं विषयगत भेद हैं। लोकगीत आकार में छोटा होता है, जबकि लोकगाथा का आकार विस्तृत होता है। आल्हाखण्ड, राजस्थान का ढोला-मारू, उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिले की सोरठी तथा अंग्रेजी की 'द जेस्ट ऑफ रॉबिनहुड' नामक गाथा बड़ी लम्बी है। विषय की दृष्टि से लोकगीतों में विभिन्न संस्कारों, ऋतुओं एवं दैनिक अनुभूतियों के चित्र मिलते हैं, जबकि लोकगाथाओं में प्रेमगाथाएँ तथा वीरगाथाएँ होती हैं।

निस्सन्देह लोकसाहित्य में लोकगीतों की प्रमुखता है। जनजीवन में इनकी व्यापकता एवं प्रचुरता के कारण इनका प्राधान्य उचित है। इनकी कोटियों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

(क) संस्कारों की दृष्टि से

(ख) रस की दृष्टि से

(ग) ऋतुओं और व्रतों के अनुसार

(घ) जाति के आधार पर

(ङ) श्रम के आधार पर

इनके अलावा झूमर, पूर्वी, देवीगीत, खेलगीत, देशभक्तिपरक गीत, भजन, लोरी, नृत्यगीत आदि विविध गीतों में आते हैं।

संस्कार गीत

शांकरभाष्य, वेदान्तसूत्र में संस्कार की परिभाषा करते हुए कहा गया है– 'संस्कारो हि नाम गुणाधानेन वा स्याद् दोषापनयनेन वा' अर्थात् दोषों के अपनयन एवं गुणों के आधान को संस्कार कहते है। 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाकर (सम् + कृ + घञ्) 'संस्कार' शब्द बनता है जिसका अर्थ है संस्कार वह है जिसके होने से कोई भी योग्यता होती है।

वस्तुतः संस्कार भारतीय जीवन की नींव है। शरीर में प्राकृत भावों को हटाकर उनके स्थान में अच्छे भावो का आधान कराना ही संस्कार है। यह संस्कार शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक होता है, जो शरीर और मन दोनों को पवित्र करता है। मनुष्य इन संस्कारों के द्वारा ही जन्मजात शूद्रत्व एवं पशुत्व छोड़कर शिष्ट मनुष्यत्व को प्राप्त करता है।

वैदिक साहित्य में इन संस्कारों का विशद विवेचन है। श्रौतसूत्रों, धर्मसूत्रों एवं गृह्यसूत्रो में विवाह, गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, उपनयन, वेदाध्ययन आदि का विधान है। गृह्यसूत्रों में इन संस्कारों की पद्धति तथा विधान है तो धर्मसूत्रों में इनके सामाजिक पक्ष का विवेचन है। मनु, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतियों में संस्कारो का विस्तृत विवरण एवं उनका सामाजिक महत्त्व बताया गया है। इन संस्कारों को न करने पर व्यक्ति समाज मे बहिष्कृत समझा जाता है।

संस्कारों की संख्याओं के विषय में विभिन्न ग्रन्थों में मतभेद है। *आश्वलायन* गृह्यसूत्र में ग्यारह संस्कार हैं। याज्ञवल्क्यस्मृति में बारह संस्कारों का उल्लेख है। *मनुस्मृति* तथा *महाभारत* के वनपर्व में इनकी संख्या तेरह कही गई है। आजकल जो सोलह संस्कारों की परम्परा प्रचलित है, उसका निरूपण *व्यासस्मृति* में मिलता है। जातूकर्ण एवं स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी षोडश संस्कारों का ही उल्लेख किया है।

सूरसागर में निम्न सोलह संस्कारों का उल्लेख है -

गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारंभ, समावर्तन, विवाह, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास।

हमारे समक्ष संस्कारो के दो पक्ष हैं – शास्त्रीयपक्ष एवं लोकपक्ष। शास्त्रीयपक्ष के कई विधान अब लुप्त हो गये हैं तथा गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार अब नहीं होते। जातकर्म, अन्नप्राशन एवं निष्क्रमण थोड़े बहुत भेद के बाद संपन्न होते हैं। चूड़ाकर्म या मुण्डन प्रथम, तृतीय या पञ्चम वर्ष में कभी अलग से और कभी उपनयन के साथ संपन्न किया जाता है। गोदान एवं केशान्त का विधान भी अब आज के संयुक्त परिवार के साथ ही लुप्त हो रहा है।

इन संस्कारों का लोकपक्ष शास्त्रीयपक्ष की ही भाँति महत्त्वपूर्ण है। शास्त्रीयपक्ष के अनुसार जहाँ पुरोहित द्वारा संस्कार संपन्न कराया जाता है, वहीं लोकपक्ष में ये संस्कार स्त्रियों द्वारा संपन्न किये जाते हैं। धर्मशास्त्रों में यद्यपि षोडश संस्कारों का वर्णन आया है

किन्तु इनमें से तीन संस्कारों को ही प्रमुख माना गया है जन्म, विवाह तथा मृत्यु।

अनुष्ठान की दृष्टि से यद्यपि मृत्यु संस्कार का बहुत महत्त्व है किन्तु इस संस्कार में शोक का भाव प्रबल होता है, इसलिये गृह्यसूत्र, धर्मशास्त्र और स्मृतिग्रन्थों में इस संस्कार की चर्चा नहीं है। गौतम ने संस्कारों की संख्या अड़तालीस बताई है फिर भी उन्होंने मृत्यु संस्कार को उस सूची में स्थान नहीं दिया है। किन्तु मनु, याज्ञवल्क्य और जातूकर्ण ने इसे भी संस्कारों में शामिल किया है। वेदों में मृत्युसंबंधी ऋचाएँ मिलती हैं। मृत्युसबंधी लोकगीत नहीं मिलते। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में निर्गुण पदों को लिया जा सकता है। शिवनारायणी संप्रदाय के चमारों में मृत्यु के उपरान्त निर्गुण पद गाये जाते हैं।

हिन्दुओं का सामाजिक जीवन प्रारंभ से संगीतमय रहा है। उनके प्रत्येक मंगलकार्य में संगीत का प्रमुख स्थान है। जन्म से मरण तथा सभी संस्कारों के साथ उनका अटूट संबंध है। अतः इन अवसरों पर तरह तरह के गीत गाये जाते हैं। जन्म और विवाह ये दो संस्कार अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इन अवसरों पर लोकमानस सुख और आनन्द से परिपूर्ण रहता है। इस समय गाये जाने वाले गीत मंगलगीत कहलाते हैं। इन दोनों संस्कारों के अन्तर्गत अनेक संस्कारों का उल्लेख आता है, यथा जन्मसंबंधी संस्कारों के अन्तर्गत छठी, नामकरण, चूड़ाकरण अन्नप्राशन, बरही, मुण्डन आदि संस्कार आते हैं। विवाह संस्कार में कई प्रकार की विधियाँ होती हैं। इस प्रकार सीमित संस्कारों से ही अनेक संस्कार उद्‌भूत होते रहते हैं।

रसगीत

लोकगीत भले ही श्रुतिपरम्परा का प्रतिनिधित्व करते हों, किन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि इनमें भाषा, भाव की समृद्धि किसी अन्य साहित्य से कम नहीं है। इनमें अलंकारों और रसों का सुन्दर समन्वय देखा जा सकता है। ये सरस गीत तो पंक्ति-पंक्ति रस से सराबोर हैं। शृंगार के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का सुन्दर चित्रण इनमें मिलता है। संयोग शृंगार के एक चित्र में प्रेम की पराकाष्ठा देखे

होइतों मैं जल की मछरिया,
जलहि बीचे रहि जइतों हो राम ।
अहो रामा मोरा हरि अइतें असननवा
चरन चूमि लेइतीं हो राम ।

झूमर आदि गीतों में शृंगार रस का अच्छा वर्णन मिलता है---

कुसुम रंग चुनरी रँगा द पियवा हो ।
चुनरी रँगा द, अँगिया सिंया द,
कोरे कोरे गोटवा लगा द पियवा हो ।

पति के विदेश जाने पर एक स्त्री लौंग की लता को संबोधित करके कहती है----

जौं मैं जनतेउँ लवँगरि एतना महकबिउ,
लवँगरि रँगतेउ छयलवा क पाग
सहरवा में गमकत ।

लोकगीतों में आल्हा की एक-एक पंक्ति से वीररस छलकता है--

राजा जूझे हैं मुगल पचास त यहि रन वन में,
राजा जीति के ठाढ़ अकेल त यहि रन वन में ।

लोकगीतों की करुणा तो प्रत्येक मनप्राण को विगलित कर देती है। इन गीतों में मार्मिक और ध्वन्यात्मक व्यंजना की बहुलता है। एक विरहिणी नायिका अपने प्रिय के प्रति इस प्रकार भाव प्रकट करती है—

साजन तेरे हेत अँखिया तो नदिया भई,
मन भयो बालू रेत गिर गिर परत कगार ।

श्रीरामजन्म के अवसर पर एक हिरण मारा जाता है। उसकी हिरणी रानी कौशल्या से याचना करती है—

रानी मँसवा त सिझहिं रसोइया, खलरिया हमें देतिउ ।
पेड़वा से टँगतिउँ खलरिया त हेरि फेरि देखितिउँ ।
रानी देखि देखि मन समुझाइत जनुक हरिना जियतइ ।

हिरणी हिरण की खाल को देखकर ही उसे जीवित मानकर संतोष करेगी। इन पंक्तियों में करुणा की बड़ी मार्मिक व्यंजना है।

ससुराल में यातना सहने वाली एक लड़की रोकर अपने भाई से कहती है---

सुख दुःख बाँधेउ भइया अपनी मोटरिया रेना
भइया जहँवा खोलेउ तहँवा रोयेउ रे ना ।

अपनी दीन दशा बतलाती हुई एक स्त्री कहती है—

भैया घुनैं लागैं चंदन चरखवा ढहई गजओबरि
भैया चुकै लागी मोरी उमिरिया हरिजी नहीं आयेन ।

फागुन के रसरंग में विरहिणी की व्यथा का अपना रंग है---

फागुन सब घोरैं अबीर,
मैं कैसें घोरौं बिना रघुबीर ।
जरौं जैसे होली उठत जैसे लूक,
बिरह अगिनि तन दीनो है फूँक ।

और आषाढ़ के महीने में तो बरसात से भी वियोगिनी की देह में फफोले पड़ जाते हैं---

असाढ़ मास बहु बरसत मेह,
पर्‌यो फफोला सारी देह ।
बिरह तन जरिगा लागी है लूक,
बरखा फुहार दियो तन फूँक ।

बेटी की विदाई के समय माता-पिता की करुणाजनित वत्सलता बड़ी मार्मिक होती है—

अंगना घुमिय घूमि बाबा जे रोवैं,
कतहूँ न देखेउँ ए बेटी नुपुरवा झंकरवा ।

बरसात के दिनों में वन में रह रहे पुत्रों और पुत्रवधू के लिये कौशल्या का स्नेह छलक पड़ रहा है-

रिमझिम रिमझिम दैव बरीसैं, पवन चलै पुरवाई,
कौन बिरिछ तरे भींजत होइहें, राम लखन दूनो भाई ।

लोकगीतों में हास्यरस का भी पुट मिलता है। एक बूढ़ी सास के लिये किसी बहू की उक्ति है--

बूढ़ी बड़ी जहर के कूड़ा,
बाइस रोटी झटकै खायँ ।

लोकगीतों के अन्तर्गत भक्तिभावना के पदों की भरमार है। निर्गुण पदों के अतिरिक्त राम, कृष्ण, शिव एवं देवी भगवती के स्वरूप और उनकी लीलाओं का भी चित्रण इन गीतों में पाया जाता है

प्रात समय कौशिल्या रानी,
अपनो लाल जगावें ।
┘ ┘ ┘
देखो री इक बाला जोगी,
द्वार मोरे आयो री ।
┘ ┘ ┘
सिंह पर एक कमल राजित,
ताहि ऊपर भगवती माँ ।
┘ ┘ ┘
सिव जोगी होके बइठे जंगलवा में ।

ऋतुओं एवं व्रतों के गीत

भारत ऋतुप्रधान देश है। यहाँ हर ऋतु का अपना सौन्दर्य एवं महत्त्व है। इन ऋतुओं ने हर काल में कवियों को प्रभावित किया है। चाहे ग्रीष्म में फूले पलाश हों, चाहे वर्षा की सोंधी सुगंध हो, शरद की गुलाबी रातों का निर्मल आकाश हो या प्रेमियों का प्यारा ऋतुराज वसन्त हो, कवि की कल्पना हर ऋतु पर नया वेश बदलती रही है।

इन ऋतुगीतों में प्रकृति सौन्दर्य के अतिरिक्त पारिवारिक प्रेम, सामाजिक जीवन एवं धार्मिक विश्वास आदि लोकजीवन के भी चित्र मिलते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में जब शरीर से टप-टप कर पसीना चूता है, कोई स्त्री सींक की झाड़ू से आँगन बुहार रही है। पति आकर देखता है तो रूमाल से उसका पसीना पोंछने लगता है। सास इस पर बहू को ताना मारती है —

अँगना बहारत छिटकी गरमिया
प मथवन चूवै रे पसिनवाँ ।
द्वारे से आये पिया पतरंगवा
प पोछै लागै अपनी रूमलिया ।

भीतर से बोली है सासु बढ़ैतिन
प भयो पूत मेहरी के गुलमवाँ ।

ग्रीष्मकालीन गीतों में प्रकृति की विभीषिका भी चित्रित है -

आइ गइले जेठ के महिनवाँ ए भइया
लुहिया त अब चलेले झकझोर ।
तपत बाटैं सुरुज नाचति बाय दुपहरिया
अगिया उड़ावै चलि चलि पछुआ बेयरिया ।
सूखि गइली ताल तलई नदिया सिकुड़ली
हरियर उसरौही घास दरियैं भुकुड़ली ।

एक राजस्थानी गीत में ग्रीष्मकालीन लू को संबोधित करके कहा गया है कि हे लू, तुम कहाँ रहोगी जब धरती पर पावस आ जायेगा। लू उत्तर देती है मैं उन नववधुओं के हृदय में रहूँगी, जिनके पति परदेस में हैं --

कह लूवां कित जावस्यो
पावस धर पड़ियांह
हिये नवोग नार रा
बालम बीछड़ियांह ।

पावसकालीन गीतो में तो लोकजीवन का कोई पक्ष अछूता रहा ही नहीं है। लोक जीवन के चित्रों के साथ प्रबन्धगीत भी पाये जाते है जिनम आत्मा की अनश्वरता, प्रेम का महत्त्व, चरित्र का मूल्य आदि के वर्णन मिलते हैं। कजरी गीतों मे श्रृंगार का उभयपक्ष मिलता है। पारिवारिक पृष्ठभूमि पर रचे गये गीतो में पति पत्नी क पारस्परिक आचरण व्यवहार का वर्णन है। पति को जल्दी घर लौटने की सलाह, जुआ खेलने से रोकना, गरीबी का उपालभ, वस्त्राभूषण की माँग, पीहर जाने का अनुरोध, प्रणय निवेदन, बदली घिर आने पर कजरी न खेल पाने की विवशता, दम्पति परिहास आदि कजरी के मुख्य विषय हैं। इन गीतो में ननद -भावज के प्रेम और कलह का वर्णन है तो भाई बहन के नि:स्वार्थ प्रेम के चित्र भी मिलते हैं -

जो ननदुलि तुम लरौ भिरोगी,
मूसल ते धमकाऊँगी ।

वीर आये कछु न लाये सासु ननद मुख मोरि जी ।
वीर आये सब कुछ लाये सासु ननद हँसि बोलि जी ।

कजरी गीतों के नायक रहे हैं - रसिक कृष्ण। उनकी बाललीलाओं, गोपियों के साथ रास आदि के अनोखे चित्र इन गीतों में मिलते हैं - -

ग्वालिन बने राधिका प्यारी
कृष्ण मनिहारी ए रामा ।

सावन के महीने में विरहिणी के हृदय की व्याकुलता का क्या कहना! कोई स्त्री बादल के द्वारा प्रियतम को संदेश भेजना चाहती है---

अरे अरे कारी बदरिया तुहइँ मोर बादरि,
बदरी, जाइ बरिसहु वहि देस जहाँ पिय छाये ।

इनके अतिरिक्त इन गीतों में राष्ट्रीय, आध्यात्मिक भावनाओं के साथ सामाजिक कुरीतियों के चित्र भी मिलते हैं।

बारहमासा गीत तो विरह के जीवन्त उदाहरण ही हैं। वियोगिनी के हृदय में बारह महीने मे उठने वाले भावों का चित्रण इन गीतों में मिलता है। झूले के गीतों में कदम्ब या आम की डाल पर झूला झूलने का वर्णन है। ये गीत प्रायः राधा-कृष्ण या ननद-भावज के साथ झूलने से संबंधित हैं।

शरतकालीन गीतों में आध्यात्मिक एवं धार्मिक भावों का प्राधान्य है, क्योंकि नवरात्र एवं कार्तिक का महीना पुण्यव्रत का समय माना जाता है। नवरात्र के देवीगीत लोकमानस के भक्तिभाव के प्रतीक है। शरद ऋतु में राम के जीवन से संबंधित गीत भी गाये जाते हैं। कार्तिक में पुण्यनदी गंगा के गीत गूँजते है। नीति और दार्शनिक भावों के चित्र भी इन गीतों में मिलते हैं। वस्तुतः इस ऋतु के गीतों में सरलता, साहित्यिकता और सरसता अपने ढंग की है। इस ऋतु में बुन्देलखण्ड मे टेसू और सामुलिया नाम के खेल गीत गाये जाते हैं। राजस्थान का साँझी गीत आश्विन महीने का शृंगार है। गुजरात का गरबा गोपिकाओ के प्रेम-प्रसंग और श्रीकृष्ण की लीलाओं से भरा पड़ा है। मिथिला में कार्तिक महीने में सामा चकवा का खेल खेला जाता है और इस अवसर पर विशेष प्रकार के गीत होते हैं। गोधन और पिड़िया के गीत भी बिहार में प्रचलित हैं।

शिशिर और हेमन्त ऋतु मे धनकटनी के गीत गाये जाते हैं। स्पष्ट है कि इन गीतो में अधिकतर खेती संबंधी बातो का वर्णन होता है।

वसन्त ऋतु में तो प्रकृति का रूप ही निखर उठता है। गाँवों के चौपालों में होली के रंगीले स्वर गूँजने लगते हैं--

फागुन मस्त महीना हो लाला
फागुन में बुढ़ऊ देवर लागे ।

वसन्त गीतो के अन्तर्गत चैती गीतों में प्रेम के विविध रूपों की व्यंजना होती है--

आयल चैत उतपतिया हो रामा
नइ भेजे पतिया ।

इन गीतों में रंगीन भावनाओं के साथ करुणा का उद्रेक भी है।

वस्तुतः इन गीतो में ऋतुसौन्दर्य गौण है। इन गीतों मे हमारे दैनन्दिन के चित्र हैं। इन गीतों में पाया जाने वाला धार्मिक विश्वास हमारी भारतीय संस्कृति की गरिमा को बनाये हुए है।

व्रत और त्योहार हमारी संस्कृति की आधारशिला है। इनमें हमारी परम्पराओं का इतिहास और हमारी संस्कृति की विकास-गाथा है। किसी विशेष घटना को लोकमानस के हृदय पर स्थायी रूप से अंकित करने में ये त्योहार सहायक हैं। ये हमें कुछ समय के लिये आपसी भेदभाव भुलाकर प्रेम के रंग में रँग देते हैं। त्योहार हमें कर्त्तव्य और धर्म की शिक्षा देते हैं।

व्रतों के रूप में हमारी भारतीय संस्कृति जीवित है। इनसे होती है हमारी आत्मशुद्धि। कहीं पुत्र की मंगलकामना के लिये, कहीं अचल सुहाग के लिये, कहीं भाई के कल्याण के लिये और कहीं अच्छे वर की प्राप्ति के लिये ये व्रत किये जाते हैं। इनका आध्यात्मिक महत्त्व तो है ही, स्वास्थ्य की दृष्टि से भी ये व्रत अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। लोकमानस में इष्ट देवता के प्रति अनन्य आस्था के भी प्रतीक हैं ये व्रत। इन्हीं के माध्यम से देवतात्मा, प्रकृति, सूर्य, नदी, वृक्ष, इन्द्र, नाग, पशु-पक्षी आदि के प्रति अटूट आस्था प्रकट होती है।

हमारे दैनन्दिन जीवन में व्रत और त्योहार क्रमशः श्रेय और प्रेय के प्रतीक हैं। व्रतों से हम उस असीम के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करते हैं, जो अलौकिक है, कल्याणकारी है और जो हमारे असत् कर्मों को मेटने वाला है। त्योहार हमारे सामाजिक जीवन के चित्र हैं। इनका मार्ग प्रेय का मार्ग है। ये जीवन के लौकिक आधार हैं। इनसे हम आपसी मनोमालिन्य मिटाते हैं। संबंधों को मधुर बनाने के लिये परस्पर मिलकर प्रेम के बन्धन को दृढ़ करते हैं।

इन व्रत और त्योहारों की परम्परा सदियों से चली आ रही है। इन्हीं में तो भारत की प्राच्य संस्कृति का इतिहास निहित है। पर इन व्रतों और त्योहारों का वैज्ञानिक आधार भी है। व्रतों का करना स्वास्थ्य की दृष्टि से भी अच्छा माना जाता है और त्योहारों के रीति-रिवाज मानव कल्याण के ही प्रतीक हैं।

व्रत सम्यक् संकल्प से की गई क्रिया है। विशेष प्रकार का नियमबद्ध भोजन, पूजन तथा उपवास आदि करना व्रत है। व्रत तीन प्रकार के होते है—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। नित्य व्रतों में एकादशी, रविवार, मंगलवार आदि व्रत हैं। चान्द्रायण आदि नैमित्तिक व्रत हैं और तिथिविशेष में किसी कामना से किये गये व्रत काम्य व्रत हैं, जैसे हलषष्ठी आदि।

'व्रत' शब्द के कई अर्थ हैं। इसका एक अर्थ है—वरण। व्रत और उपवास का अटूट संबंध है। व्रत से शरीर और मन की शुद्धि होती है। व्रतों का संबंध ऋतु परिवर्तन से भी है। रामनवमी, जन्माष्टमी, परशुराम जयन्ती आदि व्रत अवतार से संबंध रखने के कारण ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं। मासों के साथ विशिष्ट देवों की पूजा का संबंध है, जैसे कार्तिक, अगहन विष्णु की वन्दना के लिये और श्रावण का महीना शिवपूजा के लिये प्रसिद्ध है।

व्रत मनोकामनाओं की पूर्ति के साथ सुख-शान्ति के साधन भी हैं। स्त्रियों का व्रत के प्रति विशेष आग्रह होता है। व्रतों के माध्यम से वे अपने पति, पुत्र और भाई की मंगलकामना करती हैं। एक गीत में ऐसा उल्लेख है कि तप और व्रत के कारण एक स्त्री को सुन्दर पुत्र मिला—

ललना मोर पिया तप व्रत कीन त उन्हीं के धरम गुना
भूखि रहेउँ एकादसिया हुअसिया क पारन
विधिक रहेउँ अवतार होरिल बड़ सुन्दर।

रविवार का व्रत पति की मंगलकामना के लिये किया जाता है।

पूस माघ दिया बरत तुम्हार, हम बरती पाँचों इतवार
न्हाव धोव के देहुँ असीस, जीवहु कन्त तू लाख बरीस।

इन व्रतों से अनेक अंशों में प्राणिमात्र का, विशेषकर मनुष्य का बड़ा भारी उपकार

होता है। तत्त्वदर्शी महर्षियों ने इन्हें विज्ञान के सैकड़ों अंशों से युक्त बताया है। इनके प्रयोग से असाध्य व्याधियाँ भी निर्मूल हो जाती हैं। मनुष्यों के कल्याण के लिये ये व्रत स्वर्ग के सोपान हैं। महर्षि देवल का कथन है कि व्रत और उपवास के नियम-पालन से शरीर को तपाना ही तप है।

ये व्रत और त्योहार भारत के सांस्कृतिक इतिहास के सुनहले पृष्ठ हैं जिनका अनुष्ठान पीढ़ी दर पीढ़ी होता रहता है।

ग्रीष्मकाल में अक्षय तृतीया, वैशाखी पूर्णिमा, वट सावित्री आदि व्रत होते हैं तो पावस में मधुश्रावणी, तीज, नागपंचमी, कजली तीज, जन्माष्टमी, हरतालिका तीज, गणेशचौथ, ऋषिपंचमी व्रत, कर्मा धर्मा, अनन्त चतुर्दशी आदि का महत्त्व है। शरद ऋतु तो व्रतों और त्योहारों की ही ऋतु है। नवरात्र, साँझी, करवा-चौथ, दीपावली, गोवर्धनपूजा, पिड़िया, भाईदूज, छठ, कार्तिक पूर्णिमा आदि का महत्त्व सर्वविदित है।

हेमन्त और शिशिर ऋतु मे नवान्न व्रत के अतिरिक्त माघी अमा और मकर संक्रान्ति आदि का समय होता है।

वसन्त ऋतु में वसन्त पंचमी, माघी पूर्णिमा, शिवरात्रि, होली, शीतलाष्टमी, चैत्र संक्रान्ति, चैती नवरात्र, गणगौर, रामनवमी, महावीर जयन्ती, वैसाखी, सरहुल, विहू-पर्व आदि मनाये जाते हैं।

जातिपरक गीत

इस तरह के गीतों में अहीरों का 'बिरहा' अपना एक स्थान रखता है।

दुसाधों में जब कोई व्यक्ति प्रेतबाधा से पीड़ित होता है तो 'पचरा' गाकर देवी का आवाहन किया जाता है।

गोंड़ जाति के गीतों को 'कहरवा' और तेलियों के गीतों को 'कोल्हू के गीत' कहते हैं।

श्रमगीत

कोई काम करते समय थकावट मिटाने के लिये गाये जाने वाले गीतों में जँतसार, रोपनी, सोहनी आदि हैं, जिन्हें श्रमगीत कहते हैं। पैदल यात्री गीत गाकर अपनी थकान मिटाते हैं, तो पालकी ढोने वाले कहार गीत गाकर मार्ग तय करते हैं। खेतिहर मजदूर गीत गाकर अपनी थकान मिटाते हैं तो चरवाहों के गीतों से जंगल सरस हो उठता है।

लोकगीतों और गाथाओं में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। जिस जनपद में जो गीत प्रचलित हैं, उनमें वहाँ के लोगों का रहन-सहन, रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार सजीव रूप में चित्रित रहता है। लोकसंस्कृति इन गीतों में अपने पूर्ण वैभव के साथ प्रतिविम्बित होती है। राजस्थान की लोकगाथाओं में वहाँ के बलिदानी वीरों की गाथा तथा क्षत्राणियों के मान-अभिमान का चित्रण है। बिहार की लोकगाथाओं में कुँवरसिंह का नाम आता है। मैथिली लोकगीतों में मिथिला की सामाजिक प्रथाएँ चित्रित हैं। इसी तरह अन्य सभी प्रान्तों के गीतों में वहाँ की परम्पराओं का स्पष्ट चित्र मिलता है।

लोकगीतों की स्थानीयता

डॉ० विद्यानिवास मिश्र के शब्दों में, ''लोक न प्राचीनता का बोधक है, न पिछड़ेपन का, न किसी सीमित अलग-अलग समुदाय का। लोक शास्त्रविरुद्ध नहीं, शास्त्रपूरक है, क्योंकि शास्त्र को शास्त्र का भी लोकविरुद्ध होना अभीष्ट नहीं है। एक तरह से लोक शास्त्र का ही प्रसृत रूप है और शास्त्र भी लोक स्वीकृतियों का एक घनीकृत रूप है। इसीलिये शिष्ट से शिष्ट, प्रबुद्ध से प्रबुद्ध समुदाय में, ऊँची से ऊँची जाति में अनेक ऐसे अनुष्ठान हैं जो ठेठ वन्य या ग्राम्य जीवन से लगाव का संकेत देते हैं।''

लोकगीत लोकसमूह द्वारा विशेष परिस्थितियों, स्थल, कर्म तथा संस्कार के समय हुई अनुभूतियों की लयपूर्ण सामूहिक अभिव्यक्ति है। लोकगीत ही लोकजीवन और संस्कृति की वास्तविक भावनाओं को प्रस्तुत करते हैं। इनमें मनुष्य मात्र के पारिवारिक और सामाजिक जीवन का सामयिक तथा भावनात्मक चित्रण रहता है। इनमें सामूहिक चेतना के साथ सामाजिक क्रान्ति का आभास भी होता है।

लोकगीतों से व्यावहारिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति होती है, जैसे काम के बोझ को हल्का करना, अत्याचार का विरोध करना तथा मनोरंजन आदि। भिन्न-भिन्न स्थानों पर लोकगीतों का स्वरूप कुछ बदल भले ही जाय किन्तु वस्तुतः उनकी आत्मा एक ही होती है। फिर भी स्थानीयता की दृष्टि से लोकगीतों का विश्लेषण किया जा सकता है।

आदिवासी लोकगीत

मिर्जापुर के दक्षिण अंचल में जनजाति के लोग कबीलों और बंजारों का जीवन जीते हैं। अपनी दिनचर्या एवं श्रम आदि की अभिव्यक्ति ये भी गीतों से करते हैं। इनका जीवन अंधविश्वासों, धार्मिक भावनाओं और आमोद प्रमोद से परिपूर्ण है। यहाँ के गीतों में स्थानीय बोली का प्रभाव अधिक है। इन पर भोजपुरी का प्रभाव है। ये गीत लिपिबद्ध नहीं हैं, किन्तु इन गीतों में उनकी संवेदनशीलता प्रतिबिम्बित होती है। जन्म से मृत्यु तक के संस्कारों, मेलों, उत्सवों, मेहनत-मजदूरी के समय तथा देवी देवताओं की पूजा के अवसर पर उनके गीतों में उनकी जीवन्तता दिखाई पड़ती है। इन गीतों में प्रकृति सौन्दर्य के चित्र भी हैं, किन्तु भाषा सहज है। इनमें उनके जीवन के विविध पक्षों एवं भावों की अभिव्यक्ति है।

आदिवासियों के गीतों को कई भागों में बाँटा जा सकता है। व्यक्तिगत स्तर पर बालक, स्त्री एवं पुरुषों के द्वारा गाये जाने वाले गीत होते हैं। जाति व भाषा के आधार पर कोलगीत, [illegible]गीत, [illegible]गीत या धाँगरगीत गाये जाते हैं। धार्मिक गीत, संस्कार गीत, ऋतुगीत, श्रमगीत, जाति[illegible] अतिरिक्त रस के आधार पर जनजातियों में शृंगार, वीर एवं करुणरस के गीत विशेष रूप [illegible]चलित हैं। आकार के आधार पर लघुगीत एवं वृहद्गीत भी होते हैं। आदिवासियों द्वारा [illegible] गई संज्ञाओं के स्तर पर करमा, कोलदहकी, जँतसार, रिल्वा, ददरिया, शैला आदि गीत होते [illegible]। सुगमता की दृष्टि से इन लघुगीतों के अतिरिक्त प्रबन्धगीत या गाथा गीतों में राजा विकरम, राजा निमल्ल तथा सती आदि की गाथाएँ गाई जाती हैं।

आदिवासियों में भी संस्कार गीतों की प्रथा है। 'करमा' इनका प्रसिद्ध संस्कार गीत है। जन्म के गीतों में बड़ों का आशीर्वाद प्राप्त करने, देवता-पूजन करने, ओंझाई कराने, अन्नप्राशन (अन्नचेखआ), छठी, मुण्डन आदि के गीत प्रचलित हैं।

विवाह के बाद वधू सास का आशीर्वाद पाने के लिये उसके पाँव छूकर प्रणाम करती है। सास उसे आशीर्वाद देती है -

चुनरी पहिर सासु गोड़ लागूँ
सासु दिहले आसीस
जूड़ रह बहुअरि जूड़ रह
गोद भरि बलका खेलाउ ।

संतान प्राप्ति के लिये सास बहू को 'करमदेव' की पूजा करने को कहती है---

थरिया लेले तिल चाउर ए सुन्नर
करम पूजे चल माँझ बने अँगने ।

पुत्रजन्म के अवसर पर आनन्द एवं कन्याजन्म पर उदासीनता यहाँ के गीतों में भी देखी जा सकती है। इसीलिये डौका (लड़का) पैदा होने पर देवता का चन्दन, बेलपत्र, नैवेद्य चढ़ाया जाता है जबकि डौकी (लड़की) का जन्म होने पर मात्र गंगाजल चढ़ाया जाता है

डौका जनमले चउआ चन्नन बेलपात
डौकी जनमले गंगाजली ।

पुत्रजन्म के छठें दिन यहाँ भी 'छठी' मनाई जाती है। इसी दिन नामकरण एवं अन्नप्राशन भी होता है। इस दिन दामाद को विशेष रूप से बुलाया जाता है। वह 'मघावर' गाता है, जिसके लिये उसे नेग दिया जाता है। ननद बच्चे को दीपक दिखाकर भाभी से नेग माँगती है - -

दीया दिखावे ननदी लड़ली मचावे
मोहे भउजी हँसुली गढ़ाव ।

विवाह के अवसर पर वरपक्ष में बारात की तैयारी, प्रस्थान, दान आदि के गीत होते हैं। कन्यापक्ष के गीत अपेक्षाकृत अधिक मार्मिक होते हैं। गौने के अवसर पर प्रायः विवाह वाले गीत ही गाये जाते हैं। जनजाति के लोग किसी प्रिय के निधन पर लयबद्ध रूप में विलाप करते हैं, जो गीत का रूप धारण कर लेता है।

धर्म के प्रति जनजाति के लोग विशेष आस्था रखते हैं। इस समय या ऋतुओं के अवसरों पर इन्हीं विषयों से संबंधित गीत गाये जाते हैं। इन जातियों में नृत्य एवं गीत का बड़ा महत्त्व है। इनके जातीय गीतों में बिरहा, मलहिया, च ांनी, नउआझकड़ी, क्रमागत, अहीर, मल्लाह, चमार, नाई और कहार जाति के गीत हैं। 'कोलदहकी' कोलों द्वारा गाया जाने वाला गीत है तो 'करमा' या 'रिल्वा' खरवार, बैगा, गोंड़, धसिया, धाँगर आदि जातियों में प्रचलित जातिगीत हैं।

कोलदहकी शृंगार और करुणरस की अभिव्यक्ति करने वाला छोटे आकार का भावप्रवण गीत है, किन्तु वाद्ययंत्रों पर आरोह-अवरोह के साथ गाये जाने के कारण यह देर तक चलता है। इसमें राम और कृष्ण के कथाप्रसंग भी हैं।

रिल्वा नारी गीत हैं। इन्हें बैगा और खरवार जाति की स्त्रियाँ आधे सावन से भादों की एकादशी तक गाती हैं। इन गीतों में कहीं-कहीं अश्लीलता भी होती है।

करमा गोंड़ों और खरवारों का जातीय गीत है, जो करमदेव के पूजनोत्सव पर गाया जाता है। व्रज की होली की तरह भादों महीने में इस गीत को दो दल बनाकर नृत्य के साथ गाया जाता है। इसका प्राचीन नाम 'रिजा' है। मिर्जापुर जनपद के आदिवासी समय के आधार पर करमा गीत गाते हैं, जैसे संध्या के करमा गीत, आधी रात के करमा गीत, भोर के करमा गीत, सूर्योदय का करमा गीत। कहीं-कहीं सम के आधार पर कनवरिया, पूर्वा, धवा, जदुरा, साजन, ठढ़िया और झूमर नाम से भी करमा गाया जाता है।

इन गीतों का वर्ण्यविषय जनजातियों की दिनचर्या, मार्मिक घटनाएँ, राम-कृष्ण के विभिन्न प्रसंग और सामाजिक समस्याएँ आदि हैं। इन जनजातियों में पावसगीत भी गाये जाते है। सावन में बारामासा, रिल्वा और झूला गाये जाते हैं। वसन्त ऋतु में होरी, करमहिया होरी और कोलदहकी विशेष रूप से प्रचलित हैं।

स्त्रियाँ श्रम करते हुए श्रमगीत गाती हैं। जनजाति के गीतों का अपना साहित्यिक वैशिष्ट्य है। इनमें प्रश्नोत्तर शैली, सुख-दुःख की योजना, विम्ब-विधान आदि हैं। इन गीतों के उपमान आम जीवन से ही दिये जाते हैं। अभिप्रायों की चर्चा भी इन गीतों की विशेषता है। संकेत और प्रतीक के रूप मं कौवा और सुइया पक्षी बोलने पर सवेरा होने का अभिप्राय होता है। इसी प्रकार सात खण्डा लकड़ी, आठ खण्डा कपड़ा गरीबी का, बिछुवा प्रेम का, टिकुली सुहाग का, बहुँटा सहृदयता का और लहँगा काम का प्रतीक है-

सात खण्डा लकड़ी, आठ खण्डा कपड़ा
भौजी कऽ बाजी बिछुवाऽऽ
हमरे अँगनवाँ टिकुली के चमक दुअरा जाइ रे
बहुँटा कऽ कुण्डी भइया दिलवा में बदकी
लहँगा कऽ खरभर, मोरे मनवाँ में हुलसी।

जनजाति के गीतों में रामकथा के कई अछूते प्रसंग भी हैं। राम-लक्ष्मण शिकार के लिये वन को जाते हैं। राम को लक्ष्मण का बाण लग जाता है। उनकी रक्षा के लिये लक्ष्मण धरती, सूरज, वन, गृद्ध पक्षी आदि से प्रार्थना करते हैं और अन्त में उनके मूर्च्छित शरीर को पत्तों से ढँककर आ जाते हैं। अन्त में सीता अपने पातिव्रत का दावा करती हैं और राम स्वस्थ हो जाते हैं---

मग्ही के मरली राम के दोहइया,
मारल सहोदर जेठ भइया हे राम।
तोर तऽ पइयाँ लागूँ मइ धरतिया,
चिउँटी जनि बगिराये हे राम।
तोर तऽ पइयाँ लागूँ सुरुज देवता,
घामे जनि कुम्हिलाये हे राम।
कुरा कुठा दिहले ओढ़ाय चलि भइले घरवा दुआरे हे राम।

सिया जाइ अपना पिहवा जगावे,
जल भइ पतिबरता हे राम ।
एक बोल कढ़ली दोसर बोल कढ़ली,
तीसरे उठि जागे हे राम ।

कौरवी लोकगीत

कौरवी बोली खड़ी बोली का ही रूप है। कुरुभूमि में ही तथागत ने गंभीर उपदेश दिया था इसीलिये इस स्थान का विशेष महत्त्व है। यह भूमि गंगा और यमुना के बीच है। कुरु जनपद में अम्बाला, दिल्ली, मेरठ तथा बिजनौर आदि स्थान आते हैं।

यहाँ के लोकसाहित्य में कुछ ऐसे उद्धरण हैं जिनमे वैदिक काल के लोकमानस की समानता हो सकती है। उदाहरण के लिये 'पल्हाये' गीतों में ऐसा आभास मिलता है। इनका प्रचलित रूप प्रश्नोत्तर शैली में है --

प्रश्न- ए जी कौन जगत में एक है
वीरा कौन जगत में दोय
कौन जगत में जागता
ए जी कौन रह्या पड़ सोय ?

उत्तर- ए जी राम जगत में एक है
वीरा चन्दा सूरज दोय
पाप जगत में जागता
ए जी धरम रह्या पड़ सोय ।

ये गीत रात के समय कोल्हू चलाते समय गाये जाते हैं।

सप्तसिन्धु की भाषा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती थी, क्योंकि यह आर्यों की पवित्र भूमि थी। वैदिक काल में सप्तसिन्धु भारत का सबसे बड़ा सांस्कृतिक केन्द्र था। कुरु पांचाल सप्तसिन्धु के बहुत निकट था। उपनिषद् काल में महान् ऋषि जाबालि, सत्यकाम, याज्ञवल्क्य कुरु पांचाल के ही रहने वाले थे।

खड़ी बोली के लोकगीत उस क्षेत्र के लोकसाहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन लोकगीतों का स्थूल रूप मे इस प्रकार वर्गीकरण हो सकता है—

१. आनुष्ठानिक गीत --संस्कार संबंधी एवं धार्मिक
२. ऋतुगीत
३. श्रमगीतों में स्त्री- पुरुषों के क्रियाकलाप
४. बालगीत

पुत्रजन्म परिवार तथा पुत्र दोनों ही के लिये एक विशेष संस्कार होता है। परिवार के लिये ये संस्कार उसके जन्म से ही प्रारम्भ हो जाते हैं। खड़ी बोली क्षेत्र में जन्म से पूर्व अनेक संस्कार प्रचलित नहीं हैं। 'साध पूजना' आदि एक-दो संस्कार ही जन्म से पूर्व होते हैं। जन्म के पश्चात् छठी तथा दशटून प्राचीन पौरोहित्य नामकरण संस्कार हैं। मुण्डन, कनछेदन आदि आयु के विशेष वर्ग में मुहूर्त निकाल कर किये जाते हैं।

जन्म के पहले के संस्कार --गर्भाधान एवं पुंसवन।

गर्भाधान— इसके आरम्भ में वैदिक मंत्रो द्वारा देवताओं का आवाहन करके उनसे प्रार्थना की जाती थी कि वे माता के गर्भ में योग्य सन्तान धारण कराएँ। अब यह प्रथा प्रचलित नहीं है।

पुंसवन— गर्भाधान के दो-तीन माह बाद यह संस्कार सम्पन्न किया जाता था। इसका उद्देश्य गर्भस्थ शिशु को पुत्ररूप देने का था।

सीमन्तोन्नयन— पुंसवन के बाद माता और शिशु की कुशलता के लिय यह संस्कार किया जाता है। स्त्री को आभूषण एवं वस्त्रों से सुसज्जित कर उसकी नारियल, सुपारी आदि पंचमेवों व शुभ्र वस्तुओं से गोद भरी जाती है। यह गर्भाधान के सातवें मास में होता है। इसे 'साध पूजना' भी कहते हैं।

गर्भकाल में खान-पान संबंधी इच्छा को **दोहद** कहते है -

मेरा मन माँगे ताजी बड़ी, सरस मन माँगे ताजी बड़ी
कचेरी बैठन्ते सौहरे हमारे, लौंग करूँ अक बड़ी
मुढ़ले बैठन्ती सास हमारी, लौंग करूँ अक बड़ी ।

पुत्रजन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को खड़ी बोली प्रदेश में 'ब्याही' कहते हैं। प्रसन्नता प्रकट करने के लिये इस गीत को जन्म से लेकर दशटून के दिन तक गाया जाता है। इनमें मुख्यत: गर्भाधान की अवस्था का, शारीरिक व मानसिक स्थिति के परिवर्तन का, प्रसव पीड़ा का, नेग लेन-देन, गुप्तप्रेम, लड़ाई-झगड़ा आदि से संबंधित तथा प्रसन्नतासूचक गीत मिलते हैं। **छठी** के गीतो में बड़ी विविधता है। इस वर्ग में दाई, जच्चा, पर्दा, जोरा, खिचड़ी, कुठला, पालना, ननद, जिठानी नाम के अनेक गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में लोकाचार का वर्णन, हास विनोद तथा प्रसूता का मनोविज्ञान प्रकट होता है।

पुत्रजन्म से संबंधित गीतों में कुछ सामान्य अभिप्राय इस प्रकार मिलते हैं पुत्रजन्म की कामना, बंध्या स्त्री की मनोव्यथा, पुत्रजन्म से पूर्व की सुखद कल्पना, ननद, सास और दाई से नेग के विषय में बहू का विरोध, पति से प्रसव की पीड़ा बाँटने की पत्नी द्वारा प्रार्थना, पुत्री के जन्म पर जच्चा की उपेक्षा, कुल, मर्यादा, स्वाभिमान और निष्ठा से संबंधित गीत।

कोयल—बारात जाने के बाद उसी दिन रात में घर की तथा पड़ोस की स्त्रियाँ मिलकर जो आयोजन करती हैं, उसे 'कोयल' कहते हैं। इसमें कुछ अश्लीलता भी देखी जाती है।

इस अवसर पर भाँग बनाई जाती है। नाई लम्बा डण्डा लेकर भाँग घोंटता है और गाता है। इसके बाद एक ब्राह्मणी नाई बनकर आती है और कहती है -- मुझे बारात में लड़के की माँ, बुआ इत्यादि की खबर लाने के लिये भेजा है। उस समय वह गाती है --

मैं तो दूरों से आया री माई रामलीला
मुझे जगदीश ने भेजा री माई रामलीला
बहू की सुधि ला दे री माई
सुक्खी की खबर ला दे
मुझे पास ही सुला दे री माई रामलीला ।

घर के प्रत्येक पुरुष का नाम लेकर उसकी स्त्री के साथ मज़ाक होता है।

इसके बाद **चूड़ी** पहनी जाती है। एक ब्राह्मणी मनिहारी का वेश बनाकर आती है। घर में आने पर उससे सबसे पहले बहू का जोड़ा बँधवाते हैं। चूड़ी वाली स्त्री चूड़ी पहनने वाली स्त्री से प्रत्येक पुरुष का नाम लेकर मज़ाक करती है और गाती है--

जगदीश की पौड़ी पोड़ा रे मनिहार लला
कला का हाथ हठीला रे मनिहार लला
कला पहिरन बैठी रे मनिहार लला
वो तो बड़ी ही हठीली रे मनिहार लला ।

ये चूड़ियाँ सचमुच नहीं पहनाई जाती, मात्र अभिनय होता है। इसके बाद आधी स्त्रियाँ छत पर चली जाती है, आधी नीचे चौक में बैठी रहती हैं। नीचे वाली स्त्रियाँ घर के प्रत्येक पुरुष का नाम लेकर 'कोयल' बुलाती है। ऊपर वाली स्त्रियाँ कहती हैं--मत बोलो री बहनो! फिर 'कोयल' समाप्त हो जाती है। इसके बाद बहू बन्ने बनाकर उनके फेरे लगवाने का स्वांग कराया जाता है। इस समय 'सुहाग' गाया जाता है।

बारात जाने के अगले दिन दोपहर को स्त्रियाँ गाना-बजाना व नृत्य करती हैं। इसमें हँसी-मज़ाक और नृत्य के साथ हर तरह के गाने होते हैं। इसको **खोड़िया** कहते हैं। खोड़िये के बाद बधावा गाया जाता है जो पुत्र की माँ के लिये होता है--

बधावा है कमला की कोख
जिसने जाया है हरिया पूत ।

पाणिग्रहण के बाद वर से छन अथवा छन्द सुनने की प्रथा है। नारीसमाज द्वारा वर की बुद्धि की परीक्षा होती है। उससे मज़ाक में वधू के जूतों को पुजवा लिया जाता है।

मृत्यु संस्कार— स्त्रियों का इस समय का रुदन एक लय में होता है। उसके साथ वे प्रायः मृत व्यक्ति की प्रिय वस्तुओं का नाम लेकर शोक प्रकट करती हैं। इनको कुरुक्षेत्र में 'उलाहनी' कहते हैं।

इन शोक गीतों के वर्ण्यविषय मृतक तथा उससे संबंधित वस्तुओं व स्वभाव से होते हैं। एक वृद्ध की मृत्यु पर गाया जाने वाला एक 'उलावणी' गीत इस प्रकार है---

ए चन्दन रख कटाइयोणी, ऐ बाड़ी बेग बुलाइयोणी
ए सात्तो बाज्जे बाजियाणी, ऐ बेट्टो मूँड मुँडाइयाणी
ए बहुये सेस सिडाइयाणी, ए पोत्तों चँवर डुलाइयोणी
ए दोहतों रास कराइयोणी, ए भर बजारो कड्ढोणी ।

वृद्ध की मृत्यु पर नायन द्वारा जो गीत गाया जाता है, उसे 'उठावणी' भी कहते हैं, जिसका तात्पर्य है—अर्थी उठाने के समय गाया जाने वाला गीत। मृत्यु के समय 'पल्ले लेकर' रोने की प्रथा अभी भी प्रचलित है।

धार्मिक गीत— धार्मिक लोकगीतों में भाग्यवाद तथा कर्मवाद का उल्लेख स्थान-स्थान पर मिलता है। भारत की उत्सवप्रियता उसके गौरव को सूचित करती है। इस अवसर पर प्रयोग किये जाने वाले धार्मिक गीतों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—

(क) देवी-देवताओं से संबंधित

(ख) व्रत-त्योहार से संबंधित

(ग) जोगियों के गीत

देवी-देवताओं से संबंधित गीतों में देवताओं की उपासना का उल्लेख मिलता है। कोई भी कार्य आरम्भ होने पर गणेश-स्तुति की जाती है--

सिमरूँ गौरीपुत्र गनेस
नाम लिये से संकट सब भागैं
सिंमरत कटे है कलेस
माता तुम्हारी पारवती, पिता तुम्हारे महेस।
धूप, दीप, पकवान, मिठाई, भोग लगाऊँ हमेस।

विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले देवी-देवता गीतों में शिव, राम कृष्ण, हनुमान, भैरो आदि से संबंधित गीत होते हैं। स्त्रियों की देवी-देवताओं के प्रति विशेष श्रद्धा होती है। शीतलादेवी इनमें प्रधान हैं। किसी के बीमार पड़ने पर इनकी विशेष उपासना की जाती है। माली शीतलादेवी का परमभक्त कहलाता है। देवीगीतो में स्फुट गीत होते हैं। प्रबन्धगीतों में भगतें गाई जाती हैं।

पूर्वजपूजा के गीत भी धार्मिक गीतों के अन्तर्गत होते हैं। इनमें पितर, पीर, सती, शीतला, भैरो, मृत सौत, कुलदेवी आदि के गीत हैं। अम्बा माता, काला, कराली, दुर्गा का भी पूजन होता है। देवी को प्रसन्न करने के लिये रात्रि जागरण भी किया जाता है। विवाह के अवसर पर देवी के गीत गाये जाते हैं। उनका वर्ण्यविषय नख-शिख वर्णन होता है। स्त्रियाँ विवाह के अवसर पर पूर्वजों को निमंत्रण देती हैं तथा श्रद्धा से उनका स्मरण करती हैं। वे सौत का भी पूजन करती हैं। व्रत-त्योहारों में साँझी का बड़ा महत्त्व है। आश्विन मास की प्रतिपदा से कुँवारी कन्याएँ साँझी का व्रत आरंभ करती हैं, जो पितृपक्ष में नौ दिन तक चलता है। प्रतिदिन संध्या को घर के बाहर द्वार के किसी भी ओर थोड़ी ऊँचाई पर गोबर से भूमि लीपकर सूर्यास्त के पहले आरती के लिये साँझी तैयार की जाती है। साँझी का श्रृंगार किया जाता है। कुरुप्रदेश में गंगा-स्नान का बड़ा महत्त्व है। कार्तिक के महीने में एक महीने तक यम-नियम, स्नान-पूजन होता है। गंगा-स्नान को जाते समय स्त्रियाँ प्रभाती गाती हैं। इस समय संध्या को भी साँझ के गीत गाये जाते हैं। इनका वर्ण्यविषय भी प्रभाती के ही समान हरिगुणगान या प्रकृतिवर्णन होता है---

दोनों बखत मिले हरि का गुण गाय लो रे
यो संसार ओस का मोती धूप पड़े ढल जाय रे।

कार्तिक महीने में तुलसी-पूजन का विशेष महत्त्व होता है। पूरे माह तुलसी चौरे पर दीया दिखाते व आरती करते हैं तथा देवोत्थानी एकादशी को या अन्य किसी दिन तुलसी-विवाह करते हैं। तुलसी-पूजन के अवसर पर स्त्रियाँ आरती करती हैं तथा गाती हैं—

तुलसी रानी नमो नमो
हर की पटरानी नमो नमो

तथा— मैं तुमसे बूझूँ तुलसा दे राणी
मधुवण किस गुण पाये ।
तथा— तुलसा माता तू मुक्ति की दाता
दिवला सींचूँ मैं तेरा कर निस्तारा मेरा ।

वनस्पति-पूजन में तुलसी और पीपल का महत्त्व है।

जोगियों के गीत

इनमें प्राय: संसार की नश्वरता तथा ब्रह्म-जीव के संबंध का वर्णन होता है। निर्गुण पद इन्हीं में आते हैं।

ऋतुगीतों के अन्तर्गत सावन के गीतों में बारहमासा के अतिरिक्त कुछ कथागीत मिलते हैं, जिनका ऐतिहासिक महत्त्व होता है, जैसे आल्हा, जाहरपीर, गोपीचन्द-भरथरी, मरमन-चन्दना, हंसाराव-चन्द्रावलि, नरसुल्तान, गुग्गापीर आदि।

आल्हा में दिल्ली के राजा पृथ्वीराज और कन्नौज के राजा जयचन्द के झगड़े चित्रित होते हैं। इन प्रबन्धगीतों के अतिरिक्त सावन के कुछ लघुगीत भी होते है, जिनमें वैयक्तिक सुख-दु:ख, शान्ति-संघर्ष, अनुराग-ईर्ष्या आदि का वर्णन होता है। इनमें नारी के अच्छे व बुरे दोनों रूपों का वर्णन होता है। मानव मनोविज्ञान का विश्लेषण इन गीतों में पाया जाता है। इन गीतों में बनी-बनाई परम्पराएँ दोहराई जाती हैं, जैसे वन, बाग आदि के उपमान सर्वस्वीकृत रहते हैं —

जाय उतारा सेलें बड़ तलें
झूला तो डाला चम्पेबाग में
एक बन लाँघा, दूजा बन लाँघा ।

सावन के गीतों में भाई-बहन का प्रेम भी चित्रित है—

सावन सूना भैया बिन हो गया जी
किसनूँ बनाऊँ लपलप पूरियाँ जी
किसकू राधू रस खीर ।

स्त्रीवर्ग के श्रमगीत

चक्की पीसने, चरखा कातने, ओखली कूटने, खेती करने या पानी भरने के अवसर पर स्त्रीवर्ग के श्रमगीत होते हैं, जिनमें उनकी सामयिक, पारिवारिक एवं दैनिक समस्याएँ होती हैं। इनमें बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, बहुविवाह, वंध्या का दु:ख तथा पति के अत्याचारों का भी चित्रण होता है।

पुरुषवर्ग के श्रमगीत

पुरुषवर्ग के श्रमगीतों में खेती करने और कोल्हू पेरने के समय के गीत होते हैं। कोल्हू गीतों को पल्हावे या मल्हौर भी कहते हैं। इनका विषय प्राय: शृंगार, नीति या धर्म होता है। कहीं-कहीं इन गीतों में अश्लीलता भी आ जाती है।

बालगीत

इनका संबंध विशेष रूप से खेलों से है किन्तु इनमें सामूहिक जीवन तथा पारस्परिक सहयोग का पाठ भी मिलता है।

लड़कियों के बालगीतों में भाई के प्यार का उल्लेख बड़े चाव से किया जाता है। कुछ गीत जानकारी बढ़ाने के लिये होते हैं -

बीबी मेंढकी हो तू तो पानी में की रानी ।

अथवा

सुन मुन सखी पंछी का ब्याह था
बगुला बराती आये, जुगनू मशाल लाये
डोर तो खूब बोले, डोमनी बारात गाये
पोदना करे तराई, बुलबुल करे लड़ाई
जूँ ही बिल्ली आई, सारी सभा भगाई ।

व्रज लोकगीत

व्रज भारत का महत्त्वपूर्ण तीर्थ है। व्रज की सीमा को श्रीकृष्ण के लीलास्थलों की चौरासी कोस परिक्रमा के आधार पर माना गया है, किन्तु बाद में व्रजभाषा क्षेत्र को सांस्कृतिक इकाई के रूप में व्रजमण्डल कहा गया और इसकी सीमा उत्तर प्रदेश के मथुरा, आगरा, मैनपुरी, एटा, अलीगढ़ जनपदों के अतिरिक्त आंशिक रूप से बुलन्दशहर, बदायूँ, मुरादाबाद, रायपुर, बरेली तथा राजस्थान के भरतपुर, धौलपुर, करौली आदि तक मानी गई।

व्रज के लोकगीतों का विस्तृत परिचय इस प्रकार दिया जा सकता है -

जन्म के गीत—रुक्मिनी, साद, गोरी बाँस बिरंग की, ओबर रे की गोरी, ओलपनीछा की गोरी, जातकरम, पलंग, सोहर, झुनझुना, पलना, चकई, कठुला, धतुरिया, मारुअरौ, मंगल, तिलड़ी, नरंगफल, सार, खिचड़ी, जगमोहन, लुगरा, संचत, हेलिन, पीपल, दुहई मुहई, अजवायन, छठी, जच्चा, कूपपूजन, टिकुली, मैंदी, दाई, कड़ाहुली, नाड़र, रनझाझन, काजर, कौमरी, दामोदरिया, सोयौ, बिहाईजच्चा, पीयरौ तथा हिरनी, ये जन्म के गीत हैं।

सगाई के समय— बै, हस्तियरा, घोड़ी, बरना, खेल।

लगुन के समय— स्यामधना, लाड़ी, केवड़ौ, भौंरा।

भात नौतने के समय— बाँयचरा, भात, धामस धूमस, बायबन्द।

रतजगे के समय— साँझलड़ी, बड़दीवला, तिलबा, रजना, टोना, सुहाग तथा मेंहदी के गीत गाये जाते हैं।

बिहान के गीत हैं— कुकरा, खुटमेवा, गंगा, गुड़, चकचूँदरिया, डोमनी, तुलसी, दातुन, दूती, दोहनियाँ, सुखमदरा।

तेल-हल्दी के समय— तेल, हल्दी, मरुअट, अगोर, पछोर, उबटन और **हुल्लमार गाये जाते हैं।**

मड़वे के दिन— बूढ़े बाबू का ब्याह, अछूतो, स्वामी, डालो।

निकरौसी के समय— धोबिन, सेहरौ, मृगनयन, घुड़चढ़ी, कजरौटा और बगुला गाये जाते हैं।

बन्नी के घर पर— तेल, चागौठी, बिल्ली, चोरपारी, भाँवरि, धीयाबानी, कन्यावलिया, जौनार, गारी, टीकौ तथा विदा के गीत गाये जाते हैं।

बहू आगमन पर— जमगुओ तथा नैनासुती गाई जाती है।

मौर सिराने के गीत हैं — हँसुला, सोहलरा, अटतापिनर।

बायना बाँटते समय ढोला तथा **गौने के समय** गौनियरा गीत गाये जाते है। खंडिया, अटगटिया, खुसरा, गंगा, साजन, काछवा, ललमनियाँ विवाह-गीत हैं।

मथुरा के चतुर्वेदी ब्राह्मणों में गाये जाने वाले विवाह गीत इस प्रकार हैं सोया, दोआ हरे बांस की छ्वरिया, कुकरा, कोयल, मॉझोलो, बाबसगज, चोला, गोरी अम्बा, चटक बदरिया, कानन कुण्डल, नन्ना झुरमुट, इकतारे, बरौठा, हम घर साजन, कालारिया, हामदमोलौ तथा सगुनचिरैया।

लड़के के घर पर — कनरी, मानियरी, लीलो, बन्ना, मालिन, जनेऊ, सगुना, विधना, रघुपत और बन्दनवार के गीत होते हैं।

लड़कियों के घर पर— गौरपूजन, टोना, भाई, बिर्जो, बिरिया, दाँतन, तुलसी, डोमिन और बधावा आदि।

देवी–देवता सबधी अनुष्ठान गीत

जोगनी, निराहर, गुगुर, जालपा, लाँगुरिया, कुन्दकटारी, मालिन, मारुअरौ, ज्वाला, डण्डौतीछन, भोग, सुरई, हनुमान, जात, केवरौ, धारगीत, पैंडौ और बहुरौ देवीपूजा। **अनुष्ठान गीतों** के अन्तर्गत मीयाँ, सैयद, माता, खईस, भूमियाँ, भैरों, कमालखाँ, प्रेत के सोइले तथा जसगीत हैं। साँझी, झाँझी, टेसू, गणेश, सालिगराम और तुलसी के गीतो के अलावा जन्माष्टमी, संक्रान्त, एकादशी, शिवतेरस, देवठान, कार्तिकस्नान, माघस्नान एवं मथुरा और गिरिराज परिक्रमा के गीत त्योहारों से संबंधित हैं।

स्त्रियों के मनोरंजन गीतों में श्रमगीत एवं ऋतुगीत हैं। श्रमगीतो में सिल बीनते समय सिलहरा और चिरई गीत, मिर्च और ईख बोने के समय जोगनी गीत तथा चरखा, चकई, बुवाई और फसल काटने के गीत होते हैं।

ऋतुगीत अधिकतर वर्षाऋतु तथा वसन्त से जुड़े हैं। इनमें प्रबन्ध और मुक्तक दो प्रकार के गीत गाये जाते हैं। **प्रबन्ध कथागीतों में** चन्द्रावलि, जाटनी, निंबिया, धोबी, मोरा, बिजैरानी, मनिरा, लहरिया, निहालदे, बींझा, चन्दना, सिड़रिया, मानोगूजरी, कलारिन, नटिनी, मारूजी, पनिहारिन और बंजारा आदि हैं। **झूला के समय** नरसी, गोपीचन्द, रुकमिनी, राधाकिसन, चम्पादे तथा चन्दना की मल्हार गाई जाती है। **बारहमासी** व्रज में काफी लोकप्रिय हैं। बालिबलूरी, चाँचरि, बसन्ता और झुमका **होलीगीत** हैं।

पुरुषों द्वारा गाये जाने वाले आनुष्ठानिक गीतों में निम्न गीत भगत तथा जोगियों द्वारा गाये जाते हैं—जगद्देव, खाँड़ा, बैराठ, माई की भेंट, जाहरपीर, धमूका, धम्मार, साँजोली,

सीयल और मसानी। **जागरण** में बाबू, गोपीचन्द, भरथरी तथा पूरनमल भक्त गाथाएँ, हरिश्चन्द्र लीला, द्रौपदी चीरहरण, कीचक मरण तथा मोरंगदानौ भी गाया जाता है। **सर्पविष-निवारण** के लिये नवलदे तथा **पशुओं के रोग-निवारण** के लिये राँझा गाया जाता है।

पुरुषों के मनोरंजन गीतों में लावणी, झूलना, जिकरी, संवादी भजन, बारह खड़ी, बहार, हरगंगा, हीरो, डण्डशाही आदि हैं।

जाति के आधार पर व्रज के लोकगीत इस प्रकार हैं -- **धोबी गीत**— ल्हौन्यारी और रागिनी, **कुम्हार गीत**— जद्‌दमढ़ी और हुपंगा, **अहीर**— बिरहा और महिकासुर, **मदारी**— भानी और तमाशा, **चमार गीत**— गोबरी, सिड़रिया तथा जसगीत, **चौबे**— तान, **लोधे**— रजपूती, **भोपा**— सरमन, भैरों तथा बमलहरी।

व्रज लोकगीतों में जो **प्रकृति गीत** मिलते हैं, उनमें स्नेह और आत्मीयता का **विस्तार** पाया जाता है। भोर होने का वर्णन इस लोकगीत में कितना सजीव है --

उडगन तारे डगमगे, दीपक मद्धिम जाग रे
पौ फटी पियरा भई, भयौ है सकारौ हाँ ।

प्रसन्नता के क्षणों में मानव को सम्पूर्ण प्रकृति में प्रसन्नता बिखरी दिखाई पड़ती है

जब रे बहिन तालन गई और सूखे ताल हिलोरें लेय ।

दुर्भाग्य के क्षणों में मन के भाव प्रकृति में इस प्रकार प्रतिविम्बित होते हैं

हरे हो बिरछ रहे सुखियाय, कंकड़ काँटे है गये
भरे हो ताल रहे सुखियाय, चकई रे चकवा उड़ गये ।

वर्षाऋतु में **लहरिया** तथा **डोरिया** जैसे गीतों के द्वारा प्रियतम को बुलाने का **संदेश** भेजा जाता है—

तैं छलहारी छल कियौ और छल कर लियौ बुलाय
लहरिया, सब रंग भींजै धन कौ डोरिया ।

व्रज में मेघों की देवी **मेघासिन रानी** का और मेघों के राजा **इन्द्र** का आदर इस **प्रकार** किया जाता है—

रानी ऊँचौ तौ चौरौ चौखनौ, दूध पखारूँगी पाँय
मेघासिन रानी कित गई जी ?

अथवा

चौकी तौ चन्दन, इन्दर राजा बैठनौ जी
एजी कोई दूध पखारूँगी पाँय
आज महर कर इन्दर राजा देस में जी ।

व्रज में **गंगा** और **यमुना** के गीत भी मिलते हैं—

ए तिरबैनी गंगा, कर दै तू सब दुख दूर री
निस्तारिन मैया ।

और भी—

आरस गंगा पारस गंगा, बीच में चन्दन कौ रूख हो ।

यमुना के विषय में—

जै जै जमना मैया, जमराज तैंने जीत लियौ ।

कार्तिक के महीने में कृष्णप्रिया तुलसी का महत्त्व और बढ़ जाता है। व्रज में ऐसा विश्वास किया जाता है कि तुलसी के बिना ठाकुर जी भोग भी ग्रहण नहीं करते—

छप्पन भोग छतीसौ व्यंजन,
बिन तुलसी हरि एक न मानी नमो नमो
तुलसी महारानी नमो नमो
हरि की पटरानी नमो नमो ।

व्रज में वृक्ष और वनस्पति को सौन्दर्यचेतना का प्रतीक माना गया है। कृष्ण संबंधी गीतों में तो कदम्ब की महिमा सिद्ध है ही

झूला परौ है कदम की डार सखी री
चलौ तौ दरसन करि आयें ।

किन्तु किसी अन्य गीत में इमली को वृक्षों में सबसे बड़ा माना गया है—

बिरछन में इमली बड़ी रे, बाकी सीतल छाँह।

और नीम तो आँगन की शोभा ही है

बारे देवरिया मेरे अँगना में नीबरिया कौ पेड़
कौनें सताई हरियल नीबरी जी महाराज ।

व्रज के गीतों में पनघट के बड़े सम्मोहक चित्र मिलते हैं—

जल भरहिं झकोर झकोर
रसुरिया रेसम की ।

व्रज की चिरैयाँ सास और जिठानी से अधिक अनुरागमयी है। गर्भिणी को पीड़ा हुई तो कोई नहीं जागा, किन्तु—

जागी मायके की चिरैयाँ
चेउँ चेउँ कर रही जी महाराज
चुँदरिया रंग रही जी महाराज ।

मथुरा के चतुर्वेदियों में विवाह के समय सगुनचिरैया गाई जाती है। वर की माता कहती है —

अहि अहि सगुन चिरैया हो, भले भले सगुन विचार
तेरे सगुन मेरे अतिलड़ हो, बरैया बियाहन जाँय ।

एक कोयल गीत में एक छोटे से अगरु के बिरुले पर कोयल बैठी है। उससे रागिनी पूछती है—तुम्हें चमकीले श्याम रंग में किसने रँगा? तुम्हारी चोंच ऐसी रँगी है, जैसे तुम्हें पान की बिरियाँ खिला दी गई हों।

कहीं आम पर बैठे तोते का चित्र है—

तोता बैठो आम पै करि अमिया तेरी आस
अमिया चुइ धरती पै गिर परी जी
तोता भयो रे उदास ।

पपीहा पी-पी बोलता है तो वियोगिनी तड़प उठती है--

अजी मेरी बहना, पपिया तौ बोलौ आधी गत
बजाई बंसी स्याम ने ।

चित्र-विचित्र पंखों वाले मोर के नृत्य ने व्रज की बहुत शोभा बढ़ाई है --

तेरे बिरज में मोर बहुत हैं
बोलत मोर फटै छतिया ।

व्रज की सरग उड़न्ती चिरहुली बाबुल को संदेश देने का माध्यम है --

सरग उड़न्ती चीलिया मेरे कहियो बिरन जी से जाय
त्यारी बहन दुख भौत सों ।

एक बेटी कौआ को पीयरौ की खबर के लिये भेजती है --

उड़ि उड़ि काग सुलाखने, उड़ मेरे पीहर जा
मेरे कहियो बाबुल समझाय तो धीयरि माँगत पीयरौ ।

व्रज के गीतों में गोप समाज के जीवनआधार गाय का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। गोप संस्कृति का विश्वास है कि गाय के गोबर में लक्ष्मी का निवास है। यही कारण है कि हरे-हरे गोबर से लीपकर ही आँगन में गजमोतियों के चौक पूरे जाते हैं --

चन्दन चौकी दऊँ बैठ ना, दूधन पाँय पखारूँगी
हरे-हरे गोबर अंगन लिपाऊँ, मोतिन चौक पुराऊँगी ।

व्रज के ढोला गीतों में भी गाय का वर्णन आता है -

मेरे आँगन में गउएँ चरत हैं, कर लेउँ गैया दान
आगे आगे गैल कठिन की ।

सुरही या बहुला गाय का गीत गोकुल संस्कृति का राष्ट्रगीत है। व्रज के लोकगीतो में नारी की कामना पुत्र के प्रति देखी जाती है -

ए राजा उनई बाग तुम जाउ तौ फूल जौ कहियै पूत को ।
ए धनि देखत देखत है गई साँझ, पर फूल न पायौ पूत को ।

अन्य लोकगीतों की तरह व्रज के लोकगीतों में भी बेटी की व्यथा के चित्र मिलते हैं—

भैया के कारण महल चिनाये
हम कूँ चौं धाये परदेस रे ।

व्रज के गीतों में भी ननद को बुरी बला माना गया है---

अब सुख सोओ मेरी दौर जिठानी
ननद गये ऐं परदेस ऐ ।

व्रज के लोकगीतों का अन्तर्जनपदीय विस्तार बिहार, राजस्थान, कुरुप्रदेश तथा बुन्देलखण्ड तक हुआ है।

अवधी लोकगीत

अवधी लोकगीत साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। इसका साम्य भोजपुरी गीतों से बहुत है।

दोनों में राम और सीता आदर्श पुरुष और आदर्श नारी के प्रतिमान हैं। अवधी लोकगीतों की पहली विशेषता इसकी राममयता है। दूसरी विशषता प्रकृति और मनुष्य का गहरा जुड़ाव है। इन गीतों की तीसरी विशेषता है --राम, शिव, गंगा या किसी देवी-देवता का सामान्य जीवन से साधारणीकरण। शिव उपला बटोर कर बाटी लगाते हैं। सीता गोबर से घर लीपती-बुहारती हैं। जगदम्बा भवानी दही बिलोती हैं। सूक्ष्म काव्यगुण अवधी लोकगीतों का वैशिष्ट्य है ---

हमरी ई बिपति गठरिया मोरे बिरना
गंगा जमुन बीचे छोरया हो रामा ।

इसी प्रकार समय का अन्तराल व्यक्त करने के लिये जिन उपमानों का चयन किया गया है, वे बड़े मार्मिक ढंग से बातें करते हैं --

खेलत कूदत बहुअरि निबिया लगाइन,
रेखिया भिनत गये बिदेसवा रे ना ।
फरि गई निबिया लहसि गई डरिया,
तबहूँ न लौटे मोर बिदेसिया र ना ।

अवधी का व्यापक क्षेत्र है। पूर्वी अवधी और पश्चिमी अवधी के भोजपुरी गीतों म काफी साम्य है। पश्चिमी अवधी, बघेली और कन्नौजी आदि मे समानताएँ लय में भी हैं और कथ्य में भी। यहाँ के लोकगीतो का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है--

१. *पुत्रजन्म के गीत*- सोहर, उठौना या उलारा अथवा उनारा, बधाई, छठी, बरही के गीत।
२. *मुण्डन के गीत*।
३. *यज्ञोपवीत के गीत*।
४. *विवाह गीत, सहाना आदि*।
५. *द्विरागमन के गीत*।
६. *मृत्यु संस्कार के गीत*।
७. *ऋतुगीत*-- कजली, सावन, चौमासा, बारहमासा, फगुआ, चौताल, डेढ़ताल, चहका आदि वसन्तगीत।
८. *जातिगीत* -अहीर, धोबी, कुम्हार, कहार, नाई, तेली, भड़भूँजा, माली, हरिजन, जोगी, गड़रिये।
९. *धार्मिक गीत*--- त्योहार, व्रत उपवास, दान-स्नान के गीत, विभिन्न देवी-देवताओं के गीत, पौराणिक आख्यान संबंधी गीत, प्रकृति पूजा के गीत, आध्यात्मिक, दार्शनिक भावना के गीत, मंत्र-तंत्र, जादू-टोना तथा आवाहन के गीत, शुभ संस्कारों पर मंगल हेतु प्रार्थना के गीत।
१०. *श्रमगीत*--- जाँता, निरवाही, रोपनी, कोल्हू के गीत।
११. *खेल गीत*---लोरी तथा पालने के गीत, बालकों के खेल के गीत, कठिन शब्दों के उच्चारण संबंधी गीत, बालिकाओं के गीत, जलक्रीड़ा के गीत।
१२. *प्रणय संबंधी*-- नकटा, पूर्वी, झूमर, नाच, लचारी, बिदेसिया और ग़ज़ल।
१३. *प्रकीर्ण*--गारीगीत, मुसलमानों के लोकगीत।

इन लोकगीतों में काव्यात्मक सौन्दर्य भरपूर है। कहीं-कहीं गीतों में कहानियाँ गुँथी होती हैं। लोकगीतों में बिम्बों एवं प्रतीकों का प्रयोग बड़ा सटीक हुआ है। पुनरुक्ति और प्रश्नोत्तर शैली का भी प्रयोग हुआ है। इन लोकगीतों में समाज में प्रचलित लोक विश्वास सुरक्षित हैं। पारिवारिक संबंधों की कुछ मधुर झाँकियाँ अवधी लोकगीतों में सहज रूप से व्यक्त हैं। इन गीतों में यद्यपि प्राय: सभी रसों का परिपाक हुआ है किन्तु विशेष रूप मे करुण रस से पूरा अवधी लोकसाहित्य सराबोर है।

इन गीतों में इतिहास भी सुरक्षित है। कुसुमा का आख्यान नारी की सामाजिक स्थिति को व्यक्त करता है। स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े वीरों की प्रशंसा में गाये जाने वाले असंख्य गीत, चरखा आन्दोलन, सत्याग्रह के सन्देश देते गीत भी यहाँ हैं। ब्रिटिश शासन के प्रति जनआक्रोश भी इन गीतों में चित्रित हैं।

अवधी लोकगीतो मे स्वाधीनता का अर्थ केवल व्यक्ति की स्वाधीनता नहीं है, उसमें आँधी-पानी आदि उपद्रवी तत्त्वो की स्वच्छन्दता को रोकने की बात भी की गई है। बीमारी, महामारी को दूर करने के लिये यहाँ गीतों के मंत्र भी मिलते हैं।

अवधी लोकगीतों में संगीत अपनी पूर्ण सरसता एवं समरसता के साथ विद्यमान है। इनमें जीवन की विविधता है। उच्च आध्यात्मिकता से लेकर हल्के फुल्के हास परिहास तक उसका क्षेत्र है---

हमरे तौ राम नाम धन खेती
मन कर बैल, ज्ञान हरवाहा
जब चाहीं तब जोती
राम नाम के बीज बोवायो
उपजत हीरा मोती ।

हास-परिहास का लक्ष्य इन गीतों में देवी-देवताओं को भी बनाया गया है -

राम के निहारे नउनिया त बहु मुसकाय मुख मोर ।
काहे राम भये साँवर सखियाँ, काहे क लछिमन गोर ।

एक **भ्रमगीत कोल्हुई** में बड़ा मार्मिक चित्र है--एक उदास प्रिया बटोही भाई से कहती है कि जो तेल सिन्दूर दे गये थे, वह चुक गया। जो महल उठा गये थे, वह ढह गया। जो चरखा दे गये थे, उसमें घुन लग गया है। वे अपनी सौगन्ध दे गये थे कि सत न छोड़ना। मेरी उमर भी चुकने लगी, पर वे नहीं लौटे---

रामा दै गये अपनी किरियवा कि सत जिनि छोड़िउ हो,
रामा घुनै लागे चनन चरखवा, ढहइ गज ओबरि हो,
रामा चुकै लागी हमरी उमिरिया अबहि ना लौटे हो ।

अवधी लोकगीतों में अलग-अलग अवसर के गीतों की अलग-अलग लय है। चंचल प्रकृति के राग द्रुत कहरवा में हैं। विरह एवं विदाई गीतों में दीपचन्दी, खेमटा तथा झपताल आदि का प्रयोग मिलता है। एक यात्रा गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

मोरी नैया में राम सवार, नदिया धीरे बहो
काठे की मोरी नाव नेवरिया

बाँस के लगे पतवार, नदिया धीरे बहो
राम लखन सिय बैठनहारे
केवट खेवनहार, हो नदिया धीरे बहो ।

यहाँ के ऋतुगीतों में कजली सावन गीतों में विभिन्न लयें हैं। वसन्त के गीतों में फगुवा, चौताल, डेढ़ताल, चहका आदि की विविध धुनें हैं। फाग गीतों में विलम्बित से द्रुत पर आते हैं, फिर विलंबित पर। वसन्त ऋतु के चैता गीत का अलग रंग है। सोहर गीत प्राय: विलम्बित लय में गाये जाते हैं। द्रुतलय के सोहर गीत को 'उलारा' कहते हैं---

लाल मोर खेलैं अँगनैयाँ, छमछम बाजै पैजनियाँ ।

विवाह संस्कार के गीतों में भी लम्बे और मार्मिक गीत विलम्बित लय में हैं—

हटियन सेन्दुरा मँहग भये बाबा, चुनरी भई अनमोल रे ।
यही रे सेन्दुरवा के कारन बाबा, छोड़ेउँ देस तुहार रे ।

इस अवसर पर द्रुतलय के छोटे गीतों को 'सहाना' कहते हैं---

खेलि ल्या नौलखिया, हे दुलहे आजु की रतियाँ
सिरे मोहै फूलन का मौरू
मौरू सँवारैं सब सखियाँ, हे दुलहे ।

यहाँ के जँतसार गीत बड़े मार्मिक होते हैं और विलंबित लय में गाये जाते हैं --

सबकी नगरियाँ चुरिला बँसिया बजाया
हमरी नगरियाँ केस ना आया
आधी की रतियाँ चुरिला बँसिया बजावै
चला साँवरि हमरे गोहनवाँ हो राम ।

लोकसंगीत में वस्तुत: जीवन के विविध पक्ष हैं। इन गीतों मे लघु और गुरु के बन्धन की शिथिलता होती है। इनके प्रारंभ, मध्य और अन्त में टेक के रूप में कुछ निरर्थक या सार्थक शब्द जुड़े होते हैं, जो गीत की गेयता को बल देते हैं। कुछ शब्दों की पुनरावृत्ति भी लय को बनाये रखने के लिये की जाती है। ये अवधी लोकगीत वस्तुत: एक जीवित संस्कृति के जीवन्त अंग हैं।

भोजपुरी लोकगीत

भोजपुरी क्षेत्र पुरुषप्रधान है इसलिये यहाँ के जनजीवन में वीर्य, शौर्य एवं शृंगार की प्रधानता है। सिद्धों, नाथों, सन्तों एवं सूफियों की प्रेरणा से यहाँ के निर्गुण गीतों का बड़ा महत्त्व है। यहाँ के लोकगीतों में संस्कार गीतों का आधिक्य पाया जाता है। व्रत-मेलों एवं तीर्थ-त्योहारों के गीतों में मनोकामना-पूर्ति की याचना है। कहीं गार्हस्थ्य जीवन की गरिमा के अनुरूप उमंग एवं उत्साह की लहर भी है। भोजपुरी के श्रमप्रधान गीतों में पेशेवर जातियों के अतिरिक्त कृषिप्रधान ऐसे भी गीत हैं, जिनका किसी जाति से संबंध नहीं है। यहाँ के कुछ संस्कार गीतों के नाम इस प्रकार हैं—तिलक, सगुन, देवीगीत, मंगल, बियाह, सुहाग, जोग, बन्ना-बन्नी, ब्याह-सहाना, उठान, गारी, नेवता, मानरपूजन, मटकोड़, मांडो, कलसा,

चाकीपूजन, ओखलीपूजन, हरदी, उबटन, चुमावन, कोहबर, मंझापराती, सीलपोहन, पितर नेवता, भतवानि, पोखरा-खोदाई, नहछुआ-नहावन, चउक के गीत, पहिरन के गीत, परिछन, बरातगमन, द्वारपूजा, इमली घोंटाई, लावा भुँजाई, डाल-चढ़ाव, तागपट, कन्यादान, भाँवर, सिन्दूरदान, लावामेराई, कोहबर, लोढ़ापुजाई, जेवनार, डोमकच, विदाई, द्वारपूजा, गवना, दोहद, खेलौना, छठी, बरही, मुण्डन, जनेऊ, मातृपूजन, पितृपूजन आदि।

राजस्थान के गीत।

अन्य प्रान्त के गीतों की तरह राजस्थान के लोकगीत भी जनजीवन के निकट रहे हैं। अनेक राजस्थानी लोकगीत ऐसे हैं, जिनकी धुनें शास्त्रीय रागों से मिलती-जुलती हैं। इनमें प्रायः देस, सोरठ, खमाज, कालिंगड़ा, भैरवी, भैरव, पीलू, सारंग, तिलक कामोद और काफी आदि रागों का प्रभाव पाया जाता है। राजस्थान के लोकगीतों का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है--

(१) आदिम जातियों द्वारा गाये जाने वाले गीत, जिनमें शब्दो और स्वरों की अत्यन्त सादगी होती है।

(२) गाँवों तथा शहरों में अविकसित जातियों में प्रचलित गीत।

(३) सामूहिक रूप मे विवाहादि समारोहों में स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीत।

(४) संगत में गाये जाने वाले जागरण के गीत, भजन आदि।

(५) व्यावसायिक लोगों के गीत।

(६) शास्त्रीय धुनो से प्रभावित गीत।

(७) *मरुभूमि के गीत* -- राजस्थान में पीपली, कुरजा, एलची, रतनराणो आदि गीत मरुभूमि में ही जन्मे हैं। इन्हें गानेवाली संगीतज्ञ जातियाँ कामड़, भोपे, सरगड़े, लंगे, मिरासी, पातर, कलावन्त आदि मरुभूमि में ही रहती थीं।

(८) *पहाड़ी प्रदेश के लोकगीत* -- राजस्थान के पहाड़ी प्रदेशों में डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, प्रतापगढ़, सिरोही तथा आबू आदि क्षेत्र हैं। इन क्षेत्रों में सामुदायिक लोकगीतों का विशेष चलन है। यहाँ अनेक गीत मरुभूमि से कुछ रूपान्तर के साथ आये हैं, जैसे ओल्यूँ, लूर, माँड, मूमल, कुरजां, ढोला-मारू, कलाली आदि।

(क) कुरजां ए म्हारो भँवर मिलाद्यो ए।

(ख) म्हारी घूमर छै नखराली ए मां।

घूमर रमवां म्हे जास्यां।

(९) चम्बल तथा बनास की समतल भूमि के लोकगीत इन क्षेत्रों में कोटा, जयपुर, अलवर, भरतपुर, करौली तथा धौलपुर के गीत हैं। इधर व्यावसायिक लोकगीतों की अपेक्षा सामुदायिक लोकगीतों का चलन अधिक है---

जीजी बारो बलमो हमारो कुमारो कैसे काटूँ री।

राजस्थान की **माँड** शास्त्रीय ठुमरी के समान है जो प्रायः कहरवा, दीपचन्दी, दादरा तथा झूमरा में गाई जाती है।

रो नी रातड़ ली रे म्हारा मीठा मारूजी।

राजस्थान का प्रसिद्ध राग **मारू** रहा है जिसका अधिक से अधिक प्रयोग 'रुक्मणि मंगल' नामक भक्तिकाव्य में हुआ है। वैसे यहाँ की प्रतिनिधि गायकी राग माँड ही है। माँड की गायकी विलम्बित लय की है और इसका अपना विशेष ठेका होता है।

लावणी राजस्थान की लोकप्रिय गायकी है, जो भिन्न भिन्न रागों में गाई जाती है। इसके कई प्रकार हैं, जैसे लावणी रंगत वशीकरण, लावणी साधारण, लँगड़ी लावणी की रंगत और ज्यानकी लावणी की रंगत। एक लावणी रंगत वशीकरण का उदाहरण इस प्रकार है --

जिस दम में दम आदम को निकल जावे है
कंचन काया फिर कौन काम आवे है?
इसलिये राम का नाम भजो तुम प्यारे।

राजस्थान में बहुत सी लोकवार्ताएँ प्रचलित रही हैं। इनसे संबंधित कथागीत, प्रबन्धगीत, लम्बे लोकगीत और पवाड़ मिलते हैं। पवाड़े वीरता, वैराग्य, प्रेम, साहस आदि कई विषयों से संबंधित हैं। प्रेमकथाएँ सुध-बुध सावलिंगा और माधवानल, कामकन्दला आदि की हैं। पंजाब की 'हीर राँझा' भी राजस्थान में आई है। 'रामूचनणा' नामक एक लम्बा लोकगीत राजस्थान में प्रचलित है, जिसकी लय धीमी है।

राजस्थान का **ढोलामारू** इतना प्रचलित कथागीत है, जो आज स्त्री-पुरुष का पर्याय बन गया है। यह राजस्थान का एक लोककाव्य है। सुल्तान-निहालदे, भरथरी और गोपीचन्द की कथाएँ भी यहाँ मिलती हैं। **शिवजी को ब्यावलो** यहाँ का भक्तिरस का काव्य है। 'नरसीजी रो माहेरो' रुक्मणि मंगल भी काव्यग्रन्थ हैं।

राजस्थानी भीलों का एक प्रसिद्ध धार्मिक गीतनाट्य है -- गौरीनाट्य। यह भादों से आश्विन तक चलता है। इसके प्रमुख नायक भैरव हैं।

ओल्यूँ बेटी की विदाई पर गाया जाने वाला गीत है

कँवर बाई री ओल्यूँ आवै ओ राज।

काजलियो होली के समय गाया जाने वाला गीत है, जिसमें सारंग के स्वर हैं ---

काजल भरियो कूँपलो कोई धर्‌यो पलंग अधबीच कोरो काजलियो

घूमर तथा लूर गणगौर के अवसर पर गाये जाने वाले गीत है।

गोरबन्द एक अन्य प्रकार का लोकप्रिय गीत है, जिसमें ऊँट का शृंगार-वर्णन मिलता है- -

गायां चरावती गोरबन्द गूँथियो
भैंस्या चरावती पोयो म्हारा राज
म्हारो गोरबन्द लूम्बालो।

मूमल राजस्थान का लोकप्रिय गीत है, जिसमें मूमल नामक राजकुमारी का नख-शिख वर्णन है---

महारी बरसाले री मूमल
हालैनी ऐ आलीजे रे देस।

जलो जलाल परणेत, पावणा, कामण, घोड़ी, **बनाबनी** राजस्थान के विवाह गीत हैं।

दारुड़ी और कलाली शराबी और कलालियों के गीत हैं। कुछ विविध गीत कहलाते हैं। ऐसे गीतों में ईंडोणी, बिणजारा, पणिहारी, काछबो, हिचकी, कांगसियो भी आते हैं।

पीपली वर्षाऋतु में गाया जाने वाला गीत है।

सपना यहाँ का प्रेम संबंधी गीत है।

राजस्थान के विभिन्न भागो में गाये जाने वाले गीत इस प्रकार हैं—

जैसलमेर के गीत— यहाँ के पुरुष व्यापार के लिये विदेश जाकर कई दिनों में लौटते थे। इनके वियोग में गाये जाने वाले गीतों को 'झोरावा' कहते हैं। 'रणमल' नामक काव्य मेलों तथा विवाह के अवसरों पर गाया जाता है। 'सूवटिया' द्वारा भीलनी स्त्रियाँ पति के पास संदेश भेजती हैं। 'सुमेरू सोढ़ा' में कोई स्त्री सोढ़े के लिये संदेश भेजती है। 'उमरलो' में प्रेमिका उमरले की प्रतीक्षा में गाती है। इनके अतिरिक्त कठड़ो, ओठीड़ो, सूरजड़ी, घूमर, नीमड़ी, पपहिया, ईंडोणी, पायलड़ी, दुपट्टा आदि हैं।

बीकानेर के गीत— करेलड़ी, ओलंगड़ी, सायबाजी, एलची, सियालो, सपनो, हिचकी, नींबूड़ो, नींदड़ली, कलाली, ओगणियो, जला, पपीहा, नागजी, नीछूड़ो, मजमूनी, कुसुम्बी, चौधरी, पीतलियो, पलाण आदि हैं।

मेवाड़ के प्रसिद्ध गीत— घूमर, पटेलिया, लाल्र, माछर, नोखीला, थारी ऊँटा री असवारी, हेली रंगरो बधावो, लहरियो, बीछियो, नावरी, असवारी, शिकार, नागजी, भैरूँ, पनजी, बालो, देस आदि यहाँ के लोकप्रिय गीत हैं।

राजस्थान के दूसरे भागों से आदिवासियों के लोकगीत भिन्न हैं। भील, मीणे, बंजारे, मरासिये, सहरिये जाति के आदिवासियों में जागरण, हमसीड़ो, कांजरी और मान्या जोगी के प्रसंग के गीत प्रसिद्ध हैं।

इस तरह स्पष्ट होता है कि राजस्थान का लोकसंगीत अत्यन्त समृद्ध है।

अध्याय २

संस्कार गीत

सम उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाकर 'संस्कार' शब्द बनता है (सम् + कृ + घञ्), जिसका अर्थ है—सम्यक् प्रकार से किया हुआ अथवा विशुद्धीकृत सम्यक् क्रियते इति संस्कारः। जीवन में व्यवस्था और नियमितता लाने के लिये संस्कारों की आवश्यकता होती है।

श्री श्यामाचरण दुबे के शब्दों में, "मानव की प्रायः प्रत्येक संस्कृति में व्यक्ति की जीवन यात्रा के विभिन्न संक्रमण कालों का विशेष महत्त्व होता है। जन्म, विवाह एवं मरण इस प्रकार की तीन मुख्य स्थितियाँ हैं, जिनके आसपास मानव समूह विश्वासों, रीति-रिवाजों और व्यवहारों का एक ऐसा जटिल ताना बाना बुन लेता है कि उनके वास्तविक स्वरूप को समझे बिना उस संस्कृति का पूर्ण चित्र प्राप्त ही नहीं किया जा सकता। समाज संगठन का यह पक्ष मानव के उत्तरोत्तर परिवर्तित होने वाले उत्तरदायित्वों एवं कार्यों की दिशा निश्चित करता है।"[१]

प्रत्येक संस्कार दो रूपों में पाया जाता है - शास्त्रीय तथा लौकिक। लौकिक संस्कारों का संबंध समय-समय पर होने वाले आनुष्ठानिक गीतों से होता है, जिनका संचालन प्रायः स्त्रियाँ करती हैं। शास्त्रीय संस्कारों के मंत्रोच्चारण से पृथक् इन गीतों का अपना महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य स्थान होता है। मानव जीवन के विभिन्न संस्कारों में ये गीत अपना मांगलिक महत्त्व रखते हैं।

कोख का दुःख

स्त्री को सन्तान नहीं होती, इससे बढ़कर उसे और दुःख नहीं। सारे सुख हैं, पर मातृत्व की गरिमा नहीं मिली तो उसका जीवन ही निरर्थक है। सास ताने मारती है कि उसने वंश डुबो दिया। लोग बाँझ का मुख नहीं देखना चाहते। उपेक्षा की पीड़ा भोगती हुई स्त्री अपने पति से वृन्दावन चलने को कहती है ताकि प्रभु की कृपा से उसकी गोद भर सके। कोई ऐसी जड़ी है, जिसे पाकर सन्तान मिल सकती है---

ए मोय[२] सब सुख दियौ भगवान
एक दुख भारी कोख को

---

१. *मानव और संस्कृति* : श्यामाचरण दुबे, पृ० २५६

२. मुझे।

ए पिया, उठि बिदावन जाउ,
माँ बूटी[१] बिकत्यै[२] लाल की
ए गोरी, खोजत-खोजत है गयी साँझ
पर बूटी न पाई लाल की।
ए मैं ठाड़ी नीबरिया[३] तेरी ओट
हरीरा[४] मारौ सास नें
ए न्याँ ते हटि जा बाँझ बंझोट
तैंने नाम डुबायौ मेरे लाल की
ए पिया, लाऔ ढाल तरवार
मो बाँझ को मुख ना देखियै
ए गोरी, कौनें तौ बोले नोते[५] बोल
कौनें तौ मारे ताहिने[६]
ए गोरी कहौ तो लाऊँ मोल के लाल
बाँझ कौ नाम मेंटियै
राजा, मोल के ढोल ना सुहाय
अंत ते ई नाम चलाइयै।

दोहद या साध गीत

ईश्वर की कृपा से जब स्त्री माँ बनने की स्थिति में होती है तो गर्भावस्था के क्रम में उसके मन में तरह-तरह की इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं, जैसे—खाने-पीने की, घूमने फिरने की, जिसे पूरा करना परिवार के लोगों का कर्त्तव्य हो जाता है अन्यथा होने वाली संतान पर कुप्रभाव पड़ता है, ऐसा कहा जाता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले कुछ गीत उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद में मिलते हैं। एक दोहद गीत में क्रमशः सास, जेठानी, ननद, देवर और पति माँ बनने वाली स्त्री से पूछते हैं कि तुम्हें क्या अच्छा लगता है—

सासु पूछैं मोरी बहुअरि, तुम्हैं का भावै री,
नेबुआ, नरंगी, अनार अम्मा हमैं भावै री,
जेठी पूछैं मोरी छोटी तुम्हैं का भावै री,
दाख, छुहारा औ किसमिस दिदिया हमैं भावै री,
ननदी पूछैं मोरी भउजी तुम्हैं का भावै री,
पूरी, कचौरी, अचार दीदी हमैं भावै री,
देवर पूछैं मोरी भौजी तुम्हैं का भावै री,
केला, आम, फरेंद भैया हमैं भावै री,
राजा पूछैं मोरी रानी तुम्हैं का भावै री,
तुमरी कनिया होरिलवा राजा हमैं भावै री।

और एक साध गीत में स्त्री की दस साधों का वर्णन किया गया है। उसकी प्रत्येक साध घर का प्रत्येक सदस्य पूरी करता है—

---

१. जड़ी, २. बिकती है, ३. नीम की, ४. नाना, मर्म वचन, ५. कड़वे, ६. ताने।

बँसवा की कोठिया से निकरी है गोरी,
पहिली साध मोरी सासु पुरवैं,
कोरी बात मोरे ससुर से चलावैं,
दुसई साध मोरे बलमा पुरवैं,
हाल पूँछि मोरे मन का रिझावैं ।

हरियाणा में प्रचलित एक दोहद गीत इस प्रकार है :-

मने भावे कराले के बेर, रुपये सेर, मेरा री मन बेर ने ।
मने ससुर घाल्या री लेण ने वो तो चौधर आया जितवाय कराले के बाग में
मने जेठा घाल्या री लेण ने वो तो घोड़ी आया जितवाय कराले के बाग में
मने कंता घाल्या री लेण ने वो तो गोरी आया जितवाय कराले के बाग में ।

सिखन्त गीत

रायबरेली जनपद के दोहद एवं साध गीतों की भाँति सुल्तानपुर जनपद में इसी भावना का एक संस्कार गीत प्रचलित है, जिसे सिखन्त गीत कहते हैं। इसमें एक गर्भिणी स्त्री का चित्रण है, जिसके अंग दुर्बल हो गये हैं, मुख पीला पड़ गया है। उसकी नौ साधों को उसके परिवार के लोग पूरा करने का प्रयत्न करते है

बँसवा की कोठिया से निकरी है गोरी
अस गोरी मैं कतहूँ न देख्यों
देख्यों तो देख्यों फलाने रामा सेज
अंग पतरि मुख दुरहुरि गोरी
पहिली साध मोरी सासु पुरावैं
ससुर बलाय मोरी बात चलावैं
दूसरी साध मोरी ससुर पुरावैं
पंडिता बलाय मोरी सइता धरावैं
तीसरी साध मोरी जेठ पुरावैं
नउआ बलाय मोरे नइहर पठावैं ।

इसी तरह नौ साधों का वर्णन किया गया है।

हरियाणा में शिशु जन्म की मधुर कल्पना करके गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है :-

पायां में पैंजनिया लाल छुन्नक छुन्नक डोलेगा
हरी जरी की टोपली बजार सुई डोलेगा
दादा कहके बोलेगा दादी की गोदी खेलेगा
ताऊ कहके बोलेगा ताई की गोदी खेलेगा ।

जन्म के गीत

व्रज में जन्म संबंधी गीतों में स्त्री को पुत्र न होने के दु:ख से लेकर उसे पुत्रप्राप्ति तक का वर्णन मिलता है :--

राजे, गंगा किनारे इक तिरिया[1] जु ठाड़ी अरज करै
गंगे, एक लहर हमें देउ तौ जामें डूब जैऐ, अरे जामें डूब जैऐ
कै दुख री तोय सास ससुर कौ, कै तेरे पिया परदेस?
कै दुख री तोय मात-पिता कौ, कै मां जाए वीर, काए दुख डुबिहौ
ना दुख री मोय मात पिता को, ना मां जाए वीर
ना दुख री मोय सास ससुर को, नाँय मेरे पिय परदेस
सास बहू कहि नांय बोलै, ननद भार्भी ना कहै
न हो राजे, वे हरि बाँझ कहि टेरें तौ छतियाँ जु फटि गई
जाई दुख डूबि हों।
राजे, लौटि उलटि घर जाउ, लाल तिहारे होंय
आई धन तन मन मार, राजे मेरे पिछवारे बढ़ई कौ
लाला, तू मेरौ देवर जेठ, राजे एक कह्यौ मेरौ कीजियै
काठ पुतर[2] गढ़ि देउ मो ब्वाइ लै कै उठि हों,
ब्वाई लैकै बैठि हों
राजे, न्याई धोई भई ठाड़ी तौ सुरुज मनामें
राजे, काठ पुतर जिउ[3] डारौ तौ जाइ लैंके उठि हों,
जाइ लै कें सोइये
राजे जे नौ दस मास बीते गरभ के
तौ होरिल[4] सबद सुनाइऐ
राजे सासु बहू कहि बोलै, ननद भाभी बोलै
वे हरि, जच्चा कहि बोलैं, तौ छतियाँ जुड़ि गई
बाजन लागे बाजे, घुरन लागे तबल निसान[5]
गवन लागे मंगलचार
धनि धनि गंगे तोय धन्नि[6] ए
तुमने बढ़ायौ मेरो मान।

गढ़वाल में संस्कारों के लोकगीत मंगल गीतों की श्रेणी में गिने जाते हैं। बच्चे का जन्म वस्तुतः पुण्य का फल माना जाता रहा है। पारस्कर गृह्यसूत्र (१.१६.१५) में माता की स्तुति करते हुए कहा गया है कि—'तू इड़ा है, तू मित्रावरुण की पुत्री है।' गोभिल गृह्यसूत्र में 'तू वेद है' कहकर पुत्र की महत्ता बताई गई है। गढ़वाली गीतों में इसी परम्परा के अनुसार पुत्र को देवताप्रसूत कहा जाता है। गढ़वाल के मंगल गीतों में वर-वधू को शिव-पार्वती तथा राम-सीता कहा जाता है, उसी प्रकार जातक अर्थात् पुत्र को इन गीतों में कृष्ण कहा जाता है। यह पुत्र माता के तप की सबसे बड़ी सिद्धि और मातृत्व की सर्वोत्कृष्ट निधि है। इन्हीं भावों पर आधारित एक मंगल गीत इस प्रकार है—

तू होलो मेरा तपस्या का जायो
तेरी जिया ब्वैन कदु कैन कर्म

१. स्त्री, २. काठ का पुत्र, ३. जीव, प्राण, ४. नवजात शिशु, ५. नगाड़ा, ६. धन्य।

तेरी जिया ब्वैन नीम लैन धर्म
तेरी जिया ब्वै तीर्थ का नौ छुबडुल्यां नहेंणे
देवतौं का नौं वींन धारू ढुंगी पूजीन
तू होलो बाला डांडो कू उद्यौऊँ
तू बणलो बाला कुल की जोत ।

पुत्र, तू मेरी तपस्या का फल है। तुझे पाने के लिये तेरी माँ ने कितने कठोर कर्म किए हैं। कितने नियम और धर्मों का पालन किया है। तेरी माँ तीर्थों के नाम पर कई पोखरों तक नहाई है और देवताओं के नाम पर हर पत्थर को पूजती रही है। हे बालक, तुम उदयशिखर पर सूर्य की ज्योति के समान चमकना। आखिर तुम अपने कुल का उजाला हो।

कुमायूँ में पुत्रजन्म के अवसर पर निम्न गीत गाया जाता है--

तीन लोक के नाथ मथुर हरि जन्म लिये
भादों रयन अँधेरी चन्द्रमा उदय भये ।
लागो रोहिणी नक्षत्र कन्हैया अवतार
मोहन अवतार लिये
पीताम्बर की कछनी काछे
चतुर्भुज रूप धरे
शंख चक्र गदा पद्म मुरलिया अधर धरे
केसर तिलक ललाट माथ पर मुकुट धरे
कुण्डल झलकत कान गले बिच हार धरे
नटवर रूप देख देवकी सोच परे
इक तो मैं करम की हीन दूसर दुख और भये
देवकी ने लिये बुलाय, वासुदेव चलि आए
ले हो बाल उठाए नंद घर दे आवो उसे
खुल गए झनन किवाड़ पहरुआ सोई गए
खुल गए नन्द दरबार कन्हैया गोकुल को गए
तट यमुना जी के तीर वासुदेव सोच परे
कैसे उतारबै पार यमुना जल जोर भये
तट यमुना जी के तीर शंख ध्वनि बाज रही
कृष्ण लियो अवतार यमुना जल लौट चले ।

आदिवासियों की मान्यता है कि शंकर की पूजा करने से सन्तान की प्राप्ति होती है। यहाँ भी पुत्री की अपेक्षा पुत्रजन्म अधिक प्रसन्नता का सूचक होता है। एक गीत में ऐसा वर्णन है कि सन्तान के जन्म लेने पर भगवान् शंकर को कौन क्या चढ़ाता है?

देवता मनावे बड़[१] अरे ऋखि[२] रावन
बोलतेहु हुरे हो कोखि नाहीं कछु रे

१. बहुत, २. ऋषि।

राजा चढ़ावे चढ़उवा[१] चन्नन बेलपात
रानी चढ़ावे गंगाजली
डौका[२] जनमले चढ़ेला चन्नन बेलपात
रानी चढ़ावे गंगाजली

जन्ति गीत

व्रज में पुत्रजन्म के समय की एक लोककथा जन्ति गीत के रूप में इस तरह प्रचलित है-- किसी सास व ननद ने बहू की आँखों पर पट्टी बाँध दी। उसके नवजात शिशु को घूरे पर फिकवा दिया और बेटे से कहा कि तेरी बहू ने पत्थर जन्माये हैं। स्त्री को उसका पति रथ में जुतवा देता है। उधर नवजात शिशु एक मालिन के घर पलकर बड़ा होता है। वह सच्चाई को जानकर अपनी माँ को प्रतिष्ठा देता है और दादी को दण्ड देता है --

गरभ रही राजे, नौ दस मास, जाइ जो सासु जगाइयै
उठियो री मेरी सासुल नंद पीर उठी ए मेरी कामर[३] में
कोठी[४] में मूँड़[५] कुठीला[६] में पांइ[७], आँखन पट्टी बहू बाँधियौं
जब वाके भए एं कुमर नन्दलाल
दादी नें घूरे[८] डरवाइऐ
बागन्[९] ते एक मलियरि[१०] जाइ
पौंछि धोय गोदी लै लियो
बाहर ते आए पातरिया से नाह[११]
महल उदासी अम्मा चों भई ?
तिहारी धन पथरा[१२] जने एं मेरे लाल
महल उदासी न्यौं भई ।
राजा ने हुकम दियौ ऐ चढ़ाइ
रानी जु रथ जुरबाइयै
जबले कुमर भयौ पाँच बरस कौ
रथ कौ तमासौ देखन जाइयै
ताते सीरे पानी दीने धरवाय, माइलि उबटि न्हवाइऐ
आधौ राज् जा मालिन ऐ देउ, जानें तौ हम पारिऐं
दादी ऐ चौराहे पै देउ गढ़वाय
जानें हम घूरे पै दीए डरवाय ।

बड़ी बिहाई के गीत

कुरु प्रदेश में कौरवी बोली के लोकगीतों में पुत्रजन्म के अवसर पर प्रचलित एक विशेष प्रकार का गीत 'बड़ी बिहाई' का गीत कहलाता है--

१. चढ़ावा, २. पुत्र, ३. कमर, ४. कोठरी, ५. सिर, ६. अन्न भरने का स्थान, ७. पैर, ८. कूड़े पर, ९. बगीचा, १०. मालिन, ११. नाथ, स्वामी, १२. पत्थर।

ऐसी बिहाई मेरे नित उठ आओ
तुमने जगाई मेरे ससुरे की पौरी
आओ बिहाई तुम्हें चरचूँगी रोली
तुमने जगाई मेरे साजन की पौरी
आओ बिहाई तुम्हें पूजूँ बतासे
तुमने बुलाई मेरी सासू ननदी
आओ बिहाई तुम्हें पूजूँगी पेठा
तुमने बुलाये मेरे देवर जेठा
ऐसा बिहाई मेरे नित उठ आओ।

खड़ी बोली प्रदेश में जन्म सम्बन्धी गीतों को 'ब्याही' कहते हैं। 'बिहाई' इसी का अपभ्रंश रूप है।

मनरंजना

पुत्रजन्म के ही अवसर पर कुरु प्रदेश में 'मनरंजना' नामक गीत प्रचलित है जिसमें ननद भाभी को आपसी बातचीत है। ननद पूछती है तुम्हें यदि पुत्र हुआ तो मुझे क्या दोगी?

ऐरी ननद भवज पाणी को चाल्ली मनरंजना
ऐरी नणदल मुखड़ा देक्खे अहो मनरंजना
जो भाबो तुम ललना जनमोगी अहो मनरंजना
तो हमें क्या दोगी नेग, अहो मनरंजना
कोई देंगे गले का हार, अहो मनरंजना
कोई देंगे गले की तिलड़ी अहो मनरंजना
कोई पनिया भर घर को आई अहो मनरंजना
कोई हांय पड़े नन्दलाल अहो मनरंजना
कोई हौले से गाओ बियाही, अहो मनरंजना
कोई नणद सुन दौड़ी आवे, अहो मनरंजना
बाजन का बाज्जा सुनके, नणदल आई
कोई पलड़े में झूले अहो मनरंजना
कोई ललना को लेआ खिलाय अहो मनरंजना

संचत गीत

संचत गीत स्त्रियों की स्वाभाविक मातृ-भावना के प्रतीक हैं। ये गीत बुन्देलखण्ड में प्रचलित हैं। इनमें नारीहदय की संतान-प्राप्ति को आकांक्षा, अधीरता शत-शत धाराओं में बहती दिखाई पड़ती है। 'संचत' शब्द 'सन्तति' का ही अपभ्रंश है।

बुन्देलखण्ड में गर्भ के छठें या आठवें महीने में एक दस्तूर किया जाता है, जिसे 'आगन्नो' या 'फूल चौक' कहते हैं। यह रिवाज वैदिक पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार

का स्वरूप ही प्रतीत होता है। गर्भवती स्त्री के मायके से लाल रंग के वस्त्र आते हैं, जिन्हें पहन कर वह चौक पर बैठती है। इसी अवसर पर संचत गीत गाये जाते हैं।

निस्सन्तान स्त्री के दु:ख की सीमा नहीं होती। पति दूसरा विवाह करने को प्रस्तुत होता है। वह उदास है। ननद उसके दु:ख का कारण जान, उसे आशीर्वाद देती हैं। वह कल्पना करती है कि उसे पुत्री हुई है, किन्तु पुत्री तो एक दिन उसे छोड़कर चली जाएगी। तब वह कल्पना करती है कि उसे पुत्र हुआ है, जो घर में प्यारी-सी बहू लाएगा। पुत्र को जन्म देकर वह स्वयं को धन्य मानती है--

मन जो कहै धिया जनमियो मोरे गजबज आहे बरात
लटकत आवे मोरे साजना विहँसत दुल्हा दमाद
घर मोरो रीतो अंगन मोरो रीतो सब सुख रीतो पेट
साजन धिया लेके निग गए।[१]
मन जो कहै पुत्र जनमियो मोरे गजबज जैहें बरात
घर मोरो भर गओ अंगन मोरो भर गव
सब सुख भर गव पेट।
बेटा बहू लेके आइयो।
धन्न मोरी कूँख सुलोचनी
जिन मोरे राखे हैं मान
पिया ब्याव रचत ते दूसरो।

इन गीतों को 'गितंकड़ौ' भी कहते हैं। पास-पड़ोस की महिलाओं को निमंत्रित किया जाता है। ये महीने भर आकर 'सादन के गीत' गाती हैं।

सोहर

पुत्र-जन्मोत्सव के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'सोहर' कहा जाता है। ये एक प्रकार के मंगलगीत हैं, जो प्राय: सभी हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों में प्रचलित हैं। भोजपुरी में 'सोहल' का अर्थ 'अच्छा लगना' किया जाता है। इसकी निरुक्ति 'सुघर' शब्द से की जा सकती है, जिसका अर्थ 'सुन्दर' है। उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भागों में इन्हें 'सोभर', 'सोहला' या 'सोहिलो' के नाम से भी जाना जाता है। व्रज में इन गीतों को सोगर, सोहर या सोहिले कहा जाता है। यहाँ सूतिकागार को भी सोभर कहते हैं। राजस्थान में सोहर को 'हालरा' कहते हैं। श्री वासुदेवशरण अग्रवाल के अनुसार--- 'सोहर' शब्द संस्कृत के 'सूतिगृह' और प्राकृत के 'सुइहर' से बना है। संभवत: इन्हीं नामों के आधार पर भोजपुरी, मगही आदि भाषाओं में जच्चा या प्रसूता के रहने के स्थान को 'सउरि' कहते हैं। सौरगृह आदि शब्दों का प्रयोग तो उत्तरभारत के प्राय: सभी क्षेत्रों में किया जाता है, जिसका अर्थ है--- प्रसूतिगृह।

'सोहर' शब्द से मिलते-जुलते सभी शब्दों की व्युत्पत्ति के मूल में संस्कृत की

---

१. चले गये।

'शुभ्' धातु है, जिससे शोभन, शोभा आदि तत्सम तथा सोहना, सुहावना आदि हिन्दी के तद्भव रूप बनते हैं। इसी कारण सोहर को शुभ तथा सुहावना माना जाता है। बच्चे के जन्म लेने वाले कक्ष को सूतिकागार या सौरगृह कहा जाता है। इसीलिये इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को सोभर या सोहर कहना सर्वथा समीचीन है। संस्कृत के 'शोकहर' शब्द से भी सोहर की व्युत्पत्ति की जा सकती है। आनन्द तथा बधाई इन गीतों के मुख्य विषय हैं। रामचरितमानस में तुलसीदास ने पुत्रजन्म के आनन्द की तुलना ब्रह्मानन्द से की है -

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना
मानहु ब्रह्मानन्द समाना।

तुलसी ने सोहर के लिये मंगल शब्द का भी प्रयोग किया है --

गावहि मंगल मंजुल बानीं
सुनि कलरव कलकंठ लजानीं।

सोहर गीतों में इसी मंगल एवं आनन्द की झलक है।

सोहर का वर्ण्य विषय एवं शैली

सन्तान के लिये स्त्री पुरुष में लालसा का होना अत्यन्त स्वाभाविक है। इसके लिये वे कठिन साधना करते हैं, देवताओं का पूजन करते हैं, मनौतियाँ करते हैं। सोहर गीतों में इन विषयों के अतिरिक्त गर्भाधान, गर्भिणी स्त्री की प्रसव-पीड़ा, दोहद, पुत्रजन्म संबंधी उल्लास, संबंधी तथा परिजनों द्वारा परस्पर बधाई और शुभकामना के साथ बधावा माँगना, देना तथा आनन्दोत्सव आदि का वर्णन होता है। कुछ सोहर गीतों में गृहस्थ जीवन के मनोरम चित्र मिलते हैं। उनमें श्रृंगार, हास्य और करुण रस का समावेश भी पाया जाता है। ननद-भौजाई के हास परिहास सास-बहू के बीच सद्भाव या दुर्भाव, पति-पत्नी का प्रेम-विनोद, सामाजिक एवं गृहस्थ जीवन के आचार-विचार, प्रसूता स्त्री के पथ्य अपथ्य, खान-पान, मातृत्व का अभिमान आदि विविध कथोपकथनों के विवरण मिलते हैं। किसी किसी गीत में कोई छोटा कथानक पाया जाता है या किसी मौलिक प्रसंग की कल्पना की गई होती है, जिससे गीतों की रोचकता बढ़ जाती है। ऐसी रचनाएँ प्रायः सूर और तुलसी की हैं, जिनके गीतों में बड़ी मार्मिकता एवं मौलिकता है। राम, कृष्ण तथा शिव-पार्वती संबंधी प्राचीन कथानकों तथा दैवी चरित्रों का वर्णन कुछ सोहर गीतों में किया गया है। राम, लक्ष्मण, सीता, कृष्ण, कौशल्या, देवकी, यशोदा, नन्द, दशरथ, वसुदेव, रुक्मिणी, प्रद्युम्न, शिव, पार्वती आदि प्रसिद्ध चरित्रो का समावेश ऐसे गीतों में रहता है, किन्तु इन लोकगीतों में समाविष्ट होकर ये दैवी चरित्र अपनी अलौकिकता खोकर सामान्य लौकिक चरित्र के रूप में हमारे सामने आते हैं, जैसे— राजा दशरथ डगरिन को बुलाने स्वयं जाते हैं। पौराणिक आख्यानों में बहुधा कथानक में छोटा-मोटा परिवर्तन कर लिया जाता है। एक सोहर में ऐसा वर्णन है कि कृष्ण के जन्म लेने पर वसुदेव उन्हें लेकर नन्द के यहाँ नहीं जाते, बल्कि उनके बदले स्वयं देवकी ही यशोदा के यहाँ जाती है। कथा में यह परिवर्तन मातृहृदय के ममत्व की दृष्टि से अधिक मर्मस्पर्शी एवं

स्वाभाविक है। पात्र भले ही पौराणिक हों, पर कल्पना सर्वथा नवीन है।

एक सोहर गीत में गणेश की वन्दना के पश्चात् गर्भिणी के प्रथम महीने से लेकर पुत्रोत्पत्ति तक के दस महीनों में गर्भिणी स्त्री के शरीर पर क्रमशः प्रकट होने वाले विभिन्न लक्षणों और उसकी रुचि अरुचि का वर्णन हुआ है। उदर के दाहिने भाग में बच्चे के चलने से पुत्र होने का अनुमान लगाया गया है। ननद अपने भतीजे के आने पर खुशी में मिलने वाले नेग की बात सोच-सोच कर प्रसन्न हो रही है। वह सोहर गाने का विचार अपने मन में करती है। वस्तुतः पुत्र के जन्मोत्सव का आनन्द कल्पनातीत है

परथम[१] मास मनाइले, मंगल गाइले हो
ए ललना, विघिनहरन[२] गननायक मंगलदायक हो।
परथम मास जब आइल चित हरखाइल[३] हो
ए ललना, पुछबो में दिनवा सुदिनवा त कब दो नहाइब हो।
दोसर मास जब आइल रूप बदलाइल हो
ए ललना, अंग पीयर मुख ढुरहुर[४] अगम[५] जनाइल[६] हो।
तीसर मास जब आइल चित फरियाइल[७] हो
ए ललना, परानपिया महनाहक[८] बोली बड़ भारी हो।
चउठ मास जब आइल पिया से बिनती करे हो
ए ललना, कइले रसोइया ना भावे त ननद बोलावऽ हो।
पाँच मास जब आइल सभे सोच मानल हो
ए ललना, सुतबो में सेजिया सोहावन बेनिया डोलावन हो।
छवरे मास जब आइल ननद हँसि बोलेली हो
ए ललना, दहिना बदन पर आगम होरिला[९] के आगम हो।
सात मास जब आइल पिया से विनती करे हो
ए ललना, सुतबो में सेजिया अकेली त बेनिया[१०] डोलाइब हो।
आठ मास जब आइल आठों अंग भरि गइले हो
ए ललना, अटपट चिरवा[११] खुलि गइले चुनि चुनि पहिरेली हो।
नवमे मास जब आइल ननद हँसि बोलेली हो
ए ललना, कब दो बबुआ जनमिहेन[१२] त सोहर गाइबि हो।
दसरे मास जब आइल राजा दसरथ गिरही[१३] मंगल हो
ए ललना, जनम लिहले तिरभुहननाथ[१४] सभ सुखदायक हो।

एक सोहर गीत में बंध्या स्त्री की वेदना का चित्रण है। निस्सन्तान होने के कारण पति द्वारा अपमानित पत्नी को रोते देखकर उसका देवर रोने का कारण पूछता है। वह स्त्री बताती है कि तुम्हारे भाई ने एक पुत्र के अभाव में मुझे वनवास दिया है। देवर उसे आश्वासन देता हुआ कहता है —ओ भाभी, तुम मुझसे सोना, चाँदी लो और सूर्य भगवान्

---

१. प्रथम, २. विघ्न हरने वाले, ३. हर्षित हुआ, ४. सूखा, ५. आने की सूचना, ६. मालूम हुआ, ७. मिचली आना, ८. सहायक, ९. पुत्र, १०. पंखा, ११. वस्त्र, १२. जन्मेंगे, १३. गृह, १४. तीनों लोकों के स्वामी।

की पूजा करो। उनकी मनौती करने से तुम निश्चय ही पुत्र पाओगी। देवर के ऐसा कहने पर भाभी सूर्य की पूजा करती है और उनके प्रसन्न होने पर पुत्र पाती है। अपने देवर को वह युग युग जीते रहने का आशीर्वाद देती है

एक धनि अंगवा[१] के पातर[२] पिया के सोहागिन हो
ललना, दोसरे दुआरे लगल ठाढ़ काहे भौजी आँसू ढारे हे।
तूहूँ त हहु[३] भउजी अलरी[४] से भइया के दुलरी[५] हे
ललना काहे भउजी लगल दुआर काहे रे भउजी आँसू ढारे हे।
तूहूँ त हहु बबुआ देवर मोर सिर साहेब[६] जी
बबुआ, तोरे भइया देलन बनवास से एक रे पुतर बिनु हे।
लेहु न लेहु भउजी सोनमा[७] से अउरो चानी[८] लेहु हे
भउजी मनवहु आदित[९] भगवान पुतर[१०] एक पायब हे।
मनवल[११] आदित भगवान से होरिला जनम लेल हे
ललना जुग जुग जिअए देवरवा जे मोरा गोदी भरि देल हे।

बुन्देलखण्ड के एक सोहर गीत में सास बहू के झगड़ो का चित्रण है—

मोरे उठत कमर घन पीर, अब नैंया जीने की
सुन राजा रे महाराजा रे, मोरी सासू को देव बुलाय
अब नैंया जीने की।
सुन माता री, तोरी बहू बेहाल, तुम्हें बुलाउत हैं
सुन बेटा रे, रानी बहुआ के बोल कुबोल
करेजे में हन गए।
सुन माता री, अपने बेटा के खातिर
बोल बिसर जा री।

अवध क्षेत्र में सोहर गीत विलम्बित एवं द्रुत दोनों प्रकार की लयों में मिलते हैं। राम की भूमि होने के कारण यहाँ के सोहर गीतों में अधिकतर राम, सीता आदि पात्रों का वर्णन है। कुछ उदाहरण इस प्रकार है -

चइतइ कइ तिथि नउमी, राम जगि रोपै हो
रामा बिनु हो सीता के जगि सून
त जगि मोरी के देखै हो
मचियहिं बइठी कौसिल्या मइया गुरु से अरज करैं
गुरुजी रउरे मनाये सीता अइहैं, मनाइ लै आवहु हो।

⌟ ⌟ ⌟

चैत रामनवमी श्रीरामजी के जनम भये
धगरिन त नेग माँगे नार कै छिनौनी[१२]
कौसल्या रानी क हार माँगै राम नहवौनी[१३]।

---

१. अंग, २. पतली, ३. हो, ४ अलबेली, ५ दुलारी, ६. श्रेष्ठ स्वामी, ७. सोना, ८. चाँदी, ९. सूर्य, १०. पुत्र, ११ मनौती मानी, १२. नाल काटना, १३ नहलाना।

नाउनि नेग माँगै बुकवा[१] कै मिजौनी[२]
कैकेयी रानी कै हार माँगै चौक पुरौनी[३] ।

द्रुत लय के सोहर गीतो को अवध प्रदेश में 'उतारा' या 'उलारा' कहते हैं।

लाल मोरे खेलैं अँगनैयाँ
छमें छम बाजै पैंजनिया
द्वारे पे लालजी के बाबा खुसी भये
औ महले आजी रनियवाँ
छमें छम बाजै पैंजनिया ।

राजस्थान में पुत्र जन्मोत्सव से संबंधित गीत 'जच्चा के गीत' या 'हालर गीत' कहलाते हैं। इनमें नवजात शिशु तथा जच्चा के वस्त्र, पुत्रजन्म की प्रसन्नता, गर्भ की पीड़ा आदि का चित्रण होता है। पुत्रजन्म के समय घुँघनी बाँटी जाती है -

रंग महल बिच जच्चा होलर जायो
ये पीलारी मौज ये ।

बिहार के मगही क्षेत्र के अन्तर्गत कुछ मुस्लिम संस्कार गीत मिलते हैं। इनकी भाषा किंचित् खड़ी बोली अथवा उत्तर प्रदेश के लोकगीतों की तरह है किन्तु यहाँ के गीतों की विषयवस्तु समान ही होती है। दोहद अवस्था में जच्चा की बादाम खाने की इच्छा, ननद को कोई वस्तु देने या न देने का तर्क, पति से हास-परिहास आदि चित्रित है। एक पत्नी अपने पति से संतान होने की बात छिपाये रखती है और उसके भोलेपन पर मन ही मन खुश होती है - -

हाँ हाँ हाँ मेरा भोला है राजा
कमरे में दाई काहे को आई
राजा जी मेरी नाफे[४] टली[५] थी
राजा जी मेरा सीधा है राजा
रानी कमरे में कौन रोया था
राजा जी दो ये बिल्ले लड़े थे ।

बच्चा होने की खुशी में दादी दान बाँटती है। बच्चा पालना में झूलता है- -

इस रे होरिलवे[६] की दादी बड़ैतिन[७] दान बाँटे रे
मेरा छोटा सा होरिला पलना झूले रे
पलना झूले रे, झुनझुना खेले रे ।

पुत्रजन्म का समाचार मिलते ही घर-आँगन में परिवार एवं पास-पड़ोस की सभी उम्र की स्त्रियाँ हँसी-खुशी के साथ इकट्ठी होती हैं और उल्लास भरे स्वर में सोहर गीत गाती हैं। ढोलक की थाप के साथ सोहर गीतों की ध्वनि से घर-द्वार का कोना-कोना गूँज उठता है। इन गीतों का विशेष आनुष्ठानिक महत्त्व नहीं है। ये गीत जन्मोत्सव संबंधी सभी अवसरों पर गाये जाते हैं। कुछ ही गीत ऐसे हैं जो विशेष विधियों से संबंधित हैं, यथा बच्चा

---

१. उबटन, २. मलना, ३. पूरना, ४. नस, ५. खिसकी, ६. बच्चा, ७. श्रेष्ठ।

पैदा होने के बाद जब उसकी नाल काटने की क्रिया होती है तो एक ऐसा सोहर गाया जाता है जिसमें पितरों से जो निवेदन किया जाता है कि उनके वंश में वंशधर की उत्पत्ति हुई है। पितर अपनी ओर से उसे आशीष देते हैं और उसकी नाल काटने के लिये सोने की छुरी तथा थाल देते हैं। उसे दूध पीने के लिये वे सोने की कटोरी देते हैं। कुछ सोहर ऐसे भी हैं जो प्रसूता के छठें दिन के प्रथम स्नान के उपलक्ष्य में गाये जाते हैं। लोकजीवन के स्तर पर हिन्दू और मुस्लिम के आचार व्यवहार की सीमाएँ प्राय: एक सी हैं।

शास्त्रों में गर्भाधान के पश्चात् पुंसवन संस्कार का विधान है किन्तु बिहार में यह विधि प्रचलित नहीं है। उत्तर प्रदेश में 'साध' पूजने की 'चौक' या 'गोदभराई' की रस्म गर्भावस्था के सातवें महीने में मनाई जाती है। इस अवसर पर जन्म संबंधी गीत गाये जाते हैं। बिहार में बच्चे के जन्म से पूर्व भी प्रथम गर्भाधान के उपलक्ष्य में परिवार मे आनन्द मनाया जाता है और उस अवसर पर साहर गाये जाते हैं।

तुलसीदास ने 'रामललानहछू' में जो सोहर की रचना की है, उससे ऐसा जान पड़ता है कि कहीं कहीं विवाह संबंधी कुछ अवसरों पर भी सोहर गाने का प्रचलन रहा होगा। तुलसी के बाद धरनीदास आदि कुछ सन्त कवियों ने भक्ति के भी सोहर रचे हैं। बिहार मे कहीं कहीं गोदना गोदवान के समय भी सोहर गाने का रिवाज है। गोदनहारी नटिनें संभवत: सुई चुभने की वेदना को भूलने के लिये ही सोहर छेड़ती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि सोहर कितने आनन्द एवं उल्लास का राग है। बालक के बरही संस्कार तक ये गीत गाये जाते हैं।

बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में जो सोहर गाये जाते हैं उनमें एक विशेष राग, लय एवं छन्द होता है जिसे सोहर छन्द कहते हैं। तुलसीदास ने जिस सोहर छन्द की रचना की है वे साहित्यिक छन्दोविधान के अनुसार बाईस-बाईस मात्राओं के चरणों में हैं। उनके अन्त में तुक भी मिलाया गया है जबकि लोकगीतों के इन सोहरों में तुक एवं पिंगल शास्त्र के नियमों का अभाव होता है। बहुधा इसे गाते समय छोटे-बड़े पदों को खींच-तान कर बराबर कर लिया जाता है। वस्तुत: सोहर एक ऐसा तालवृत्त है जिसका मापदण्ड पृथक्-पृथक् मात्राओं एवं वर्णो में नहीं अपितु लयबद्ध बलाघातपूर्ण इकाइयों में है। इन्हीं इकाइयों की आवृत्ति से राग की रचना होती है। प्रत्येक आवृत्ति के बलाघात पर ताल पड़ता है। ये ताल समान रागात्मक मात्राओं द्वारा नियंत्रित रहते हैं।

सोहर के तालखण्डों के नियोजन में भेदों की संभावना होती है किन्तु उसकी मुख्य लय में अन्तर नहीं होता। सोहर के छन्दों के भी कई भेद हो जाते हैं। विविधता के आनन्द के लिये सोहर के विषय को झूमर आदि विभिन्न गीतों के रागों में भी बाँध लिया जाता है और रागान्तर वाले इन गीतों को भी विषय की एकरूपता के कारण सोहर ही कहते हैं।

सोहर बड़े छन्दों में लिखे जाते हैं। ये वर्णन-प्रधान होते हैं। तुकान्त होते हुए भी ये कहीं-कहीं 'ब्लैंक वर्स' की तरह लिखे जाते हैं। इन गीतों में एक नये अतिथि के आगमन के कारण उमंग, तरंग और उल्लास की झलक मिलती है। इनमें आशा का भाव

होता है। प्रायः ये सात मात्रा मे गाये जाते हैं और इन गीतों की दूसरी पंक्ति में बहुधा 'ललना' शब्द का प्रयोग आता है।

मंगल गीत

मंगल गीत सामान्यतः मांगलिक अवसरों पर ही गाये जाते हैं, चाहे वह पुत्रजन्म का उछाह भरा अवसर हो, विवाह की शुभ बेला हो अथवा कोई अन्य मांगलिक अनुष्ठान हो। नेपाल की थारू जाति में विवाह के अवसर पर सोहर और मंगल दोनों गाये जाते हैं।

कौन मोरा दिगिया[१] दिआवल कौने बान्हल आंट[२]
कौने भोरे जूरी[३] पानी कौने नहाबल?
बाबा मोरा दिगिया दिआवल भैया बान्हल आंट
कौसिल्या भोरे जूरी पानी, रामजी नहाबल।
हामें कैसे नोंह छीलब[४], छूछे डलबा[५]
घर जायेब बाबा पूछन, किये रे जवाब देब।
कोय देल टकबा मुकबा कोय देल हरबा
कोय देल रतनपवान भोरी गेल गलबा।
भनहि बिदापति मंगल गाबल गाबि सुनाबल
रामजी के बिहा जनकपुर मंगल गाबल।

नाखुर (नहछू : जन्म)

तुलसी के रामलल्लानहछू की भाँति उत्तर प्रदेश में नाखुर या नहछू नाम का गीत पुत्रजन्म के अवसर पर गाया जाता है-

घर घर फिरई नउनिया त नेहछू जनावै
रामलल्ला के नेहछू तो सब जने आवै।
कौसिल्या छोड़ैं चुटकी मुंदरिया सुमित्रा छोड़ैं रूप
केकई रतन पदारथ भरिगा है सूप।

सरिया गीत

बुन्देलखण्ड में शिशु के धरती पर अवतरित होते ही 'भौं लोटनी' का बुलौवा होता है। उसके पश्चात् नरा छीला जाता है जिसे आम भाषा में 'नाल काटना' कहते हैं। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को सरिया गीत कहते हैं। प्रायः इन गीतों में राम कृष्ण का उल्लेख होता है। एक गीत इस प्रकार है--

मोरे डरे डरे कहरांय[६], गोविन्दलाल भौं[७] में डरे[८]
जाय जो कैयो[९] उन राजा ससुर से
थैली देंय लुटाय गोपाललाल भौं में डरे

---

१. पोखरा, २. पोखर का मोहार, ३. शीतल, पवित्र, ४. नख काटूँ, ५. खाली डाला, ६. रोते हैं, ७. धरती पर, ८. पड़े, ९. यह कहना।

जाय जो कैयो उन राजा जेठ से
बजाजी देंय लुटाय गोपाललाल०.....
जाय जो कैयो राजा नन्देउ[१] से
डेवढ़ा[२] देंय छुटाय गोपाललाल०.....
जाय जो कैयो राजा देउर[३] से
गन्ता[४] देंय कराय गोपाललाल०.....
जाय जो कैयो बारी ननद से
साँतिया[५] देंय धराय, गोपाललाल०.....
जाय जो कैयो पुरा परोसिन[६] से
सरियाँ देवें गुआय, गोपाललाल भौं में डरे।

फैजाबाद जनपद में गाया जाने वाला एक सरिया गीत पुत्र-जन्म के अवसर पर होने वाले आनन्द-मंगल के उल्लेख के रूप में है--

कवने रामा पुतवा के पूत भये, धरती अनन्द भये
कवने रामा धेरिया जुड़ानी, दुनौं कुल तारैं
जो यह मंगल गावै, गाय कै सुनावैं हो
से बैकुण्ठे जाय, परम फल पावैं हो।

नरा छीलने का गीत

जन्म के बाद बच्चे की नाल काटी जाती है। जो दाई यह काम करती है, वह उसके बदले में अच्छा-सा उपहार चाहती है। एक गीत में ऐसा भाव है कि नाल काटने के उपलक्ष्य में माता कौशल्या दाई के लिये लाल चुनरी लेकर खड़ी हैं, कैकेयी सोने का हार और सुमित्रा तिलरी लेकर खड़ी हैं। राजा दशरथ मोती का थाल लेकर खड़े हैं। किन्तु दाई ये उपहार लेने को तैयार नहीं, उसने शिशु राम की नाल काटी है, उनका चतुर्भुज मोहक रूप देखकर ही वह तृप्त होती है -

कैसी मचल रही दाई अवध में
सुरंग चूनरी कौसल्या लै ठाढ़ी
बई न लेये दाई
सोने को हार कैकई लेंय ठाढ़ी
कूलो[७] मरोर[८] गई दाई
सोने की तिलरी सुमित्रा लै ठाढ़ी
मुखइ न बोले दाई
मोतियन थार राजा लयँ ठाड़े
नजर न फेरे दाई
नरा तुमारो जबइ हम छीने

---

१. ननदोई, २. बन्दूक, ३. देवर, ४. गाना-बजाना, ५. स्वस्तिक, ६. पास-पड़ोसिन, ७. कूल्हा, ८. मटकाना।

दरसन दें रघुराई
रूप चतुर्भुज प्रभु दरसायो
खुशी भई तब दाई
दरसन लै दाई घर खों आई
घर घर करत बड़ाई ।

खेलौना

'खेलौना' शब्द की उत्पत्ति खेल से हुई है। खेलौना गीत एक प्रकार के सोहर गीत ही हैं। अन्तर मात्र इतना है कि सोहर पुत्र-उत्पत्ति के पहले से गाये जाने लगते हैं जबकि खेलौना पुत्र जन्म के उपरान्त ही गाये जाते हैं। इनमें अधिकतर पुत्र-जन्म का बधावा माँगने का प्रसंग होता है। गायन शैली प्रायः सोहर की तरह ही होती है अर्थात् उन्हीं तालों या रागों में खेलौना गीत भी गाये जाते हैं। इनकी लय सोहर गीतों से कुछ तेज होती है। एक खेलौना गीत में पुत्र-जन्म की खुशी में कोई भाभी अपनी ननद को विभिन्न आभूषण देना चाहती है किन्तु ननद उन आभूषणों को लेने के लिये तैयार नहीं है, उसे तो फुलझड़ी नाम का आभूषण चाहिये, जिसे देने को भाभी तैयार नहीं।

ननदिया माँगे फुलझरिया रे ।
अपना ननदिया के कंगना गढ़इबो
अरे कंगना गढ़ाके ओह में मोतिया लगइबो
ननदिया कंगना ना लेबे रे ।
अपना ननदिया के तिलरी गढ़इबो
अरे तिलरी गढ़ाके ओह में नग जड़बइबो
ननदिया तिलरी ना लेबे रे ।
अपना ननदिया के बजुआ गढ़इबो
अरे बजुआ गढ़ाके ओह में झबिया लगइबो
ननदिया झबिया ना लेबे रे ।
अपना ननदिया के पायल गढ़इबो
अरे पायल गढ़ाके ओह में घुँघरू लगइबो
ननदिया पायल ना लेबे रे ।
ननदिया माँगे फुलझरिया रे ।

एक गीत में राजा दशरथ के घर में पुत्रजन्म फिर उनके चलने, खाने-पीने, बाल-लीला करने और पड़ोसियों के यहाँ से उलाहनें आने का वर्णन है। अन्त में उनके ब्याह की कामना की गई है। लोकमानस ने भगवान् राम को भी साधारण जन के रूप में चित्रित किया है। सामान्य शिशुओं की तरह, राम की बालक्रीड़ाएँ माता कौशल्या को भली लगती हैं --

दसरथ के लाल कब दो[१] अइहें ।
पाँवे पैंजनिया[२] कमर करधनिया

---

१. पता नहीं कब, २. नुपूर।

अपने गोड़े[1] खेलन कब दो जइहें ।
पूड़ी मिठाई अवरू[2] बतासा
अपने हाथे माखन कब दो खइहें ।
चारों भइया मिलि खेलन जइहें
हमरा घरे ओरहन[3] कब दो अइहें ।
माथे मटुकवा[4] हाथे धेनुहिया[5]
जनकपुर बिअहन[6] कब दो जइहें ।

सोहर से समानता होते हुए भी खेलौना गीतों की शैली कुछ भिन्न होती है। ये विशेष रूप मे आठ या छ: मात्रा में गाये जाते हैं।

मुस्लिम संस्कार गीतों के अन्तर्गत खेलौना गीतों की कोई संज्ञा नहीं है। खेलौना गीतों की विषयवस्तु के अनुरूप जा गीत मिलते हैं, वे जन्मोत्सव संबंधी गीत ही माने जाते है। एक गीत में भावज पुत्र होने की खुशी में ननद को वस्त्राभूषण देना चाहती है पर ननद कुछ नहीं लेती। वह मात्र भतीजे के प्रसन्न रहने की कामना करती है -

अच्छी बुवू[7] कंगना लेंगी, अच्छी बीबी कड़वा[8] लेंगी
मेरे आरजू का है ननदोइया, ओभी जरा देखेगा जी ।
नहीं भाभी कंगना लूँगी, नहीं भाभी कड़वा लूँगी
शाद[9] रहे मेरा नन्हा होरिलवा यही बहुत है जी ।

और कहीं ननद भाभी की तकरार है। भाभी कंगन छोड़कर सारे आभूषण देने को तैयार है, पर झगड़ालू ननद कंगन ही लेना चाहती है।

मांगों का टीका ले री ननदिया, ले री झलाही[10]
एक नहीं दूँगी यही कंगना
लूँगी मैं भावज वही कंगना
मुझे कंगने का शौक मेरी भाभी
लूँगी मैं वही कंगना ।

छठी पूजन

'छठी' शब्द 'षष्ठी' का अपभ्रंश रूप है। जन्म के छठें दिन होने के कारण इसे षष्ठी या छठी कहते हैं। इसी दिन बच्चे की बुआ उसे काजल लगाती है तथा नेग लेती है। छठी के पहले बच्चे को सौरगृह से बाहर नहीं ले जाया जाता। बच्चे को स्नान कराके नया कपड़ा पहनाया जाता है। इस दिन के लिये पंडित शुभ घड़ी निकालते हैं।

बिहार प्रदेश में कहीं-कहीं ऐसी प्रथा है कि किसी कारणवश जिन लोगों की छठी जन्मोपरान्त नहीं हो पाती, उनका छठी पूजन विवाह के अवसर पर किया जाता है और इसीलिये उनके विवाह के अवसर पर सोहर भी गाये जाते हैं। बारात विदा हो जाने के बाद वर के घर रात में 'डोमकछ' नाम का एक नाट्य-नृत्य होता है, जिसमें खाट के पौवे

---

१. पाँव से, २. और, ३. उलाहना, ४. मुकुट, ५. धनुष, ६. विवाह करने के लिये, ७. बुआ, ८. हाथ का कड़ा, ९. प्रसन्न, १०. झगड़ालू।

या काठ के टुकड़े को 'जलुआ' नाम का बच्चा बनाया जाता है और उसके जन्म के उपलक्ष्य में सोहर गाये जाते हैं।

छठी पूजन के अवसर पर सोहर ही गाये जाते हैं। किन्तु कुछ गीतों में छठी पूजने का वर्णन भी आता है। ऐसे ही एक गीत में ननद भाभी, भाई बहन, बेटी बाप और माँ-बेटी का उत्कृष्ट प्रेम वर्णित हुआ है। भाभी अपनी ननद का सम्मान सबसे अधिक करती है तथा उसे बैठने के लिये श्रेष्ठ स्थान प्रदान करती है। सास द्वारा छठी पूजन करने के लिये कहने पर भाभी अपनी ननद की अनुपस्थिति में इस विधि को करने के लिये तैयार नहीं होती। समय पर उसके न आने पर उसे गर्वीली कहकर अपनी खीझ प्रकट करती है, किन्तु यह क्रोध भी बड़ा अपनत्व भरा है। इसी बीच ननद ननदोई आ जाते हैं और प्रसन्नतापूर्वक विधि सम्पन्न होती है तथा बधाई में बहुत सी चीजें उन लोगों को दी जाती हैं

ढोलिया[१] त बाजे सुन सुन्नर, बजत सोहावन हो
आरे बाजे राजा दसरथ दुअरिया, कोसीलाजी के आँगन हो
मचिअहि बइठल मासु त बहुआ से बोलेली हो
बहुआ चलऽ गजओबरी[२] लिपावऽ त छठिया[३] धरावहु[४] हो
का सासु ओबरी लिपाई त छठिया धराई नू हो
सासु अस[५] गजगरभी[६] ननदिया सुनिये नाहिं आवेली हो
किया[७] बहु भेजलू तू नउआ त किया भेजलू बाभन हो
बहुआ किया तुहू भेजलू कवन लाल गरभ तुहुँ उघटेलू[८] हो
नाहि हम भेजलों सासु नउआ त नाहि रे बाभन हो
सासु सबसे दुलरुआ भतीजवा त उहे फिरि[९] आवेला हो
दुअरहि घोड़वा हिहिनइले[१०] ननदोइया हमरो अइलन हो
आहो खिरकिन डँड़िया[११] झलकले[१२] ननद मोरी अइलिन हो
अब सासु ओबरी लिपाइब छठिया धराइब हो
सासु अब हम पूजबों बरहिया[१३] ननद मोरी अइलिन हो
एक ओर बइठेली जिठनियाँ दोसर ओर गोतिनियाँ नू हो
आरे बीचवा में बइठेली ननदिया त चीठिया धरावेली हो
सोने के खड़उँआ कवनलाल बाबा से अरज करे हो
बाबा हमरे दुलरुआ बहनोइया बधइया किछु चाहेला हो
देइ घालऽ[१४] चढ़न के घोड़वा पहिरन के जोड़वा नू हो
बाबा देइ घालऽ साठी मोहरवा विहँसि घरे जइहन हो।

छठी-पूजन के समय मनमानी माँगने का ननद का दावा कितना बड़ा है। भाभी उसे साठ रुपया देना चाहती है पर ननद माँगती है लाख रुपये और उदार भाभी पुत्रजन्म

---

१. ढोल, २. घर के भीतर का भाग, ओबरी, अवर, अपवरक, ३. पुत्रजन्म के छठे दिन होने वाली विधि, ४. रखाओ, ५. ऐसी, ६. गर्वीली, ७. क्या, ८. बार-बार ताना देना, उत्कथन, उद्घाटन, ९. लौटकर, १०. हिनहिनाया, ११. पालकी, १२. दिखाई दी, १३. पुत्रजन्म के बारहवें दिन की विधि, १४. दे दो।

की खुशी में लाख रुपये भी लुटा देने को प्रस्तुत हो जाती है -

छठिया पूजेला ननदी ठाढ़ अँगनमा
हमरा के भउजो तू का देवऽना ।
छठी पुजइया[1] ननदो माठ रुपइया
हमरो से ननदो झट ले लेहु ना ।
माठ रुपया भउजी धर दऽ पउतिया[2]
लाख रुपइया त पुजइया लेबो ना ।
जब त ननदिया होरिला लेके चललन
लाख रुपइया झट फेंकि देल ना ।

न्योछन या न्योछावर

छोटे बालक को देखने और प्यार करने से बहुधा उसे अपने ही प्रियजनों की नज़र लग जाती है। ऐसे में राई, नमक या मिर्च से औंछकर उसकी नज़र उतारी जाती है। रामजन्म के अवसर पर आरती करके न्योछावर करने तथा गीत गाने का वर्णन है ---

करि आरति नेवछावरि करहीं। बार-बार सिसु चरनन्हि परहीं ॥
मागध सूत बंदिगन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक ॥

बच्चे की रक्षा के लिये राई, नमक उसके सिर पर से घुमाकर बाहर फेंक दिया जाता है अथवा आग में डाल दिया जाता है और कहा जाता है कि ऐसा करने से बालक कुदृष्टि के दुष्परिणामों से सुरक्षित रहता है। इस विषय से संबंधित एक गीत इस प्रकार है---

आज होरिलवा के देखन चलूँ
आज होरिलवा के चूमन चलूँ
मोर होरिलवा हइ[3] पुनियाँ[4] के चनवा[5]
अपन होरिलवा के खेलावन चलूँ
राई नोन[6] लेके निहुँछन[7] चलूँ
अपन अपन नजरी[8] बचा के चलूँ ।

आँख अँजाई

बालक के जन्म के छः दिन बाद उसका छठी-पूजन होता है। इस दिन सास देवताओं की पूजा करती है। जेठानी जच्चा के स्नान के लिये पानी गरम कराती है, दाई सौरगृह लीपती है और ननद बच्चे की आँख में काजल लगाती है। इसे ही 'आँख अँजाई' कहते हैं। बहुधा बच्चे की बुआ उसकी एक आँख में काजल लगाकर छोड़ देती है और जब तक बच्चे की माँ बुआ को नेग नहीं देती, वह बच्चे की दूसरी आँख में काजल नहीं लगाती। इस अवसर पर प्रत्येक विधि करने वाले को नेग मिलता है किन्तु कोई-कोई कंजूस पुरुष अपनी माँ, भाभी या बहन को यह नेग नहीं देना चाहता। इस खुशी के

---

१. पूजने के लिये, २. ढक्कनदार सींक की डलिया, ३. है, ४. पूर्णिमा, ५. चाँद, ६. नमक, ७. औंछने के लिये, ८. नज़र।

अवसर पर भी उसे धन लुटाना अच्छा नहीं लगता, इसलिये वह सोने का बहाना करता है-

गाते भइले नंदलाल सुनत राजा सो गइले ।
सासु जे अइली देवता पूजन के
देवता पुजावन[१] नेग[२] माँगे सुनत राजा सो गइले ।
गोतनी जे अइली चेड़ुआ[३] चढ़न के
चेड़ुआ चढ़ावन नेग माँगे सुनत राजा सो गइले ।
ननदी जे अइली आँख अँजन के
आँख अँजावन नेग माँगे सुनत राजा सो गइले ।
दाई जे आइल सौरी[४] लीपन के
सउरी लिपावन नेग माँगे सुनत राजा सो गइले ।

किन्तु सभी तो एक से नहीं होते। एक गीत में ऐसी भी चर्चा है कि जच्चा की सास, ननद एवं देवर क्रमश: देवता पूजने, आँख आँजने और बाँसुरी बजाने आते हैं और उन सभी को इन विधियों पर नेग देकर प्रसन्न किया जाता है - -

बीन बजावे राजा रंगमहल में
सासु जो आई राजा देवता मनन[५] को
उनको पियरिया[६] दे डालो हो
अलबेला राजा मानत नाहीं ।
ननदी जो आई राजा अँखिया आँजन को
उनको चुनरिया दे डालो हो
अलबेला राजा मानत नाहीं ।
देवर जो आये राजा बंसिया[७] बजन को
उनको मुनरिया[८] दे डालो हो
अलबेला राजा मानत नाहीं ।

'आँख अँजाई' के अवसर पर बुआ थाली में चावल रखकर उसमें नाम लिख देती है। प्राय: बच्चे का नाम वही रह जाता है। बच्चे का नामकरण संस्कार इसी समय हो जाता है।

उत्तर प्रदेश के रायबरेली जनपद में इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें 'कजरौटा' कहते हैं। बच्चे की बुआ अपने पीहर आती है--भतीजे की आँख में काजल लगाने के लिये—

बुआ तौ बसईं सजन घर आवईं बिरन[९] घर ।
कजरा परि लइ आवईं तौ नयन सँवारइ ॥

---

१. पूजन की विधि सम्पन्न करना, २. शुभ अवसर पर दिया जाने वाला पुरस्कार, ३. जच्चा के स्नान के लिये पानी गरम करने के लिये चौड़े मुँह का मिट्टी का बना पात्र, ४. प्रसूतिगृह, ५. देवता पूजने के लिए, ६. पियरी, पीली साड़ी, ७. वंशी, ८. अँगूठी, ९. भाई।

बड़ी बड़ी अँखिया ललन की कजर भल मोहइ ।
देत सुघरि यक नारि अँगुरिया न डोलइ ॥

बधाई

पुत्रजन्म के उपलक्ष्य में माता को बधाई तो दी ही जाती है, नवजात शिशु को जो आशीर्वाद दिया जाता है वही बधावा कहलाता है। कुछ गीतों में बधावे या बधाई बजने का उल्लेख है। पुत्र के पिता अन्न, धन लुटाते हैं। तुलसीदासकृत रामचरितमानस में राम, लखन, भरत, शत्रुघ्न के जन्म पर घर घर बधावे बजने का वर्णन है --

गृह-गृह बाज बधाव सुभ, प्रगटे सुषमाकंद ।
हरषवंत सब जँह तँह, नगर नारि नर वृन्द ।।

बधाई से संबंधित लोकगीतों में विशेष रूप से राम, कृष्ण का उल्लेख आता है---

बधैया बाजे आँगने में
राम, लखन, शत्रुघ्न भरत जी
इक संग झूलें पालने में ।

एक गीत मे बधावा लेकर पुत्रजन्म में सम्मिलित होने का वर्णन है। नगर के लोग बधाई देने के लिये उमड रहे हैं। कृष्णजन्म के बाद नन्दजी धन लुटा रहे हैं। तेलिन तेल, तमोलिन पान और मालिन मालाएँ लेकर पहुँच रही हैं। उधर कृष्ण चन्दन के पालने में सोये रेशम की डोर से झुलाये जा रहे हैं। सुर, नर, मुनि गान कर रहे हैं।

एक ओर इन गीतों में बधावा देने का वर्णन है तो दूसरी ओर बधावा माँगने का भी वर्णन है। पुत्रोत्पत्ति के अवसर पर ननद अपनी भाभी से बधावा लेने आती है—

बधइया लेबो भउजिया रे
अँगूठी मुनरिया हम नाहीं लेबो
जड़ाऊदार कंगना भउजिया रे ।

पुत्रजन्म के अवसर पर जच्चा के लिये सोंठ-जीरे की व्यवस्था है लेकिन उसकी ननद भतीजा होने की खुशी में विभिन्न विधियाँ करके भाभी से बधावा माँगती है। इस समय ननद और भाभी के बीच हास-परिहास भी चलता है। ननद मनचाही वस्तु चाहती है, भाभी देना नहीं चाहती, उदार ननद रंग में भंग नहीं करना चाहती। वह भतीजे की प्राप्ति को ही बड़ी उपलब्धि मानती है और भाई तथा भतीजे के दीर्घायु होने की कामना करती है—

बाजे बाजे बधावा ननद अँगना ।
कत्थक गावे पुतरिया[1] नचावे
छोटकी ननदिया नाचे अँगना ।
समझि के नाचू छोटकी ननदिया
तोहरो भइया बसे सहर पटना ।
तुहुँ मोरे भइया, बसे पटना

---

१. पुतली।

उहँवो से ले अइहऽ जोड़ा कंगना ।
एतना वचन जब भउजी सुनली
भउजी झलाही[१] रूसे[२] अँगना ।
भाई मोरा जियो भतीजवा बाढ़ो[३]
जिन्ह रे पुरवले[४] हमार मनकमना ।
बाजे बाजे बधावा ननद अँगना ।

राम-जन्म के वर्णन प्रसंग में नाचने-गाने वाले अपनी कला का प्रदर्शन करके बधावा माँगते हुए पाये जाते हैं-

राजा दसरथ के बेटा भइले
अजोधा में हो गइले सोर रे
राम जनम सुनि अइली भँटिनिया[५]
माँगेली राम बधइया रे ।

भोजपुर में इस अवसर पर पँवड़िया नाच होता है। पँवड़िया लोग बच्चे को बधाई देते और बधावा माँगते हैं।

हरियाणा में पुत्र जन्म के बाद बधावे गाये जाते हैं। एक गीत में बाजे बजने तथा भात का उल्लेख है—

म्हारे आँगण बाज्जा बाजियो जी म्हारा राज
मैं तैं नित उठ लिप्पां आंगणों
बधावा म्हे मुणयो जी म्हारा राज
म्हें तो नित उठ रांधां खीचड़ो जी
किण मोस्सर ओ साएबा जिन्दवा का भात

डुग्गर क्षेत्र में पुत्र-जन्म के समय गाये जाने वाले मंगल गीतों को 'बधावा' अथवा 'बिहाई' कहते हैं-

जी जिस ध्याड़े मेरा हरिअर जन्मेआं
सोइयों ध्याड़ा भागे मरे आऐं
जी जन्मेआ जाया, बाला गुद्दड़ पलेटेया
कुटछड़ मिलेया दाइयां माइया ऐं ।

असीस

बस्ती जनपद में शिशु-जन्म के समय 'असीस' नाम का गीत गाया जाता है। यों इस अवसर पर प्राय: सभी प्रदेशों में बच्चे को आशीर्वाद देने और उसका मंगल मनाने की प्रथा है। 'असीस' नाम से गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है—

बाजत आवै सतरंगिया तौ बरहौ बाजन
नाचत आवै ननदिया तौ बीरन के अँगना ।

१. झल्लाने वाली, २. रूठती है, ३. बढ़े, ४. पूर्ति की, ५. नाचने वाली।

बाबा दिहे गोलवा भैंसिया तौ कंचन दूध भरी
मोरी मैया दिहे लहर पटोर तौ फूलन के अंगिया
भइया दिहिन हाँसुल घोड़वा तो प्रभुजी का चढ़न कहँ
हमरी भउजी तौ हाथे के कंगनवा तौ सोनेन कै गजरा
मोरे भइया के भये नन्दलाल हुआँ पायें कुलि एतना
कोठियामां बाढ़े करइलिया तौ अमवा घउदवा
भइया जुग जुग जियें तोरा लाल
जहाँ पायन कुलि एतना

बधाये (बुन्देलखण्ड)

बधाई गीतों को ही बुन्देलखण्ड मे 'बधाये' की संज्ञा दी जाता है। वहाँ जन्म समय के समस्त उत्सवों तथा रीति रिवाजों के समय अधिकांशतः बधाये ही गाये जाते हैं। बधावा शब्द आनन्दवाचक है। 'बधाई' नामक एक नृत्य भी इस अवसर पर स्त्रियाँ नाचती हैं। लोग नृत्य के समय आनन्दवश रुपये न्योछावर करते हैं। बच्चे की बुआ की ओर से उसके जन्म के दसवें दिन जो वस्त्राभूषण आते हैं, उसे 'बधावा लाना' कहते हैं।

बधाये गीतों मे पुत्रजन्म के आनन्द की झलक तो रहती ही है साथ ही ननद भाभी का हास परिहास या सास ननद और बहू का झगड़ा भी इन गीतों में चित्रित रहता है। बुन्देलखण्ड में इस अवसर पर प्रचलित एक लोकगीत का भाव इस प्रकार है—एक खवासन बन्दनवार ले जा रही थी। रास्ते में किसी ने पूछा- यह बन्दनवारा कहाँ लिये जा रही हो? वह कहती है - क्या तुमने नहीं सुना? अयोध्या के बूढ़े महाराज के नाती और महाराज दशरथ के पुत्र हुआ है। रघुवंश में नई ज्योति जली है, जिससे रघुकुल प्रकाशित हो उठा है। पुत्रजन्म से रानी कोशल्या की कोख तृप्त हुई है और सखियों का हृदय शीतल हुआ है। पुत्रजन्म की खुशी में जो दान दिया गया है, उससे सब सखियाँ आनन्दित हो उठी हैं। यह बन्दनवारा वहीं राजमहल को लिये जाती हूँ----

जो[१] बन्दनवारो कहाँ लँय[२] जाती, जो बन्दनवारो
नगर अयोध्या में सुत भये सजनी
राजा महीपति के नाती ।
राजा दसरथ के पुत्र भये हैं
रघुकुल जोत उजयार दई बाती[३] ।
रानी कौशिल्या की कूँख जुड़ानी
सब सखियों की शीतल भई छाती ।
नगर अयोध्या में दान भये हैं
लै लै दान मगन भई सखियाँ ।

---

१. यह, २. लेकर, ३. ज्योति जला दी।

जन्मोत्सव सम्बन्धी नहवावन

शिशु के जन्म के बाद छठी-पूजन के पूर्व बच्चे को स्नान करके नया कपड़ा पहनाया जाता है। इस अवसर पर बधाई के साथ-साथ गाये जाने वाले गीतों में बच्चे को नहलाने का भी वर्णन आता है। एक गीत में बताया गया है कि मैं सोने के हँसुए से कृष्ण की नाल काटूँगी। सोने की चौकी बनाकर उसी पर बिठाकर कृष्ण को नहलाऊँगी। पीले वस्त्रों से उनके अंग पोंछकर उन्हें पीले ही वस्त्र पहनाऊँगी और उन्हें इस तरह नहलाने के बाद पाँवों में पैंजनी पहनाऊँगी- -

गोकुला में बाजे बधैया त अउरो बधैया बाजे हे
ललना जनमल सिरी नन्दलाल त नंदघर सोहर हे ।
सोने के हँसुआ बनायम[१] गोपाल नार छीलम[२] हे
ललना सोने के चौकिया बनायम किसुन नेहलायम हे ।
पीयरे[३] बस्तर[४] अंग पोछम[५] पीतामर[६] पहेरायम[७] हे
ललना पइरवा[८] में पइजनी[९] पहेरायम गोपाल नेहलायम हे ।

मुस्लिम संस्कार गीतों के अन्तर्गत नहवावन का एक गीत इस प्रकार है – बच्चे की माँ नारंगी साड़ी और तरह-तरह के आभूषण पहनकर, गोद में बालक को लेकर पति के बगल में बैठी शोभा देती है- –

नारंगी दामन वाली जच्चा गोद में बच्चा ले ।
माँग जच्चा के टीका सोभे, मोतिया लहरा ले रे जच्चा ।
हजरिया[१०] बैठा पास में हँस हँस के बीड़ा ले ।

राजस्थान का पुत्र जन्मोत्सव

राजस्थान में पुत्रजन्म का बड़ा उत्सव होता है। बच्चे पैदा होने के लगभग एक महीने बाद जो स्नान कराया जाता है, वह 'नहान' के नाम से प्रसिद्ध है। इस दिन लोगों को निमंत्रित कर खिलाया-पिलाया जाता है। जच्चा को कुएँ पर ले जाकर जलवा पुजाई जाती है। स्त्रियों का झुण्ड साथ में गीत गाते हुए जाता है और गीत गाते हुए ही लौटता है।

प्यारी लागै कुलबहू ओ ललना
घोर जिठाणी पाणी[११] नीसरी[१२] ओ ललना
ललाजी कर सोला सिंगार ।

यह 'जच्चा पीपली' कहलाती है। 'नहान' दिन के ये गीत जच्चा और बच्चा दोनों से संबंधित रहते हैं। पुत्र-जन्म की प्रसन्नता में रतजगा होता है तथा रात भर गीत गाये जाते हैं। पुत्र-जन्मोत्सव से संबंधित ये गीत जच्चा के गीत या 'होलर गीत' कहलाते हैं। इनमें नवजात शिशु के तथा जच्चा के वस्त्र, पुत्रजन्म की प्रसन्नता, गर्भ की पीड़ा आदि का चित्रण होता है। पुत्रजन्म के अवसर पर बिरादरी और मित्रों के यहाँ गेहूँ और चने की

---

१. बनाऊँगी, २. छीलूँगी, ३. पीले, ४. वस्त्र, ५. पोंछूँगी, ६. पीताम्बर, ७. पहनाऊँगी, ८. पाँव, ९. पैंजनी, १०. हजारी दूल्हा, ११. पानी के लिये, १२. निकली।

घुँघनी बाँटी जाती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत इस प्रकार हैं ---

रंगमहल बिच जच्चा होलर[१] आयो
ये पीलारी मौज ये ।

दिल्ली महर को सायब पीलो[२] मँगाओ जी
तो हाथ पचीसी गज तीसी गाढ़ा मारूजी पीली मंगाद्यो जी ।
पीलो तो ओढ़ म्हारी जच्चा पाटै पर बैठी जी
तो देवर जिठाण्या भोत[३] सरायो[४] गाढ़ा मारू जी ।

दस्टौन

यह संस्कार बुन्देलखण्ड में पुत्रजन्म के दसवें दिन किया जाता है, **इसी कारण इसे** दस + टौन कहा जाता है। इसमें सोहर, बधाए और कोहरी नाम के लोक**गीत गाये जाते** हैं। इस अवसर पर जच्चा की ननद बधावे के रूप में पलना, चंगेर या **थाली लाती है**। भाभी इस बात के लिये सतर्क रहती है कि कहीं उसका पति अपनी **बहन को कोई** मूल्यवान उपहार न दे दे। इस अवसर पर महिलाएँ गीत गातीं और नाचती **हैं। इसी समय** घर के द्वार पर चित्रित साँथिये को पूजने के बाद आँगन में प्रतीकात्मक रूप **में बने कुएँ** का पूजन जच्चा करती है। फिर घर के बाहर किसी कुएँ का पूजन होता है। **'दस्टौन' के** अवसर पर बुन्देलखण्ड में निम्न गीत गाया जाता है -

अबै[५] मैरें को सुनरा कैं जै है
सहज मैरें को सुनरा कैं जै है
ए हो राजा बिरन[६] घर पुत्र भए हैं
हमने सुनी आदी रात
ए हो, भोर भये पियरीं भई पाटीं
नउआ[७] को दूब ले आऔ ।
ए हो, ल्याओ कुची[८]. खोलौ कोऊ तारौ[९]
काड़ौ[१०] मुहर पचासी
ए हो पाँच मुहर के छूँटा[११] पौंचियाँ[१२]
सोरा[१३] कौ खंगुआरौ[१४]
ए हो तुम जुग जियौ मेरे भइया अमुक जू
भौजी कौ चिर एबात[१५]
ए हो, जुग जुग जियौ मेरे गोद के झडुलवा[१६]
राखे फुआ के मान ।

---

१. बच्चा, २. पीला वस्त्र, ३. बहुत, ४. सराहा, ५. इस समय, ६. भाई, ७. नाई, ८. कुंजी, ९. ताला, १०. निकालो, ११. करधनी, १२. पहुँची, हाथ का गहना, १३. सोलह, १४. गले का आभूषण १५ सुहाग, १६. नवजात शिशु।

कुआँ-पूजन (बुन्देलखण्ड)

बुन्देलखण्ड में बालक के जन्म के लगभग एक महीने बाद कुआँपूजन की विधि होती है। जो बाहर काम करने वाली महिलाएँ अधिक समय तक सौरगृह में नहीं रह सकतीं, उनके यहाँ यह विधि प्रायः दस बारह दिनों के अन्दर सम्पन्न कर दी जाती है। वैसे आम तौर पर कुआँपूजन के दिन से ही प्रसूता घर से बाहर निकल सकती है। कुआँपूजन के लिये पास-पड़ोस में न्योता दिया जाता है। पाँच या सात कन्याएँ तथा सुहागिन स्त्रियाँ कलश लेकर जच्चा के साथ पानी भरने जाती हैं। कुएँ पर पहुँच कर प्रसूता गोबर से कुएँ की जगत पर लीपती है। यदि कन्या हुई तो पाँच जगह और पुत्र हुआ तो सात जगह गोलाकार गोबर लीपती है। उन पर चौक पूरती है तथा हल्दी, गुड़, चावल से पूजा करती है। अपने वक्ष से पाँच-सात बूँद दूध वह कुएँ में निचोड़ कर कहती है कि इन्हें तुम अपनी तरह भरा पूरा रखना। इसके बाद वह कुएँ से पानी निकालती है और अपना तथा कन्याओं का कलश भरती है। स्त्रियाँ गीत गाती हुई बाजे गाजे के साथ घर लौटती हैं। घर आते ही स्त्रियाँ गीत मे कहती हैं --कोई बखरी में हो तो हमारी गागर उतार लो -

ऊपर बदल घुमड़ायँ गोरी धन पनिया खों[१] निकरीं
जाय जो कैयो[२] उन राजा ससुर सें
अँगना में कुइयाँ खुदाव ।
तुम्हारी बहू पनिया खों निकरी ।
जाय जो कैयो उन राजा जेठा सें
चन्दन पाटें डराव ।
जाय जो कैयो उन राजा देवर सें
रेसम की डोरी डराव ।
जाय जो कैयो उन राजा पिया सें
सोने को घड़ा बनवाव
तुम्हारी धन पनिया खों निकरी ।

हरियाणा में पुत्रजन्म के प्रायः दसवें दिन कुआँपूजन आयोजित होता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत को 'पीला गीत' कहते हैं। जच्चा पीले वस्त्र पहनती है, संभवतः इसी कारण इन गीतों को 'पीला गीत' की संज्ञा दी गई।

पीला तौ ओढ़ म्हारी जच्चा रखकर खाली जी
सारा सहर सराही पति प्यारा जी
पीला रंगा दयो जी ।
पीला तो ओढ़ म्हारी जच्चा मुंडलै बैठ्ठी
सास नणद नै मुख मोड्या पति प्यारा जी
पीला रंगा दयो जी ।

---

१. के लिये, २. कहना।

झूला गीत (बुन्देलखण्ड)

कुआँपूजन के बाद झूला डालने की प्रथा बुन्देलखण्ड में है। बच्चे को पहली बार झूले में सुलाया जाता है। दस्टौन के दिन से बच्चे को सूप में सुलाया जाता था। बुआ झूला झुलाने का नेग लेकर बच्चे को पहले झूला झुलाती है, बाद में दूसरी स्त्रियाँ झूला झुलाती हैं। झूले के गीत बड़े कर्णप्रिय होते हैं। एक गीत में ऐसा भाव है कि रघुवर के पालने को झुलाने के लिये नगर नारियाँ जुट आती हैं। व्रज की नारियाँ कान्हा को झूला झुलाने आती हैं। कोई उलाहना देती है कि कान्हा ने मेरी मटकी का दही जूठा कर दिया है। इस पर माता कहती है - तू पागल तो नहीं हो गई, मेरा लाड़ला तो पालने में झूल रहा है---

झुला दे रघुवर के पालने री
झुलाव मोरे हरि के पालने री।
कै मोरी आली सबरे बिरज की सखियाँ
घेर लये हरि के पालने री।
कै मोरी आली कोरी मटकिया को दहि
जुठार गव तोरो श्यामलो री।
कै मोरी आली तू गुजरी मदमाती
पलन मोरो झूले लाडलो रे।

कृष्ण पालने में पड़े पड़े रोते हैं। शायद किसी गुजरिया की नज़र उन्हें लग गई है। यशोदा मैया राई और नमक से उनकी नज़र उतारती हैं और कहती हैं जो मेरे लाल का पालना झुलाएगा उसे मैं जड़ाऊँ कंगन दूँगी।

झुला दे मैया श्याम परे पलना
काहू गुजरिया की नजर लगी है
सो रोउत हैं ललना।
राई नोन उतारो जसोदा खुसी भये ललना
जो मोरे ललना खों पलना झुला हे
देहों जड़ाऊ कंगना।

कोई बालक चम्पा-चमेली की कलियों वाली टोपी पहने झूला झूल रहा है। इस भाव का एक गीत--

झूल भैया झूल तोरी टोपी में फूल।
चम्पो तोरी कलियाँ चमेली तोरे फूल।
जों लौं आगव मलिया को पूत
भैया को छुड़ा लई झंगा झूल
फट गई टोपी बगर गये फूल
झूल भैया झूल तोरी टोपी में फूल।

बरही

'बारह' संख्या से ही 'बरही' शब्द की उत्पत्ति हुई है। पुत्र-जन्म के बारह दिन

बाद छठो महोत्सव की तरह ही यह संस्कार होता है। इसमें भी बच्चे को नहला-धुलाकर नये कपड़े पहना दिये जाते हैं। पंडित इस संस्कार के लिये शुभ-मुहूर्त और सुदिन निकालते हैं। इसमें वे सारी विधियाँ सम्पन्न की जाती हैं जो छठी के वक्त होती हैं। बारहवीं तिथि को इस विधि के सम्पन्न किये जाने के कारण इसका संक्षिप्त शब्द 'बरही' हो गया। इस दिन बच्चे के जीवन में विघ्न-बाधा की शांति के लिये भी पूजा होती है। कहीं-कहीं ऐसी प्रथा है कि इस अवसर पर बच्चे की माँ अपने भाई की लाई साड़ी ही पहनती है। एक गीत में ऐसा भाव है कि एक बहन मनमुटाव के कारण अपने भाई को बरही उत्सव में नहीं बुलाती किन्तु बरही के दिन भाई के न आने पर वह उदास हो जाती है और भाई के आये बिना बरही पूजन को तैयार नहीं होती। बाद में निमंत्रण पाकर भाई बहुत से वस्त्र-आभूषण लेकर आता है और बहन की वंशवृद्धि की कामना करता है--

आज मोरा बहुआ के होरिला[१] भइले नेवता भेजायब हे
ललना अरबन[२] नेवतिह भँवग परबन[३] सासुजी के नइहर हो
ए भँवरा एक जनि नेवतिहऽ बीरन भइया
जेहि से रूमल बाड़े हो ।
अरबन आवेले परबन, सासुजी के नइहर हो
ए ललना एक नहिं आवेले बीरन भइया
जाहि से रूसन बाड़े हो ।
पूरल[४] चउका[५] छितरावेली[६] कलस ढरकावेली[७] हो
ललना अब नाहि पूजब बरहिया[८]
भइया नहिं आवेले हो ।
जब मोरा अइहें बीरन भइया
तब हम पूजब बरहिया नू हां
ए भँवरा फेरसे[९] नेवतऽ बीरन भइया
जाहि से रूसन बाड़े हो ।
आगे आगे आवेले मारभार[१०] पियरी दहादह[११] हो
ललना पीछे पीछे आवेले बीरन भइया
जाहि से रूसन बाड़े हो ।

फैजाबाद जनपद में गाया जाने वाला एक बरही गीत इस प्रकार है ---

काहे गुनमाती हथिनिया तौ काहे महाउत
काहे गुनमाते कवन रामा तौ भइया न मनावैं
खूने से माती हथिनिया हउद से महाउत
नतिया देखे माते कवन रामा, भइया न मनावैं

---

१. पुत्र, २. संबंधी (बनाये गये), ३. परिजन, ४. पूरा हुआ, ५. चौक, ६. बिखेर दिया, ७. ढुलका दिया, ८. बरही—पुत्रजन्म के बारहवें दिन की विधि, ९. फिर से, १०. बहँगी के दोनों पल्लों पर मिठाई, वस्त्र आदि. ११. चमकने वाली।

चिठिया पठायो कवने रामा दिहिन कवने रामा
भइया आजु मोरे नाती के बरहिया तीनहु जने आयउ
जुतवा[१] कै खिलिया[२] खियाने[३] कवन रामा, भइया का मनावत
अँचरा धुमिल[४] भये दुलहिन रानी, गोतिनी के गोड़ धरत

पुत्रजन्म के बाद तरह-तरह के उत्सव होते ही रहते हैं, जिन्हें तरह-तरह के नाम दिये जाते हैं, जैसे जन्म के छठें दिन छठी उत्सव, सातवें दिन सतौला, बारहवें दिन बरही, बीसवें दिन बिसौरा और अशुभ नक्षत्रों में उत्पन्न होने के कारण सतइसा पूजा आदि।

सतइसा

'सतइसा' शब्द की उत्पत्ति सत्ताइस संख्या से है। सतइसा दूषित नक्षत्र माना जाता है। जो बच्चा इस नक्षत्र में जन्म लेता है, उसका पिता सत्ताइस दिन तक बच्चे को नहीं देखता। इसमें सत्ताइस कण्डे की लकड़ी, सत्ताइस रंग के कपड़ों की झंडी, सत्ताइस तरह की लकड़ी में खोंसकर वेदी बनाई जाती है। इसमें सत्ताइस तरह की लकड़ी से हवन किया जाता है। सत्ताइस जगह से मिट्टी लाई जाती है। सत्ताइस कुएँ के पानी से पूजा करके कटोरे में सरसों का तेल रखकर बच्चे की परछाई पिता को दिखलाई जाती है। इस समय प्राय: वे ही गीत गाये जाते हैं, जो छठी-पूजन के समय गाये जाते हैं क्योंकि सतइसा नक्षत्र में जन्मे बच्चे का जन्मोत्सव सत्ताइसवें दिन ही होता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले एक गीत का भाव है कि बच्चे की माँ के घर से गजमोती की झालर लगी पीली साड़ी और सिधोरा (सिन्दूरदान) आता है। ये दोनों ही सौभाग्यसूचक वस्तुएँ हैं—

कहँवा से आवेला पियरिया[५] पियरिया लागे गजमोती हो
ललना कहँवा से आवेला सिन्होरवा[६], सिन्होरवा भर सेंदुर हो
नइहर से आवेला पियरिया, पियरिया लागे गजमोती हो
ललना ससुरा से आवेला सिन्होरवा, सिन्होरवा भर सेंदुर हो
कहँवा मैं धरबो[७] पियरिया, पियरिया लागल गजमोती हो
ललना कहँवा मैं धरबो सिन्होरवा, सिन्होरवा भर सेंदुर हो
कोठी कान्हा[८] धरबो पियरिया, पियरिया लागल गजमोती हो
ललना झाँपि झोरा[९] धरबो सिन्होरवा, सिन्होरवा भर सेंदुर हो

नामकरण

यों तो बच्चे के जन्म की प्रसन्नता से संसार का हर कोना सराबोर होता है किन्तु लोक-संस्कृति में यह खुशी गीतों के माध्यम से प्रकट होती है। गढ़वाल में नामकरण संस्कार एक उत्सव के रूप में मनाया जाता है। चारों तरफ नाच-गाने का आयोजन होता है। विधि-विधान से पूजन किया जाता है। नामकरण के अवसर पर मंगल गीत गाये जाते हैं—

---

१. जूता, २. तल्ली, ३. घिस गई, ४. धूमिल, मैला, ५. पीली साड़ी, ६. सिन्दूरदानी, ७. रखूँगी, ८. अन्न रखने की कोठी के अन्दर, ९. ढक्कनदार पिटारी।

तू होलो बेटा देवता को जायो
तू होलो बेटा कुल को उजालो
आज जाया तेरो नाऊँ धरयाले
तू जाया कुल को रखी नाऊँ ।

हे पुत्र, तुम देवताओं की कृपा से पैदा हुए हो। तुम कुल को उज्ज्वल करोगे। आज तुम्हारा नामकरण हुआ है। तुम कुलदीपक बनकर कुल का यश रखना।

पसनी गीत

बच्चे के नामकरण के बाद उसका मुँह जुठाने की एक विधि होती है, जिसे अन्नप्राशन संस्कार कहते हैं। इसी दिन से बच्चे को अन्न खिलाना आरम्भ करते हैं। इस अवसर पर गाया जाने वाला उत्तर प्रदेश का एक गीत है जिसे 'पसनी गीत' कहते हैं---

को मोरे चउरा बेसाहै औ गउवे दुहावै
को मोरे खिरिया बनावै लालन कै पसनिया
बाबा मोरे चउरा बेसाहै औ गउवे दुहावै
आजी रानी खिरिया बनावैं तौ जंघा बइठावै
अपने नाती का खिरिया चिखावैं, लालन कै पसनिया ।

'पसनी' शब्द वस्तुतः 'प्राशन' का ही अपभ्रंश रूप है। अन्नप्राशन में गाली गाये जाने की भी प्रथा है। हर्ष के जन्मोत्सव पर बाणभट्ट ने वारवनिताओ के अश्लील रासक पदों के गानों का उल्लेख किया है। सूरदास ने अन्नप्राशन में गाली दिये जाने का वर्णन किया है

युवति महरि को गारी गायन ।

मुण्डन

मुण्डन संस्कार में बच्चे के बाल मुँड़वा दिये जाते हैं। इसी 'मूँड़ना' क्रिया से 'मुण्डन' शब्द बना है जिसे आम बोलचाल में 'मूँड़न' भी कहते हैं। जन्मे हुए बच्चे के जन्म के बाल अवश्य उतारे जाते हैं, क्योंकि उन केशों को अशुद्ध माना जाता है। मुण्डन एक वर्ष, सवा वर्ष, ढाइं वर्ष, पाँच वर्ष आदि विषम वर्षों में ही होता है। जन्म के बाल किसी देवस्थान में जाकर उतारे जाते हैं। बुआ बच्चे के बाल अपने आँचल में लेती है, जिसके लिये उसे बच्चे की माँ नेग देती है। ये बाल किसी देवस्थान में या गंगा को भेंट कर दिये जाते हैं। मुण्डन के पूर्व बालक के बाल नहीं काटे जाते। इस समय जो गीत गाये जाते हैं, उनमें बच्चे के बालों का मुण्डन करने की इच्छा, माता-पिता द्वारा इस अवसर पर ब्राह्मणों, भाइयों, नाते-रिश्तेदारों को प्रसन्न करके संकल्प की अभिव्यक्ति पाई जाती है। ननद-भौजाई के मान-मनौवल का वर्णन एक मोदमयी भावना के साथ इन गीतों में पाया जाता है। इस अवसर पर बच्चे के जो बाल काटे जाते हैं, उन्हें उसकी बुआ अपने आँचल में लेती है। इस विधि को भोजपुर प्रदेश में 'लापर लेना' कहते हैं।

संस्कृत में मुण्डन संस्कार को 'चूड़ाकर्म' कहते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने महर्षि वशिष्ठ द्वारा राम के चूड़ाकर्म किये जाने का वर्णन रामचरितमानस के बालकाण्ड में किया है--

चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई ।
विप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ।।

कालिदास मे इसका उल्लेख 'गोदान विधि' के नाम से किया है।

मुण्डन संस्कार के समय वेदपाठ के लिये ब्राह्मण को, मण्डप छाने के लिये संबंधियों को, गीत गाने के लिये गोतिनियों को, कलश के लिये कुम्हार को, मुण्डन के लिये नाई को, पीढ़े के लिये बढ़ई को और लापर लेने के लिये बुआ को बुलाया जाता है---

अहे बाम्हन के पड़ले हँकार[१] बरुअवा[२] के मूँड़न हे
बाम्हन अइले बेद भनन[३] हे ।
अहे गोतिया के पड़ले हँकार, बरुअवा के मूँड़न हे
गोतिया अइले माड़ो छावन[४] हे ।
अहे गोतिनी के पड़ले हँकार, बरुअवा के मूँड़न हे
गोतिनी अइले मंगल गावन हे ।
अहे कुम्हरा के पड़ले हँकार, बरुअवा के मूँड़न हे
कुम्हरा अइले कलसा लिहले हे ।
अहे हजमा के पड़ले हँकार, बरुअवा के मूँड़न हे
हजमा अइले छुरवा[५] लिहले हे ।
अहे बढ़ही[६] के पड़ले हँकार, बरुअवा के मूँड़न हे
बढ़ही अइले पिढ़वा[७] लिहले हे ।
अहे फुआ[८] के पड़ले हँकार, बरुअवा के मूँड़न हे
फुआ अइले अँचरा पसरले हे ।

इस अवसर पर निमंत्रित लोगों को खिलाने के लिये चावल छँटवाने और दाल आदि दलवाने का भी वर्णन आता है। किसी- किसी गीत में पुत्र अपने पिता से मुण्डन कराने का अनुरोध करता हुआ देखा जाता है। पिता ज्येष्ठ वैशाख महीने में मुण्डन कराने का आश्वासन देता है।

मुण्डन कराते समय बच्चे को नये वस्त्र पहना कर उसके ललाट पर तिलक लगाया जाता है। लड़के की बुआ तालाब में स्नान करके देवताओं से प्रार्थना करती है कि मेरे भतीजे का मुण्डन है, उस समय वर्षा न हो और यह यज्ञ सकुशल समाप्त हो जाये। मुण्डन के समय बालक 'लापर लेने' के लिये बुआ को बुलाता है। मुण्डन में बुआ कोई कीमती साड़ी नहीं, मात्र पीले रंग में रँगी हुई साड़ी चाहती है---

जनि देव लावऽ झरिया बादर[९], जनि देव बरिसहु हे ।
आजु हम जइबो कवन भइया के आँगन कवन बरुआ के मूँड़न हे ।
चउकाहिं[१०] बइठल कवन बरुआ, फुआ फुआ करेले हे ।
कहाँ गइली किए भइली कवन फुआ, लपरी परीछहु हे ।

---

१. पुकार, २. कुँवारा पुत्र या ब्रह्मचारी, ३. वेदोच्चारण, ४. मण्डप छाना, ५. उस्तुरा, ६. बढ़ई, ७. पीढ़ा, ८. बुआ, ९. बादल की झड़ी, १०. चौक पर।

नाहि बाबू पहिरब रातूल, नाहिं दखिन सारी हे
पिअरी बस्तर[१] हम पहिरब, लपरी परीछब हे ।

कोई ब्रह्मचारी मुण्डन संस्कार के लिये घर जाता है और मुण्डन कराकर माँ से भिक्षा में द्रव्यादि ग्रहण करना चाहता है। भिक्षाटन की यह परिपाटी वैदिक आचार का स्मरण कराती है---

भीखी[२] देहु भीखी देहु कवन आमां[३], आमां कवन आमां हे
हम कासी के बरुआ[४], हम बनारस के बरुआ हे
जहुँ हम जनितों जे कवन बरुआ होइहें भिछुक[५] हे
गंगाहि हर[६] जोतवइतहुँ[७] सोनवा उपजइतिहुँ हे
रुपवा[८] उपजइतिहुँ हे
सोने के थारी गढ़वइतिहुँ
सोना भीखी दिहितहुँ[९] हे
रुपवा भीखी दिहितहुँ हे ।

बुन्देलखण्ड में चूड़ाकरण को मुण्डन तथा अन्नप्राशन को पासनी कहते हैं। इन दोनों संस्कारों के लिये वैसे कोई नियत समय नहीं है किन्तु ये साधारणत: एक वर्ष के भीतर कर दिये जाते हैं। भोजपुर प्रदेश में अन्नप्राशन को 'मुँहजूठी' भी कहते हैं, क्योंकि इसी दिन बच्चे के मुँह में पहली बार अन्न दिया जाता है। बुन्देलखण्ड में ऐसी प्रथा है कि एक वर्ष के बीच यदि बच्चा मामा के घर रहा तो मामा ही पासनी यानी अन्नप्राशन कराता है। इस अवसर पर पास-पड़ोस तथा कुटुम्ब के लोगों को निमंत्रित कर भोजन कराया जाता है। वे बच्चे को रुपये या कोई उपहार देते हैं।

बुन्देलखण्ड में भी प्राय: किसी विशेष देवी देवता के स्थान पर जाकर मुण्डन कराया जाता है। इस समय सोहर, बधाये भी गाये जाते हैं किन्तु कुछ खास तरह के गीत भी होते हैं---

झालर[१०] जबई[११] मुड़ाय हों
जब आजुल घर होंय
झालर मोरी पाहुनी[१२]
झालर जौ को है खेत,
झालर मोरी पाहुनी
ये झालर के कारने[१३]
मैंने सहे हैं कष्ट अनेक
ये झालर के कारने
तजे हैं अम्मा इमलिया बेर ।

---

१. वस्त्र, २. भिक्षा, ३. माँ, ४. ब्रह्मचारी, ५. भिक्षुक, ६. हल, ७. जोतवाती, ८. चाँदी, ९. देती, १०. बिना मुण्डन के बालक के केशों को 'झालर' कहते हैं और झालर वाले लड़के को 'झडूला' कहते हैं, ११. तभी, १२. अतिथि, १३. कारण।

ये झालर के कारने
मैंने सहे हैं बोल कुबोल
झालर मोरी पाहुनी ।

गढ़वाल में चूड़ाकर्म बड़े उत्साह से मनाया जाता है। गणेश-पूजा के बाद नवग्रहों का पूजन किया जाता है। पूजन के समय माँ की गोद में ही पुत्र को बिठाया जाता है। नाई जब लड़के का मुण्डन करने के लिये तैयार होता है तो मंगलगीत गाने वाली सुहागिनें माँ की ओर से नाई से प्रार्थना करती हैं कि देखो, बच्चे को कष्ट न हो इस बात का ध्यान रखना --

नाई रे नाई तू मेरो धर्म को भाई
मेरा लाड़ा पीड़ा न लाई पीड़ा न लाई
त्वै द्यूलो नाई मैं कानो कुण्डल शाल दुशाला
त्वै द्यूलो नाई मैं जरिद कपीड़े रेशमी पगड़ी
मेरा लाड़ा तू पीड़ा न लाई नाई रे नाई

- नाई भाई, मेरे धर्म के भाई! ध्यान रखना, मेरे लाड़ले को पीड़ा न हो। यदि तुम मुण्डन करते समय मेरे पुत्र को पीड़ा नहीं पहुँचाओगे तो मैं तुम्हें सोने के कुण्डल, शाल-दुशाला, जरी के कपड़े और रेशमी पगड़ी भेंट में दूँगी। मेरे नाई भैया, मेरे बच्चे को कष्ट न पहुँचाना।

अवध प्रदेश में मुण्डन प्रायः विषम वर्ष में अर्थात् पहले, तीसरे या पाँचवें वर्ष में होता है और इस अवसर पर माता को कुछ बातों का निषेध होता है। मुण्डन के गीत इस प्रकार गाये जाते हैं---

लालन के मूँड़न जान्या पिया
सासू जी आई देवता मनन को
बबुआ के गोदी माँ लेके मुँड़ावन को
वनकाँ पियरी मँगाया पिया
बबुआ के मूँड़न जान्या पिया ।
ननदी ज आई लटिया रोपन को
अँचरा म बबुआ कै लटिया रोपन को
वनकाँ कंगना गढ़ाया पिया
नाऊ ज आये मूँड़नि करन को
बबुआ की मूँड़न क नेग मँगन को
वनकाँ मोहरिया दियाया पिया ।

❑ ❑ ❑

सभवहिं बैठा राजा दसरथ कौसिल्या रानी अरज करैं
हो मोरे राजा, राम कै लफरी मुँड़ावौ
मैं देखि सुख पावौ
हँकहु नगरा के नउआ बेगेहि चढ़ि आवहु
नउआ हाली बेगे पंडित बोलावो सुदिन विचारैं ।

कनछेदन

कर्ण + छेदन। अवध प्रदेश में प्राय: छ: वर्ष की आयु में बच्चे का कनछेदन कराया जाता है। जैसा कि नाम से विदित है- इस संस्कार में बेटे या बेटी के कान छेदे जाते हैं। इस अवसर पर यह गीत गाया जाता है

बाबा पिरीते फलाने रामा गढ़ावै सोने सुइया सुइया
छेदावौ नाती छेदना मोरे राम
आजीति पिरीती दुलहिनि देई
लुटावै सोने ढकवा ढकवा
छेदावौ नाती कनवा मोरे लाल ।

इस अवसर पर माता के लिये मांसाहार वर्जित होता है। यह निषेध भी गीतों के माध्यम से प्रकट होता है, जिसे औरते बच्चे की माता को सुना-सुना कर गाती हैं

जो पूता होत्यौ बारे औ गभुआरे
लाल पियर नहिं पहिनै तो माया तुम्हारि
कोलिया छेंड़ियाँ न झाँकें तो माया तुम्हारि
माँसु मछरिया न खाये तो माया तुम्हारि
रतुली पलंगिया न सोवै तो माया तुम्हारि ।

वैसे आजकल इन निषेधों का पालन प्राय: नहीं किया जाता। उत्तर प्रदेश में इन गीतों को 'छेदन गीत' कहते हैं --

को मोरे जाँघा बैठा रइतौ छेदन करावइ
को मोरे खरचइ दाम, लालन कर छेदनु
बाबा मोरे सुजिया गढ़ावइ, तउ मोतिया पुहावइ
आजी रानी टकवा उतारइँ, सोनरवा का देवइँ ।

जनेऊ या यज्ञोपवीत

जनेऊ यज्ञोपवीत का अपभ्रंश है। यज्ञ + उपवीत (उप + वे + क्त)= द्विजों द्वारा पहना जाने वाला उपवीत, जो बायें कंधे से ऊपर और दाहिनी भुजा के नीचे पहना जाता है। जनेऊ या यज्ञोपवीत हिन्दू जाति के प्रथम तीन वर्ण धारण करते हैं। यज्ञोपवीत धारण करने का प्रसंग कालिदास के रघुवंश, कुमारसंभव[१] और मनुस्मृति[२] में भी आया है। रघुवंश में तो उपवीत को पिता के अंश का सूचक बताया गया है।[३]

यज्ञोपवीत का पर्यायवाचक एक और शब्द है- उपनयन (उप + नी + ल्युट्), जिसका अर्थ है —सामीप्य प्राप्त करना। मनु ने ब्राह्मणों के लिये उपनयन का विधान किया है—

आसमावर्तनात्कुर्यात् कृतोपनयनो द्विज:। (*मनुस्मृति* २/१०८, १७३)

---

१. *कुमारसंभव* ६/६

२. *मनुस्मृति* २/४४, ६४, ४/३६

३. *पित्र्यवंशमुपवीतलक्षणं*—रघुवंश ११/६४

ब्रह्मचर्य, विद्या, शौर्य और तेज की प्राप्ति के लिये प्राचीन काल में यज्ञोपवीत पहना जाता था। गृह्यसूत्रों के अनुसार बायें कंधे पर पहनने से यज्ञोपवीत तथा दाहिने कंधे पर पहनने से प्राचीनावीत कहलाता था। पहले कपास के सूत के अभाव में वस्त्र और कुश की रस्सी का भी यज्ञोपवीत के स्थान पर प्रयोग होता था। आश्वलायन गृह्यसूत्र से पता चलता है कि जन्म या गर्भ के दिन के आठवें वर्ष में ब्राह्मण का, ग्यारहवें वर्ष में क्षत्रिय का और बारहवें वर्ष में वैश्य का यज्ञोपवीत होना चाहिए।

कहा जाता है कि ब्राह्मण का वसन्त में, क्षत्रिय का ग्रीष्म में और वैश्य का शरद ऋतु में यज्ञोपवीत होता है। यज्ञोपवीत के एक दिन पहले ब्रह्मचारी व्रत करता है। उन व्रतों में ब्राह्मण के लड़के एक या अधिक बार दूध पीते हैं। क्षत्रिय लड़के जौ को मोटा दलकर गुड़ के साथ पतली कढ़ी यानी लपसी बनाकर पीते हैं और वैश्य के लड़के दही में श्रीखण्ड और केसर डालकर पीते हैं। इसके अतिरिक्त वे अन्य कोई पदार्थ नहीं खाते—

पयोव्रतो ब्राह्मणो यवागूव्रतो राजन्य आमिक्षाव्रतो वैश्यः।

(शतपथ ब्राह्मण)

यज्ञोपवीत शिष्ट वर्ग का एक महत्त्वपूर्ण अवसर है। मुण्डन और जनेऊ दोनों ही सामान्य संस्कार हैं, किन्तु मुण्डन के समय टोने टोटके की भावना लगी रहती है क्योंकि वहाँ बालों का संबंध जन्म से जुड़ा होता है, इसलिये इस अवसर पर एक विशेष प्रकार की मानसिकता रहती है किन्तु जनेऊ के समय जो बाल उतारे जाते हैं, उनमें ऐसी कोई भावना नहीं रहती।

लोकपरम्परा में जनेऊ या उपनयन का उत्सव पाँच दिन पहले ही आरम्भ हो जाता है। इसमें विवाह जैसी ही धूमधाम होती है। जनेऊ के पाँच दिन पहले मटकोर होता है यानी महिलाएँ गाती हुई पाँच डलिया में मिट्टी लाती हैं और अपने घर के कुलदेवता के पास रखती हैं। इसके बाद मानर पूजा जाता है। चमार गले में ढोल लटकाता है। औरतें ढोल में अल्पना, सिन्दूर लगाती हैं फिर पाँच पाँच पान सुपारी, पाँच जगह पैसा ढोल पर रखती हैं। चमार उसे फिर आँचल मे देता है। यह क्रिया पाँच बार होती है। पितरों का गाना होता है। इसके बाद मड़वान होता है। हरिस (बैल के कन्धे पर रखा हुआ जुआ) गाड़ा जाता है। इस दिन रात में 'गोबरजनेऊ' अर्थात् एक अस्थायी जनेऊ पहना दिया जाता है। पाँच लड़के चूड़ा-दही खाते हैं।

जनेऊ के दिन पण्डित पूजा कराते हैं। बालक के केश काटे जाते हैं। बहन या बुआ पाँच मिठाई पाँच जोड़ी पूरियों के साथ आँचल में लेती है। नेग में उसे कोई वस्तु दी जाती है। इसी दिन पोखरा खोदवा कर 'हरिस' रखा जाता है, उस पर लड़के को खड़ाकर नहलाया जाता है। इसके बाद सुहागिनें गुड़ से औंछकर, फिर अजवायन और सरसों से औंछकर ढकनी में रखी आग में डालती हैं। इसके बाद ढकनी उलट दी जाती है। लड़का उस पर पैर रखकर पार होता है। इसके बाद लड़का पीले वस्त्र पहनता है। नीचे लँगोटी, उसके ऊपर जोगी के रूप में एक कपड़ा नीचे से लाकर गले में बाँध देते हैं। तब जनेऊ दिया जाता है, मंत्र पढ़े जाते हैं। इसके बाद एक बाँस के डंडे में चावल की कचवनी

(कच्चे चावल के लड्डू) बाँध दी जाती है। बरुआ (जनेऊ पाने वाला लड़का) के कंधे पर उसे रखा जाता है। नई खड़ाऊँ पहनाई जाती है। उसे पहन कर लड़का चलता है तो बड़े लोग पूछते हैं --तुम कहाँ जाते हो? लड़का कहता है --काशी। जाने का कारण पूछने पर लड़का कहता है कि वह विद्या पढ़ने जा रहा है। वे लोग उसे लौटने और सारी सुविधाएँ देने के लिए कहते हैं पर लड़का नहीं मानता। विद्या हेतु काशी जाने के लिये वह माता-पिता सहित तीन लोगों से भिक्षा माँगता है। घर के बड़े बूढ़े तब उसे पढ़ाने का आश्वासन देकर रोक लेते हैं। फिर खान-पान तथा अन्य आयोजन होते हैं।

बुन्देलखण्ड में यज्ञोपवीत संस्कार को 'बरुआ' कहते हैं जो 'बटुक' से बना है। 'बटुक' शब्द बाल ब्रह्मचारी का बोधक है। बालक ब्रह्मचारी बनकर भिक्षा माँगता है। आजी, माँ, बुआ, बहन आदि भीख डालती हैं। इस समय का एक बुन्देलखण्डी गीत इस प्रकार है---

तीन तगा[१] को डोरा री, दमरी[२] को सूत ए भैया
तीन तगा को जनवा[३] री कैसो मजबूत मुन भैया
पैले[४] में बिस्नू दूजे बिरमा[५] तीजो सूत शंकर अवधूत सुन भैया
पैले तगा में ओंकार है दूजे में अगन सबूत ए भैया
तीजे तगा में नाग बास है चंद बिराजें चौथे सूत ए भैया
पाँचे सूत में पितर बिराजें प्रजापती हैं छठवें सूत ए भैया
सातव तंत अस्थान पवन को सूरज को है आठों सूत ए भैया
नवें तंत में विश्वे देवा हीरा कातें कन्या सूत ए भैया।

मैथिली जनेऊ गीतों में माता पिता की प्रसन्नता, बालक की बुआ का नेग माँगना आदि विविध विधि-विधानों का उल्लेख है। बाल मूँड़ने के लिये नाऊ, कलश के लिये कुम्हार और जनेऊ देने के लिये पंडित को बुलाया जाता है। मैथिली लोकगीतों में जनेऊ के अवसर पर बाँस का मण्डप बनाने का उल्लेख आता है। 'लापर परीछने' अर्थात् ब्रह्मचारी बालक के कटे हुए बालों को आँचल में धारण करने की प्रथा मैथिली तथा भोजपुरी गीतों में मिलती है। इस समय पलाशदण्ड, मृगछाला और मूँज की करधनी धारण करने का वर्णन भी आया है

कवन देव अँगना में मूँज[६] कवनी देई चीरेली[७] ए
कवन बरुआ भुइयाँ[८] में लोटि जाले[९] जनेउवा के कारन ए।
दसरथ जी के अँगना में मूँज कोसिला रानी चीरेली ए
रामचन्दर बरुआ भुइयाँ लोटि जालेन जनेउवा के कारन ए।
झारेले-झूरेले[१०] दसरथ जी, जाँघे बइठावेले ए
बाबू आपन जनेउआ हम देब, जनेउआ जग उत्तम ए।

---

१. धागा, २. दमड़ी, ३. जनेऊ, ४. पहले, ५. ब्रह्मा, ६. एक प्रकार के घास की रस्सी, जिसकी मेखला उपनयन में ब्रह्मचारी धारण करते हैं, ७. चीरती है, ८. धरती, ९. लोटते हैं, १०. झाड़ते-पोछते हैं।

एक गीत में महारानी कौशल्या अपने पुत्र का उपनयन संस्कार कराने का आग्रह महाराज दशरथ से करती हैं। राजा दशरथ इस अवसर के लिये आवश्यक सामग्री की व्यवस्था करने का आश्वासन देते हैं

नाया[1] ओसारा[2] नाया खम्हिया[3] जहाँ सूते राजा दसरथ हो
पइसी[4] जगावेली कोसिला रानी सुनीं राजा पंडित हो।
बारह बरिस के लालन भइले, जनेउआ देइ घालहु[5] हो
कहलू त बड़ नीक[6] धनिया बरुआ कुछ माँगेला हो।
चाहि न घीव गुड़ मयदा, दस बाम्हन भोजन हो
पीअर धोती जनेउआ, रुपइया गठबन्हन[7] हो।

एक गीत में उपनयन संस्कार में प्रयुक्त होने वाली सामग्री का उल्लेख है। साहिल जन्तु का काँटा, मृगछाला, पलास का डंडा और मूँज की डोरी का उपयोग इसमें होता है और इन चीजों के लिये घनघोर जंगल में जाना पड़ता है

जेहि देस सिकियो[8] न डोलय[9] साँप ससरि[10] गेल हे
ललना ओहि देस गयलन[11] दादा रइया[12] अँगुरी धरि कवन बरुआ हे।
पहिले जे मरबो साहिल[13] साहिल काँटा चाहीला हे
ललना तबे हम मरबो मिरिगवा[14], मिरिग छाल चाहीला हे
ललना तबे हम कटबो[15] परसवा[16], परास डंटा चाहीला हे।
ललना तबे हम कटबो मूँजिअवा[17], मूँजिअ डोरी चाहीला हे
ललना आज मोरा बाबू के जनेउआ जनेउआ पीला चाहीला हे।

एक गीत में इस बात का उल्लेख है कि विभिन्न जातियों में जनेऊ में अन्तर होता है। जाति की श्रेणी के अनुसार जनेऊ की गाँठ पड़ती है और उपनयन के बाद ही लड़का द्विज बनता है। तीन गाँठ देकर भाट को जनेऊ दिया जाता है। पाँच गाँठ क्षत्रिय के जनेऊ में, सात गाँठे ब्राह्मण को और उपनयन कराने वाले ब्रह्मचारी के जनेऊ में नौ गाँठे दी जाती हैं।

एक मैथिली लोकगीत में यज्ञोपवीत का एक सुन्दर चित्र खींचा गया है -

सुरपुर से ऋषि नारद फुल एक लायल हे
आहे दिय गय बाभन हाथ त बेद भनाइय हे।
काँच बाँस केर मारब[18] पान छबाइय हे
बइसु[19] पंडित सब आउ त बेद भनाइब हे
आहे घर घर फिरहुँ नउनिया[20] त गोतिनि हँकारिय हे
आहे आजु लला के जनेउआ त मंगल गाविय[21] हे।

——सुरपुर से नारद फूल लाये। हे सखी, वह फूल ब्राह्मण को दे दो और वेद का पाठ कराओ। कच्चे बाँस का मण्डप बनाकर पान से छवा दो। हे पण्डितों, आओ बैठो,

---

१. नया, २. बरामदा, ३ खंभा, ४. प्रवेश करके, ५ दे दो, ६. अच्छा, ७. गठबन्धन, ८. सींक भी, ९. डोलती है, १०. रेंगना, ११. गये, १२. राय पदवी वाले, १३. साही, जिसके शरीर में काँटे होते हैं, १४. मृग, हरिण, १५. काटूँगा, १६. पलाश, १७. मूँज, १८. मंडप, १९. बैठो, २०. नाइन, २१ गाओ।

वेदपाठ करो। नाउन घर घर फिरकर संबंधियों को न्योता दे रही है। आज पुत्र का यज्ञोपवीत है, इस अवसर पर मंगलगीत गाओ।

गढ़वाल प्रदेश में चूड़ाकर्म के बाद जनेऊ का संस्कार महत्त्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। बहुत पहले ब्राह्मण कुमारियाँ जनेऊ कातती थीं और ब्राह्मण उसमें ग्रन्थियाँ लगाता था। जनेऊ के संस्कार के समय गढ़वाल में मंगलगीत गाने वाली महिलाएँ इसी भाव के गीत गाती हैं। जब शिष्य दीक्षा लेने के लिये तैयार हो जाता है तो मंगलगीत गाकर सुहागिनें गुरु से मंत्र देने का आग्रह करती हैं। गुरु शिष्य को आशीर्वाद के साथ गुरुमंत्र देते हैं। इसी भावना का चित्र जनेऊ के गीतों में मिलता है- -

दे देवा गुरूजी, गुरुमंत्र, दे देवा गुरूजी गुरुमंत्र
दी याले चेला, दी याले चेला गुरुमंत्र
सुगुरू को चेला छै, गुरुमुखी ह्वलो
गुरुमुखी चेला छै, निरमुखी न होई
अमर रई चेला लाख बरस, जब तलक चन्द्र सूर्य
सुगुरु को चेला है, तुम करा चेला कुल को उद्धार ।

---हे गुरुदेव, मुझे गुरुमंत्र दीजिए, गुरुमंत्र दीजिये। हे शिष्य, मैंने गुरुमंत्र दे दिया है। शिष्य, तुम सद्गुरु के चेले हो, गुरुमुखी बनना। तुम गुरुमुखी शिष्य हो अतः वेद, विद्या और योग्य गुणो से विमुख न होना। प्रिय शिष्य, जब तक चाँद सूरज हैं, तुम तब तक रहोगे। अमर रहकर अपने कुल का उद्धार करना।

दीर्घ आयुष्य उपनयन संस्कार का मुख्य उद्देश्य है। दीक्षा प्राप्ति के बाद शिष्य युवावस्था को प्राप्त हो जाता है और गृहस्थ धर्म का निर्वाह करने को तैयार हो जाता है। यह मान्यता गढ़वाल प्रदेश की है।

अवध प्रदेश में यज्ञोपवीत के समय गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है -

मूजिया के खेतवाँ रामचन्द्र लोटनी पसारें
राजा दशरथ अँगना मूजि कौशिल्या रानी भल चीरे
लपकि झपकि चीँरै दुनो हाथै चीरें
रामचन्द्र बरुआ भुइयाँ लोटि जायँ जनेउवा के कारन ।
राजा दशरथ झारिन झूरिन जंघ बैठाइन
देवै बेटा सोने कै जनेऊ, जनेऊ बड़ा उत्तिम ।

एक कुमाऊँनी उपनयन गीत देखें ---

रौंलिया पौंलिया मिलि बोयी छ कपास बटू बोयी छ कपास
भाई भतीजा मिली काती छ कपास बटू काती छ कपास
ब्राह्मण पुरोहित ले पुरी छ जनेऊ बटू पुरी छ जनेऊ
आठ गुणी जनेऊ बटू, नौ गुणी जनेऊ बटू
ऐसा करी बाला बटू रची छ जनेऊ बटू, रची छ जनेऊ ।

इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों की लय, ध्वनि, टेक और छवि अन्य गीतों की अपेक्षा भिन्न होती है। छन्द, भाषा, उपमान, उपमेय में एक सहजता होती है।

घिउढारी (जनेऊ)

घिउ + ढारी अर्थात् घी ढालने के अर्थ में ही 'घिउढारी' शब्द बना है। जनेऊ के दिन पहले घिउढारी अर्थात् पितरों को न्योता जाता है। दीवाल में पाँच गोबर की पिंड़िया लगाते हैं। कुलदेवता के पास बाँस से आम के पल्लव देवतागृह के दरवाजे के दोनों ओर लगाते हैं तथा गोबर की पिंड़िया दीवाल पर लगाकर पूजा करते है। इसको मातृपूजा भी कहते है। इस दिन बड़ों को रुपया और वस्त्र देकर उनके पैर पूजते हैं। घी लेकर आम के पल्लव से पाँचों पिंड़िया पर थोड़ा थोड़ा दिया जाता है। इस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं, उनमें पति पत्नी का गठबन्धन करके मण्डप में बैठकर पुत्र का यज्ञोपवीत कराने का वर्णन है। वेदी पर घी ढाला जाता है जिससे स्वर्ग में पितर लोग प्रसन्न होकर वंश में वृद्धि का आशीर्वाद देते हैं

> हरियर[१] लेमुआ[२] हे हरियर जोवा[३] केरा[४] खेत
> एक अचरज हम सुनलूँ दुलरइते बाबू के मड़वा[५] जनेउ
> मड़वहि बैठल दुलरइते बाबू गेंठजोड़ि[६] दुलरइते सुहवे[७] हे
> वेदिअहि घीउ हे ढारिये गेल सगरों[८] भइ गेल इजोर[९]
> सरग अनंद भेल पितर लोग, अबे बंस बाढ़ल मोर ।

विवाह गीत

विवाह गीत वर और कन्या दोनो पक्षों में समान रूप से गाये जाते हैं। वरपक्ष के गीतों में उल्लास और कन्यापक्ष के गीतों में करुणा होती है। भोजपुरी प्रदेश में कन्यापक्ष में विवाह की विधि से संबद्ध लगभग चौबीस प्रकार के तथा वरपक्ष में मुख्य रूप से लगभग पन्द्रह प्रकार के गीत सुनने को मिलते हैं। ब्रज में विवाह के अवसर पर चौबीस प्रकार के गीत गाये जाते हैं। वैसे छोटी छोटी विधियों को मिलाकर इन गीतों की संख्या अधिक भी हो जाती है। मिथिला में विवाह के गीतों को लग्न गीत कहते हैं। इस समय 'सम्मरि' या 'समदाउनि' गीत भी गाये जाते हैं। राजस्थानी विवाह गीतों को 'बनड़े' के नाम से जाना जाता है, जिसका अर्थ 'दूल्हा' होता है। अवधी मे वर कन्या के फेरों पर सप्तपदी गीत गाये जाते हैं। पाँवों से चलकर सात बार फेरे लेने के कारण ही इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'सप्तपदी' की संज्ञा दी गई है।

'वि' उपसर्ग पूर्वक 'वह्' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाकर (वि+वह्+घञ्=विवाह) विवाह शब्द बनता है, जिसका अर्थ है— वहन करना अथवा भार उठाना। इस संस्कार में वर को अपनी पत्नी के भरण-पोषण, मान-सम्मान का भार उठाना पड़ता है। संभवत: इसीलिये इसे विवाह की संज्ञा दी गई है। इस संस्कार में चूँकि कन्या का हाथ वर के हाथों में दिया जाता है, इसलिये इसे 'पाणिग्रहण संस्कार' भी कहते हैं।

विवाह के पहले लड़के-लड़की की जन्मपत्री के आधार पर उनके नक्षत्रों के

---

१. हरा, २. नीबू, ३. जौ, ४. का ५. मण्डप, ६. गठबन्धन, पति-पत्नी की चादर के छोर में धान, दूब, हल्दी बाँधना, ७. सुहागिन, ८. सभी जगह, ९. उजाला।

मिलान के लिये गणना की जाती है। गणना बैठने पर ही विवाह की बातचीत चलती है। इस अवसर के विशेष गीत नहीं मिलते किन्तु कुछ गीतों में इस विधि का उल्लेख मिलता है।

वैवाहिक संबंध के प्रस्ताव को निश्चयात्मक रूप देने के लिये कन्यापक्ष की ओर से लड़के के हाथ में रुपये, पान, सुपारी, हल्दी, दूब आदि मांगलिक द्रव्य दिये जाते हैं। यही 'छेका' या 'एका' नाम की विवाह पूर्व की विधि है। इसके गीत सगुन या तिलक के गीतों की तरह होते हैं किन्तु विवाह गीतों के राग सगुन तथा तिलक के गीतों के राग से भिन्न होते हैं।

अवध प्रदेश में पाये जाने वाले विवाह गीतों में कहीं तो विवाह समारोह हेतु निमंत्रण देने के लिये कृष्ण भ्रमर से प्रार्थना की गई है

अरे अरे काले भँवरवा करिया तोरी जतिया[1]
भौंरा मोरे घर परल बियाह नेवत दै आवहु
अगगन नेवत्यों मैं परगन मातौ ननियाउर
भौंरा एक जिनि नेवत्या बीरन भैया कि जेनमे मैं रूठलि।

किसी गीत में सुग्गे से विनती की गई है कि वह बेटी के लिये वर ढूँढ लाये

सावन सुगना मैं घिउ गुर पालैउँ, चैत चना केरी दाल
अब सुगना तूँ भयउ सजोगवा[2], बेटी कै वर हेरि लाउ रे
जेहि घर ए सुगना सम्पति देख्या, चरनी बन्हा बैल गाय रे
जेहि घर ए सुगना सम्पति देख्या, बेटी क रचेउ बियाह रे।

एक विवाह गीत में किसी अन्य घर में होने वाले विवाह का स्वप्न देखने का चित्र है। बेटी सपने में माँ से पूछती है-- माँ, किसके द्वार पर बाजे बज रहे हैं और किसका विवाह है? माँ कहती है-- बेटी, बाबा के द्वार पर बाजे बज रहे हैं और तुम्हारा ही विवाह है। अजीब सपना है, बेटी स्वयं नहीं जानती कि उसी का विवाह हो रहा है --

सावन रहिउँ मैं मइया के कोरवाँ[3], देख्यों सपन अजगूत[4]
केहि के दुआरे मइया बाजन बाजै, केकै रचा है बियाह
बाबा दुआरे बेटी बाजन बाजै, तुम्हरइ रचा है बियाह।

कुमायूँ प्रदेश के विवाह गीत में ऐसा वर्णन पाया जाता है कि बेटी के घर के लोग पंडितों और उपस्थित सज्जनों से प्रार्थना करते हैं कि उनकी बेटी बड़े दुलार से पली है, इसलिये उसे कोई दुःख न दे -

अरे अरे लोगो पंडित लोगो सज्जन लोगो
मेरि धीया दुःख झन दिया
दस धारी मैंले दूध पेवायो
दस गठरि मैंले कपड़ सिलाया
दस तुंबा मैंले तेल चुँवायो
मेरि धीया दुःख झन दिया।

---

१. जाति, २. सयाना, ३. गोद, ४. अचंभे वाला।

विवाह संस्कार के अवसर पर बुन्देलखण्ड में गीतों के माध्यम से देवी-देवताओं का स्मरण और आवाहन किया जाता है। विवाह के दिनों में वायु के प्रकोप से कोई विघ्न न हो, इस हेतु हनुमानजी को मनाया जाता है। यदि उसी समय आँधी चली तो स्त्रियाँ निम्न गीत गाकर विघ्न को दूर करती हैं

पवन के हनुमत हैं रखवारे
बिहिर के हनुमत हैं रखवारे
आँधी-बिहिर जे बन्द करत हैं
लज्जा के राखनहारे।

माँझी जाति के आदिवासियों में विवाह के अवसर पर इस प्रकार के गीत गाये जाते हैं -

कउनो अइलिन हाथी चढ़ि के
कउनो अइलिन घोड़ा
रनियां त अइलिन डोलिया ममतुल हो
ससुरै अइलिन हाथी चढ़ी
भसुर अइलिन घोड़ा
पियवा अइलिन डोलिया फन्नाई के हो।

कुरमाली गीतो में विवाह गीत या बिहागीत बड़े मधुर होते है। इन गीतों में कन्या के माता पिता की चिन्ता भी दिखाई पड़ती है

जेठ बैसाख मासे गरमेकर रोदा गो
सूखी गेलो अहरी पोखर
अहरी जे सूखी गेल, पोखरी जे सूखी गेल
एवे बेटी गेहतो कुमार।

अर्थात् जेठ-बैशाख की धूप से तालाब-पोखर का पानी सूख जाएगा और बेटी कुँआरी रह जाएगी।

गढ़वाल में विवाह संस्कार को विशेष महत्त्व दिया जाता है। वाग्दान से लेकर बहू के ससुर-गृह में प्रवेश के समय तक मांगलगीतों का ही आधिक्य रहता है। ये गीत अनुष्ठान के विविध पक्षों से संबंधित ही नहीं होते वरन् उनके भावात्मक स्वरूप की सुन्दर और सजीव व्याख्या भी प्रस्तुत करते हैं। इसीलिये गढ़वाल में मांगल का अर्थ विवाह के ही मांगलगीत से लगाया जाने लगा है।

गढ़वाल में किसी भी शुभ कार्य को प्रारम्भ करने के पूर्व देवताओं का स्मरण, जागरण कर आशीर्वाद प्राप्त करना आवश्यक समझा जाता है। इसीलिये विवाह संस्कार से पूर्व कूर्मदेवता, धरतीमाता, भूमिपाल, क्षेत्रपाल और पंचदेवों (गणेश, सूर्य, शिव, देवी और विष्णु) से विवाह जैसे शुभ कार्य के लिये मांगलगीत गाकर प्रार्थना की जाती है। मांगलगीत गाकर कौवे को हरे वृक्ष पर बैठकर सगुन बोलने हेतु आमंत्रित किया जाता है। तोते को आमंत्रित किया जाता है कि वह आकर संदेशवाहक का कार्य करे और इस शुभ-विवाह के अवसर पर वह ब्रह्मा-सावित्री, विष्णु-लक्ष्मी, शिव-पार्वती, राम-सीता

और श्रीगणेश के साथ सिद्धि-बुद्धि देवियों को भी बुलाकर ले आये। यदि वह ऐसा करेगा तो उसकी चोंच को सोने से मढ़ दिया जायेगा। विवाह में सम्मिलित होने के लिये देवता और मनुष्यों के अतिरिक्त हल्दी की बाड़ियों, धान की क्यारियों और कामधेनु को भी सम्मानपूर्वक आमंत्रित किया जाता है।

मंगलस्नान यहाँ विवाह की प्रमुख क्रियाओं में माना जाता है। लग्न के अनुसार वर अथवा कन्या का मंगलस्नान अपने-अपने घरों पर कराया जाता है। वर-कन्या को देवी-देवता के रूप में पूजा जाता है। संपूर्ण गढ़वाल में वर को शिव के रूप में और कन्या को पार्वती के रूप में स्वीकारा जाता है। मंगलस्नान के बाद कन्या का रूप और भी निखर जाता है। पार्वती के माध्यम से कन्या के रूप की व्यंजना एक गीत में की गई है---

कैमो देखेलो पार्वती को रूप
धार माँ की जोन जसी, दिवा जनी जोत
फलोरे त देखेली, दूब सी मुँगरे
ओठड़ी त देखेली, बुरांसी को फूल
दाँतुड़ी देखेली, दालिमा की सी दाणी
आँखी त देखेली, कमल सी पाँखुड़ी
केश त देखेला, सौंण की सी रिमझिम ।

--वधू वेश में पार्वती कैसी दिखेंगी? वह पर्वतश्रेणी पर उगे पूर्ण चन्द्रमा की तरह दिखाई देंगी। वे दीपक की जोत के समान उजली हैं। उनके टखने दूब की डाली की तरह हैं। ओंठ बुरांस के फूलों जैसे लाल हैं। दाँत अनार के दाने है। आँखे कमल की पंखुड़ी हैं और केश सावन की घटा जैसे।

कन्या के लिये विचार-विमर्श (बुन्देलखण्ड)

कन्या के लिये वर का चुनाव करने में तरह-तरह के विचार विमर्श के बीच लड़की की माँ कहती है-- मेरी बनरी बड़ी लाड़ली है, उसे ऐसे घर में देना जहाँ वह राज करे---

मोरी लाड़ी बनरी नादान आजुल जी सों अरज करे
मोरी ऐसे घरै दिया महाराज जहाँ बेटी राज करैं ।
जहाँ बभ्भन तपत रसोई कहर दोई पानी भरे
मोरी झूलों की झूलनहारी कटोरन दूध पियें ।
मोरी रुपयों की परखनहारी मुहरों के मोल करैं
मोरी छज्जे की पौढ़नहारी झरोखन वाय दुरैं ।

सगुन

सगुन के अन्तर्गत देवताओं के गीत गाकर उनसे आशीर्वाद लिया जाता है। सगुन 'शकुन' शब्द का ही अपभ्रंश है। यह विवाह का प्रारम्भिक कृत्य है। शुभ-मुहूर्त में कन्या-पक्ष वाले वर को वस्त्राभूषण और द्रव्यादि देकर विवाह-संबंध को दृढ़ बनाते हैं। वरपक्ष की

ओर से भी कन्या के लिये सगुन का सामान बाँस की रंग-बिरंगी टोकरियों में आता है। इन सामानों में कन्या के लिए वस्त्र आभूषण के अलावा तिल, चावल और डंटल युक्त पान भेजे जाते हैं। दोनों पक्ष में सगुन होने के बाद ही मंगलकार्य और गीत आरम्भ होते हैं।

सगुन के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में आँगन में खुदवाये हुए कुएँ से निकली मिट्टी से गृहदेवता के स्थान को लोपकर पवित्र करने, मधुर गीत गाकर गृहदेवता को जगाने और उन्हें वंश-वृद्धि की सूचना देने का वर्णन आता है--

अँगना में कुइयाँ खनावल[१] पीयर[२] माटी हो
आहो गाई रे जगावहु सब देवना लोग
रउरा[३] घरे बंस भइले हो ।

तिल, चावल और पान आदि चीजों का सगुन मिल चुका है। दूल्हा ससुराल जाने के लिये उतावला है क्योंकि लगन के साथ-साथ सगुन भी शुभ है। नदी में आई भयंकर बाढ़ से वह भयभीत हो जाता है। वह सुपली मउनी खेलती हुई अपनी छोटी बहन से अनुरोध करता है कि वह नदी को मना ले। बहन आवश्यक सामग्री के साथ नदी की पूजा करके भाई भाभी की रक्षा करती है -

पहिला सगुनमा तिल चाउर हे, नव कय डटोरबो[४] पान हे
देहुगन[५] दुलरइते बाबा के हाथ, सगुनमा भल हम पयलूँ हे ।
लगनियाँ भेलइ उताहुल[६] सगुनमा भल हम पयलूँ हे ।
कानी-कानी[७] चिठिया लिखथिन दुलरइते बाबू
अहे भाँमर[८] नदिया अइलइ[९] तूफान हे
सुपती[१०] खेलइते तूहें दुलरइते बहिनो हे बहिनो
भाँमर नदिया देहौं न मनाई हे
पुजबो मैं भाँवर नदिया सेनुरे पिठार[११]
अहे भइया भउजी उतरे देहु पार हे ।

एक गीत में ऐसा भी उल्लेख है कि प्यारी पुत्री के विवाह के लिये वरपक्ष से सगुन आ गया है। लड़की के पिता ने अभी कोई तैयारी नहीं की है। वह अपनी दुलारी बेटी के बिछोह से दु:खी है। काम में उसका जी नही लगता। सगुन आने पर विवाह की तैयारी करना उसकी लाचारी है। वह कहता है--यदि मैं जानता कि मेरी बेटी चली जाएगी तो मैं उसे छिपाकर रखता। कन्या समझदार और सयानी है। वह कहती है— मुझे और कितने दिन रखेंगे—

अहो सगुनि[१२] अहो सगुनि सगुने बियाह[१३]
मैं तो जनइति[१४] गे सगुनी होयतः बियाह
अरे काँचे बाँसे डलवा गे सगुनी रखती बिनाय[१५]
अरे आपन बेटा दुलरइता दुलहा रखती चुमाय[१६]

---

१. खुदवाया, २. पीली, ३. आपके, ४. डंठल वाला, ५. दे आओ, ६. उतावला, ७. रो-रोकर, ८. भँवर, ९. आया, १०. सुपली, ११. चावल के आटे का पीठा, १२. शुभ-मुहूर्त, १३. ब्याह का शकुन, १४. जानती, १५. बिनवा कर, १६. चुमावन की विधि।

मैं तो जनइति गे सगुनी होयतो बियाह
अरे अपन बेटी दुलरइतिन बेटी रखती छिपाय
रखे के त रखलऽ जी बाबा, लड़िका से बारी ।[१]
अरे अब कते[२] रखबऽ जी बाबा सुबुधि सेयानि ।[३]

सगुन के गीत बहुत चटकीले नहीं होते। उनमें क्रम से आरोही और अवरोही खण्ड आता है। फिर एक दीर्घ विलम्बित अवरोह के साथ उसका अन्त होता है।

कर्मगीत

कुमायूँ प्रदेश में विवाह के अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत 'कर्मगीत' कहलाता है। इसमें सगुन का वर्णन एवं मंगलकामना के भाव चित्रित हैं---

शकुना दे काज ए अतिनीका शकुना बोल
दाईणी संखै शबदै, दैणी तीर भरियो कलेश
अतिनीको सो रंगीलो पाटल अंचलों
कमल को फूल
सोई फूल मोलवान्त
गणेश रामीचन्द्र लछिमन
जीवा जनम आद्या अमरू होई सोई पाटू पैरी रैन
सिद्धी बुद्धी सीता देही बहू राणी
आईवांती पुत्रवांती होई ।

---सगुन दो, अच्छा काज है, सगुन बोलो, दाहिनी ओर शंख का शब्द हो और कलश भरा हुआ हो। बहुत सुन्दर कमल का फूल आँचल से बँधा हो, उसी फूल को लाओ। गणेश, राम, लक्ष्मण, सिद्धि-बुद्धि सीता अहिवाती हो, पुत्रवती हो।

साँझ पड़ी संजवाली पाया चली ऐना
आस-पास मोत्यूँ हार बीच चलिन गंगा
रामीचन्द्र घर, लछीमन घर, साँझ को दीयो जगायो
सुहागिली सीता देही बहुराणी
जनम अवान्ती पुत्र कल्याणी ए
अगर चंदन को दीयड़ा कापुर सारी बाती
जागहो दियड़ा सुलछीणी रात्रि ए
दियड़ा तैन जांग हो शगरी रात्री ए
जाग हो दियड़ा ईनू घरी रात्री ए ।

---साँझ पड़ गई है। पाँव से चलकर आ रही है साँझ। आस पास मोती के हार हैं। बीच में गंगा बह रही है। राम, लक्ष्मण के घर साँझ का दीप जगाया। सुहागिन सीता जन्म-जन्म तक सुहागिन और पुत्र कल्याणी हो। अगर, चन्दन का दीपक और कपूर की बाती दे दीपक, तू जगमगा, सुलक्षणों वाली रात है। दीपक सारी रात जलना इनके घर में।

---

१. युवावस्था, २. कितना, ३. बुद्धि वाली सयानी कन्या।

विवाह का देवता गीत : विनायक (राजस्थान)

किसी भी शुभकार्य या उत्सव मे गणेशजी की स्तुति की जाती है। विवाह मे भी गजानन का गीत गाकर कार्य का आरम्भ होता है। राजस्थान में इस गीत का विशेष महत्त्व है -

चालो हो गजानन जोगीड़ारे चालां
लगन्यां लिखाई वेगा आवां हो गजानन
कोटा रे गादी पे नोबत बाजे
नोबत बाजे इन्दरगढ़ गाजे
जरण जरण झालर बाजे हो गजानन ।

चलो हे गजानन, हम जोगी के यहाँ चलें। लगन लिखाकर हे गजानन। जल्दी आओ। कोटे की गद्दी पर नौबत बजती है और इन्दरगढ़ गरजता है, हिलता है, ध्वनित होता है। झन झन कर झालर बजता है।

बुन्देलखण्ड मे विवाह संस्कार हेतु सभी देवताओं को मनाकर लाया जाता है। इस अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है

अटरिया छाय रही फुलवन से
महक रही लोंगन[१] से
सबरेई[२] देउता[३] आये मिसिल[४] में
गनेस जू बाबा काए नई[५] आए
सबरेई देउता आये मिसिल में
महादेव बाबा काए नई आए
बजरंग बाबा काए नई आए
माता मैया काए नई आई

मइया गीत

जैसा कि स्पष्ट है 'मइया' शब्द 'माता' का ही अपभ्रंश रूप है। विवाह संस्कार के मध्य सगुन के बाद मैया के गीत गाये जाते हैं; विवाह में इस तरह के गीतो की प्रथा प्राय: भोजपुर क्षेत्र मे ही मिलती है। यह गीत तिलक के पहले गाया जाता है। एक गीत में शीतला माता को पानी पिलाकर लड़के की माँ अपनी होने वाली बहू के लिये उनसे आशीर्वाद की कामना करती है -

निमिया[६] के डारी मइया लावेली[७] हिडोलवा कि झूली झूली
मइया मोरी गावेली गीत कि झूलि झूलि ।
झूलत झूलत मइया लगली पियास कि चलि भइली
मलहोरिया[८] अवास[९] कि चलि भइली ।

---

१. लौंग, २. सभी, ३. देवता, ४. क्रम, ५. क्यों नहीं, ६. नीम, ७. लगाती है, ८. मालिन, ९. निवास।

सूतल बाड़ कि जागल ए मालिन बूँद एकऽ
मोहि के पनिया पियाऊ[१] कि बूँद एकऽ ।
कइसे मैं पनिया पियाऊँ, ए सीतलि मइया, मोरा गोदे
मइया बलका[२] तोहार कि मोरा गोदे ।
बलका सुताऊ मालिन सोने के खटोलवा कि बूँद एकऽ
मोहि के पनिया पियाऊ कि बूँद एकऽ ।
एक हाथे लेली मालिन झँझरा[३] तमरुहा[४] कि दूजे हाथे
ए गेड़ुअवा[५] जुड़ पानी कि दूजे हाथे ।
पनिया पियहु पाटे[६] बइठीं[७] ए सीतलि मइया बोलीं ना
ए नगरिया जयजयकार मइया बोलीं ना ।
जइसन[८] मालिन मोहि जुड़ववलू[९] कि मालिन ओइसन[१०]
तोर पतोहिया[११] जुड़ासु कि मालिन ओइसन ।

तिलक

तिलक की विधि के बाद ही वैवाहिक कार्य का शुभारंभ होता है। कन्यापक्ष वाले शुभतिथि को लड़के के घर जाकर उसे तिलक चढ़ाते हैं तथा विधिपूर्वक रुपये तथा उपहार आदि देते हैं। सत्यनारायण भगवान् की पूजा के बाद तिलक चढ़ाया जाता है। लड़के को तैयार करके चौका पर बिठाया जाता है। अल्पना सजाई जाती है। लड़की का भाई लड़के को तिलक चढ़ाता है। इस विधि को तिलक, लगन या चढ़ौना भी कहते हैं। तिलक के समय या उसके बाद लग्नपत्री लिखी जाती है और धान व हल्दी बँटती है। लग्नपत्री में वैवाहिक कार्यक्रम तथा अन्यान्य विधियों के मुहूर्त लिखे रहते हैं।

वरपक्ष की ओर विवाह संस्कार के अन्तर्गत तिलक एक बड़ा समारोह माना जाता है। इसमें सभी सगे-संबंधी, मित्र-बन्धुओं को बुलाया जाता है और खिलाया पिलाया जाता है।

तिलक के गीतों की धुनें भिन्न प्रकार की होती हैं। अधिकतर तिलक के गीत मध्य सुरों से आरम्भ होकर मंद गति से ऊपर नीचे उतरते हैं और अवरोह में ही समाप्त होते हैं।

तिलक के गीतों में हल्का-फुल्का हास परिहास भी कहीं कहीं मिलता है। तिलक चढ़ाते समय कन्यापक्ष के बहुत लोगों के आने और कम दहेज लाने पर योग्य दूल्हे को ठग लेने की चर्चा इन गीतों में है। यह वरपक्ष की स्त्रियों का कन्यापक्ष के लोगों के लिये मधुर उपालंभ ही है---

सभवा[१२] बइठले रउरा[१३] बाबू हो कवन बाबू
कहँवा से अइले पंडितवा चउका[१४] सभ घेरि लेले ।

---

१. पिलाओ, २. बालक, पुत्र, ३. झारी--- लंबी टोंटी वाला पानी का बर्तन, ४ ताँबे का घड़ा, ताम्रक=तमरुहा, ५. पानी रखने का पात्र, ६. पीढ़ा, ७. बैठिये, ८. जैसा, ९. तृप्त किया, १०. वैसा, ११. बेटे की पत्नी, १२. सभा में, १३. आप, १४. शुभ संस्कार करने का स्थान, जहाँ मिट्टी या गोबर से लीपकर अल्पना बनाई जाती है।

दमड़ी दोकड़ा[1] के पान कसइली[2]
बाबू लछ[3] रुपइया के दुलहा बगमन्ह भँड़आ ठगि लेले।

किसी गीत में विधिपूर्वक तिलक समारोह सम्पन्न होने और वर वधू दोनों के पिता के उल्लसित होने का उल्लेख है। आँगन में श्रीराम का तिलक है। बाजे बज रहे हैं। नट नटी नाच रहे हैं। गोबर से चौक लीपा गया है और गजमोती से चौक पूरा गया है। राजा जनक श्रीराम को तिलक चढ़ाकर उन्हें आशीष देते हैं। राजा दशरथ सीता जैसी पुत्रवधू के पाने की कल्पना से ही प्रसन्न हो रहे हैं –

आजु मोरा राम के तिलक, आँगन सोभेला ए
रिमझिम बाजन बाजेला नट नटिन नाचेला ए।
गाइ[4] के गोबर चउका लीपले गजमोती चउका पुराइ ए
आई बइठे रामलला जी मने मने[5] मुसकात ए।
तिलक देले जनक राजा मने मने हुलसत ए
जुगे जुगे जीअसु[6] रामलला जी अइसन आसीस देहु ए।
सब पंडित लोग मन्तर उचारें जनक जी तिलक चढ़ाई ए
राजा अजोधेया के बइठे सिंहासन, सोभा बरनी न जाई ए।
बिरधा[7] उमरिया में पुतर[8] हम पइलीं उनकर होला[9] बिआह ए
सिया अइसन दुलहिन घर मोरा अइहें भुभुते[10] अजोधेया के राज ए।

तिलक में चढ़ाये गये सामानों को देखकर लोगों को चकित होते देख लड़के का पिता के पिता से कहता है कि मेरे छोटे आँगन को देखकर आप अन्यथा न सोचें। घर की भीतरी सम्पन्नता कुछ और ही है –

गाई के गोबर आँगन लीपीले, गजमोती चउका पुराइ ए।
रंग-बिरंग के खम्ह[11] गड़ाइले, मानिक दीप बराइ[12] ए।
सोने के थारी में भरल असरफी, ऊपर से मोहर बिछाइ ए।
तिलक देवेले बेटी के बाबा, मुरुछि[13] के गिरे सभलोग ए।
आँगन छोट देखि भूलऽजनि समधी, आँगन तूल समतूल[14] ए।
आँगन के ठाकुर हउवे[15] कवन बाबू, भीतर भवन अनूप[16] ए।

लग्न गीत

मिथिला का विवाह समारोह बड़ा मनोरंजक होता है। विवाह में वररक्षा अर्थात् सगाई से लेकर चतुर्थी कर्म, अर्थात् चौथारी, कंकण छूटने के दिन तक अनेक विधि-व्यवहार होते हैं। विवाह तय होने पर और वर से बात पक्की होने पर कन्या के कुटुम्बी या उसकी ओर से नाई और ब्राह्मण जाकर वर को तिलक लगाते हैं।

तिलक चढ़ाने के बाद मण्डप निर्माण की प्रक्रिया आरम्भ होती है। इसमें दिशा-

---

१. दो कौड़ी, २. सुपारी, ३. लाख, ४. गाय, ५. हृदय में, ६. जियें, ७. वृद्ध, ८. पुत्र, ९. होता है, १०. उपभोग करने के लिये, ११. खंभे, १२. जलाया, १३. मूर्च्छित होकर, १४. अन्योन्याश्रित, १५. हैं, १६. अनुपम।

निर्धारण का ध्यान रखा जाता है। मण्डप के किनारे की भूमि पर बाँस के खूँटे गाड़े जाते हैं और इन्हे फूल-पत्तो से सजाया जाता है। मण्डप-निर्माण के बाद कुण्ड और वेदी का निर्माण किया जाता है। वेदी पर एक मण्डल बनाकर बीच मे अष्टदल कमल बनाते हैं। उसी पर अपने प्रधान इष्टदेव को पूजते हैं। जिस स्थान पर कलश स्थापन होता है, उसी के समीप वेदी बनाई जाती है, जिस पर हल्दी से स्वस्तिक की आकृति बनाकर फूल, फल और अक्षत सुपारी से गणेश का आवाहन करते है। इस समय जो गीत गाये जाते है वे 'वेदी के गीत' नाम से प्रसिद्ध है।

इसके बाद वरयात्रा आरम्भ होती है। कन्यापक्ष की स्त्रियाँ मंगलगीत गाती हुई दुल्हे को निमंत्रित करती है। ये गीत मिथिला में 'शंकर के गीत' नाम से मशहूर हैं। विवाह संस्कार के समय जब दुल्हन का भाई वर के गले मे चादर डालकर उसे मण्डप के चारो ओर घुमाता है, उस समय के गीत 'भाउर के गीत' कहलाते हैं। इस अवसर पर जो भी गीत गाये जाते हैं वे 'लग्न गीत' कहलाते हैं। इन गीतों मे मिथिला की संस्कृति, गाँवों के प्राचीन आदर्श और कन्या के मनोभावो आदि का चित्रण मिलता है। एक गीत इस प्रकार है

देखु देखु देखु सखिया श्यामल पहुनमा हे
जिनका देखइत सखी मोहि जात मनमा हे ।
मिथिला के असही दुसही डारे ने कोई टोनमा हे
ताते सहेलिया मोरी दइ दिउ डिठोनमा हे ।
घोरवा चढ़ल आवे छैला अलबेलवा हे
घोरवा गुमान भरे करे फनफनमा हे ।

विवाह के पाँच या आठ दिन पहले लड़की को लगन चुमाई जाती है। उसे पीला कपड़ा पहना कर चावल, धान आदि से चुमाया जाता है। इस दिन से गीत आरम्भ हो जाते है। इस विधि में लड़की की बड़ी बहन उसके बाल आड़ती है, नेग के रूप मे उसे साड़ी दी जाती है।

बिहार के मिथिला क्षेत्र में लगन गीतों की अपनी करुणा है। पीपल के झिलमिल पत्ते चमकते हैं। शीतल हवा बहती है। उसके नीचे किसी बेटी का पिता पलंग पर सुख की नींद सोता है। बेटी पिता के पलंग का पउआ पकड़ कर कहती है--बाबा, जिसकी कन्या कुँआरी है, वह कैसे निश्चिन्त होकर सोता है? यह सुनकर लड़की का पिता घोड़े पर चढ़कर वर ढूँढने निकलता है, किन्तु पूरब, पश्चिम, मगध, मुँगेर कहीं भी ढूँढ़ने पर वर नहीं मिलता तो वह एक निर्धन तपस्वी वर ढूँढ़ लाता है किन्तु कन्या उससे विवाह करने को तैयार नही होती। वह जहर खाकर प्राण देने को तैयार है--

पिपरक[१] पात झलामलि हे, बहि गेल सीतल बतास[२]
ताहि तर कोन बाबा पलंगा ओछाओल[३]
बाबा का आइल सुख नींद हे ।
चलइत चलइत अइली बेटी कोन बेटी

१. पीपल, २. हवा, ३. बिछाया।

खटिया के पउआ धयल[१] ठाढ़ि हे ।
जाहि घर आहे बाबा धिया[२] हे कुमारि
से हो कइसे सुतथि[३] निचिन्त[४] हे ।
अतना वचन जब सुनलन कोन बाबा
घोड़ा चढ़ि भेला असवार[५] हे ।
पुरुब खोजल बेटी पच्छिम खोजल
खोजल में मगह[६] मुँगेर हे ।
तोहरा जुगुति[७] बेटी वर नहि भेंटल
खोजि अइलौं तपसी[८] भिखार[९] हे ।
निरधन तपसिया हमें न बिआहब
मरि जइबौं जहर चबाय हे ।

एक गीत में कोयल की कूक के द्वारा लगन की डुगडुगी पीटने का उल्लेख किया गया है। यह गीत वसन्त ऋतु में होने वाले विवाह से सम्बंधित है। इस गीत में विवाह का शुभ-मुहूर्त निकलवाने की बात कही गई है --

अमवा के डाढ़[१०] चढ़ि बोलेले कोइलिया
लगन[११] लगन डिड़ियाय[१२] हे ।
एहो नगरिया माई हे कोई नहीं जग्गथिन[१३]
लगन न माँगथिन[१४] लिखाइ जी ।
एहो नगरिया माई हे जागथिन कवन बाबू
हमें लेबइ लगन लिखाइ हे ।
घर से बाहर भेलन दुलरइता[१५] दुलहा
आजु बाबू लगन लिखाहु जी ।
अइसन लगन लिखिहऽ जी बाबू
ओहे लगन होइतो[१६] बिआह जी ।

बुन्देलखण्ड में लगन के गीतों को 'लगुन गीत' कहते हैं। वहाँ कन्यापक्ष से लड़के वाले के घर लगुन आती है। लगुन पढ़ने की तैयारी की जाती है। दोनों पक्ष के लोग आँगन में बैठते हैं। लड़के को तैयार करके पाटे पर बिठा दिया जाता है। स्त्रियाँ उत्साह से गाती हैं --

सों आजु मोरे राम जू खों लगुन चढ़त है
लगुन चढ़त है आनन्द बढ़त है ।
कानन कुंडल मोरे राम जू खों सोहे
सो गालन बिच मुतियन लर रुरकत[१७] है
कंकनचूरा मोरे राम जू खों सोहे

---

१. पकड़ कर, २. बेटी, ३. सोता है, ४. निश्चिन्त, ५. सवार होना, ६. मगध, ७. तुम्हारे लिये, ८. तपस्वी, ९. भिखारी. १०. डाल, ११. शुभ-मुहूर्त, १२. रट लगाना, १३. जागते हैं, १४. माँगते हैं, १५. दुलारा, १६. होगा, १७. लटकना।

सो हातन[१] बिच गजरा दरसत[२] है ।
राम जू के दरसन खों जियरा ललचत है
आजु मोरे राम जू खों लगुन चढ़त है ।

लगुन चढ़ चुकी है। लगुन में आई चीजों को देखकर स्त्रियाँ गाती हैं--

बना[३] की ससुरारों से आये सैरों[४] के जोड़ा री
बाँधो बाँधो रे हजारी दूल्हा क्या छब[५] लागो री
बना की ससुरारों से आये चन्दन के मूठ[६]
मारो मारो रे हजारी दूल्हा क्या छब लागो री ।

चउका

बारात के एक दिन पहले हल्दी-कलश होता है और चौक पूरा जाता है। इस समय गाये जाने वाले गीतों की विषय-वस्तु पारिवारिक पृष्ठभूमि पर ही आधारित है। कहीं चौक पूरने के बाद बहन द्वारा भाई की प्रतीक्षा होती है तो कहीं भाई के घर बहन के आने पर भाभी मन ही मन अप्रसन्न होती है। एक गीत में उस फुलवारी की रक्षा का वर्णन मिलता है, जिसमें दूल्हे के माथे पर चढ़ने वाली मौर के पौधे उगे हुए हैं तथा गले में पहनाई जाने वाली माला में लगने वाले चम्पा फूलों के पौधे लगे हैं। मौर और माला पहन कर जब दूल्हा दुल्हन के साथ चौके पर बैठता है तो कन्यापक्ष के लोग उन्हें घेर लेते हैं। दूल्हा दुल्हन से उन लोगों का परिचय पूछता है ---

आरी[७] के हेंठे-हेंठे[८] लगि गेल फुलवारी,
कान्हर[९] बछरू चरावल हे ।
फेरू फेरू[१०] अहो कान्हर अपनो बछरुआ
चरि जएतन[११] घनी फुलवारी हे ।
येली[१२] चरि जइहें बेली[१३] चरि जइहें
चम्पा ममोरले[१४] डाढ़ हे ।
काहे से गाँथब[१५] हो कान्हर फल के मउरिया
काहे से गाँथब कान्हर चम्पाकली हरवा ।
दुलहा दुलहिन चौका चलि बइठल
बाम्हन बेद उचारल हे ।
हँसि हँसि पूछल दुलहा कवन दुलहा
कउने हथुन[१६] बाबू तोहार हे ।
कउने हथुन अम्मा तोहार हे
जिनकर डँग्वा[१७] में पिअरी धोतिया सोभे
ओहे हथि बाबूजी हमार हे ।

---

१. हाथों के, २. दिखाई पड़ता है, ३. बन्ना, ४. साफा, ५. छवि, ६. छड़ी, ७. मेंड़---खेत की ऊँची हदबन्दी; ८. नीचे-नीचे, ९. कृष्ण, १०. वापस करो, ११. चर जाएगा, १२. इलायची, १३. बेला, १४. मरोड़ना, १५. गूँथूँगी, १६. हैं, १७. कमर।

जेकर हथवा में सोने के कंगना सोभे
ओही हथि अम्मा हमार हे ।

एक गीत में लड़की मायके से आने वाली पियरी के भार और अपने भाई की प्रतीक्षा कर रही है। दासी घर के बाहर रास्ता देखती है और लौटकर कहती है - न संदेश का दौरा है, न पियरी का भार और न ही कोई घोड़े पर सवार। लगता है आपका मायका निर्धन है। आहत वधू अपनी सास और देवर से दासी की शिकायत करती है। देवर सान्त्वना देता हुआ कहता है भाभी, मैं बाजार जाकर सभी आवश्यक सामग्री ले आऊँगा। तुम अपने मायके को भूल जाओ। किन्तु कोई स्त्री अपने मायके को न तो भूल पाती है, न ही उसे नीचा देखना चाहती है ---

मचिअनि[१] बइठली सीता भउजी, भउजी सीता भउजी ए
भउजी हेरेली[२] नइहरवा केरा बाट, कतेक दले भइया आवेले ए ।
अंगना बहारत सेलखी[३] चेरिया[४] त चेरिया नू
चेरिया हेरऽ तू नइहरवा केरा बाट कतेक दले भइया आवेले ए ।
नाहिं देखों दउरवा[५] चंगेलवा[६], नहि देखों पियरी के भरवा[७] ए
सीता नहिं देखों घोड़े असवार, नइहरवा तोहरे निरधन ए ।
मचिया बइठली रउरा सासु न सासु बढ़इतिन[८] हे
सासु देखहु ना चेरिया गुमान[९] नइहरवा मोरे उघटेला[१०] ए ।
पसवो[११] खेलत तुहुँ देवरा त देवरा लछमन ए
देवरा देखहुना चेरिया गुमान नइहरवा मोरे उघटेली ए ।
जनि रोउ जनि झखु सीता भउजी त भउजी सीता भउजी ए ।
भउजी जइबों मैं हाजीपुर हाट, चुनरिया लेइ आइब नइहरवा बिसरावहु[१२] ए ।

चुमावन

हल्दी कलश के दिन लड़की को चौके पर बिठाकर तेल, चावल, दूब और धान से चुमाया जाता है। यह विधि वर और कन्या दोनों पक्षों की ओर होती है। स्त्रियाँ वर या कन्या के पैर, घुटने, भुजा और सिर से हाथ की चुटकी मे दधि, अक्षत आदि लेकर छुलाती हैं और उनके माथे पर रख देती हैं, इसे चुमावन कहा जाता है। चुमावन आशीर्वादात्मक विधि है। नाते-रिश्ते में जो स्त्रियाँ दूल्हे से हँसी-ठिठोली करने वाली होती हैं वे चुमाते समय दूल्हे के शरीर के उन स्थानों में अँगुली गड़ा-गड़ा कर चुमाती हैं और हल्दी, दही लपेट देती हैं। रिश्ते में बड़ी औरतें ही चुमावन की विधि सम्पन्न करती हैं।

एक गीत में दूल्हे को चुमाने के वर्णन के साथ देवताओं से उसके मंगलमय भविष्य की प्रार्थना की गई है---

---

१. मचिया पर, २. देखती है, ३ सखी, ४. दासी, ५. बाँस की टोकरी, ६. सींक की डलिया, ७. भार, ८. श्रेष्ठ, ९ घमण्ड, १०. ताना देती है, ११. चौसर, १२. भूल जाओ।

चूम चूम चुमावेली अम्मां सोहागिन
चुमावस रे बबुआ धीरे धीरे
मनावस हो देवता धीरे धीरे
बजावस हो बिछिया घनघोरे ।

किसी-किसी गीत में दूल्हे-दुल्हन को चुमाने के समय दोनों के चिरंजीवी होने की कामना की गई है--

गिरि परबत केरा चनन रइया[१]
गाछ[२] हरी हरी दूब
जत चुमइहऽ ततऽ दीहऽ असीस
जियसु बर कनिया[३] लाख बरीस ।

एक गीत में साठी धान के चावल और हरी-हरी दूब से दूल्हे की माँ आदि के द्वारा चुमाने और आशीष देने का उल्लेख है --

सठिया[४] के चउरा[५] लहालही[६] दूब मिवसंकर हे
चुमवहिं[७] चललिन[८] अम्मां सोहागिन सिवसंकर हे
जेहि चुमावत से देत असीस सिवसंकर हे
जिअसु[९] कवन दुलहा लाख बरीस सिवसंकर हे ।

किसी-किसी गीत में विवाह के समय राम को चुमाने का उल्लेख है —

चनन काटिये काटि[१०] पिढ़वा[११] बनयबइ सिवसंकर हे
से पिढ़्वा रामजी बइठइबइ सुनहु सिवसंकर हे ।
सोना के पइलवा[१२] में सेनुरा धरयबइ सिवसंकर हे
सीता के मंगिया भरइबइ सुनहु सिवसंकर हे
सोना के थरियवा[१३] में अछत धरयबइ सिवसंकर हे
सेहु अछत रामजी चुमयबइ सुनहु सिवसंकर हे
चुमावे चलली मासु मनाइन[१४] सुनहु सिवसंकर हे
चुमि चुमि देल असीस सुनहु सिवसंकर हे
जुग जुग जियथिन[१५] रामचन्दर सुनहु सिवसंकर हे
होइहो अजोधेया के राजा सुनहु सिवसंकर हे ।

चुमावन की विधि सम्पन्न करने के साथ माँ-बाप या अन्य संबंधी द्वारा उपहार देने का भी उल्लेख आता है—

---

१. राई, २. वृक्ष, ३. दुल्हन, ४ साठी धान, जो साठ दिनों में पककर आश्विन में तैयार हो जाता है और उसकी बाली फूटकर बाहर नहीं निकलती है। उसके दाने गाभा के भीतर ही पक जाते हैं, ५. चावल ६. अत्यन्त हरा, ७. चुमावन की विधि करने, ८. चलीं, ९. जियें, १०. काट-काट कर ११. पीढ़ा, १२. नापने का एक बर्तन—यहाँ इसे सिंधोरा अर्थ में लिया जा सकता है, १३. थाली, १४. पार्वती की माँ—मैना, यहाँ सास के अर्थ में, १५. जियें।

अम्मां चुमावेली अनधन लुटावेली
बाबा लुटावे हीरा लाल देखो री सखी, सिय रघुवर को
होत चुमावन आज देखो री सखी, सिय रघुवर को ।

माता कौशल्या अँजुरी भर भर कर मोती लुटाती हैं। न्योछावर लेने के लिये भाट-भाटिन, नाई-नाइन खड़े हैं। कौशल्या सबको मनचाहा धन देने का आश्वासन देती हैं। श्रीराम सीता की इस शोभा पर वे अयोध्या का राज ही लुटाने को प्रस्तुत है।

अयोध्या में श्रीराम के विवाह की धूमधाम है। सुन्दर स्वरूप वाली कई सखियाँ हाथ में सोने का थाल लिये राम को चुमाने चलती हैं। माता कौशल्या के साथ कैकेयी और सुमित्रा का हृदय भी अत्यन्त उल्लास एवं उत्साह में भरा है।

संझापराती

विवाह के घर में सध्या समय दीपक जलाते हैं। घर की औरतें कुलदेवता के द्वार पर बैठकर उनका भजन गाती है तथा सबेरे उठकर झाड़ू पड़ने से पहले पराती गाती हैं।

'संझा' शब्द संध्या का एवं 'पराती' शब्द प्राती या प्रभाती का अपभ्रंश रूप है। इस गीत में संध्या समय एवं प्रात: समय एक एक विधि सम्पन्न होती है, इसीलिये इसका नाम संझापराती है।

विवाह संस्कार सम्पन्न होने के तीन चार दिन पहले से स्त्रियाँ ब्राह्ममुहूर्त्त और संध्या समय, जिसमें गृहदेवता स्थापित रहते हैं, उस घर के आगे खड़ी होकर देवता की आराधना में इस गीत को गाती हैं -

संझा बोलथी[१] माई हे किनखा[२] घर हम जाइब
के लेत संझा मनाई हे ।
दुलरइते[३] बाबू घर हमें जाइब
दुलरइते देइ[४] लेत संझा मनाई हे ।

एक अन्य गीत में संध्या समय जलने वाले दीपक का उल्लेख है

संझा बोलत माई हे किनकर घरे जाग[५]
कथि केर[६] घियवा[७] कथि केर बात[८]
कथि केर दियवा जरइ सारी रात
सोने केर दियवा कपासे केर बात
सोरही गइया[९] के घियवा जरइ सारी रात ।

किसी-किसी गीत में ब्रह्मा, विष्णु और महेश के विवाह संस्कार के अवसर पर आने, अपनी ही ज्योति से उन लोगों के प्रकाशित होने तथा सुवास से सुवासित होने, दूल्हे को तीनों देवताओं को नमन् करने के लिये कहने, देवताओं से दूल्हे-दुल्हन के लिये शुभाशीष की याचना करने, देवताओं द्वारा दूल्हे के दीर्घजीवी होने तथा दुल्हन के सौभाग्यवती होने का आशीष देने का उल्लेख है ---

---

१. बोलती है, २. किनके, ३. दुलारे, ४. देवी, ५. यज्ञ, ६. किस चीज का, ७. घी, ८. बाती, ९. सुरभि गाय।

देव चनन बिरीछ[१] तर[२] ठाढ़, त चमचम झमकेला[३] ए
देव बरम्हा बिसुन महेस तीनों से मिली तुहुँ नवहुँ[४] ए
सब देवतन मिली देहु ना असीम
कवन दुलहा जुगे जुगे जीअसु ए
जुगे जुगे जीअसु कवन दुलहा
सोहगवा कवन देइ के ए ।

एक गीत में दूल्हे को अपने घर सादर आमंत्रित करने तथा उनका यथोचित स्वागत-सत्कार करने का उल्लेख है। कहीं नदी के उस पार से दूल्हा नाव की माँग करता हुआ पाया जाता है। उसे जवाब मिलता है कि यहाँ न नाव है, न नाविक, तैरकर आ जाओ। दूल्हा तैरकर नदी पार करता है और सोचता है कि मेरी होने वाली दुल्हन के कारण मेरे वस्त्र, चन्दन, पैरों का महावर और आभूषण भींग गए हैं।

किसी गीत में उल्लेख है बहुत सबेरे सौभाग्यवती कन्या निकलती है। ओस से उसकी लाल चादर भींगती है। उसके नयनों का काजल और माँग का मोती भी भींगता है। उसके साथ सेवा टहल करने के लिए दाई है जो हाथी को खाने के लिये तिल, चावल और घोड़े को दूब देती है। राही-बटोही और पनिहारिनें पूछती हैं कि किसने उसे सुन्दर वस्त्र पहनाये आँखों में काजल और माथे पर सिन्दूर दिया? वह कहती है — मैं अमुक लाल के मण्डप में गई थी, वहाँ मुझे आँखों का काजल, सिर का सिन्दूर और वस्त्र मिले

बड़ा रे परात मुहइ[५] निकलेली ओसिए[६] भींजेला लाली चादर हे
भींजेला नयन भरि काजर, मोतियन भरल लिलार[७] लोकनियाँ[८] जाले भूखल हे ।
किएँ खिअइबू तुहुँ हथिया तऽ घोड़वा के भोजन हे
हथिया के देबो तिल चाउर सखी रे घोड़वा के लहालही दूब हे ।
पूछेली अटवनि-बटवनि[९] कुइयाँ पनिहारिन हे
केहि पहिरावल चीर नयन भरि काजर सिरहि भरि सेनुर हे ।
गइलों में गइलों कवन लाल के माड़ों[१०] हे
सखी रे ऊंहे पहिरावल नयन भरि काजर सिरहि भरि सेनुर हे ।

किसी किसी गीत में कस्तूरी से सुवासित और अमृत का जामन डालकर जमाये दही को दूल्हे को खिलाने का उल्लेख हुआ है, जिससे दूल्हा अमर होगा और दुल्हन सौभाग्यवती। नैहर-ससुराल के साथ साथ कहीं-कहीं बर्तन के साथ दही और घी को मंत्रबल से बाँधने का उल्लेख है ताकि किसी की कुदृष्टि न लगे --

बाँधहु दहिया दहेड़िया[११]
अवरू घिवहिं[१२] के गागर हे

---

१. वृक्ष, २. तले, नीचे, ३. प्रकाशित होता है, ४. नमन् करो, ५. सौभाग्यवती कन्या, ६. ओस से, ७. माथा, ८. लोकनी -- कन्या की विदाई के समय सेवा के लिये साथ जाने वाली सेविका, ९. राही-बटोही, १०. मण्डप, ११. दही रखने का मिट्टी का पात्र, १२. घी।

बाँधहु ननदी के नइहर
कवन देइ के सासुर[1] हे।

पितरनेवतन

'पितर' शब्द 'पितृ' का अपभ्रंश है। 'नेवतन' निमंत्रण का ही अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ है -निमंत्रण देना, न्योता देना, बुलाना। विवाह संस्कार की इस विधि में बारात के दिन बहुत सबेरे चुपचाप दरवाजे से मिट्टी काढ़ी जाती है। वह मिट्टी देवता के पास रखी जाती है। फिर अरवा चावल धोकर देवता के पास सिल रखी जाती है। उस पर सभी देवताओं के नाम से चावल रखा जाता है। अग्नि, साँप, बिच्छू आदि सभी जीव-जन्तु के नाम का चावल रखा जाता है। फिर एक सुपारी लेकर बारी बारी से नाम लेकर एक चावल से दूसरे पर रखते हुए न्योता दिया जाता है। उस चावल को किसी बर्तन में हटा दिया जाता है। अपने घर के पितरों को उसी विधि से न्योता जाता है। फिर एक-एक करके औरतें उस चावल को धीरे धीरे पीसती हैं। पिसे हुए चावल को एक मिट्टी के बर्तन में उठाकर बन्द कर दिया जाता है। औरतों को फिर कचवनी (कच्चे चावलों की गोली) और चने की दाल आँचल में दी जाती है।

इस यज्ञ में कहीं कहीं पान सुपारी भेजकर देवताओं और कुलदेवताओं को निमंत्रित करने की भी प्रथा है -

पाँचहि पनवा[2] के कोपड़[3] सरगे[4] जे बाड़े[5]
बरहम[6] बाबा उनहुं के नेवतब[7] हे
उनहि सरीखे कवन देइ, उनहुं के नेवतब हे।

पति द्वारा पितरों की पूजा करते समय पत्नी द्वारा पितरों को प्रसन्न करने के लिये पूजन कार्य में सहयोग करने का उल्लेख भी एक गीत में है, जिससे पितरों की कृपा से उसका यज्ञ सानन्द सम्पन्न होगा -

चलले कवन राम गया[8], गया पिंडा[9] पारब[10] हे
पाछे लागल चलेली कवन देइ हमहुँ चलब रउरा संग हे।
हमहिं सानब[11] रउरा पारब पीतर[12] आनंद होइहें हे
मड़वाहि गड़ुआ[13] ढरकिहें[14] पीतर आनंद होइहें हे।

एक गीत में हजाम को सोने की सुपारी देकर चारों धाम से देवताओं को न्योतने का उल्लेख है। गया से गदाधर भगवान् को, वीर हनुमान को, गंगा मैया को, श्री जगन्नाथ को, धरती से शेषनाग को न्योतने के लिये कहा गया है। इस निमत्रण को पाकर सभी देवता यज्ञ में सम्मिलित होने के लिये आते भी हैं।

---

१. ससुराल, २. पान, ३. कोंपल, ४. स्वर्ग मे, ५. हैं, ६. ब्रह्म, ७. निमंत्रित करूँगी, ८. बिहार प्रदेश में गया नामक प्रसिद्ध तीर्थस्थान, जहाँ पितरों के लिये पिण्डदान होता है, ९. पितरों को दिया जाने वाला पिंड, १०. बनाऊँगी, ११. सानूँगी, १२. मृत पूर्वज, १३. टोंटीदार लोटा, १४. ढुलक जाएगा।

लेहु हजमा[१] सुबरन कसैरिया[२] नेवतियो[३] लखऽ चारों धाम हे
गया से नेवतिहऽ[४] गजाधर[५] नेवतिहऽ
नेवतिहऽ वीर हनुमान हे ।
गंगा में नेवतिहऽ गंगा मैया नेवतिहऽ
नेवतिहऽ सिरी जगरनाथ[६] हे
धरती से नेवतिहऽ सेसरनाथ[७] हे
गया से अयलन[८] गजाधर अयलन
अयलन सिरी जगरनाथ हे
गंगा से गंगा मैया अयलन
अयलन वीर हनुमान हे
धरती से अयलन सेसरनाथ हे ।

उत्तर प्रदेश का एक पितर निमंत्रण गीत इस प्रकार है -

पुरिखा बाबा, तुमहूँ नेवाते बहु बसरी ले आयौ ।

मातृकापूजन, बाबूपूजन (बुन्देलखण्ड)

बुन्देलखण्ड में विवाह को महायज्ञ की संज्ञा दी जाती है इसीलिये इष्टदेव, कुलदेव, ग्रामदेवों की पूजा करके उन्हें निमंत्रण दिया जाता है क्योंकि उनकी सहायता के बिना यह मंगलकार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। देवताओं को निमंत्रण देने के बाद भूले बिसरे कहकर सबको आमंत्रित किया जाता है

सरग नसैनी पाट की, जे चढ़ नेवतो देय
तुम मोरे नेवते गनेस देव, तुम मोरे आइयो
तुम मोरे नेवते महादेव पारवती तुम मोरे आइयो
तुम मोरे नेवते पवन सुत तुम मोरे आइयो ।

बाबूपूजा के समय स्त्रियाँ तीन दिन और दो रात के लिये (बारात आने से उसकी विदाई के समय तक) हवा, पानी, आँधी, साँप, बिच्छू और घर के लोगों की जबान को कीलित करने के लिये एक प्रक्रिया करती हैं जिसे 'बाबू मूँदना' कहते हैं। एक मिट्टी के दीये में जेठे-बड़ों के बाल, मक्खी, मकड़ी का जाला आदि अनेक चीजें रखकर और बेसन से बाँधकर चूल्हे के बाहरी ओर चिपका देती हैं-

तीन दिना दोइ रात बरन नोनो मूँदियो
मूँदो मूँदो जिठनिया की जीभ, बरन ऐसो मूँदियो
मकरी माछी मूँदियो पमरेतन (गृहस्वामिनी) की जीभ
बिच्छू किच्छू मूँदियो मूँदो जेठे बड़ों की जीभ
आँधी बैहर (हवा) मूँदियो, मूँदो कुटुम भरे की जीभ ।

---

१. हजाम, २. सोने की सुपारी, ३. निमंत्रण दे आओ, ४. निमंत्रण देना, ५. गदाधर भगवान, ६. श्री जगन्नाथ, ७. शेषनाग, ८. आये।

देवता गीत

देवता गीतों में देवताओं की आराधना कर अनुकूल होने के लिये उनसे अनुरोध किया जाता है

हाथे के खरउँआ[१] कवन देव, सिव के मनावेले ए
हम पर होखीं[२] ना देयाल[३] त धजवा[४] चढ़ाइबि ए।
हाथ के भँगिया लेले कवन देव, सिव के मनावेले ए
हम पर होखीं ना सहाय, धतुरवा चढ़ाइबि ए।
हाथ के सिन्होरवा लेले कवन देइ गउरा[५] के मनावेली ए
हम पर होखीं ना देयाल, त सेनुरा चढ़ाइबि ए।

एक गीत में भक्त के घर देवता के आने का उल्लेख है। साथ ही यह भी संकेत किया गया है कि विवाह के समारोह में स्थापित कलश का दीपक रात भर जलता रहे। उसमें शुद्ध कपास की बाती लगाई जाये और अच्छी गाय का घी डाला जाये—

साते[६] हो घोड़वा गोसाई सातो असवार[७]
अगिलहिं[८] घोड़वा देवा सुरुज असवार।
घोड़वा चढ़ल देव करथी[९] पुछार[१०]
कउने अवासे[११] बसे भगत हमार।
ऊँची कुटीअवा[१२] देवा पुरुबे दुआर
बाजे मंजीरवा गोसाई उठे झनकार।
कथि केर दियवा देवा कथि केर बात[१३]
केथी केर घिया[१४] जरइ सारी रात।
सोने केर दियवा देवा कपासे केर बात
सोरही[१५] के घिया देवा जरइ सारी रात।
जरि गेलो घिया मलिन भेलो बात
खेलहुँ न पइलऽ देवा चउ पहर[१६] रात।

जलो और जलाल गीत (राजस्थान)

राजस्थान में प्रचलित यह विवाह का गीत है। जिस समय वधूपक्ष के घर की स्त्रियाँ कुम्हार का चाक पूजने के लिये जाती हैं, तब यह गीत गाती हैं। जब वर की बारात का डेरा देखने जाती हैं, तब भी स्त्रियाँ इस गीत को गाती हैं। इसकी धुन या गायकी लम्बी है तथा लय धीमी है। जलो और जलाल के ये गीत प्राय: जैसलमेर और जोधपुर में भी प्रसिद्ध हैं—

जला रे, मूँ तो राज रा डेरा निरखण आई रे
प्राण प्यारी रा जला, मीठा बोली रा जला रे
जला रे देखी आपरी डेरा री चतराई रे प्राण प्यारी

---

१. खड़ाऊँ, २. होइए, ३. दयालु, ४. ध्वजा, ५. पार्वती, ६. सात, ७. सवार, ८. आगे का, ९. करते हैं, १०. पूछताछ, ११. आवास, ग्राम, १२. कुटिया, १३. बाती, १४. घी, १५. सुरभि गाय, १६. चारों प्रहर।

जला रे आमलियां पाकी ने हींदवारी रितु आई रे
मिरगानेणी रा जला, सीता लंकी रा जला रे।

---हे स्वामी, मैं आपका निवास-स्थान देखने के लिये आई हूँ। प्राणप्यारी और मधुबैनी के आप स्वामी हैं। मैंने आपके डेरे का चातुर्य देखा। आम पकने को आ गये हैं। सीता लंकी के आप स्वामी हैं।

परणेत (राजस्थान)

'परणेत' शब्द 'परिणय' से बना है, जिसका अर्थ विवाह है। राजस्थान में विवाह के गीत सबसे अधिक हैं। वहाँ प्रत्येक नेगचार पर गीत गाये जाते हैं। भिन्न-भिन्न स्वरों एवं रागों में ये गीत बँधे हैं। परणेत के गीतों में विदाई के गीत हृदय को छू लेने वाले होते हैं। बधावा के गीत भी इन्हीं में आते हैं। विवाह के गीतों के विभिन्न विषय होते हैं। विवाह के एक महीने पहले से ही गीत शुरू हो जाते हैं। इनमें प्रधान बनड़ा बनड़ी के गीत होते हैं। विवाह के अवसर पर रात भर जागकर गीत गाने की प्रथा भी राजस्थान में है, इसे 'रातीजगा' कहते हैं। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'बधावा' भी कहते हैं, जो मेवाड़ की ओर अधिक प्रचलित हैं। स्त्रियाँ बेटी को उसके पति के घर छोड़कर आती हैं, उस समय यह गीत गाया जाता है---

हेली रंगरो बधावो मारे नत नवो ए
हलो ए मलो ए हेली बागाँ में चालाँ।
बागाँ में जाय हेली काई कराला
आपी आछी-आछी कलियाँ चूँटा ए।
कलियाँ चूँटी ने हेली काई कराँला
आपी आछा आछा गजरा गूँथा ए।
गजरा गूँथी ने हेली काई कराँला
आपी साहब जी री सेजां जावां ए।
सेजा में जाय हेली काई कराँला
आपी आछो आछो वंश बधावा ए।

--हे सखी, आनन्द का बधावा हमारे लिये सदा ही नया है। प्रसन्नता से सखी, हम बागों में चलें। बागों में जाकर क्या करेंगे? हम अच्छी-अच्छी कलियाँ तोड़ेंगे। कलियाँ तोड़कर हम क्या करेंगे? हम अच्छे-अच्छे गजरे गूँथेंगे। गजरा गुँथाकर सहेली क्या करोगी? हम पति की सेज पर जाएँगी। सेजों पर जाकर सहेली क्या करोगी? हम अच्छा-अच्छा वंश बढ़ाएँगी।

बारात आगमन की प्रतीक्षा (बुन्देलखण्ड)

कन्यापक्ष के लोग बारात आने की प्रतीक्षा करते हैं, किन्तु बारात की भीड़ देखकर पिता हताश हो जाता है कि इतने लोगों का स्वागत-सत्कार वह कैसे कर सकेगा? पुत्री उन्हें धीरज बँधाती है—

ऊँचो सो चौंरा रैया माँझमझोटें ईंगुर ढोरे हैं बान।
जा चढ़ देखें लड़गहरी के बाबुल मोरें केतक आवे बरात।

इक लख हथिया सवा लख घोड़े पैदल को आर ने पार ।
इतनो जो देखो राजा बाबुल डराने अब मोरी धिया रही कुँवारि ।
काहे खों बाबुल थर-थर काँपो काय खों जहर बिष खाय ।
अपने ससुर सों विनती करहों आधे से दैहों भगाय ।
ऊजरे हो ऊजरे रैया लोग बराती मैले से देखनहार ।
देखनहारे पलट घर जैहें रैहें जे छैला बरात ।

उबटन (विवाह के पूर्व)

'उबटन' शब्द संस्कृत के 'उद्वर्तन' का अपभ्रंश है। इसे उब्बटन, अवटन या अपटन भी कहते हैं। यह विधि विवाह संस्कार से पूर्व तथा बाद में भी होती है। वर और कन्या के शरीर की सफाई और सौन्दर्य के निखार के लिये विवाह संस्कार प्रारम्भ होने से पहले घर की सधवा स्त्रियाँ गीत गाकर उबटन लगाती हैं। जौ या गेहूँ के आटे, हल्दी, सरसों तेल, चिरौंजी तथा अन्य सुगंधित द्रव्यों को पीसकर उबटन बनाया जाता है। नाइन इन द्रव्यों को पीसती है, उसे इसके लिये कुछ दिया जाता है। बारात आने के दिन लड़की को दिन में प्राय: पाँच बार हल्दी (उबटन) लगाई जाती है। इस अवसर पर यज्ञोपवीत की तरह मातृपूजा और घिउढारी होती है।

उबटन लगाने के लिये वर या कन्यापक्ष की ओर दुलारा बेटा या बेटी बैठते हैं। हाथो में सुन्दर कंगन पहने माँ, चाची, बुआ या भाभी उन्हें उबटन लगाती हैं ---

ऊ जे[१] जव[२] रे गोहुम[३] के रे ओबटन
गई सरसों के तेल अउरो[४] फुलेल
से बेटा बइठल ओबटन, दुलरइता बइठल ओबटन
लगवलऽ[५] मइयो[६] सोहागिन
हाथ कंगन डोलाये, नयना घुमाये
से बेटी बइठल ओबटन, दुलरइती बइठल ओबटन
लगवलऽ चाची सोहागिन हाथ कंगन डोलाये, नयना घुमाये ।

हरियाणा मे नाइन कन्या को उबटन मलती है और नाई लड़के को। इस समय हास-परिहास का वातावरण होता है -

काहे कटोरी में बैटणा, काहे कटोरी में तेल
ऐत लाड्डो बैठ्या बैटणा (उबटन)
सोन्ने कटोरी में बैटणा, रूपा कटोरी में तेल
ऐत लाड्डो बैठ्या बैटणा
आ मेरी दादी देख ले ।

मण्डप

बारात आने पर द्वारपूजा होती है। लड़के के यहाँ से सुहाग का पानी आता है,

---

१. वह, २. जौ, ३. गेहूँ, ४. और, ५. लगाती है, ६. माता।

उसी से लड़की मण्डप में स्नान करती है। इस अवसर पर पोखरा आदि खोदने की भी प्रथा है।

इस विधि से पूर्व मण्डप छवाया जाता है। मंगलगीत गाये जाते हैं। मण्डप की विधि में पधारने के लिये विभिन्न देवताओं को भी निमंत्रित किया जाता है---

काई-काई[१] नेवति पठाओ जनकपुर माड़व[२] ए
गया में नेवतबि गया गजाधर परयाग[३] बेनीमाधव ए
ए कासी नेवतबों बिसुनाथ[४], जनकपुर माड़व ए ।
गया से अइलन्हि[५] गया गजाधर
परयाग से अइले बेनीमाधव ए
ए कासी से अइले बिसुनाथ, जनकपुर माड़व ए ।

कहीं मण्डप छाने की तैयारी हो रही है। उसी समय बहन आती है। भाई अपनी पत्नी को कहता है कि बहन का स्वागत-सत्कार करना। भाभी अपनी ननद से मंगलगीत गाने का अनुरोध करती है। ननद गाने के लिये पुरस्कार चाहती है, जिसे भाभी देना नहीं चाहती। ननद रूठकर वापस जाती है। उसका पति प्रसन्न होकर कहता है कि मैं तुम्हें मनचाही वस्तु दूँगा, तुम मायके का मोह त्याग दो। इस पर ननद का अभिमान फिर जाग उठता है और वह कहती है कि मैं मायके को कैसे भूल सकती हूँ?

आँगन लीपीला दहादही[६] मांड़व छाइला[७] ए
ताहि चढ़ि भइया निरेखे बहिनि चलि आवसु[८] ए
बहिनी आवत भइया देखेले महल भीतराइ[९] गइले ए
आवतारी[१०] बाबा के दुलरुई[११] गरब[१२] जनि बोलहु ए
आवहु ए ननद आवहु मोरी चधुराइनि[१३] ए
बइठहु बाबा चउपरिया[१४] मंगल एक गावहु ए
गाइबि ए भउजी गाइबि गाइ के सुनाइबि ए
का देबू हमरा के दान लहसि[१५] घरवा जाइबि ए
गावहु ए ननद गावहु गाइ के सुनावहु ए
जे तोरा हिरदा[१६] में समाय[१७] सेहू[१८] रे कछु मांगहु ए
हमरा के लाली चुनरिया बलकवा[१९] के हाँसुल[२०] ए
परभु जी[२१] के चढ़न के घोड़वा लहसि घरवा जाइबि ए
कहाँ पइबो लाली चुनरिया, बलकवा के हाँसुल ए
कहाँ पइबो चढ़न के घोड़वा नउजि[२२] रउरा गाइबि ए
रोअइत जाला[२३] ननदिया बिलखइत[२४] भगिनवा[२५] न ए

---

१. किस-किस को, २. मण्डप, ३. प्रयाग, ४. विश्वनाथ, ५. आये, ६. चमकदार, ७. छवाया है, ८. आती है, ९. भीतर की ओर, १०. आती है, ११. दुलारी, १२. गर्व से, १३. चौधरानी, गाँव के मालिक की पत्नी, १४. चौपाल, १५. प्रसन्न होकर, १६. हृदय, १७. प्रवेश करे, १८. वही, १९. बच्चा, २०. हँसुली, गले का आभूषण, २१ पति, २२. भले नहीं, २३. रोती जाती है, २४. बिलखता है, २५. बहन का बेटा ।

हँसइत जाला ननदोइया भले रे दरप[1] तूरलमि[2] ए
चुप रहु ए धनि[3] चुप रहु मोरी चधुराइनि ए
हम जइबो राजा के नोकरिया दरब[4] लेइ आइबि ए
तोहरा के लाली चुनरिया, बलकवा के हाँमुल ए
अपना के चढ़न के घोड़वा नइहर तू बिसारहु[5] ए
आगि लगइबो चुनरिया, बलकवा के हाँमुल ए
आगि लागे चढ़न के घोड़वा, नइहर ना बिसारबि ए ।

मण्डप के एक गीत में पिता पुत्री का संवाद है। बेटी जन्म लेती है पिता के घर किन्तु उसका संबंध एक पराये घर में हो जाता है। पुत्री पिता से शिकायत भरे स्वर में पूछती है कि दूब जहाँ जन्म लेती है, वही उसकी टहनी क्यों नहीं फैलती? पिता ने उसका विवाह श्याम वर्ण के लड़के से कर दिया है, इसलिये बेटी असंतुष्ट है और विवश भी। पिता अपनी पुत्री को समझाता है और कृष्ण वर्ण जामाता की तुलना अयोध्या के राम से करता है।

मण्डप के गीतों से ऐसा पता चलता है कि मण्डप की निगरानी पिता के जिम्मे और द्वार पर अतिथियों का स्वागत कन्या के भाई के जिम्मे होता है। इसलिये अच्छे मण्डप के लिये पिता की और द्वार पर अच्छे स्वागत प्रबन्ध के लिये भाई की प्रशंसा होती है। किन्तु दूल्हे की प्रशंसा उसके लजीलेपन पर ही होती है-

ऊँची ए मड़वा छवइहऽ[6] दुलरइते[7] बाबा
ऊँची होतो[8] नाम तोहार हे ।
झारी[9] गलइचा[10] बिछइहऽ दुलरइते भइया
ऊँची होतो नाम तोहार हे ;
धरती में नजर खिरइहऽ[11] दुलरइते बर
देखतो नगरी के लोग हे ।

मटकोर

विवाह के पाँच दिन पहले मटकोर होता है। मटकोर मिट्टीकोड़ का रूप है जिसका सीधा शाब्दिक अर्थ है माटी कोड़ना। माटी कोड़कर आने के बाद रात में पाँच मूसल से पाँच औरतें एक ओखली मे धान रखकर हिलाती हैं। इसके बाद ननद-भाभी या कोई दो औरतें उसे कूटती हैं। इसी ओखल से पाँच दाना चावल निकाल कर शादी के दिन मड़वे में भात बनता है और पाँच कुमारी लड़कियाँ दही-चीनी के साथ खाती हैं। लड़की के पास उसे घुमाकर कुँवरथ अर्थात् उसका कुँवारापन उतारा जाता है।

इसी दिन से विवाह के अन्य कार्य आरंभ होते हैं। मटकोर की विधि को सम्पन्न करने के लिये घर, गाँव और संबंधियों की निमंत्रित स्त्रियाँ घर के पास की नदी, जलाशय,

---

१. अभिमान, २. तोड़ दिया, ३. पत्नी, ४. धन, ५. भूल जाओ. ६. छवाना, आच्छादित कराना, ७. प्यारे, ८. होगा, ९. झाड़कर, १०. गलीचा, कालीन, ११. गड़ाना, नीची नजर करना।

कुएँ या खेत में जाती हैं और वहाँ से मिट्टी कोड़कर लाती हैं। उसी मिट्टी के ऊपर कलश रखा जाता है तथा उसमें और मिट्टी मिलाकर लग्न का चूल्हा बनाया जाता है, जिसे बिअहुती चूल्हा कहते हैं। इसी लग्न के चूल्हे पर लावा भूना जाता है और उसी लावे से विवाह के समय लाजाहवन होता है। गीत गाने वाली स्त्रियाँ गीतों में ही मिट्टी कोड़ने वाली को गाली देकर आनन्द मनाती हैं--

माटी कोड़े गेली[१] हम आज मटिखनमा[२]
इयार[३] मोरा पड़लन हाय जेहलखनमा[४]
पियवा के कमइया[५] हम कछु न जानही
इयार के कमइया नकबेसर[६] हई[७] हे ननदो
ओही नकबेसर धरि इयार के छोड़इबो[८]
इयार मोरा पड़लन हाय जेहलखनमा।

मटकोर के एक गीत में कोयल को कन्या के प्रतीक के रूप में वर्णित किया गया है, जो देवविशेष के दरवाज़े पर उल्लसित होकर जा रही है--

कवन बने रहलू[९] ए कोइलरि[१०] कवना बने जालू[११]
केकरा दुअरिया ए कोइलरि उछहल[१२] जालू
नन्दन बने रहलू हो कोइलरि बिरदाबने[१३] जालू
कवन देव दुअरिया हो कोइलरि उछहल जालू।

किसी गीत में मटकोर की मिट्टी सर्वप्रथम गृहदेवता के स्थान पर तथा उसके पश्चात् कलश के निकट रखने का उल्लेख है, तो कहीं कुदाल लेकर पाँच सखियों के द्वारा मिट्टी कोड़ने जाने का वर्णन है--

कहँवा के पीअर[१४] माटी कहँवा के कोदार[१५] ए सखी
कहँवा के पाँचों सखी माटी कोड़े जास[१६] ए सखी
जनकपुर के पीअर माटी अजोधेया के कोदार ए सखी
जनकपुर के पाँचों सखी माटी कोड़े जास ए सखी।

एक गीत में उस सँकरी गली का ज़िक्र है, जिसमें पाँव भी रखने की जगह नहीं है, मिट्टी का गढा कहाँ से मिले? उस पर कहीं बाहर का आदमी मारता है तो कहीं कोतवाल धमकाता है।

बँसरोपी

बारात के दिन दरवाज़े पर दो कच्चे बाँस रोपे जाते हैं। 'बँसरोपी' का शाब्दिक अर्थ है--बाँस रोपना। बँसरोपी के गीतों में पिता, माता तथा कन्या द्वारा विभिन्न वैवाहिक विधियाँ सम्पन्न किये जाने का उल्लेख रहता है---

---

१. गई, २. मिट्टी वाली खान या गढ़ा, ३. प्रेमी, ४ जेलखाना, ५. कमाई, ६. नाक में पहना जाने वाला आभूषण, ७. है, ८. छुड़ाऊँगी, ९. थी, १०. कोयल, ११. जाती हो, १२. उत्साह के साथ, १३. वृन्दावन में, १४. पीली, १५. कुदाल, १६. जाती हो।

हरिअर सुगवा माई हे, हरिअर तोरा रे बाग
किए किए[1] देखेले रे सुगवा, कवन रइया[2] के माड़व
बँसवा रोपइते माई हे कवन रइया के देखलों
घीव ढरकवइत माई हे, कवन रइया के देखलों
गेंठिया[3] जोरले माई हे, कवन देइ के देखलौं
अँगुरी लगलीं[4] माई हे, कवन बेटी के देखलौं ।

मानरपुजाई

'मादल' से मानर और 'पूजा' से पुजाई शब्द की उत्पत्ति हुई है, जिसका अर्थ है --ढोल पूजना। यह विधि मटकोर के दिन होती है। लड़के वालों के यहाँ यह विधि तिलक के दिन भी होती है। चमार गले में ढोल लेता है। औरतें उस ढोल में अल्पना और सिन्दूर लगाकर पाँच पान, पाँच सुपारी और पैसा ढोल पर रखती है। चमार उसे फिर आँचल में दे देता है। यह क्रिया पाँच बार होती है। इस अवसर पर मृत पुरखों के और बाद में परिवार के जीवित व्यक्तियों के नाम ले लेकर गीत गाये जाते हैं। दरवाजे पर मानर पूजते समय इस गीत को गाकर स्त्रियाँ मंगलकामना करती हैं --

कवन बाबा दुअरवा बाजन[5] एक बाजे हे
बाजी रहेला[6] छव मास ए
बाजू नरायन बासुदेव ए ।

कोई-कोइ गीत मानर पूजने वाली का तथा उसके पति का नाम ले-लेकर गाया जाता है। पति अपने स्वजनों तथा कुटुम्बियों को इकट्ठा करने और पत्नी मानर पूजने की विधि सम्पन्न करने में व्यस्त है-

ए कवन बाबू के पउँआ[7] पीरइले[8]
त मजन बटोरत[9] ए
ए कवन देई के मोतीसारी[10] ढुरी गइले[11]
मनरा[12] परिछइत[13] ए

उत्तर प्रदेश में इस गीत को 'ढोलक पूजन' का गीत कहते हैं--

ढोलकिया कब हमरे दहु अउबू ?
बियाहे अउबै, गउने[14] अउबै
होरिलवा[15] होरिला भए पै अउबै ।

हरदी चढ़ाई

विवाह में हल्दी चढ़ाना एक विधि है, जो मड़वा के रोज़ यानी बारात के एक दिन

---

१. क्या-क्या, २. राजा, ३. गाँठ, ४. लगी, ५. बाजा, ६. बजता रहा, ७. पाँव, ८. दर्द होने लगा, ९. इकट्ठा करना, १०. मोतियों की लर वाली साड़ी, ११. खिसक गई, १२. मानर ढोल, १३. परिछन की विधि करते हुए, १४. गौने में, १५. लड़का।

पूर्व हरी-हरी दूबों के गुच्छों के सहारे दूल्हे या दुल्हन पर चढ़ाई जाती है। बड़ी आयु वाले ही हल्दी चढ़ाते हैं, जिसका तात्पर्य मांगलिक आशीर्वाद है- -

सोना के ढकनी[१] में हरदी परोसल
उपरे लहालही[२] दूब हो
सिरवा[३] हरदी चढ़ावे
पहिले चढ़ावे बराम्हन अप्पन[४]
तब सकल परिवार हो
सिरवा हरदी चढ़ावे ।

किसी गीत में दूल्हे के अत्यन्त सुकुमार होने का उल्लेख है। वह हल्दी और तेल की गन्ध को नहीं सह सकता--

कोइरिन[५] कोइरिन तुहूँ मोरे रानी
कहँवा के हरदी सुबसवो[६] न जानी
तेलिन तेलिन तुहूँ मोरे रानी
कहँवा के तेलवा सुबसवो न जानी
हमरा कवन बाबू बड़ सुकुवाँर[७]
सहलो न जाला हरदिया[८] के झाँक[९]
हमरा कवन बाबू बड़ सुकुवाँर
सहलो न जाला तेलवा के झाँक ।

एक अन्य गीत में सभी परिवार के द्वारा हल्दी चढ़ाने का वर्णन है -

हरियर पट केरा[१०] जाजिम[११] झारी[१२] बिछावहु हे
आयल कुल परिवार हरदी चढ़ावहु हे
हरदी चढ़ावथि[१३] दुलरइता दादा संघ[१४] दुलरइतो दादी हे
ताहि पाछे कुल परिवार से हरदी चढ़ावथि हे ।

रामचन्द्र के विवाह मे वैदिक मंत्रों से हल्दी बुकवाने, कुलदेवता पर चढ़ाने और गुरु वशिष्ठ द्वारा दशरथ से कुल की रीति के अनुसार विधि सम्पन्न कराने का उल्लेख भी एक गीत में है---

हरदी चढ़ेला रघुनाथ कुँवर के, सोभा बरनी न जाई ए माई
गाय के गोबर अँगना लिपाई, गजमोती चउका पुराई ए माई
वेद ही मंतर से हरदी बुकाई, कुलदेवता पर चढ़ाई ए माई
गुरु बसिठ राजा दसरथ जी के, कुल के रीत सिखाई ए माई ।

बुन्देलखण्ड में बारात के पहले वर और कन्या को तेल, हल्दी व चन्दन चढ़ाने का दस्तूर होता है। चौक पूरकर पटली पर वर या कन्या को बिठाया जाता है। बहन, भाभी तथा अन्य स्त्रियाँ तेल, हल्दी चढ़ाती हैं। एक कटोरे में तिल के तेल में हल्दी

---

१. मिट्टी का बर्तन, २. हरी-हरी, ३. सिर पर, ४ अपना, ५. कोइरी जाति की पत्नी, ६. सुवास सुगन्ध, ७. सुकुमार, ८ हल्दी, ९. उत्कट गंध, १०. हरे वस्त्र की, ११. दरी पर बिछाई जाने वाली चादर, १२. झाड़कर, १३.चढ़ाते हैं, १४. साथ में।

मिलाकर दूब डाल देते हैं। फिर वर या वधू के पाँव, घुटने, कंधे और माथे पर तेल छुलाया जाता है। इस समय गीत चलते रहते हैं—

सो आज मोरे राम जू खों तेल चढ़त है
फुलेल चढ़त है ।
सोने कटोरा में तेल भरायो
हरदी मिलाकै कैसो झलकत है
कुँवारिन ने मिल तेलो चढ़ायो
सो नारिन मंगल गीत कहत हैं ।

कलसा

'कलसा' शब्द 'कलश' का अपभ्रंश है। बारात के एक दिन पहले कुम्हार कलश सजाकर लाता है। औरतें कुम्हार के लिये गाली गाती हैं। कुम्हार उस घड़े को लड़के या लड़की की माँ के आँचल में आशीर्वाद के साथ देता है, बदले में उसे वस्त्र दिये जाते हैं। मटकोर के दिन की मिट्टी इस दिन रात में मण्डप में कलश के नीचे रखी जाती है और पाँच विवाहित पुरुष उस कलश को भरते हैं। आम के पल्लव और एक ढकनी जौ या चावल कलश के ऊपर रखे जाते हैं। उसके ऊपर चौमुख दीप जलता है।

कलसा के गीतों में मण्डपाच्छादन, कलश-स्थापन तथा दीपज्वलन की विधि का वर्णन होता है। इन विधियों से पितर लोग स्वर्ग में आनन्दित होते हैं कि उनके वंश की वृद्धि होगी—

कहँमाहिं[१] किसुन जी जनम लेलन, कहँमाहिं बाजत बधावा[२]
सुनहु जदुनन्दन हे
मथुराहिं किसुन जी जनम लेलन, गोखुला में बाजत बधावा
सुनहु जदुनन्दन हे
कयरान्हि[३] काटी-कुटी[४] खम्हवा[५] गड़ावल, छोटे-मोटे मड़वा बनावल
खरही[६] काटी-कुटी मँड़वा छवयबइ[७] मड़वा में कलसा धरइबइ[८]
ओकरा[९] में भरबई[१०] गंगापानी, ओकरा में धरबई[११] कसइलिया[१२]
ओकरा में धरबई पलबिया[१३] ओकरा में धरबई पनफूलवा[१४]
बारबइ[१५] हम मानिक दियरा[१६] झलमल करतई[१७] दियरा
मँड़वहिं रखबई[१८] हरदिया पूजबई हम गउरी गनेसवा[१९]
उपरे[२०] अनंद पितर लोग अब बंस बाढ़ल मोर
मँड़वहिं हो गेल इँजोर[२१] सुनहु जदुनन्दन[२२] हे ।

---

१. कहाँ पर, २. बधाई, ३. केले को, ४. काट-छाँट कर, ५. खंभा, ६. खर, एक प्रकार की घास, ७. छवाऊँगी, ८. रखवाऊँगी, ९. उसमें, १०. भरूँगी, ११. रखूँगी, १२. सुपारी, १३. पल्लव, १४. पान और फूल, १५. जलाऊँगी, १६. माणिक दीप, १७. करेगा, १८. रखूँगी, १९. गौरी व गणेश, २०. स्वर्ग में, २१. प्रकाश, २२. श्रीकृष्ण।

राजा जनक के यहाँ मण्डप में कलश रखा है। कोई सवाल करता है--कलश में कितना भार है और इस भार को कौन लेगा? ऋषि जनक कहते हैं कि मैं इसका भार लूँगा, इसमें गंगाजल भरूँगा, पान-सुपारी देकर इस पर मैं दीपक जलाऊँगा --

कय गुने[१] कलसा हे कय गुने भार
बोल हे कलसवा हे के[२] लेत भार
छव गुने कलसा हे नव गुने भार
बोलथि[३] जनइया[४] रिखी[५] हम लेबो भार
गंगाजल पानी देबो, पुंगीफल[६] धान
चउमक[७] बराय[८] देबो सगरो[९] इँजोर[१०]
धन[११] अनपुरना[१२] देइ,[१३] धन रउरा भाग[१४]
कलसा धराइ गेल जनइया रिखी के मड़वा।

उत्तर प्रदेश में मण्डप में बैठने के समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'कलसा गोंठने' का गीत कहते हैं। एक गीत इस प्रकार है---

आधे ताले हंस बइठैं, आधे हंसिनि बइठैं हो
ये हो तबहूँ न ताल सुहावन तौ एक रे कँवल बिनु हो
आधे मड़ये गोत बइठैं आधे माँ गोतिन बइठैं हो
ए हो तबहूँ न माड़व सुहावन तो एक रे ननद बिनु हो
आवउ न ननद गोसाईं मड़उना मोरे बइठौ
कलस मोरा गोंठउ हो।

घिउढारी (विवाह)

यह विधि बारात के दिन दोनों ओर होती है। घिउढारी की विधि में गौरी-गणेश तथा सप्तमातृकाओं की पूजा करके नये पीढ़े पर सात सिन्दूर की लम्बी पंक्तियाँ बनाकर वर या वधू के माता-पिता द्वारा मंत्रपूर्वक घृतधारा गिराई जाती है। यह धारा गृहदेवता के पास, कुलदेवता के घर के बाहर और मण्डप में गिराई जाती है। इसे संस्कार पद्धतियों में 'वसोर्धारा' भी कहते हैं। 'घिउढारी' शब्द ही 'घृत ढारने' का अपभ्रंश रूप है।

पुत्र या पुत्री के विवाह में घिउढारी वाली विधि माता-पिता करते हैं। उस समय लड़के या लड़की का मामा अपनी बहन के पहनने के लिए वस्त्र लाता है। उसी वस्त्र को पहन कर लड़की की माँ अपने पति के साथ घिउढारी की विधि सम्पन्न करती है।

एक गीत में उल्लेख है कि मण्डप सजा है। पूजा की तैयारी हो रही है। लोग इकट्ठे हो गये हैं, पर अभी तक लड़के का मामा नहीं आया। लड़के की माँ कहती है--- पति के साथ पीढ़े पर बैठना है, गोतिया-भाई इकट्ठे हैं, पर मेरे भैया नहीं आए। मैं कैसे

---

१. कितने गुना, २. कौन, ३. बोलते हैं, ४. जनक, ५. ऋषि, ६. सुपारी, ७. चतुर्मुख दीप, ८. जलाना, ९. सभी जगह, १०. उजाला, ११. धन्य, १२. अन्नपूर्णा, १३. देवी, १४. भाग्य।

पियरी पहनूँ और पैर रँगाऊँ? यह मण्डप मेरे लिये बीहड़ बन-सा लगता है। मेरी घृतधार जरा भी नहीं शोभती। तभी उसका भाई ढेरों सामान लेकर आता है और आनन्द के साथ घिउढारी की विधि सम्पन्न होती है--

अगे अगे[१] चेरिया[२] कवन चेरिया गे
चेरिया अंगना बहारि जरा देखूँ भइया नहि आयल हे
केकरा संग बइठम[३] चनन-पीढ़वा[४]
केकरा से सोभे मोर माँड़ो[५] भइया नहि आयल हे
सामी[६] संगे बइठम चनन पीढ़वा
गोतिया से सोभे मोर माँड़ो भइया नहिं आयल हे
कइसे पेहरब[७] इयरी पियरिया[८] मे कइसे रंगाइब गोड़[९]
मोरा लेखे[१०] माँड़ो हे बिजुबन[११] बिनु भउया ना सोभे घिउढार[१२]
चमकि के बोलहइ[१३] जे चेरिया
झमकइते[१४]आवे तोरा भाई रखूँ कोठी कान्हें[१५] अँजवार[१६]
दुअरहिं घोड़े हिहियायल[१७] डोला[१८] धमसायल[१९] हे
आगे-आगे आवथिन[२०] दुलरइता भइया संग भउजी मोर हे
डँड़िया[२१] ही आवल पोखर कान्हें[२२] देखूँ चेरी भइय केर सान[२३]
भइया मोग लखिया हजरिया[२४]
लवलन[२५] इयरी पियरिया भउजी सिर सेनुर हे
चउका चनन[२६] हम बइठम इयरी पियरी पेन्हि के हे
अब हमर माँड़ो राजगाजल[२७] होवे घिउढार विधि हे
बेदे-बेदे[२८] भेल घिउढार सुमंगल गावल हे।

घिउढारी के अन्य गीतों में स्त्रियों का अपने नैहर के प्रति प्रेम झलकता है। एक गीत में ऐसा भाव है कि जिस तरह मण्डप कलश के बिना, कलश पूर्णपात्र के बिना, मण्डप भाई-बन्धु के बिना, चौका-चन्दन पति के बिना, दान पुत्र के बिना और लाल-पीला कपड़ा लड़की के बिना नहीं शोभा देता, उसी तरह विवाह में पीला कपड़ा नैहर से आये बिना घिउढारी की शोभा नहीं होती।

पैरपूजी

पदवन्दन या पदपूजन का ही अपभ्रंश रूप है पैरपूजी-विवाह संस्कार में गुरुजनों के चरणों की वन्दना की जाती है। उस अवसर पर इस विषय का गीत गाया जाता है—

---

१. अरी, २. दासी, ३. बैठूँगी, ४. चन्दन के पीढ़े पर, ५. मण्डप, ६. पति, ७. पहनूँगी, ८. लाल-पीली चुनरी, ९. पाँव, १०. मेरे लिये, ११. बीहड़ वन, १२. घृतधारा, १३. बोलती है, १४. इठलाते हुए, १५. कोठी का ऊपरी भाग, १६. खाली करके, १७. हिनहिनाया, १८. पालकी, १९. एकाएक आना या धूमधाम से आना, २०. आते हैं, २१. पालकी, २२. पोखर के किनारे, २३. शान, २४. लखपति-सहस्रपति, २५. लाये, २६. चौका-चन्दन, २७. राजसी शोभा, २८. प्रत्येक वेदी पर।

चउका चढ़ि बइठलन कवन साही, राजा रघुनन्दन हरि
पूजहऽ पंडित जी के पाओं[१] सुनहु रघुनन्दन हरि
पाओं पुजइते सिर नेवले[२], राजा रघुनन्दन हरि
देहऽ पंडित जी हमरो असीस सुनहु, राजा रघुनन्दन हरि
दुधवे नहइहऽ बाबू पुतवे पझइहऽ[३], राजा रघुनन्दन हरि ।

इमली घोंटाई

बारात के दिन लड़की सोहाग के पानी से नहाकर चौके पर बैठती है। लड़की आगे बैठती है, उसकी माँ पीछे बैठती है। बारात से लड़की का मौर मँगाकर माँ को पहनाया जाता है। लड़की के मामा लड़की और उसकी माँ के लिये वस्त्र आभूषण आदि लाते हैं। लड़की की माँ बाये हाथ से लड़की की आँखे बन्द करती है और नाई लड़की और उसकी माँ का नाखून काटकर पैर रँगता है तथा कानी अँगुली का नाखून काटकर आम के पत्ते मे लपेट लेता है। उसे लाल या पीले सूत से मजबूती से बाँधते हैं, उसे लड़की के हाथ में बाँधा जाता है जिसे कंगन कहते हैं और यही कगन चौथारी के दिन माँ को पहनाया जाता है जो सवा महीने तक पहनने के बाद बाँस की कोठी (बँसवारी) में डाल दिया जाता है। इस दिन खीर पूड़ी बनती है। मामा पाँच बार घूमकर भगिनी के मुँह में आम के पल्लव की नोक देता है, लड़की उसे दाँत से काटकर गिराती है और माँ उसे अंजलि में लेती है।

'इमली घोंटाई' की यह विधि चिउढारी के बाद होती है। लड़की का मामा अपनी बहन को इमली घोंटाकर इस विधि को सम्पन्न करता है और कुछ उपहार भी देता है। इस विधि को सम्पन्न करते हुए कहीं-कहीं लड़की की माँ रोती है यह सोचकर कि आज से उसकी सन्तान पराई हो गई।

'इमली घोंटाई' के गीतों की विषयवस्तु प्राय: चिउढारी आदि के गीतों की तरह ही होती है। कोई बहन मायके की पियरी पहन कर ही विधि करना चाहती है। समय पर उसका भाई आवश्यक सामग्री के साथ आता है, जहाँ उसका अच्छा स्वागत होता है। वह देर से आने के लिये क्षमा-प्रार्थना करते हुए बहन से मन का क्रोध शान्त करने के लिये कहता है तथा अपनी लाई हुई चुनरी पहनने का अनुरोध करता है।

'इमली घोंटाई' की विधि के लिये लड़की की माँ अपने नैहर तथा ससुराल के सभी स्वजनों को बुलाती है। समय पर भाई के न आने से वह विकल हो उठती है। वाचाल दासी कह उठती है कि तुम्हारा मायका गरीब है, इसीलिये कोई नहीं आया। दासी के द्वारा इस अपमान की बात वह सास और देवर से कहती है। देवर भी उसे आवश्यक सामग्री लाने का आश्वासन दे मायके को भूल जाने के लिये कहता है। पर क्या कोई स्त्री अपने मायके को भूल सकती है ? इस अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है —

१. पाँव, २. नवाते हैं, ३. पूतों फलो, पुत्रों से परिपूर्ण हो।

आरे आरे चेरिया लँउड़िया[१] त सुनहु बचन मोग ए
चेग्यिा, देखि आऊ भइया के बाट, बीरन भइया नाहिं अइले ए
दुअरहि घोड़ा हेहेनइले पयर[२] घहरइलनि[३] ए
आरे सीता आइ गइले भइया तोहार, इमली घोंटइहनि[४] ए
आरे आरे बहिनी कवन बहिनी चउक[५] बिलमाऊ[६] ए
नाहि रुपइया नाहि रे धेनु गइया
मँड़वा लजइले[७] कवन देइ के भइया
आरे आरे भइया कवन भइया, भइया तुहुँ आवहु ए
अरर्पी[८] से आऊ दरपी[९] से आऊ बहिनी
कवन देइ के इमली घोंटाऊ ए।

आम-महुआ विवाह

यह प्रथा विशेष रूप मे कायस्थों में होती है। बगीचे में जाकर आम और महुआ की पूजा की जाती है। आम और महुए के विवाह की विधि भी सम्पन्न की जाती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत में आम के वृक्ष की पूजा करने का उल्लेख होता है तथा आम्र वृक्ष से हरिस की माँग की जाती है। हरिस हल का वह लट्ठा है जिसके एक छोर पर फाल वाली लकड़ी तथा दूसरे छोर पर जुआ रहता है। हरिस विवाह संस्कार में मण्डप पर गाड़ा जाता है। आम के पल्लव से होम करने का भी उल्लेख इन गीतों में होता है। उस होम का धुआँ आकाश तक जाकर पितरों को आनन्दित कर देगा और वे सभी अपनी वंशवृद्धि की सूचना से उल्लसित हो उठेंगे--

राजा दुअरिया रे अमवे[१०] के गछिया
काहे तोरा अमवा रे पउरेला[११] डढ़िया[१२]
हाथे सिन्होरवा पहिरे पटोरवा[१३]
आरे चलली कवन देई अमवा मनावे
सुनऽ सुनऽ अमवा हो हमरी बचनिया[१४]
आज हम अइलीं ललनजी के चोरिया[१५]
काल[१६] हम अइबो हो सजन[१७] बटोरी
राति[१८] तोरा अमवा रे हरिसी गढ़इबो
पल्लो[१९] तोरा अमवा रे हुमिया[२०] करइबो
हुमिया के धुइयाँ[२१] लागेला अकसवा
से धुइयाँ देखि पीतर[२२] हो जइहें निहाल[२३]।

किसी-किसी गीत में गृहकार्य में कुशल विवाहयोग्य कन्या का भी उल्लेख होता है।

---

१. दासी, २. पाँव, ३. दुख गये, ४ इमली घोंटाएँगे, एक विशेष विधि, ५. चौक, ६. पुराओ, ७. लज्जित हुए, ८. अभिमान, ९ दर्प, १० आम का, ११. दूर-दूर तक फैली है, १२. डाली, १३. रेशमी वस्त्र, १४. वचन, १५. चोरी से, १६. कल, १७. स्वजन, कुटुम्बी, १८. रात को, १९. पल्लव, पत्ता, २०. होम. २१. धुआँ, २२. पितर, २३. आनन्दित।

शिव-विवाह

विवाह के अवसर पर शिव विवाह के गीत भी गाये जाते हैं। इन गीतों में शिव और पार्वती के आपस के वाद-विवाद या शिव की बारात आदि का वर्णन रहता है। कहीं शिवजी के लिये पार्वती की तपस्या का वर्णन है, कहीं शिव-पार्वती के सारी रात जुआ खेलने की चर्चा है, कहीं दक्ष के यज्ञ में अपमानित हुई सती की वजह से शिव द्वारा यज्ञ-ध्वंस की चर्चा है तो कहीं शिव के साथ पार्वती के छाया की तरह लगे रहने का वर्णन है। कहीं पार्वती शिवजी के नशे की खिल्ली उड़ाती हैं तो शंकरजी उनके नैहर का ताना देते हैं। जब गौरी अपने पिता के लाड़ प्यार की चर्चा करती है तो महादेव कहते हैं कि पिता के घर का लाड़-प्यार या सुख सुविधा मात्र चार दिनों की है। किसी-किसी गीत में पार्वती की अनुमति से शिवजी के दूसरे विवाह का भी उल्लेख है--

मचिया बइठल तुहूँ बारू[१] ए गउरा देइ
सुनऽ गउरा बचन हमार हे
आरे बीटिया[२] एक हम देखल बिरिछ तर
कहतू त करतीं बिआह हे।
केकर अंगवट[३] केकर चंगवट,[४]
केकर अइसन लामी[५] केस हे
आहे केकर अइसन धनि अँगवा के पातर
काहे कइनी दोसर बिआह हे
इयरी, पियरी पेन्हि निकलेली गउरा देइ
सवतिन परीछि[६] घर लावहुँ हे
लुगवा[७] उठाइ जब देखली गउरा देइ
आरे ई त हई बहिना हमार हे
बहिनी के देखि गौरी रोए धोए लगली
ठोके लगली आपन कपार[८] रे
किया तोरा बहिनी हो बरो[९] नाहीं जुरले[१०]
काहे भइलू सवतिन हमार हे
तोहरो लड़िकवा खेलइबो हो बहिनी
आहे करबो रसोइया जेवनार हे
अइसन असीस तुहूँ दीहऽ ए गउरा देइ
सिव संग भुगतब[११] राज हे
मंगिया के जूर[१२] तुहूँ होइहऽ ए बहिनी
कोखिया के होइहऽ बिहून[१३] हे

१. हो, २. कन्या, ३. अंगवस्त्र, अंगिया, ४. अंगवट के साथ प्रयुक्त होने वाला शब्द, ५. लम्बे, ६. परिछन करके, ७. साड़ी, ८. सिर, ९. वर, १०. जुटा, मिला, ११. भोगूँगी, १२. जूड़ा, सौभाग्यवती, १३. विहीन।

साढ़[1] का कोना बइठी कढ़िहऽ गोबर
सिवजी का सेज जनि जइहऽ हे।

बारात में विचित्र बारातियों और शिवजी की विचित्र वेशभूषा देखकर लोग डरते हैं। पार्वती की माँ ऐसा दामाद देखकर रोने लगती हैं। विवाह की विधियाँ सम्पन्न होने पर जब शिवजी कोहबर में जाते है तो सलहज दरवाजा छेंककर उनसे पुरस्कार चाहती है। शिवजी उससे परिहास करते हुए कहते हैं कि मैं आपको आभूषण तो दूँगा ही, साथ ही आपकी ननद की उपेक्षा करके आपका दास बना रहूँगा --

भइले बिआह चलले सिव कोहबर
सरहजि छेकेलीं दुआर ए
हमरा के जोग नेग दीहीं[2] सिव ठाकुर
तब रउरा ढारी[3] न पाँव ए
तोहरा के देबो सरहजि दूनू कान तरिवन[4]
गले गजमुकता के हार ए
रउरा ननदी जी के हम नाहिं होइबो
होइबो मैं दास तोहार ए।

कहीं शंकरजी का चमत्कार इस रूप मे दिखता है कि पार्वती को घर में अन्न का दाना भी नही मिलता, लेकिन शंकरजी के कहने पर जब वे जाकर देखती हैं तो चावलों से कोठी भरी मिलती है। पर पार्वती का भी चमत्कार कम नहीं है। शिव पार्वती दोनो गंगा स्नान के लिये जाते है। रास्ते में पानी बरसता है, जिससे शिवजी तो भींगते हैं पर पार्वती नहीं भींगतीं। शिवजी इसका रहस्य जानना चाहते हैं तो पार्वती बताती हैं कि उन्होंने अपनी सास और ननद की हर इच्छा पूरी की, उनका आदर जतन किया, इसलिये उन्हें ऐसी शक्ति मिली। किसी-किसी गीत मे शिवजी पार्वती के चरित्र पर शंका करते हुए पाये जाते हैं। पार्वती बहुत प्रकार से शपथ खाकर अपना विश्वास दिलाना चाहती हैं किन्तु शिवजी नहीं मानते तो अन्त में वे पृथ्वी से फटने का अनुरोध करती हैं और धरती में समा जाती हैं। यह प्रसंग सीता के पाताल प्रवेश से साम्य रखता है--

सिवजी जे चलले हो उतरी बनीजिया[5]
गउरा मंदिलवा धइले ठाढ़ हो
बारह बरीस पर सिवजी लवटलनि
गउरा से माँगेलन विचार हो
जब रे गउरा देइ सुरुज गोड़ लगली
सुरुज छपित[6] होइ जाइ हो
जब रे गउरा देइ गंगाहि हाथे लिहली
गंगा में परि गइले रेत हो
जब रे गउरा देइ सरप हाथे लिहली

---

१. गोशाला, २. दीजिए, ३. रखिये, ४. आभूषण, ५. उत्तर दिशा की ओर, ६. ओझल।

सरप बइठेले फेटा[१] मारि हो
इहो कीरियवा[२] गउरा हम ना पतियाइब[३]
बाम्हन चरनिया छुइ आइ हो
जबरे गउरा देइ बाम्हन चरन छुअली
बाम्हन गिरले मुरछाइ[४] हो
फाटहु धरती हो हमहुँ समाइबि
अब ना देखबि संसार हो
अब ना देखबि पापी मुँह हो।

कहीं शिवजी गौरी पर अपनी भाँग की झोली की चोरी लगाते है। पार्वती अपनी निर्दोषिता सिद्ध करती हैं। शिवजी को यह भी संदेह है कि पार्वती अपने नेहर में ससुराल की निन्दा करती हैं, पर पार्वती ऐसा न करने का विश्वास दिलाती हैं। तब शंकरजी उन्हें कुछ दिनों के लिये मायके जाने की अनुमति देते हैं।

राम-विवाह

विवाह समारोह के अन्तर्गत 'शिव विवाह' की भाँति 'राम विवाह' के गीत भी गाये जाते हैं।

सीता के विवाह योग्य होने पर राजा जनक पंडितों को उपयुक्त वर ढूँढ़ने के लिए कहते हैं। इसके लिये धनुष-भंग द्वारा स्वयंवर का आयोजन किया जाता है। आमंत्रित बड़े-बड़े वीर राजा भी जब धनुष नहीं तोड़ सके तो राम ने धनुष के चार टुकड़े कर दिये। पहला टुकड़ा इन्द्रलोक मे, दूसरा पाताल में, तीसरा गंगाजी के बीच गिरा और चौथा परशुराम के पास पहुँचा। परशुराम शंकर के धनुष टूटने से क्रोधित होकर राम से युद्ध करने को तत्पर हो गये। यह देखकर सीता चिन्तित हो उठीं। वे सूर्य देवता से प्रार्थना करने लगीं कि अगर मेरी प्रतिष्ठा बच गई तो मैं आपको सोने का छत्र चढ़ाऊँगी।

राम-लक्ष्मण को देखकर राजा जनक पूछते हैं कि ये दोनों कुँवर किसके हैं? उन्होंने यह भी कहा कि जो शिव के धनुष के तीन खण्ड करेगा, उसी से सीता ब्याही जायेगी। राम ने उस धनुष के तीन टुकड़े करके सीता से विवाह किया और सबने उनका जय-जयकार किया —

किनका के एहो[५] दूनो कुँवरा, जनक पूछे मुनि जी स
गाइ के गोबर अँगना निपावल[६]
गजमोती चउका पुरावल[७]
धनुष देलन ओठंगाई,[८] जनक पूछे मुनि जी से
जे एहो धनुस करत तीन खंड

१. कुंडली मारकर, २. शपथ, ३. विश्वास करूँगा, ४. मूर्च्छित होकर, ५. ये, ६. लीपा गया, ७. पूरा गया, ८. किसी चीज के पहारे रख दिया।

सीता बियाह घरवा ले जायत हो
उठल सिरी रामचन्दर धनुस उठवला[1]
धनुस कयला[2] तीन खंड, जनक पूछे मुनि जी से
भेलो[3] बियाह चलल राम कोहबर[4]
मुनि सब जय जय बोले
अब सिय होयल[5] बियाह जनक पूछे मुनि जी से ।

'राम विवाह' के किसी गीत में बारात सजाने, बारात प्रस्थान करने, द्वार पूजा, परिछावन, विवाह और कोहबर में प्रवेश करते हुए सखियों की ठिठोली का वर्णन किया जाता है। कहीं कहीं रामकथा से इतर प्रसंग भी मिलते हैं यथा पनिहारिन के रूप में प्यासे राम को सीता का मिलना, उनकी बाँह पकड़ लेना और उन्हें अपनी पत्नी बनाना।

सीता के विषय में जनकपुरी के जिस व्यक्ति से पूछा जाता है वह बताता है कि सीता की ज्योति के समक्ष चाँद और सूर्य की ज्योति भी फीकी है।

एक गीत में राम के विवाह के लिये कौशल्या चिन्तित बैठी हैं। राजा दशरथ तब जनकजी के द्वार पहुँचते हैं जहाँ उनका भव्य स्वागत करने के बाद कुशल-क्षेम पूछी जाती है। कौशल्या रानी की चिन्ता की बात सुनकर राजा जनक उन्हें आश्वस्त करते हैं कि जेठ बैशाख की उत्तम लगन में सीता का राम से विवाह हो जायेगा।

मचियहि बइठल रानी कोसिला रानी,
सुनीं राजा बचन हमार हे
जिया[6] जनम भोग एकहु न सूझेला,
जाहि घर राम कुँवार हे
एतना बचन जब सुने राजा दसरथ
घोड़ा पीठ भइले असवार हे
झीनि झीनि कपड़ा बेसाहि[7] राजा दसरथ
चलि भइले रीसीजी[8] के दुआरे
भीतर बानीं[9] कि बाहर जनइया रीखी[10]
दुअरा पर दसरथ ठाढ़ हे
एक हाथ लेले रीखी झंझर[11] गड़ुअवा[12]
एक हाथ सिंहासन पाट[13] हे
सोने के गड़ुअवा गोड़वा[14] धोईं राजा दसरथ
बइठीं सिंहासन पाट, कहीं ना अवध कुसलात हे
कुसल बाड़े[15] अवध ए जनइया रीखी
कुसल चाहीले तोहार हे

---

१ उठाया, २. किये, ३. हुआ, ४ विवाह के बाद दूल्हे दुल्हन का वह घर जिसमें कुलदेवता की पूजा तथा कुछ अन्य विधियाँ की जाती हैं, ५. हो गया, ६. जीवन, ७. खरीद कर, ८. ऋषि जी ९. हैं, १०. जनक ऋषि, ११. चौड़े मुख का पानी रखने का बर्तन, १२ टोंटीदार बर्तन, १३ पीढ़ा, १४. पैर, १५ है।

एक नाहिं कुसल बाड़ी कोसिला रानी
जाहि घर राम कुँवार हे
अगहन दिनवा कुदिनवा राजा दसरथ
आवे देहु जेठ बइसाख ए
जेठ बइसखवा के उत्तम लगनिया
सीता बियाहि घर जास[१] हे।

सम्मरि (स्वयंवर)

विवाह के अवसर पर मिथिलांचल मे कहीं कहीं 'सम्मरि' गीत गाने की प्रथा है, जिसे 'स्वयंवर' का अपभ्रंश कहा जा सकता है। इस गीत में सीता स्वयंवर में धनुष-भंग की प्रतिज्ञा का वर्णन है। लोक-लोक से राजा, महाराजा और देवतागण निमंत्रित हैं किन्तु धनुष-भंग का प्रण तो श्रीराम ही पूरा करते हैं, तब सीता का विवाह उनसे होता है और बाजे-गाजे के साथ बारात विदा होती है।

'स्वयंवर' का अर्थ स्वयं वर को ढूँढ़ना है। यह प्राचीन परम्परा थी जिसके अनुसार उच्च कुल की कन्याओं को अपनी इच्छानुसार वर चुनने का अधिकार था। इसी कारण इस प्रथा का नाम 'स्वयंवर' पड़ा। मिथिला में गाया जाने वाला स्वयंवर अर्थात् सम्मरि गीत इस प्रकार है—

नगर अयोध्या राज उचित थिक[२], जहँ बसु[३] दशरथनन्द यो
राम का जोरी बसथि जनकपुर, छपन कोटि देव दान यो
राजपाट पर रामजी बइसल[४] झटकि चलु बरिआत यो
अठारह छौंहनि[५] बाजन बाजै सवा लाखहि ढोल यो
आमक पल्लव कंगन बान्हल ब्रह्मा वेद पढ़ाबि यो
भेल विवाह चलल राम कोवर[६] सीता लै अंगुरि धराबि[७] यो
ऋषि मुनि चलला नहाय धनुष तर नीपल[८] हे
अजगुत[९] हम एक देखल, धनुषतर नीपल हे
भल[१०] कएलौं[११] आहे सीता भल कएलौं धनुषतर नीपल हे
एहि विधि रहब कुमार जनम कोना बीतत हे
हम नहिं जानल बाबा कि पूजब भवानिय हे
घुरमि-घुरमि[१२] सीता पूजथि कि पूजथि भवानिय हे
खँसल[१३] सुगंधित फूल इन्द्रलोक मोहित हे
अगिलहिं घोड़ा राजा रामहि पिछलहिं लछुमन हे
फेरि दिअ[१४] आहे सीता आरति, फेरि दिअ धूप दीप हे
फेरि दिअ सखिया सलेहर[१५] जनकपुर नन्दिनि हे
होयब अयोध्या क रानी कि तुरही बजायब हे।

---

१. जाये, २. है, ३. रहते हैं, ४. बैठे हैं, ५. अक्षौहिणी, ६. कोहबर, ७. पकड़कर, ८. लीपा हुआ, ९. आश्चर्य, १०. भला, ११. किया, १२. परिक्रमा करके, १३. टपका, १४. लौटा दो, १५. सहेलियाँ।

बेटा-विवाह

जैसा कि नाम से स्पष्ट है- बेटे के विवाह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'बेटा-विवाह' के गीत कहलाते हैं। वस्तुत: इस अवसर के गीत बेटे के तिलक के अवसर से ही गाये जाने लगते हैं। जब कन्यापक्ष के लोग लड़के के यहाँ तिलक चढ़ाने आते हैं तो लड़के के लिये वधूपक्ष से आये सामानों में वरपक्ष की स्त्रियाँ दोष निकालती हैं और कहती हैं कि हमारे पुत्र को ठग लिया गया—

बाबू[1] सिर जोग[2] टोपी त न आयल
बाबू के ठग के ले गेल सुनहु लोगे
बाबू के सेंतिए[3] ले गेल सुनहु लोगे
रामजी कोमल बर लइका[4] सुनहु लोगे

किसी किसी गीत में दूल्हे के बल पौरुष का बखान किया जाता है। इधर वर को अपने पौरुष का अभिमान है तो उधर कन्या भी अपने पिता और भाई की दुलारी है। वह इतनी आसानी से पति का आधिपत्य स्वीकार करने को तैयार नहीं। किसी-किसी गीत में बारात, डाला, दौरा और दूल्हे को सजाने का उल्लेख किया गया है। जिसके जिम्मे जो काम है, उससे उसी काम के लिये कहा जाता है

सभवा[5] बइठल तोहें दादा, सभे[6] दादा उठिकर
हे साजहु[7] बरियतिया[8] उठकर
मचिया बइठली तोहें दादी, सभे दादी उठिकर
हे साजहु डाला-दउरवा[9] उठिकर
ससुरा से आयती बहिन सभे बहिनी उठिकर
हे आँजहु[10] भइया अँखिया उठिकर
कथि[11] लाय[12] मुँहमा[13] उगारब[14] कथि लाय
आँजहु भइया के अँखिया उठिकर
तेल रे उबटन लाय मुँहमा उगारब
कजरवा लाय हे आँजब भइया के अँखिया उठिकर ।

कोई दूल्हा एक कुमारी कन्या को वश में कर लेता है। कन्या पूछती है—बिजली की चमक जैसे तुम्हारे दाँत हैं और कतरे हुए पान की तरह पतले होंठ। इतना सौन्दर्य रहने पर भी तुम कुँवारे क्यों रह गए? दूल्हा उत्तर देता है— मेरे परिवार के लोग विभिन्न कार्यों में व्यस्त थे, इसलिये मेरी चिन्ता नहीं कर सके, किन्तु अब मेरा विवाह होगा।

कहीं मण्डप में होम के धुएँ से दूल्हा बेचैन हो उठता है। वह दुल्हन से पंखा झलने को कहता है। दुल्हन लज्जावश ऐसा करने से इन्कार करती है तो दूल्हा दूसरा विवाह करने की धमकी देने लगता है। लाचार दुल्हन लोक-लज्जा त्यागकर उसके लिये

---

१. पुत्र, २. योग्य, ३. मुफ्त, ४. नादान बालक, ५. सभा में, ६. सब, ७. सजाओ, ८. बारात, ९. डाला-दउरा—जिसमें वस्त्र, मिष्ठान्न रखे जाते हैं, १०. अंजन करो, ११. क्या, १२. लाकर, १३. मुँह, १४. साफ करूँ।

सर्वस्व त्याग करने को प्रस्तुत होती है।

कहीं दूल्हा विवाह विधि के बीच अपनी दुल्हन से उसकी दादी, चाची, माँ, भाभी आदि की पहचान कराने को कहता है। लजीली दुल्हन कहती है--अभी मण्डप मे मायके और ससुराल के लोग हैं। कोहबर में मैं आपको सब कुछ बताऊँगी। वहाँ जाकर वह बताती है कि कानो मे चाँदी के कर्णफूल पहने मेरी दादी, सोने के कर्णफूल पहने चाची, पीले वस्त्रों वाली माँ और लहरा-पटोर पहने मेरी भाभी हैं।

किसी किसी गीत में दुल्हन की लज्जा एवं दूल्हे के अल्हड़पन का वर्णन है। लाल गाय के लाल बछड़े का दूध मस्त होकर कोई युवक पीता है और दूध पीकर हठ करता है कि मेरा कब विवाह होगा? उसे उत्तर मिलता है कि जेठ बैसाख के महीने में सुघर सोनार से तुम्हारी मौर बनवाई जायेगी। मोती की झालर लगी कीमती और सुन्दर मौर पहन कर दूल्हा विवाह करने गया। विवाह की विधि के बीच मौर की लड़ी से कुछ मोती बिखर गए। दूल्हे ने दुल्हन से कहा तुम जरा दीपक दिखा दो ताकि मैं मोतियो को चुन लूँ। दुल्हन ने विनय से कहा एक तरफ मेरे मायके के लोग हैं, दूसरी ओर ससुराल के लोग, मैं कैसे दीपक दिखाऊँ? अल्हड़ दूल्हा इसे अपनी अवहेलना समझता है और निश्चित अवधि के पहले ही उसे विदा कराकर ले जाने की धमकी देता है

लालहि गइया के लाल बछेरवा[१] हो, दुधवा जे पीएला डँफोर[२] ए
माई के गोदिया में दुलहा कवन दुलहा, दुधवा जे पीएला डँफोर ए
दुधवा पीयत बाबू अलुरी[३] बहुत करे, कब हम बिअहन जाइब ए
आवे देहु बाबू रे जेठ बइसखवा बसे देहु सुघर सोनार ए
मोहरा[४] कटाइ[५] बेंटा मउरी[६] गढ़ाइबि मोतियन झालर लाइ ए
निहुरन[७] लागेले दुलहा कवन दुलहा झरेला मउरिया के झोंप[८] ए
तनी एक[९] दियरा दिखावऽ मोरी कामिनी बिनबो[१०] मउरिया के झोंप ए
कइसे में दियरा दिखाईं ए प्रभुजो बिनब मउरिया के झोंप ए
एक ओर बाड़े हो नइहर के लोगवा एक ओर सजन[११] तोहार ए
अइसन बोल जनि बोलिहऽ ए सुहवा[१२] मोरा बूते[१३] सहलो ना जाय ए
होत भिनसार[१४] हम डँड़िया-फनाइब[१५] देखिहें नइहर सब लोग ए।

पर्याप्त दहेज नही मिलने के कारण कोई पिता अपनी बहू को विदा कराकर नहीं लाया। लड़के की माँ पूछती है--क्या दुल्हन अंधी है, लँगडी है या छोटे कुल की है? किस अवगुण से तुम उसे छोड़ आये हो? पिता कहता है--लड़की में सभी गुण हैं किन्तु उसके पिता ने दहेज नहीं दिया, इसीलिये मैं उसे छोड़ आया। लड़के की माँ उसे धिक्कारती हुई कहती है- दहेज तो नेटुए का नाच है। बेटे-बहू से घर भर जायेगा। हमारा धन्य भाग्य जो हमें लक्ष्मी जैसी बहू मिली।

---

१ बछड़ा, २. मस्त होकर, ३. कुछ माँगने के लिए हठ करना, ४. मुहर, ५. भजाकर, ६. मौर, ७. झुकने लगे, ८. झालर, ९. जरा-सा, १०. चुनूँगा, ११. स्वजन, कुटुम्बी, १२. सुगृहिणी, १३. मुझसे, १४. प्रातः, १५. डोली पर चढ़ाकर विदा कराऊँगा।

कहीं हीरे माणिक जड़ी मौर पहन कर दूल्हा ससुराल जाता है। गले में शोभ रहा है फूलों का गजरा। उसके इस रूप को देखकर स्नेहवश सास पूछती है कि उसे किसने सजाया सँवारा? दूल्हा कहता है - पिता ने जामा-जोड़ा पहनाया, अम्मा, चाची और बहन ने उसमें हीरे-लाल टाँके, भाभी ने चन्दन से सँवारा और बहनोई ने जूते मोजे पहनाए।

विवाह में ससुराल मे तरह तरह के हास-परिहास होते हैं। कोई दूल्हा मालिन से चारु चित्रित मौर बनाने का अनुरोध करता है। उसे पहन कर वह ससुराल जाता है। सास परिहास करती है कि क्या तुमने माली मालिन के घर जन्म लिया है, जिन्होंने इतनी सुन्दर मौर बनाई है। दूल्हा उन्हे समझाता है कि हमारे पिता ने माली-मालिन को अपनी जमीन में रैयत बनाकर बसा लिया है।

कहीं दूल्हा कोहबर मे सो जाता है। सास पूछती है- - क्या मेरी बेटी कुरूप है अथवा सम्मान में कोई कमी हुई? दूल्हा कहता है- - थकान के कारण मुझे नींद आ गई, अन्य कोई बात नही। तिलक के बाद मे यह गीत गाया जाता है।

विवाह के कुछ गीतों में प्रतीकों का भी सहारा लिया गया है। एक गीत मे कसैली को लडकी का प्रतीक बनाया गया है। दूल्हा अपने ससुर के बगीचे में जाकर कसैली तोडता है। लड़की का पिता लड़के के पिता को पत्र लिखकर शिकायत करता है। लड़के का पिता पत्र का जवाब देता है - मेरा लड़का कसैली का भूखा था, इसलिये उसने कसैली की डाली मरोडी -

मोरा पिछुअरवा कसइलिया[1] के डढ़िया[2]
झिलमिल करेला डाढ़ ए
ताहि तर दुलहा कवन दुलहा
तूरेले[3] कसइलिया के डाढ़ ए
चीठिया जे लिखलन समधी कवन समधी
दिहले समधिया के हाथ ए
बरजहुँ[4] ए समधी अपना दुलरुआ
ममोरले[5] कसइलिया के डाढ़ ए
चीठिया जे लिखले बेटा के बाबा
दिहले समधी जी के हाथ ए
हमरो दुलरुआ कसइलिया के भूखल
ममोरेला कसइलिया के डाढ़ ए।

एक गीत में कोयल दुल्हन का प्रतीक है। एक तपस्वी के आँगन में एक घने वृक्ष पर एक कोयल बोलती है। उसकी बोली सुनकर सोये हुए राजा की नींद टूटती है। वे नाऊ को कहते हैं कि व्याधा को बुलाओ और उससे कहो कोयल को पकड़ लाये। व्याध कहता है— इतने दिन मुझे नगर में रहते हो गये, कभी तो बुलावा नहीं आया।

---

१. कसैली, सुपारी, २. डाल, ३. तोड़ता है, ४. मना करो, ५. मरोड़ता है।

इस समय राजा मुझे मारेंगे, डाँटेंगे या देशनिकाला देंगे। नाऊ कहता है--- यह सब कुछ नहीं, जिस कोयल की मीठी बोली राजा ने सुनी है, उसे पकड़ लाओ। डाल-डाल पर व्याध जाल लगाता है, पत्ते-पत्ते में कोयल छिपती है और शाप देती है--- रे व्याध, तुम्हारा पुत्र मरे जो मुझे उजाड़ने आये हो। व्याध कहता है-- हे कोयल, डरो मत, न हृदय में वैराग्य लाओ। तुम्हें रहने के लिए मैं सोने का पिजड़ा दूँगा और खाने के लिये दूध-भात दूँगा। कोयल उसके पुत्र को चिरंजीवी होने का आशीर्वाद देती है, जिसने उसे सुखी किया।

विवाह-गीतों मे कुछ ऐसे भी गीत हैं, जिनका विषय विवाहेतर होता है। एक गीत में ऐसा उल्लेख है कि बाँस कटवाते समय राजा दशरथ के हाथ में बाँस की खमाँची गड़ जाती है। कैकेयी की सेवा से उनका दर्द दूर होता है। राजा प्रसन्न होकर रानी कैकेयी को दो वरदान माँगने को कहते हैं। कैकेयी माँगती है---राम का वनवास और भरत को राजगद्दी। दशरथ कहते हैं---तुमने ये वर माँगकर मेरा कलेजा ही निकाल लिया है। अयोध्या के दुलारे राम को मैं कैसे वनवास दूँगा?

एक किसान दम्पति सोये हैं। रात में भैंस भाग जाती है। पत्नी पति को जगाकर कहती है---ऐसी भैंस को बेचकर मुझे आभूषण गढ़ा दो, फिर हम निश्चिन्त होकर सोयेंगे। पति कहता है--- मैं तुम्हें बेचकर भैंस खरीदूँगा और रात भर उसे चराऊँगा। पत्नी कहती है--- मुझे बेचोगे तो कूटने, पीसने और खाना पकाने का काम कौन करेगा? रूखे स्वभाव का पति कहता है---कूटने, पीसने और खाना पकाने के लिये दासी रख लूँगा। मेरी बहन दूध औंटेगी और माँ दही जमाएगी।

इस तरह के कई ऐसे गीत उपलब्ध होते हैं, जिनका विवाह के विषय में कोई संबंध नहीं है और जो मात्र धुनों के कारण 'विवाह गीत' के रूप में पहचाने जाते हैं।

बरा बनाई

बेटे के विवाह के अवसर पर अनेक प्रकार के रीति-रिवाज, अनेक प्रकार की विधियाँ होती हैं। यह एक प्रकार का गाली गीत ही है। वरपक्ष का मण्डप बनाते समय ननद द्वारा बरे बनाये जाने की प्रथा है। इस अवसर पर भाभी परिहास में ननद को छेड़ती है, गाली देती है---

माहे बरा पोवै बइठीं पगरैतिन छिनरो
औ आधा बरा धरिनि चोराय
मड़उआ मोरे खोंड़ किहिन
माहे छुरी लइकै बइठे कवन राम
काटौ भइया छिनरौ के नाक
मड़उआ मोरे खोंड़ किहिन।

यह प्रथा विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में प्रचलित है---

सेर भर उरदु, सवइया भर तेल
बरा पोवे चली हैं हिरौती देई।

कहीं-कहीं ननद भी भाभी के साथ गहरा मज़ाक करती है—

कइसी चतुर भौजाई रे, मन लागा देवर संग
बारह बरिस सैंया संग सोई, तबहूँ बाँझ कहाई रे
एक रात देवर संग सोई, नौ लरिका लै आई रे ।

चाकी-पूजन

विवाह के अवसर पर गृहस्थी की वस्तुओं को पूजने की प्रथा है। उत्तर प्रदेश में सिल, चक्की आदि की पूजा की जाती है। एक गीत इस प्रकार है --

चकिया के भीतर उरुद तौ घुरुर मुरुर करै
कउनी रनियवा के जग्गि तौ दलिया दरावै
चकिया के भीतर उरुद तौ घुरुर मुरुर करै
माया रनियवा के जग्गि तौ दलिया दरावै ।

कौड़ी-पूजन

ओखली को पूजते हुए यह गीत गाया जाता है---

धान कूटौ धना कूटौ पगरैतिन की ओखरी माँ धना कूटौ
धान कूटि के चाउर निकार, देउतन भात बनाव ।

वर्जन गीत

विवाह संस्कार प्रसन्नतापूर्वक सम्पन्न हो जाये इस कामना के साथ, आँधी-पानी या अन्य कोई बाधा न आवे, इसके लिये स्वयं उसी बाधा स्वरूप वस्तु से प्रार्थना की जाती है कि वह इस आयोजन को निर्बाध सम्पन्न होने दे-

आँधी पानी, तुमहूँ नेवाते, तीनि दिवस जनि आयौ
खई लड़ाई, तुमहूँ नेवाते, तीनि दिवस जनि आयौ
माछी कूछी तुमहूँ नेवाते, तीनि दिवस जनि आयौ
आकी बोकी तुमहूँ नेवाते, तीनि दिवम जनि आयौ ।

पगिया बाँधना

बारात में जाने के पूर्व दूल्हे को पगड़ी और मौर बाँधने की प्रथा होती है। दूल्हे के फूफा, बाबा तथा अन्य संबंधियों को पगड़ी बाँधने की विधि करनी होती है---

बुलाओ दुलहे के फूफा का
चुनि बाँधै दुलरुआ के पाग हो
धीरे से बोले दुलरुआ के फूफा
मैं बाँधौं दुलरुआ के पाग हो
बुलाओ दुलहे के बाबा का
लावैं माती हथिनिया छोड़ाई हो

बुलाओ दुलहे की आजी का
लावैं मांडो माँ मोहर गोहाई हो ।

माँ के दूध का मोल

बारात प्रस्थान करने से पूर्व माँ अपना आँचल बेटे के सिर पर रखती है। कहते हैं -- इस समय बेटे को माँ के दूध की कीमत देनी होती है। इस अवसर पर माता बेटे से कुछ भी माँग सकती है। उसकी माँग को पूरा करना बेटे का कर्त्तव्य हो जाता है ---

तू तौ चल्या पूता गौरी बियाहन
दुधवा कै मोल कइ लेहु
गइया के दूध बेटा हटिया बिकइहैं
मइया के दूध अनमोल ।

इसे एक प्रकार का 'परछन' भी कहा जाता है।

हरियाणा में 'घुड़चढ़ी' की रस्म के समय इस तरह के गीत गाये जाते है -

दूधी की धार मारू, माता नै कदे तू गुमानी भूल नहीं जा
याद दिलाऊँ सूँ अक आवेगी इक नई बहूरानी
बेटा भूल नहीं जा ।

भुइयाँ भवानी के गीत

'भुइयाँ' शब्द 'भू' से बना है, जिसका अर्थ है, भूमि, पृथ्वी। भूमि को माता, देवी माना गया है। बेटे के विवाह के अवसर पर विवाह-स्थल की भूमि से प्रार्थना की जाती है कि वह दूल्हे की रक्षा करे, जो विवाह के पवित्र बन्धन में बँधने जा रहा है -

वही रे देस की भुइयाँ भवानी
नाउँ न जानउँ तोहार
अपन दुलरुआ के बेहन पठयों
बार न बाँका जाय ।

जैंती जेंवाई

बारात प्रस्थान करने के पूर्व दूल्हे द्वारा भूखे लोगों को भोजन कराने की प्रथा उत्तर प्रदेश में किसी-किसी स्थान पर है। एक गीत इस प्रकार है, इसे 'जैंती जेंवाई' गीत कहते हैं ---

गंगा जमुनवा के नीर, कलस भरि लावयँ
भूखिन जैती जेवावयँ कवने रामापूत
जैती मुँहि मुँहि बोलय अरे जैती बोलयँ
भूखिन जैती जेवावयँ फलाने रामापूत ।

बन्ना

इस तरह के गीतों में लड़के वालों की ओर से लड़के के वस्त्र आदि का वर्णन होता है। विवाह के लिये जाते हुए लड़के को उसका बहनोई नये वस्त्र पहनाता है। इस अवसर पर 'बन्ना गीत' गाये जाते हैं

श्रीराम बन्ना बनिये जाली के ओट से
घनश्याम बन्ना बनिये जाली के ओट से
मउरी सँवारिये बन्ने लरियाँ सँवारिये
कलगी सँवारिये बन्ने जाली के ओट से
जामा सँवारिये बन्ने जोड़ा सँवारिये
मोजा सँवारिये बन्ने जाली के ओट से।

बन्ने की बानगी की अजब बहार है। वह सचमुच दुल्हन के योग्य है। किन्तु उसकी सुन्दरता को कहीं नजर न लग जाय---

आज बन्ना, केरा अजबी बहार रे बना
बाना[1] सूरती[2] गजबी सोहार[3] रे बना
बाना अपन अपन नयनमा सम्हार रे बना
बाना लगी जयतउ[4] नजरी के बान रे बना
बाना दुलहा हइ दुलहिन के जोग[5] रे बना।

कहीं दूल्हे के वस्त्राभूषणों की तुलना हरे भरे जौ के खेत से की गई है, जो सुख सौभाग्य का सूचक है

दुलहा के मौरी तोहरी अजब रे बने
बने हरिअर जव केरा[6] खेत रे बने
हरिअर हरिअर कसँउजा[7] रे बने
बने हरिअर जव-केरा खेत रे बने
दुलहा के कंठा तोहरी अजब रे बने
बने हरिअर जव-केरा खेत रे बने
दुलहा के जोड़ा तोहरी अजब रे बने
बने हरिअर जव-केरा खेत रे बने
हरिअर हरिअर कसँउजा रे बने।

दूल्हा अपनी ससुराल की प्रशंसा करता है जबकि उसके घर वाले उसकी ससुराल की शिकायत करते हैं। बन्ने की दादी पूछती है-- तुम्हारी ददिया सास कैसी है? दूल्हा कहता है---वह तो दूध जैसी है, मैंने ससुराल में छप्पन व्यंजन खाये। दादी कहती है--- इतनी बड़ाई तो न करो, तुम्हारी दादी सास तो खट्टे दही जैसी है और तुमने ससुराल में केवल शोरबा और भात खाया होगा -

---

१. दूल्हा, २. शक्ल सूरत, ३. शोभायमान, ४ जायेगी, ५. योग्य, ६. जौ का, ७. कास— एक घास विशेष।

बन्ना, दादी पूछे हँसि हँसि बात रे बना
बन्ना, कइसन हथुन[1] तोहर ददिया सास रे बना
बन्ना, हमर ददिया सास जइसे दूध रे बना
बन्ना, छप्पन रंग खइली ससुरार रे बना
बन्ना, एतना बड़इया[2] मति करु रे बना
बन्ना, खट्टा दही अइसन तोरे सास रे बना
बन्ना, झोर[3] भात खयलऽ ससुरार रे बना।

किसी-किसी गीत में दूल्हे के रामसदृश और दुल्हन के सीतासदृश होने का भी वर्णन है।

अवध प्रदेश के अन्तर्गत गोंड़ जनपद में गाया जाने वाला बन्ना गीत, 'बंदरा गीत' नाम से जाना जाता है। इस गीत में बन्ने के रूप एवं वेशभूषा की प्रशंसा की गई है

दुलहै तोरी अँखियाँ सुरमेदानी
दुलहे तोरा जोड़ा लाख कै रे
दुलहै तोरा जमवा नौ हजारी
दुलहै तोरा जुतवा लाख कै रे
दुलहै तोरा मोजा नौ हजारी
दुलहै तोरा सेहरा लाख कै रे
दुलहै तोरा पगिया नौ हजारी।

बनरा-बनरी (बुन्देलखण्ड)

बुन्देलखण्ड मे बनरा-बनरी अर्थात् वर-वधू के गीत भाँवर के पहले तक गाये जाते हैं—

रुनक झुनक बेटी मंडल डोलें
आजुल[4] लये हैं उठाय
कै मोरी बेटी तुम साँचे की ढारीं
कै गढ़ी चतुर सुनार
नै[5] आजुल मैं साँचे की ढारी
नै गढ़ी चतुर सुनार
माता की कुखियाँ[6] जनम लये हैं
रूप दये करतार।

दूल्हे की रूपसज्जा को देख स्त्रियाँ गाती हैं—

पलट देखो अँगना में रस बरसत है
रंग बरसत है, अबीर उड़त है
माथे हो, सैरो[7] बाँधो राजा बनरे
कलियों खों[8] देख मोरो जिया ललचत है
पलट देखो अँगना में रस बरसत है।

---

१. हैं, २. प्रशंसा, ३. शोरबा, रस, ४. पिता, ५. नहीं, ६. कोख से, ७. सेहरा, ८. को।

अवध प्रदेश के अन्तर्गत फतेहपुर जनपद में गाया जाने वाला एक बन्नी गीत इस प्रकार है -

महलों के बीच लाड़ो ने मोर मचाया
अरे बाबा नवल वर ढूँढ़ो, सुघर वर ढूँढ़ो
आजी देंगी कन्यादान लाड़ो ने मोर मचाया
अरे भैया नवल वर ढूँढ़ो, सुघर वर ढूँढ़ो
भाभी देंगी कन्यादान लाड़ो ने सोर मचाया ।

बना-बनी (राजस्थान)

राजस्थान मे 'बना' प्यार का सूचक शब्द है। किशोर व किशोरी के लिये बना व बनी शब्दों का प्रयोग होता है। यो जिनकी शादी होने वाली है उन्हें ही खासतौर से बनड़ा बनड़ी शब्दों की संज्ञा देकर गीत गाये जाते हैं -

बनड़ो उमायो ये बनी ये थारै कारणै
जांड़ी का उमायो ये बड़गौतम थारै रूप नैं ।

राजस्थान मे 'बना-बनी' को क्रमश. 'बींद' और 'बींदणी' संज्ञा भी दी जाती है।

टोना

विवाह के समय दूल्हे दुल्हन को टोना टोटका से बचाये जाने की विधि की जाती है। यह गीत वर वधू दोनों ही पक्षों की ओर गाया जाता है। टोना-टोटका को जोग टोना भी कहते हैं। यह एक विवाह की विधि है। वरपक्ष मे दूल्हे को ताबीज बनाकर दिया जाता है ताकि उसे किसी की नजर न लग जाय तो कन्यापक्ष की ओर उसकी सखी सहेलियाँ यह गीत गाती हुई घर घर घूमती हैं तथा अक्षय सौभाग्य की कामना करती है। सुहागिनों के सिन्दूर से कन्या का शृंगार किया जाता है ताकि किसी का जोग टोना दुल्हन पर न लगे। मुस्लिम रीति के अनुसार दुल्हन के रक्षार्थ उसके सुन्दर मुख पर सभी घर के लोग टोना पढ़ते हैं -

गोर सुन्दर मुख पर बारिके पढ़ डालो री टोना
सुन बेटी के दादा, सुन बेटी के नाना
दादा गाफिल मत रहो, चैन से पढ़ डालो री टोना ।

दुल्हन पर आसक्त रहने के लिये घर की स्त्रियाँ दूल्हे पर भी टोना करती हैं --

रंगीला टोना दूल्हे को लगेगा
यह रे टोना दादी बीबी करेंगी
रंगीला टोना सेहरे में लगेगा ।

एक गीत में दूल्हे के लिये टोने से बचने की खातिर लौंग के फूलों की ताबीज बनाने का वर्णन है---

बाबा के अँगना लवँग केर गछिया
फूल चुअए चारों कोना, रे मेरो टोना

फूल चुन चुन ताबीज बनैलों[1]
बान्हू[2] दुलरइता दुलहा बाजू रे मेरो टोना ।

कोई टोना पटना शहर से आता है और ससुर की गलियों में भटक जाता है। दूल्हा टोना करने वाले से विनयपूर्वक टोना न करने की प्रार्थना करता है, क्योंकि वह अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र है -

कहँमा से बेटा आएल रे टोनमा[3]
केकर गली आइ भरमल[4] रे टोनमा
ससुरा गलियवा में भरमलूँ रे टोनमा
गोड़ परूँ टोनमा न मारिहऽ रे टोनमा
बाबा हम ही एकलउता[5] रे टोनमा ।

एक गीत में दुल्हन को मछली माना गया है जो नैहर के तालाब से निकल कर ससुराल की छोटी नदी में आ गई है। उस अद्भुत लड़की ने दूल्हे पर टोना करके भरमा लिया है क्योंकि दूल्हा उसे जाल में फँसाकर जलाशय से निकाल लाया है।

दामाद को गहनों की चोरी का इल्जाम लगाकर भी टोना किया जाता है तो किसी गीत में ऐसा भी चित्र आया है कि दूल्हे की बातों से दुल्हन रूठ जाती है। उसे मनाने के लिये दूल्हा अपनी सलहज को बुलाता है। सलहज अपनी ननद को समझाती है और दूल्हे को भला-बुरा कहती है। इस तरह वह दोनों का मेल करा देती है।

कामण (राजस्थान)

राजस्थान में 'कामण' जादू-टोने को कहते हैं। लोकगीतों में रीति रिवाज, पुरानी प्रथाएँ, विश्वास और परम्पराएँ सुरक्षित हैं। राजस्थान के बहुत से हिस्सों में वर को जादू-टोने से बचाने के लिये कुछ डोरे पहनाए जाते हैं। वर और वधू को जब जुआ खेलाया जाता है तब वधूपक्ष की ओर से वर को हराने के लिये भी यह 'कामण गीत' गाया जाता है -

कूकड़ी काचो सूत जाय बांध्यो
नायण को पूत हार्‌यो ए ।

एक गीत में 'नींद घणेरी' शब्द का प्रयोग जादू-टोने के असर का प्रतीक है - -

रिमझिम करती महल पधारी
तो जागतड़ो सोय रयो
मोरी भुवाये नींद घणेरी ।

सहाना

विवाह का यह गीत वरपक्ष की ओर गाया जाता है। संभवत: इस शब्द की उत्पत्ति 'शहनाई' शब्द से हुई है। शहनाई एक शाही वाद्य है इसीलिये सहाना का तात्पर्य शाही या शाहाना गीत से है। सहाना की व्युत्पत्ति सुहाना से भी हो सकती है। 'सुहाना'

---

१. बनाया, २. बाँधो, ३. टोना, ४. भटक गया, ५. इकलौता।

शब्द 'शोभन' से बना है जो वर के लिये प्रयुक्त हो सकता है। जो भी हो, इस शब्द का मूल 'शोभा' शब्द से उचित प्रतीत होता है। मुस्लिम विवाह के अवसर पर तीन दिनों तक सहाना गाये जाते हैं। इनमें कहीं तो दूल्हा दुल्हन पर रीझता हुआ पाया जाता है, कहीं वह दुल्हन के लिये तरह-तरह के आभूषण लाने को प्रयत्नशील दीखता है, कहीं दुल्हन के सौन्दर्य की उपमा शुभ्र चाँदनी से दी गई है, कहीं दूल्हे के बागों में आने की चर्चा है---

बागों की अजब बहार, सहाना बन्ना बागों में उतरा
सहाने बन्ने का मैं सेहरा सँभालूँ
लाले बन्ने का मैं सेहरा सँभालूँ
लड़ियों की अजब बहार, सहाना बन्ना बागों में उतरा
लाड़ो का दुलहा बागों में उतरा
सहाने बन्ने का मैं जोड़ा सँभालूँ
जोड़े में लगे हीरा लाल
लाड़ो का बन्ना बागों में उतरा।

एक सहाना गीत में सहानी लाड़ो के बन्ना के बँगले में ठुमकने की चर्चा है। स्पष्ट है कि वधू सुहानी अर्थात् शोभनी है जिसका अपभ्रंश 'सहानी' हो गया है। इसी तरह वर सुहाना अर्थात् शोभन है, जिसका अपभ्रंश 'सहाना' हो गया है। एक सहाना गीत देखें---

सहानी लाड़ो ठुमकेगी बन्ना तेरे बँगले
सिर तेरे सरबंद का मौरी
लरियाँ लहरा लेबे रे
अंग तेरे रेसम का जोड़ा
चादर लहरा लेबे रे
संग तेरे सहानी बन्नो
घूँघट लहरा लेबे रे।

एक सहाना गीत में बताया गया है कि कोई दूल्हा हरे-हरे बाँस के मण्डप में अपनी मौर को सँभालता है। मौर के कारण दूल्हे को पसीना छूटता है। दुल्हन के सेवक अपने दामन से उसका पसीना पोंछते हैं---

हरियर मड़वा धयले[१] मउरिया[२] सम्हारइ[३] बंदे
मउरी के झोंक मजेदार, झमाझम रे बंदे
दुलहा के मउरी से छूटल पसीना बंदे
दुलहिन के चाकर बन्दे, दाँवन[४] से पोंछल पसीना बंदे
हरियर मड़वा धयले मोजवा सम्हारइ बंदे,
मोजा पर जूता मजेदार, झमाझम रे बंदे, चमाचम रे बंदे
दुलहा के मोजा से छूटल पसीना बंदे

---

१. पकड़े हुए, २. मौर, ३. सँभालता है, ४. दामन से।

दुलहिन के चाकर बंदे, दाँवन से पोंछल पसीना बंदे
हरियर मड़वा थयले, दुलहिन सम्हारइ बंदे
दुलहिन के घूँघट मजेदार झमाझम रे बंदे
दुलहा के अंग से छूटल पसीना बंदे
दुलहिन के चाकर बंदे, दाँवन से पोंछल पसीना बंदे ।

कहीं टीके के कारण रूठी बन्नी का जिक्र है, जिसे मनाने के लिये दूल्हा प्रयत्नशील है। टिकुली ढूँढ़ने के लिये वह गंगा-यमुना में जाल डालने को तैयार है, हाजीपुर के बाजार में जाने को प्रस्तुत है तथा उसके बदले ऐसा नौलखा हार लाने को भी तैयार है, जिससे सेज झलझल करेगी।

कहीं दूल्हा अपनी प्रियतमा दुल्हन के लिये तरह तरह के आभूषण व अन्य सामान लाना चाहता है। सोने की अँगूठी और टीके के लिये वह सोनार से झगड़ता है, चुनरी रँगाने के लिये रँगरेज से झगड़ा करता है और लहँगा सिलाने के लिये दर्जी से झगड़ता है।

कहीं-कहीं दूल्हे के परिवार के लोग ही उसे कहते हैं कि दुल्हन के उपयोग के लिये विविध सामग्री लेते आना। अपनी दुल्हन के लिये तुम सिन्दूर लेते आना, रँगरेज की गली से चुनरी लाना, दर्जी की दुकान से अंगिया लाना, मालिन के यहाँ से मौर लाना और सोनार की दुकान से अपनी दुल्हन के लिये अच्छे-अच्छे गहने लेते आना।

मेंहदी के पेड़ तले कोई दूल्हा स्वयं अपनी पगड़ी सँवारता है, क्योंकि उसे बाबा का पगड़ी सँवारना पसन्द नहीं। बाबा की सँवारी मौर उसे पसन्द नहीं। उनका जोड़ा सँवारना, बीड़ा सँवारना, मोजा सँवारना या पालकी सँवारना कुछ भी उसे पसन्द नहीं है, इसलिये वह स्वयं अपने को सँवारता है।

कोई दूल्हा ससुराल से अपने घर लौटने में देर करता है। घर के लोग विलंब का कारण पूछते हैं तो वह बताता है कि ससुर ने हाथी दिया, साले ने घोड़ा दिया, चढ़ने में देर हुई। सास ने मोहरें दीं, भँजाने में, गिनने में देर हुई। सलहज ने पान दिया, उसे चबाने में देर हुई और साली ने दी दुल्हन, सो मुझे सोते-सोते देर हुई।

आरे मोरे दुलहा कवन दुलहा कहँवा लवलऽ[१] देर
आरे मोरे ससुर दिहले हथिया चढ़त भइले देर
देबो कइले दिअइबो कइले चढ़े के बतलाइयो दिहले
आरे मोरे सार[२] दिहले घोड़वा चढ़त भइले देर
देबो कइले दिअइबो कइले चढ़े के बतलाइयो दिहले
आरे मोरे सासु दिहली मोहर भँजत भइले देर
देबो कइली दिअइबो कइली गने[३] के बतलाइयो दिहली
आरे मोरे सरहज दिहली बिरवा[४] चाभत[५] लागल देर
देबो कइली दिअइबो कइली चाभे के बतलाइयो दिहली ।

---

१. लगाई, २. साला, ३. गिनने के लिये, ४. पान, ५. चबाते हुए।

किसी ऊँचे मकान पर से चिड़िया की बोली सुनकर दूल्हा अपनी दुल्हन के पास जाने को प्रस्तुत होता है। माँ को डर है कि पुत्र अपनी पत्नी में आसक्त होकर माँ की उपेक्षा न कर दे किन्तु पुत्र आश्वस्त करता है तुमने मुझे जन्म दिया है, इसलिये तुम्हारा स्थान सर्वोपरि है। मैं पिता का सेवक हूँ, मेरी पत्नी तुम्हारी दासी बनकर रहेगी

ऊँचे मंदिल चढ़ि बइठे चिरइया बोले गहागही[1] बोले रे
ताहि बोली सुनी चलले दुलहा हम जइबो सुहवा[2] का देस रे
जब तुहूँ जइबऽ बाबू सुहवा का देसवा दुधवा के लीकि[3] मोहि देहु रे
दुधवा के लीकि अम्मां दिहलो ना जाला जनम के लीकि बलु[4] लेहु ए
हमहूँ त होइबो अम्मां बाबा के सेवकवा धनी[5] होइहें दासी तोहार ए ।

एक सहाना गीत में एक माँ को एकाएक पता चलता है कि उसका पुत्र विवाह करने जा रहा है। वह चिन्तित होकर कहती है कि यदि मुझे पता होता तो मैं अपने द्वार पर ब्राह्मण को रखती, चन्दन वृक्ष लगाती, माली और सोनार को बुलाकर रखती।

नहछू

'नख + क्षौर' अर्थात् नख छूने या काटने से 'नहछू' शब्द की व्युत्पत्ति हुई है। विवाह में नहछू अर्थात नख काटने की विधि होती है तो ये गीत गाये जाते हैं। तुलसीदास ने 'रामललानहछू' की रचना सोहर छन्द में की है। इससे ऐसा जान पड़ता है कि कहीं-कहीं विवाह के अवसर पर भी सोहर गाने का प्रचलन था। विवाह के अवसर पर नहछू नामक इस विधि को सम्पन्न कराने के लिये नाइन बड़ा इनाम माँगती है तो माँ कहती है कि बेटे और बहू के परिछन के बाद उसे मनचाहा इनाम मिलेगा-

गोर नउनिया त ठनगन[6] बहुत करे ए
ए हम लेबो दूनू हाथे कंगन तब नहछू करबि ए
मिनती[7] से बोलेली कोसिला रानी सुनहु नउनिया नू ए
राम सिया घर परिछबि[8] कंगन पेन्हाइबि ए ।

नाइन जब दुल्हन के नख काटती है तो दुल्हन की सुन्दरता के कारण उसे टकटकी बाँधकर देखती ही रह जाती है। रानी सुनयना उसे हाथ का कंगन और गले का हार देती हैं। नाइन हँसती हुई घर जाती है और दुल्हन के द्वार पर नौबत बजती है -

जबे पग छुअलक[9] नउनिया जय जय कहु सिय के
लछमी बिराजे हिरदा द्वार[10] जय जय कहु सिय के
एक नोह[11] छिलले[12] दोसर नोह छिलले
टुके-टुके[13] सिय मुँह ताके जय जय कहु सिय के
रानी सुनयना देलन हाथ के कंगनमा
अउरो देलन गलहार जय जय कहु सिय के

---

१. आनन्दमय, २. सौभाग्यवती, ३. मोल, महत्त्व, ४. बल्कि, ५. पत्नी, ६. हठ, ७. विनती, ८. परिछन करूँगी, ९. स्पर्श किया, १०. हृदय द्वार, ११. नख, १२. तराशा, १३. टुकुर-टुकुर, एकटक।

हँसत खेलइते घर गेइल नउनिया
दुअरे पर नवबतझार[१] जय जय कहु सिय के ।

खार-खूर छोड़ाई

जब वर विवाह के लिये प्रस्थान करता है तब उससे पहले उसे स्नान कराया जाता है। इस विधि मे धोबिन उसे स्नान कराती है और नेग लेती है। इस विधि को 'खार-खूर छोड़ाई' कहते हैं। इस स्नान का विशेष महत्त्व संभवत: इसलिये होगा कि विवाह संस्कार जैसे पवित्र कार्य के लिये शरीर को पवित्र करना आवश्यक है।

राम का विवाह है। राजा दशरथ उनके स्नान के लिये तालाब खुदवाते हैं, घाट बनवाते हैं। कौशल्या माता अपने राम को पालकी पर चढ़ाकर नहलाने के लिये ले जाती हैं। धोबिन मण्डप में झगड़ा करती है कि राम को नहलाने का न्योछावर कम है, मैं तो गजमुक्ता का हार लूँगी। कौशल्या कहती हैं --- जब राम ब्याह कर घर आयेंगे तब तुम्हें हार दूँगी---

राजा दसरथ जी पोखरा खनावले[२] घाट बन्हावले हे
कोसिला जी डँड़िया-फनावले[३] राम नेहवावले[४] हे
मँड़वहि झगड़े धोबिनिया निछावर थोड़ अहे[५] हे
रघुवर के नेहलइया[६] हमहीं गजहार[७] लेबो हे
जनु तोहें झगड़ू धोबिनिया निछावर थोड़ अहे हे
राम बिआहि घर अइहें त तोरा गजहार देबो हे ।

यह विधि विशेष रूप से कायस्थों में ही होती है।

सेहरा

सेहरा वरपक्ष की ओर गाया जाने वाला गीत है। इसमें अधिकतर वर के सजने सँवरने या उसके मनोभावों का चित्रण है। कहीं बन्ने की अपार प्रसन्नता चित्रित है तो कहीं उसकी नादानी। किसी सेहरा गीत में कहा गया है कि नदी किनारे लहलहाती दूब है, उसे चरने वाली मोरही गाय का दूध पीकर लड़का हृष्ट-पुष्ट हो गया है। वह विवाह के लिये हठ कर रहा है। विवाह के लिये मौर पहन कर वह श्वसुर की सँकरी गली में जाता है जिसमें फँसकर उसकी मौर की लड़ी झड़ने लगती है। यह देखकर दुल्हन की इच्छा होती है कि वह मौर की लड़ी को गिरने से रोक ले किन्तु लोक-लज्जावश वह ऐसा नहीं कर पाती ---

नदिया किनारे लहालहीं[८] दुभिया[९] चरले सोरहिया के गाय रे
ओही रे बछरवा के गभरू[१०] बनवलों पियले कटोरबे दूध हे
दुधवा पिअइते बाबू अङ्गुरी पसारे[११] माँगल मउरी गुँथाय हे
होए द बिहान[१२] पह-फटे[१३] द दुलरुआ बसि जइहें सहर बजार हे
सोनवा चोरायम[१३] मउरी बनायम मोतियनि लगले जे लर हे

---

१. नौबत झरना, २. खुदवाया, ३. पालकी पर चढ़ाकर ले गई, ४. नहलाया, ५. है, ६. स्नान कराई, ७. गजमुक्ता का हार, ८. हरी, लहलहाती, ९. दूब, १०. स्वस्थ नौजवान, ११. हठ ठानता है, १२ भोर, १३. पौ फटना, १३. चुराऊँगी।

साँकरि साँकरि गलिया कवन बबुआ साँकरि रउरी[1] दुआर हे
जहाँ ए कवन बाबू लगत दुअरिया झरले मउरिया के लर हे
अपन रसोइया से बाहर भेलन कवन सुगइ[2]
कइसे मैं लोकूँ[3] छैलजी के मउरिया झुकि परे गाँव के लोग हे ।

विवाह होने की खुशी में दूल्हा इतना प्रसन्न है कि वह मनमानी करता है, प्रसन्नता से वह बड़ा ऊधम मचाता है, नाचता-गाता है, मना करने पर भी किसी की बात नहीं मानता—

अपना बाबा के बँगला में धूम मचावे बनरा
धूम मचावे बनरा सोहाग लावे बनरा
बार बार मना कइलीं ना माने बनरा
हाथ जोड़ों पैंया पड़ो ना माने बनरा
अरे बन में के बँसवा कटाइ माँगे बनरा
हजार बार मना कइलीं ना माने बनरा
चिटुकी इसारा कइलीं ना माने बनरा
नजर मे इसारा कइलीं ना माने बनरा
सोनवा के पिंजरा गढ़ाइ माँगे बनरा
बार बार मना कइलीं ना माने बनरा ।

कहीं तो दूल्हा इस तरह उपद्रव करता है और कहीं वह इतना नादान दिखाई पड़ता है जो कोई भी काम सही ढंग से करना नहीं जानता--

बनरा नादान रे रंग खेले ना जाने
खेले ना जाने खेलावे ना जाने
लाड़ो के टिकवा गढ़ावे ना जाने
टिकवा में मोतिया लगावे ना जाने
लाड़ो के नथिया गढ़ावे ना जाने
नथिया में झुलनी लगावे ना जाने
बलमा नादान रे रंग खेले ना जाने ।

सेहरा के किसी-किसी गीत में बेमेल जोड़ी का भी वर्णन आता है। दुल्हन गोरी है, दूल्हा काला। उस पर समस्या यह कि पटना शहर में दर्जी नहीं, रँगरेज नहीं, चूड़िहार नहीं।

लाल गोरी पर सँवरा बनरा, कइसे के रंग मिलायो रे,
पटना में दरजिया नाहीं, कइसे के जोड़वा सिआयो रे ।

किन्तु कहीं-कहीं दूल्हे-दुल्हन क्रमशः सूरज और चाँद की तरह भी हैं। दूल्हे की उपमा भँवरे से या माली से दी गई है--

चान अइसन लाड़ो सुरुज अइसन बनरा रे
लाड़ो के कंठवा ऊपर भँवरा लोभाय
परदेसिया लोभाय रे
हौले हौले मलिया फूल लोठहिं न जाने रे ।

---

१. आपके, २. सुग्गी, दुलारी, ३. जमीन पर गिरने से पहले थाम लूँ।

किसी गीत में दूल्हा अपने विवाह की तैयारी में स्वयं को सजाता सँवारता हुआ पाया जाता है।

मेंहदी के पेड़ तर, मेंहदी के पेड़ तर
जोड़वा सँवारे हो
दुलहा कवन दुलहा अपने सँवारे हो।

कहीं दूल्हे को ससुराल से आये कपड़े पहनने और संयम के साथ रहने की सीख दी गई है। कोई-कोई दूल्हा रूठा प्रतीत होता है। लगी समेत मौर मँगाने के लिये, जोड़ा सहित जामा मँगाने के लिये, मोती सहित कुण्डल और घूँघट सहित दुल्हन को पाने के लिये उसका जी उदास है --

ना जानीं दुलहा काहे बेदिल रे
दुलहा मलीन हवे मउरी मँगा दऽ
मउरी मँगा दऽ लरियाँ सहित रे।

पटना की फुलवारी में आरा की मालिन आती है और बन्ने के लिये एक प्यारा सेहरा गूँथती है। वह सेहरा पहन कर दूल्हा ससुराल जाता है। लौटने पर माता उससे पूछती है—दहेज में क्या पाया? दूल्हा कहता है - दान-दहेज तो बहुत पाया किन्तु सबसे अनमोल चीज है मेरी पत्नी--

कहँवा के हउवे[१] रे ऊ जे[२] मलिनिया
कहँवा के हउवे फुलवारी हो
गूँथेले मालिन सेहरा अजब बनी हो
आरा के हउवे रे ऊ जे मलिनिया
पटना के हउवे फुलवारी हो
गूँथेले मालिन सेहरा अजब बनी हो
से सेहरा पहिरेले दुलहा कवन दुलहा
बिहँसि चलले ससुरारी हो
गूँथेले मालिन सेहरा अजब बनी हो
हँसि हँसि पूछेली माता जसोदा
का बबुआ पवलऽ[३] दहेज हो
गूँथेले मालिन सेहरा अजब बनी हो
दान दहेज अम्मां सब कुछ पवली
धनि पवलीं अनमोल हो
गूँथेले मालिन सेहरा अजब बनी हो।

ससुराल से आया दूल्हा वहीं के रंग में पूरी तरह रँगा है। आँखों में ससुराल का सुरमा है, अंगों में ससुराल का जामा जोड़ा और पाँवों में ससुराल का मोजा। वही दूल्हा जब दुल्हन के लिये पूरे आभूषण नहीं लाता तो दुल्हन रूठ जाती है।

---

१. है, २. वह जो, ३. पाया।

दूल्हे का सेहरा मुँह पर झूल रहा है। बाबा, चाचा, जीजा उसे सँभालेंगे और दूल्हे को आज सारी रात जागना पड़ेगा। तपस्या करके ही तो दुल्हन मिलेगी---

तोरा सिर के सेहरा ओलरी परी[1]
तोरा बाबा ना लीहें सँभार
सारी रात दुलहा नींद नेवार[2]
दुलहा नींद नेवार ।

कोई दूल्हा लोभी प्रतीत होता है। ससुराल मे मिले धन से उसे संतोष नहीं। वह उससे अधिक लेने का हठ करता है -

सोना देत बर लेत नाहीं
माँगेले मेर सवइया[3] अढ़इया[4]
मैं ना जानूँ दुलहा अवइया[5]
मैं ना जानूँ गबड़ू[6] के अवइया ।

किसी-किसी गीत में दूल्हे को विवाहोपयोगी सभी सामग्री सुरक्षित रूप से ससुराल ले जाने और वहाँ सबके प्रति शिष्टता प्रदर्शित करने की सीख दी गई है--

सोनरा दोकनिया झलामल मेघ रे
भींजले कवन राम सोना सहीत रे
सोनवा त धरिहऽ बाबू पगड़ी के बीच रे
घुरुमि घुरुमि[7] बाबू करिहऽ परनाम रे ।

कहीं कहीं छोटी उम्र के दामाद के लिये विभिन्न वस्त्र-आभूषण बनवाने और दूल्हे को रिझाने का उल्लेख है --

परबत ऊपर सोनरा बसइबो[8]
आगे माई बर जोगे[9] सोनवा बेसहबो[10]
सेहो सोनवा जँवइया[11] पहिरइबो
बालक दमदा[12] रिझइबो ।

इन गीतों में कहीं-कहीं हल्की फुल्की गालियों का भी पुट आता है।

मुस्लिम सेहरा गीतों में दूल्हे के रूप एवं वस्त्राभूषणों की प्रशंसा की जाती है—

खूब बनी तोरी अँखिया हाँ रे बने आज की रतिया
खूब बना तोरा सेहरा हाँ रे बने आज की रतिया
लरियाँ लगायें सब सखियाँ हाँ रे बने आज की रतिया
खूब सजा तेरा जोड़ा हाँ रे बने आज की रतिया ।

साँझोली

विवाह कार्य में माँगर चढ़ने (मंगल अनुष्ठान होने) के दिन से तेल चढ़ने के दिन

---

१. झुकता है, २. रोको, ३. सवा सेर, ४. ढाई सेर, ५. आना, ६. स्वस्थ जवान, ७. घूम-घूम कर, ८. बसाऊँगी, ९. वर के लिये, १०. खरीदूँगी, ११. जमाई को, जामाता को, १२. दामाद।

तक त्रिकाल संध्या की भाँति महिलाएँ प्रातः, दोपहर तथा संध्या को मंगलगान करती हैं। साँझलरी गीत घूर पुजवा कर लौटते समय भी गाया जाता है --

ओरी रे जोरी[१] द्वै साँझोली, जोरें रे दियलु[२] उजेरि तौ अहिलौनी[३] साँझोली ।
ओरी रे जोरी द्वै ओबरी,[४] जोरें संचइ भंडार तौ अहिलौनी साँझोली
घोर्यौ मेरी बहुअ[५] जसोमति लीपनौ जोरें श्रीकृष्ण के अहलाद
तौ अहिलौनी साँझोली
देउ न बेटी सुभद्रा दीवला, जोरें रे बड़े प्योसार[६] तौ अहिलौनी साँझोली
साँझुलिया होय रम्यानी, गैया बच्छा जो मिलें
साँझुलिया होय रम्यानी मेहरी मुनसा[७] जो मिलें ।

दाँतिन

व्रज में रतजगे से विवाह के दिन तक प्रातःकाल जो गीत गाये जाते हैं वे 'विहान' कहे जाते हैं। दाँतिन या दाँतुन गीत में उल्लेख है कि रुक्मिणी यशोदा माता के लिये समय पर दातुन नहीं लाईं, इसलिये श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी को उसके पीहर पहुँचा दिया है।

ए हरि जू, भोर भयो परभात, माय जसोदा ने दाँतिन माँगी ऐ
ए हरि जू, हेला तो दिये दस पाँच, गरब गहीली ने उत्तर न दियौ
ए मैया मोरी, लाऊँ गंगा जल नीर, दाँतिन लाऊँ चोखे झार की
ए बेटा दाँतिन तुम करि लेउँ, हमगी तौ दाँतिन बिरिया टर गई ।

बेटी विवाह

वर और कन्या दोनों पक्षों की ओर अपनी अपनी विधि के अनुसार गीतों का प्रचलन है। विधियों के अनुसार दोनों पक्ष के विवाह गीतों की विषयवस्तु भी अलग-अलग हो जाती है। लौकिक विषयवस्तु के अलावा इन गीतों में पौराणिक प्रसंगों की भी भरमार है।

रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ तय हो चुका था किन्तु उन्हें यह पसन्द नहीं था। उन्होंने श्रीकृष्ण के पास संदेश भेजा। सही समय पर आकर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी का हरण कर लिया। चूँकि उनका हरण होना था इसलिये एक तरह से रुक्मिणी के लिये बारात छिपाकर लाई गई। रुक्मिणी ने चुपके से श्रीकृष्ण का पता लगाया और फिर सखी-सहेलियों को बुलाकर मंगलगान किया। बाद में श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी का सिन्दूरदान हुआ और फिर हुआ पति-पत्नी का हास-परिहास। रुक्मिणी का भाई अपनी बहन शिशुपाल को ही ब्याहना चाहता था किन्तु रुक्मिणी की इच्छा जानकर श्रीकृष्ण ने उनका अपहरण किया और शिशुपाल से रुक्मिणी का उद्धार किया।

बेटी विवाह के गीतों में कहीं सीता-स्वयंवर का वर्णन है तो कहीं सीता के लिये वर ढूँढ़ने की जिज्ञासा है। सीताजी आँगन में झाडू देती हैं तो माता उन्हें देखकर सोचती हैं

---

१. जोड़ी, २. दीपक, ३. सुन्दर दिखाई पड़ने वाली, ४. कोठरी, ५. बहू, ६. पिता का घर, ७. पति-पत्नी।

कि सीता अब विवाह योग्य हो गई है। वे ब्राह्मण को पोथी लेकर अयोध्या भेजती हैं वर ढूँढ़ने के लिये। जनकजी ने ब्राह्मण को तिलक किया, दशरथ के यहाँ बारात सजी और विवाह की तैयारी हुई। इधर सीताजी के लिये स्वयंवर रचा गया था जिसमें प्रण किया गया था कि जो शिव जी का धनुष तोड़ेगा, उसी से सीता ब्याही जायेंगी। श्रीराम ने उस धनुष के तीन टुकड़े कर दिये और दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ।

बइठल सिया मनमारी[1] से रामे रामे
अब सिया रहली कुमारी मे रामे रामे
गाइ के गोबर अँगना नीपल
मोतियन चौका पुराइ मे रामे रामे
धनुस देलन ओठँगाइ[2] से रामे रामे
देसहि देस के भूप सब आयल
धनुसा देखिय मुरझाइ से रामे रामे
अजोधा नगरिया से राम लछमन आयल
धनुसा देखिय मुसकाइ से रामे रामे
धनुस कइलन तीन खंड से रामे रामे
अब सिय होयतो बियाह मे रामे रामे
मुनि सब जय जय बोले से रामे रामे
सखी सब फूल बरसाये से रामे रामे।

कहीं किसी सुन्दर बेटी के लिये ऐसा दूल्हा ढूँढ़ा गया है जो स्वयं काला-कुरूप है और जिसकी सास सौतेली है। बेटी की माँ स्वयं फाँसी लगाकर मरना चाहती है। किन्तु बेटी उसे समझाती है कि बेटी के लिये यह कोई नई बात नहीं। पिता का धन, मकान भैया के भाग्य में है। मेरा भाग्य तो दूर देश लिये जाता है। भैया के जन्म के समय उनकी नाल सोने की छुरी से काटी गई किन्तु मेरे जन्म लेने पर हँसिया और खुरपी भी नहीं मिली।

किसी गीत में बेटी के विदा होने का प्रसंग है। वह हाथ में सिधोरा और खोइँछे (आँचल) में हल्दी रँगा चावल, दूब, पान आदि मांगलिक पदार्थ लेकर अपने गुरुजनों के पास सुहाग का आशीर्वाद लेने जाती है। दादी आँचल में सिन्दूर देना चाहती है किन्तु बेटी कहती है—आँचल का सिन्दूर तो झड़ जायेगा किन्तु माँग में दिया हुआ सिन्दूर ही अचल सुहाग बनेगा।

किसी कन्या के पिता के चार खण्ड आँगन हैं, जिनमें चारों ओर किवाड़ लगे हैं। बेटी एक खंभे के सहारे बैठी अपने बाबा से पूछती है—तुमने गजदन्त हाथी कहाँ पाया? कहाँ पाया गजमुक्ता का हार, कहाँ पाया डंठीदार ताजा पान और कहाँ पाया राजकुमार? बाबा ने कहा—बेटी, मैंने राजा के घर गजदन्त हाथी पाया, पंसारी के घर पाया गजमुक्ता का हार, तमोली के यहाँ ताजा पान पाया और देश में पाया राजकुमार। बेटी ने पूछा—इन चीजों को मैं पहचानूँगी कैसे? बाबा ने कहा—बेटी, बड़े दाँतों से तुम

---

१. उदास, २. सहारा देकर खड़ा करना।

गजदन्त हाथी को पहचानोगी, चमक से गजमुक्ता के हार को पहचानोगी, ताजा डंठल से पान पहचानोगी और पोथी पढ़ते हुए राजकुमार को पहचानोगी।

श्रीकृष्ण एक पत्नी के रहते दूसरा विवाह करते हैं। दुल्हन अँगुलियों में अँगूठी, कण्ठ में गजमुक्ता का हार और कानों में आभूषण पहन कर सास के पास जाती है। सास उसे बैठने के लिये आसन देती है। फिर वह जेठानी के पास जाती है, वह भी उसे आसन देती है। किन्तु जब वह सौत के पास जाती है तो सौत उसे ताना मारती है। वह रोती हुई कृष्णजी के पास आती है और सारी बातें कह सुनाती है। कृष्णजी उसे समझाते हुए कहते हैं कि मैं सारी पत्नियों को छोड़कर केवल तुम्हें ही हृदय मे लगाऊँगा।

राजा जनक को चार बेटियाँ हैं जिन्हें वे एक ही लगन में ब्याह देना चाहते हैं। बड़ी को लंका के राजा से, मँझली को कृष्ण मे, सँझली को ईश्वर महादेव से और छोटी को श्रीराम से ब्याहेंगे वे। लंका के राजा बाजे गाजे लेकर आते हैं, कृष्ण मुरली बजाते हैं, महादेव डमरू बजाते हैं। जनक की पत्नी ऊँचे महल पर चढ़कर बारात देखती हैं और कामना करती हैं कि दस बेटियाँ और होतीं। चारों कन्याओं का विवाह हुआ और नौ लाख का दहेज दिया गया। बेटी का विवाह और दहेज का व्यय देखकर सोचना पड़ता है कि शत्रु के घर भी बेटी न हो। इस गीत में कथा-प्रसंग बिल्कुल अलग है क्योंकि राजा जनक की चारों पुत्रियाँ राजा दशरथ के चारों पुत्रों को ब्याही गई थी।

एक अन्य गीत में श्रीराम को सीता से उम्र में छोटा बताया गया है। बारात में दूल्हे को देखकर स्त्रियाँ इस बात की आलोचना करती हैं तो सीता दुखी हो उठती हैं। वे मंगल कलश लुढ़का कर पूछती हैं कि मेरे लिये छोटा वर क्यों ढूँढ़ा? उसके पिता मण्डप का बाँस पकड़े हुए कहते हैं कि वर तो छोटे से बड़ा हो जायेगा, इसलिये तुम अपने कुल की लाज रखो। इधर श्रीराम अपने को अपमानित अनुभव कर धमकी देते हुए कहते हैं-- आप अपनी कन्या को अपने घर में रखें, मैं दूसरा विवाह कर लूँगा। इस गीत का विषय भी प्रचलित कथा से मेल नहीं खाता। संभवत: लोकप्रचलित पात्रों को लेकर ही गीतों की रचना हुई है, प्रसंगों की प्रामाणिकता पर विचार नहीं किया गया है।

कहीं दूर ब्याही जाती हुई बेटी अपने पिता को इस बात का उलाहना देती है तो कहीं साँवले दूल्हे को देखकर वह दुखी होती है। पिता समझाता है कि भगवान् भी साँवले थे। सच पूछो तो दूल्हे की माँ अनाड़ी है। उसने अपने लड़के को तीसी का तेल लगाकर धूप में सुलाया इसलिये वह काला हो गया। तुम्हारी माँ कुशल गृहिणी है। उसने तुम्हें तेल-फुलेल लगाकर छाया में सुलाया इसलिये तुम गोरी हो गई। तुम अपने दूल्हे को चन्दन लगाना, वह भी गौर वर्ण का हो जायेगा।

किसी सुन्दर दूल्हे को देखकर उसकी सास उसके सौन्दर्य का रहस्य पूछती है। दूल्हा कहता है--- मेरी माँ ने मुझे सोना धो-धोकर पिलाया है, इसीलिये मैं इतना सुन्दर हूँ। सास अपनी बेटी के लिये वह सोना माँगती है किन्तु दूल्हा कहता है--- बेटे का प्यार बहू को नहीं मिल सकता इसलिये मेरी माँ वह सोना अपनी बहू को नहीं पिला सकती।

घर में बेटी का जन्म होता है तो उसके बचपन तक तो सभी प्रसन्न होते हैं

किन्तु जब उसका विवाह होने लगता है तो उसके वियोग या दहेज की माँग को सुनकर लोगों को पुत्री का जन्म बुरा लगने लगता है। स्वयं बेटी भी माता-पिता से अलग होते हुए उलाहना देती है कि यदि मुझे पराये घर ही भेजना था तो आपने इतना प्यार क्यों दिया?

लड़की के पिता बारात और समधी की सुख सुविधा के लिये जी जान से लग जाते हैं। लड़की अपने दूल्हे को जुल्मी कहती है। किन्तु उसके परिवार वाले दामाद को दहेज देकर प्रसन्न करना चाहते हैं। कहीं लड़की ससुराल में अपनी प्रतिष्ठा के लिये अधिक दान दहेज चाहती है तो उसका ससुर समाज में अपनी प्रतिष्ठा के लिये सुन्दर और सुलक्षणा बहू चाहता है। वस्तुत: विवाह मे दिया गया धन स्थायी नहीं होता। स्थायी होता है सौभाग्य सिन्दूर।

विवाह के हास परिहास के बीच दूल्हा दहेज में सलहज को लेने का हठ कर बैठता है। कोई दामाद अपने ससुर से सुन्दर सरोवर लेने का हठ करने लगता है तो कोई दूल्हा अपने ससुर के घर के सुन्दर पक्षी को माँग बैठता है।

बेटी विवाह के अन्तर्गत कन्यादान को बड़े पुण्य का काम माना जाता है। किन्तु जैसे दूध के बिना खीर नहीं अच्छी लगती, उसी तरह पुत्र के बिना संसार अन्धकारमय समझा जाता है। बेटी के लिये जब उपयुक्त वर नहीं मिलता तो पिता बेटी को डूब मरने के लिये कहता है।

एक गीत में ऐसा भाव है कि ऊँची अटारी पर सूर्य को मेघ ने ढँक लिया। एक कन्या कुँवारी है। किसी का पुत्र अपने आँगन में तप करता है और कुँवारी कन्या चाहता है। बेटी की माँ थाल भर मोती लेकर तपस्वी को देना चाहती है। परन्तु वह तो कन्या के सिवा कुछ नहीं चाहता। लड़की का भाई तपस्वी को मारने आता है तो बहन कहती है - उसे मत मारो अन्यथा मेरे जीवन का निर्वाह कौन करेगा?

केकर ऊँची अटारी सुरुज मेघ छाइला[१] हे
केकर कनेया[२] कुँवारी त बिअहन माँगेली हे
कवन बाबू के ऊँची अटारी सुरुज मेघवा छावेला हे
कवन बाबू के कनेया कुँवारी त बर एक चाहेली हे
कवन बाबू के पूत तपसिया[३] आँगन तप करेला हे
माँगेला कनेया कुँवारी त आजु हम बिअहब हे
घर से बाहर भइली बेटी के अम्मां, थारी भरि मोती लेले हो
लेहु ना पूत तपसिया आँगन मोरा छोड़ जाहु हे
का करबो थारी भरि मोतिया मोती नाहीं लेहब हे
रउरा घरे कनेया कुँवारी त हमसे बिआअहु हे
दुअरा से अइले कवन भइया, हाथ में खरग[४] लेले हे
मारब पूत तपसिया बहिन मोरा माँगेला हे

---

१. छाया है, २. कन्या, ३. तपस्वी, ४. खड्ग।

अपना रसोइया से बोलेली बेटी कवन बेटी हे
जनि[१] मारू पूत तपसिया जनम मोरा के खेपी[२] हे
के मोरा कोठवा उठइहें त जल भरी लेइहें नू हे
के मोरा बंगला छवइहें त कइसे दिन काटब हे ।

बेटी विवाह के किसी गीत में युद्ध करके पत्नी को जीत लाने का वर्णन है जो मध्यकालीन समाज की भारतीय परम्परा का प्रतीक है।

बारात आते देखकर लड़की का पिता घर के छिन्न-भिन्न होने के भय से, धन खर्च होने के भय से भीतर छिप जाता है। बेटी कहती है— पिताजी, बारात कल सबेरे लौट जायेगी, आपका घर फला-फूला रहेगा। विदा के वक्त माँ दामाद से बेटी का ध्यान रखने के लिए कहती है। दामाद उसे इस बात का आश्वासन देता है।

बाल गुँथाई

सात सुहागिनों द्वारा सुगन्धित मसालों को सिल पर पीसकर गीत गाते हुए दुल्हन के बालों में लगाया जाता है तथा चोटी गूँथी जाती है। इस विधि को 'मेहरी गुँथाई' भी कहते हैं। इस समय के गीतों में दुल्हन के सँवारे हुए बालों की प्रशंसा मिलती है—

मैं तुझे पूछूँ बीबी एके बाल नवकंगही[३]
किनने तेरा बाल सँवारा है ।
दादी जो मेरी कवन दादी बीबी
एके बाल नवकंगही
वही दादी बाल सँवारा है ।

मेंहदी

विवाह के दिन दूल्हे-दुल्हन को मेंहदी लगाने की विधि सम्पन्न की जाती है तथा गीत गाये जाते हैं—

दादा लखिया की बदशाही
सहानी लाड़ो के मेंहदी रचाई
भैया लखिया की बदशाही
सहानी लाड़ो मेंहदी रचाई ।

कहीं-कहीं दूल्हे-दुल्हन को मेंहदी लगाने और उसे सुखाने का वर्णन आता है—

मेंहदी तोड़ने चली है अरूसा[४] बेटी
दुलहे ने पकड़ी है बाँह
दुलहा लगावे बाईं कानी अँगुलिया
मेरी लाड़ो लगावे दोनों हाथ, मेंहदी मेरी रे
दुलहा सुखावें घड़ी रे पहरिया[५]

---

१. मत, २. निर्वाह करना, ३. नई कंघी, ४. दुलहन, ५. पहर।

मेरी लाड़ो सुखावे मारी रात
लगावे उमराव[१] मेंहदी मेरी रे।

व्रज प्रदेश में मेंहदी के अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है—

देवर के पिछवार, मेंहदी तौ कहियै राचनी मेरे लाल
लौहरी ननद लई साथ, मेंहदी सूंतन धन चली मेरे लाल।

पत्ता-तोड़ाई

'पत्ता-तोड़ना' वृक्ष से पत्ते के टूटने अर्थात् माता से पुत्री के वियोग का प्रतीक है। विवाह के बाद बेटी माता से अलग होती है। मातृगृह के विछोह के कारण उसकी आँखों से आँसू गिरते हैं। पत्ता-तोड़ाई विधि में कन्या का भाई उसके साथ वटवृक्ष के पास जाता है और पत्ता तोड़ता है। विदा के वक्त बेटी देखती है कि उसके भाई के हाथ में तलवार है और भाई के पीछे आती हुई भाभी के हाथ में सिंधोरा। यह विधि जोग माँगने के अन्तर्गत ही आती है। जोग माँगने का तात्पर्य है कि लड़की के प्रति दूल्हे का आकर्षण बना रहे—

जोगवा[२] बेसाहन[३] चलल मोर भइया रे टोनमा
भइया चलले संगे साथ रे टोनमा
घुरि फिरि[४] देखथिन बेटी दुलरइतिन बेटी रे टोनमा
अँखियन से ढरे लोर[५] रे टोनमा
आगे आगे अवथिन[६] भइया दुलरुआ भइया रे टोनमा
पाछे पाछे भउजी चली आवे रे टोनमा
भउजी के हाथ में सोने के सिंधोरवा[७] रे टोनमा
भइया हाथे तरवार[८] रे टोनमा।

जोग मँगाई

पत्ता-तोड़ाई विधि के अन्तर्गत ही जोग माँगने की प्रथा है। कहा जाता है—कहाँ से जोग आता है और कहाँ घूमता है? दुलारे दूल्हे के यहाँ से जोग आता है, तेली के द्वार पर चक्कर काटता है और प्यारी सुगृहिणी को जाकर लगता है—

कहाँ से जोग आयल, कहाँ जोग घुरमई[९] गे माई
दुलरइता[१०] दुलहा हीं[११] से जोग आयल
तेलिया दुअरिया जोग घुरमई गे माई
दुलरइता देइ[१२] के जागे जोग लाग-गे माई।

जोग

'जोग' शब्द 'योग' का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है—तंत्र-मंत्र, टोने-टोटके

---

१. रईस, २. योग, टोना, ३. खरीदने के लिये, ४. पीछे घूमकर, ५. आँसू, ६. आते हैं, ७. सिन्दूरदान, ८. तलवार, ९. चक्कर काटता है, १०. दुलारे, ११. दूल्हे के यहाँ, १२. देवी, सुगृहिणी।

द्वारा किसी को वशीभूत करने की प्रक्रिया। किसी बहन का भाई कन्धे पर कुदाल लेकर पर्वत से जड़ी लाता है, जिसे पीस कूटकर बहन कटोरा भरती है और अपने दूल्हे को जोग की जड़ी पिलाना चाहती है। किन्तु दूल्हा उसे पीना नहीं चाहता। वह अपने पिता के पास भाग जाना चाहता है -

लेहऽ[१] दुलरइता भइया कंधवा[२] कोदरिया[३]
परबत से जड़ी ला देहु भइया
तोड़िये काटिये भइया बान्हलन[४] मोटरिया[५]
लऽ न दुलरइतिन बहिनी जोग के जड़िया
पिसिये कूटिये बहिनी भरल कटोरिया
पीअऽ न दुलरइता दुलहा जोग के जड़िया
हमें न पीबो[६] सुघड़[७] जोग के जड़िया
हम भागी जइबो बाबा के पासे।

जोग का ऐसा प्रभाव होता है कि बारात मे सम्मिलित होने वाले बाराती तथा आसपास की सभी चीजें जोग से प्रभावित हो जाती हैं और किसी को पता भी नहीं चलता। जोग सीखने के लिये बेटी माँ के पास जाती है और सुहाग की याचना करती है -

अरे जोग सीखे चलली बेटी अम्मां जी के टोला
अम्मां देहु ना सोहाग, बाबा प्यारी के सोहाग
नैहरवाली के सोहाग
अरे माई मैं ना जानीला जोग कइसे होखेला
जोग बेली होखेला, जोग चमेली होखेला
दउना मड़वा होखेला
अरे माई मैं ना जानीला जोग कइसे होखेला।

दुल्हन अपने जोग के बल से घर के लोगों को अपने वश में करके उनसे मनचाहा काम कराती है। वह लाल पीली सरसों मँगाकर चिड़िया की चोंच में रखती है और अपनी ननद को जोग दिखाती है। वह अपनी सास को घर के कोने का चूहा और ननद को कौवाहँकनी बनाना चाहती है। वह सास से अन्न कुटवाएगी, ननद से पिसवाएगी, छोटे देवर से घर लिपवाएगी और चावल छँटवाएगी तथा पति से खिचड़ी बनवाएगी, स्वयं वह राज करेगी।

कोई बहन जोग सीखने के लिये कामरूप-कमच्छा की ओर चल पड़ती है। रास्ते में भाई मिलता है जिससे वह मार्ग पूछती है। भाई कहता है- -कामरूप वह देश है जहाँ के पेड़ों की डाल और पत्तियाँ कट गई हैं। तुम पहले आती तो सारे जोग सीखती। अब तो सारे जोग बाजार में बिक गये। जो कुछ बचे थे, उन्हें घर के छप्पर में खोंस दिया और कुछ जोग दूल्हे की पगड़ी में खोंस दिया।

बड़ी बहन शीशम की पालकी पर बैठकर किसी सिद्धिप्राप्त योगिनी के पास जोग

---

१. लो, २. कंधे पर, ३. कुदाल, ४. बाँधी, ५. गठरी, ६. पिऊँगा, ७. सुगृहिणी।

सीखती है, जहाँ जोग समाप्त हो चुका है। जो शेष था, उसे ही प्राप्त कर वह वापस आ जाती है क्योंकि पति को वश मे करने के लिये उतना ही जोग पर्याप्त है।

लड़के की माँ लड़की की माँ से अनुरोध करती है कि मेरे बेटे पर जोग-टोना न करो क्योंकि वह कोमल और सुकुमार है। किन्तु दामाद बेटी के वश में रहे इसलिये लड़की की माँ अवश्य ही जोग करना चाहती है। दुल्हन को अपने जोग टोने पर विश्वास है। वह सोचती है कि ससुराल के लोग उसके वश में रहकर उसके अनुकूल रहेंगे

अमावस के ऊ जे रात अन्हरिया के रे भरिहें जुड़[1] पानी
जोग हम ना जानीं मोर रानी ।
के रे पीसी के रे कूटी के रे भरिहें जुड़ पानी
सासु पीसी ननद कूटी देवर भरिहें जुड़ पानी
जोग हम ना जानीं मोर रानी ।
अपना कवन दुलहा से भात रिन्हइबो[2] खइहें कवन देइ रानी,
जोग हम ना जानीं मोर रानी ।

कोई चतुर दूल्हा अपनी सास से कामरूप का जोग-टोना सीखता है और ससुराल पर ही शासन करने लगता है। जो दुल्हन जोग टोने का ज्ञान नहीं रखती वह विवाह से पहले अपने घर की औरतों से जोग की शिक्षा लेती है.

कहीं दूल्हा जोग की जड़ी लाता है। दुल्हन उसे पीसकर देती है। पीकर दूल्हे का सर चकराने लगता है तो दुल्हन पर दोष आता है और दुल्हन पश्चात्ताप करने लगती है।

दुल्हन की माँ अपने दामाद पर जादू टोना करके उसका ज्ञान हर लेती है। उससे फिर सब कुछ कराया जा सकता है। दामाद कहता है -एक माँ ने अपनी बेटी के लिये जोग कराकर मेरा ज्ञान हर लिया। कोहबर में जाते हुए उसने मुझे गाय बनाकर नाक में नकेल डाल दी, बैल बनाकर मुझसे हल चलवाया; बिल्ली बनाकर दही चटवाया; कबूतर बनाकर लड्डू खिलाया।

कहीं माँ, चाची, भाभी टोकरी में जोग लेकर बेचती हैं और घोड़े पर चढ़ा हुआ दूल्हा उसे खरीदता है। दूल्हे की सास को अपने जादू टोने पर इतना विश्वास है कि वह चूल्हे के पीछे हल जोतवाने, सूखे गड्ढे में नाव चलवाने, भरे हुए तालाब में घोड़ा दौड़ाने और तलहत्थी पर दही जमवाने की शक्ति रखती है और अपने दामाद को वह इन बातों से परिचित करा देना चाहती है।

कहीं-कहीं ऐसा भी जोग देखा गया है कि किसी नववधू का पति चोरी चला गया है। उसे ढूँढ़ने के लिये लोग बतलाते हैं कि पाँव के नूपुर अच्छी तरह बाँधो, जहाँ से पति की चोरी हुई है, वहाँ एक बाग लगाओ और पति को ढूँढ़ो।

मुस्लिम गीतों में जोग लादकर लाने का उल्लेख है। दूल्हे-दुल्हन की रक्षा के लिये जोग माँगने की विधि सम्पन्न की जाती है।

---

१. ठंडा, २. रँधवाऊँगी, बनवाऊँगी।

दादा हमारे नयना-जोगी[१] हैं री मइया
दादी हमारी मनमोहिनी री मइया
बलदी[२] लदाये जोग लाद लायें री मइया ।

गोंड़ गीत

लड़के की बारात जब कन्या के यहाँ जाने को प्रस्तुत होती है, उस समय पालकी, घोड़े सजाये जाते हैं। उस अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें मिर्जापुर जनपद में 'गोंड़ गीत' नाम से जाना जाता है

चली है बरात जनकपुर जाना
सजी आलकी सजी पालकी, चौबन्दी चौबाना
रथ साजि घोड़ा सजवाये
चढ़ि के चलेन भगवाना ।

द्वारपूजा या द्वारचार

बारात जब दरवाज़े पर लगती है तो पूजा की विधि होती है। दूल्हे की आरती उतारी जाती है। उस पर अक्षत आदि फेंका जाता है। इस समय के गीतों का बहुत प्रचार नहीं है। फतेहपुर में प्रचलित द्वारचार के एक गीत में चौक पूरने, द्वार पर बाजा बजने, सोने की थाली मे कपूर की बाती लेकर दूल्हे की आरती उतारने का चित्र खींचा गया है

बाजन बाजै दुआरे, रंगीला दुलहा ब्याहन आया
सिर पर कलस धरे हैं गुजरिया गावत मंगलचार ।
गाय गोबर से चौक पुरे हैं पुरवैं सुहागिन नारि
कंचन थार, कपूर की बाती, लेहु आरती उतारि ।
समधी ठाढ़े हमरे दुआरे पहिरे फुलन केर हार
जुग जुग जीवै यह जोरी, यहै असीस हमार ।

इस समय के एक गीत में देर से बारात पहुँचने की शिकायत की गई है, साथ ही बारातियों का परिहास भी किया गया है --

मुँह पर माल देइ आए रे सुन्नर[३] वर
धूमधाम गरदा[४] मचाए रे सुन्नर वर
बरियतिया मँगलो सबेर त अइले अबेर[५] ए
दिअवा[६] लेसि लेसि[७] देखों त सभ बगडेर[८] ए ।

बारातियों पर कटाक्ष करते हुए हरियाणा का एक गीत इस प्रकार है---

हमने बुलाए सुथरे सुथरे, मूँडे मूँडे आए री
हमने बुलाए लांबे लांबे, ओछे ओछे आए री
हमने बुलाए भूरे भूरे, काले काले आए री ।

---

१. आँखों से जोग-टोना करने वाले, २. बैल पर, ३. सुन्दर, ४. धूल, ५. देर से, ६. दीपक, ७. जलाकर, ८. तिरछा देखने वाला'

ऊबनी (बुन्देलखण्ड)

जब कन्या के द्वार पर बारात लगती है और दूल्हा द्वार पर आ खड़ा होता है, तो ससुराल की स्त्रियाँ गीत में प्रश्नों की झड़ी लगा देती हैं। 'ऊबनी' नामक यह गीत बुन्देलखण्ड की विवाह परम्परा के अन्तर्गत आता है --

कहँना के भले मालिया जिन बाग लगाये ?
कहँना की बेटी कोकिला फूल बीनन आई ?
कहँना के भले कोटिया जिन कोट उठाये ?
कहँना के बड़े तापसी चढ़ ब्याहन आये ?
सागर के भले कोटिया जिन कोट उठाय ?
देवरी के बड़े तापसी चढ़ ब्याहन आये
कोट नवै परवत नवै सिर नवै नई कोई
बाबुल राये माथो जब नवै जब साजन आवें।

घोड़ी (राजस्थान)

राजस्थान में घोड़ी के गीत विवाहोत्सव में गाये जाते हैं। वैसे घोड़ी गीतों का स्वतंत्र उल्लेख भी राजस्थानी गीतों में मिलता है। घोड़ी पर चढ़कर ही विवाह में तोरण मारा जाता है। इस अवसर पर निम्न गीत गाया जाता है -

घोड़ी तो चंचल बनड़ा चालसी
जो हाँजी बना गढ़ मुलतान सैं आई
नवल बना की घोड़ी जौ चरे जी।

बनारस में गाया जाने वाला एक घोड़ी गीत इस प्रकार है ---

घोड़ी ठुमुकि ठुमुकि पग धरत सखी रे
बहि के बाबा हजारी ने मोल लई
आजी रानी लुटावईं मोतियन की लरी।
वहि के भैया हजारी ने मोल लई
भाभी रानी लुटावईं मोतियन की लरी।

हरियाणा में घोड़ी गीतों को 'घुड़चढ़ी के गीत' कहा जाता है। कुछ गीत इस प्रकार हैं -

घोड़ी सोवै दादा दरबार बछेरी मैरै मन भावैगी
चिरि आवै खेड़े की दूब, बछेरी मैरै मन भावैगी
चढ़ आवै समधी का हे नन्द, बछेरी मैरै मन भावैगी।

❑ ❑ ❑

एक घोड़ी नजारे तै आई
उसके दादा ने रास बुलाई ओ राम
घोड़ी की चाल सवा सलड़ी
घोड़ी अँखियाँ नै मरकानै
बाले बनड़े नै सैन सिनावै ओ राम।

❑ ❑ ❑

तू तै चाल घोड़ी चाल मेरे दादा के दरबार
बन्ना जी मैं खाऊँ बूरा भात
घोड़ी चरै चना की दाल।

पहाड़ी प्रदेश मे गाया जाने वाला घुड़चढ़ी का गीत इस प्रकार है

कूण ता नाओ वैहणो वदाणु
कूण नाओ घोड़ा चढ़े
भाये तो नाओ बैहणी वदाणु
लाड़ो नाओ घोड़ा चढ़े।

परिछन

लड़का जब विवाह के लिये जाने लगता है तो हल्दी-रँगे चावल और गोबर की पिण्डी औरतें पालकी के इधर-उधर फेंकती हैं और लोढ़े से दूल्हे को परिछती हैं। इसके बाद कन्या के द्वार पर बारात लगती है और दामाद मण्डप में आता है तो कन्यापक्ष की महिलाएँ वर का परिछन करने आती हैं। इस विधि के अन्तर्गत एक सूप में पत्थर का लोढ़ा लाया जाता है और इसे ही दूल्हे के मुख के आगे घुमाया जाता है। इसके बाद वर की आरती उतारी जाती है। इसके औचित्य के विषय में कोई मत नहीं मिलता किन्तु पत्थर का सामना करना गृहस्थी के संघर्षो को झेलने का प्रतीक हो सकता है।

राम के विवाह के समय उनकी माता बहुत प्रसन्न होकर परिछन करती हैं किन्तु कैकेयी परिछन के लिये लोढ़ा घुमाती हुई रो रही है। कारण पूछने पर वह कहती है कि राम और लक्ष्मण का विवाह हो रहा है किन्तु मेरा भरत क्वाँरा है। इस पर खिन्न होकर राम की माता कहती हैं कि आप इस घड़ी में रोते हुए परिछन की विधि न करें, मैं स्वयं कर लूँगी। लोकमानस में कैकेयी का ऐसा चरित्र संभवतः राम वनवास के अपवाद के कारण गढ़ा गया है -

सोने के लोढ़वा सरइया[१] केरा[२] सूप ए
परिछन चलली राम के मइया ए।
आपन राम अपने हम परिछबि[३]
जनि कोई परिछन आइ ए।
एक हाथे केकइया रानी लोढ़वा घुमावेली
दोसरे नयन पोंछे लोर[४] ए।
काहे केकइया रानी लोढ़वा घुमावेलू
काहे नयन ढरे लोर ए।
राम से लछुमन बिअहन चलले
भरत रहले कुँआर ए।
जनि हो केकइया रानी लोढ़वा घुमावहु
जनि नयन ढारू[५] लोर ए।

---

१. मूँज या सरपत पौधे की सींक, २. का, ३. परिछन करूँगी, ४. आँसू, ५. ढुलकाओ।

आपन राम अपने हम परिछबि
जनि केहू देखन आइ ए।

अयोध्या नगरी से जब जनक जी की नगरी में बारात पहुँचती है तो कन्यापक्ष में हलचल मच जाती है। दूल्हे को परिछने के लिये कन्यापक्ष की स्त्रियाँ फूलों की डाली सजाकर, पान, फूल, दूध, दही, अक्षत और जल लेकर आरती सजाकर चल पड़ती हैं। बिना दाँत वाले छोटे कद के हाथी पर मखमल के जरीदार हौदे में बैठकर दूल्हा आता है जिसके हाथ में रूमाल है और माथे पर मणियों की मौर। शहनाई की धुन सुनकर और राम का रूप निरख कर सीता की माताजी आरती करती हुई सुध बुध खो बैठती हैं-—

अवध नगरिया में अयले बरियतिया हे
परिछन चलु मिलि जुलि सातु सब सखिया हे।
साजी लेहु डाली-दुली[1] बारी लेहु[2] बतिया[3] हे
पान फूल दूध दही अछत भरी लुटिया[4] हे।
मकुनी[5] जे हथिया के जरद[6] अमरिया[7] हे
ताही चढ़ि आवल हमर अलबेलवा हे।
हथिया वो घोड़वा के बनवल हइ सिगरवा हे
ताहि चढ़ी चारों दुलहा सोभत असवरवा[8] हे।
जामा साजे जोड़ा साजे साजल गले हरवा हे
हथवा रूमाल सोभे माथे मनिन-मउरिया[9] हे।
सासु के अँखिया लगल मधुमछिया[10] हे
कइसे मैं परिछों दमाद अलबेलवा हे।
आरती करइतों सुधि-बुधि नहीं आवे हे
आनन्द मंगल तेहो छन सब गावे हे।
राम रूप छकि छकि पावे दरसनमा हे
ऊँटवा नगाड़ा बाजे बाजे सहनइया हे।

भोजपुर प्रदेश के परिछन गीत में लोढ़े से परिछने की चर्चा है जबकि मगध के गीत में फूलों की डलिया और आरती की थाली से दूल्हे को परिछने का चित्रण हुआ है। इससे ऐसा स्पष्ट होता है कि मगध में दूल्हे को लोढ़े से परिछने की प्रथा नहीं है, यह प्रथा भोजपुर क्षेत्र में ही प्रचलित है।

कोई कन्या की माँ अपनी गोतनी से दूल्हे को परिछने के लिये कहती है किन्तु ईर्ष्या वश गोतनी बहाना बनाकर कहती है कि दामाद को परिछने से मेरी शंख चूड़ी टूट जाएगी, कंगन फूट जायेगा। खिन्न होकर कन्या की माँ कहती है—तुम मेरे दामाद को मत परिछो। अपने सुन्दर दामाद को मैं स्वयं परिछ लूँगी।

परिछन के समय सोने का डाला लेकर नाउन खड़ी होती है किन्तु निद्रा से

---

१. फूलों की डाली, २. जला लो, ३. बाती, ४. पूजा करने वाला छोटा लोटा, ५. छोटे कद का, ६. जरीदार, ७. हौदा, ८. सवार, ९. मणियों की मौर, १०. मधुमक्खी।

बोझिल नादान दूल्हा नींद के कारण उसे नहीं पहचानता। इसी तरह सोने का लोढ़ा लेकर सास, सोने का कजरौटा लेकर सलहज और पान का बीड़ा लेकर साली बाहर आती है किन्तु नींद का मारा दूल्हा किसी को नहीं पहचानता।

यों तो परिछन के गीतों में परिछन की विधि का ही उल्लेख होता है किन्तु एक गीत मे कुछ दूसरा ही विषय मिलता है। कन्यापक्ष की कोई स्त्री कहती है - मैंने तो आजन बाजन माँगा था, वरपक्ष के लोग सिगा बाजा ले आये। परिछन के समय वे बन्दूक ले आये। मैने तो हाथी घोड़ा माँगा था, वे मोटर ले आये। मोटर का भोंपू सुनकर मुझे घबराहट होती है। परिछन के समय पिस्तौल लेकर आये हैं। ऐसे समधी को लज्जा भी नहीं आती जिन्होंने विपरीत काम करके नाम हँसाई की है।

चीकट चढ़ाने की विधि (बुन्देलखण्ड)

बुन्देलखण्ड में लड़के लड़की के विवाह के समय स्त्रियों के मायके से चीकट आती है। चीकट अच्छे वस्त्रों के लिये यहाँ प्रयुक्त होता है। बारात आने के समय बाजे सुनकर चीकट चढ़ाई जाती है। लड़के का ब्याह हो तो बारात जाने से पहले चढ़ाई जाती है। चीकट में भाई अपने बहन बहनोई तथा बहन की देवरानी, जिठानी के लिये वस्त्र लाकर भेंट करता है। इस अवसर पर बुन्देलखण्ड में गीत गाने की भी प्रथा है --

चलो देवरनियाँ चलो जिठनियाँ
राजा बीरन खों आगो दे ल्याइये।
भैया बहन बैठ दोई मतो करत हैं
कौन खों का पहिराइये।
सास ननद खों छींट छिमरिया
देवरानी जेठानी खों चूनरी।
हम खों बीरन मोरे जेवर गढ़ैयो
बहनेऊ खों पचरंग पागड़ी।
जोरा बीरन तुमें इननोई नै पूजे
तो रीते भले सब आइयो।

चढ़ाव के गीत (बुन्देलखण्ड)

बुन्देलखण्ड में बारात लगने के बाद वर के यहाँ से आया हुआ जेवरों का चढ़ाव चढ़ता है। मण्डप में पूरित चौक पर बाराती जेवर और वस्त्रों की पेटी लेकर आ बैठते हैं। खवासन लड़की को मण्डप में बिठा देती है। चढ़ाव चढ़ता है तो स्त्रियाँ गाती हैं --

चली है बरात मंडवा तरैं आई
अब चढ़ाव की भई तैयारी।
सुरहन गऊ के गोबर मँगाये
ढिग घर अंगन लिपाये।
गज मुतियन के चौक पुराये
कंचन कलश उजयार धराये।

अरघ दे बमना अरघ दे निकरीं
मजन जू की धिया री ।
पाट पीताम्बर डललन-पललन
सोने रूपे को पार नै पाओ ।
चढ़ो है चढ़ाव जनक मुख पायो
भली भाँति कन्या पहिराओ ।

माहेरा (भात के गीत : राजस्थान)

बहन के लड़के या लड़की की शादी के समय भाई अपनी बहन को चुनरी ओढ़ाता है और भात भरता है। इस प्रसंग से संबंधित गीत 'माहेरा' या 'भात के गीत' कहलाते है। भात भरना विवाह का एक अंग है। 'भात के गीत' भाई-बहन का प्रेम व्यक्त करते हैं। इन गीतों में बहन भाई के लिये शुभकामना करती है -

सात सुपारी पान रो बिड़लो, भतिरगाँ नै रे बीरा
नूतन जाय, राजिन साथ लियो
एक बीरो मेरो आयो मेरै मन भायो
गंगा के धौरै रे बीरा जमना रे धौरै
बीच बसै मेरा भाई ।

हरियाणा में इस विधि को 'भात न्योतना' कहते है। सगाई के बाद घर से निकलते समय बहन भाई को भात का निमंत्रण देती है।

कोरो घड़ियों बीरा पीली हल्दी नौतन आई भातई
मेरे घर अइये बीरा मेरा माका जाया मेरे घर बिरद उपाइये ।

पाँव पखरई

भाँवर पड़ने के पहले या कहीं कहीं उसके बाद 'पाँव पखरई' का नेग आता है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है - 'पाँव पखरई' पाँव पखारने या धोने को कहते हैं, जो 'पाद प्रक्षालन' का अपभ्रंश रूप है। इस रीति के अन्तर्गत कन्यापक्ष के सभी व्यक्ति तथा ग्रामवासी अपनी अपनी शक्ति से रुपया पैसा, जेवर, बर्तन, गाय बैल आदि देकर वर-कन्या के पाँव पखारते हैं। एक बड़े थाल में हल्दी मिश्रित पानी होता है। पाँव पखारने वाला व्यक्ति दोनों हाथों की उँगलियाँ पानी में डुबोकर वर-कन्या के पैरों में लगाता है। फिर हल्दी, अक्षत वर के माथे पर और कन्या के घूँघट के वस्त्र पर लगाकर रुपया-पैसा थाल में छोड़ देता है। स्त्रियाँ पाँव पखारते समय पाँव पखारने वाले व्यक्ति का परिचय देती हैं—

बिच गंगा बिच जमुना तीरथ बड़े हैं पिराग
जहाँ बिच बैठे बाबुल मोरे देत कुँआरन दान ।
तुम जिन जानो बाबुल मोरे हमरो दियो गिर जाय
तुमने दओ हमने पाओ गहरी गंगा अन्हाव ।

फैजाबाद जनपद में 'पाँव पखरई' के एक गीत में ऐसा भाव है कि पानी की

झँझरी अर्थात् जलपात्र से जल गिराते हुए पानी की धारा न टूटे

अरे अरे भइया कवन राम, तोरी धरिया न टूटै
धार टूटे से पति जइहैं, अपनी बहिनी का हरबेउ ।

भाँवर या सप्तपदी

बुन्देलखण्ड में पाणिग्रहण संस्कार के लिये भाँवर पड़ने के समय स्त्रियाँ गाती हैं

पहली भाँवर जब फेरियो बेटी अब लौं हमारी
दूजी भाँवर जब फेरियो बेटी अब लौं हमारी
तीजी भाँवर जब फेरियो बेटी अब लौं हमारी
चौथी भाँवर जब फेरियो बेटी अब लौं हमारी
पंचमी भाँवर जब फेरियो बेटी अब लौं हमारी
छठी भाँवर जब फेरियो बेटी अब लौं हमारी
सातई भाँवर जब फेरियो बेटी हो गई पराई ।

गढ़वाल मे सप्तपदी संस्कार के साथ विवाह सम्पन्न माना जाता है। इस अवसर पर जो मंगलगीत गाया जाता है उसमें सप्तपदी की प्रत्येक भाँवर का उल्लेख इस प्रकार है

पैलो फेरो फेरी लाड़ी, कन्या च कुँवारी
दूजो फेरो फेरी लाड़ी कन्या च माँ की दुलारी
तीजो फेरो फेरी लाड़ी कन्या च भाइयों की लड़याली
चौथो फेरो फेरी लाड़ी कन्या न मैत छोड्याली
पाँचो फेरो फेरी लाड़ी सैसर की च त्यारी
छठो फेरो फेरी लाड़ी सासु की च ब्वारी
सातो फेरो फेरी लाड़ी, लाड़ी ह्वै चूके तुमारी ।

-- इस प्रकार पहली भाँवर में कन्या कुँवारी, दूसरी भाँवर में माँ की दुलारी, तीसरी भाँवर मे कन्या भाइयों की दुलारी, चौथी भाँवर मे कन्या मायके से बिछुड़ने को तैयार हो जाती है। पाँचवीं भाँवर में वह ससुराल की तैयारी करती है। छठीं में सास की बहू बनकर, सातवीं भाँवर में वर का पत्नीत्व स्वीकार कर सबको छोड़कर उसके साथ चली जाती है।

हरियाणा मे प्रायः इसी भाव को लेकर फेरों के गीत गाये जाते है।

पहला फेरा लीजिए, दादा की प्यारी
....सातवाँ फेरा लीजिए, लाड़ो हुई पराई ।

गुरहत्थी

दरवाजे से बारात जब वापस जाती है तब लड़की को चौके पर बिठाया जाता है और लड़के का ज्येष्ठ भाई लड़की के लिये जेवर और वस्त्रादि सामान लाकर 'गुरहत्थी' करता है। मण्डप में रखे गौरी-गणेश को सभी सामान स्पर्श कराकर कन्या के माथे से छुलाकर रखा जाता है। विवाह में 'गुरहत्थी' नामक यह विधि कन्यादान और सिन्दूरदान के पूर्व कन्या निरीक्षण के अवसर पर सम्पन्न होती है जो गुरु अर्थात् किसी बड़े के हाथों सम्पन्न की जाती

है। गुरु के हाथों इस विधि के होने से ही संभवतः इसका नाम 'गुरहत्थी' पड़ा, जो 'गुरु हस्ती' का अपभ्रंश कहा जा सकता है। इस विधि में दुल्हन को दिये जाने वाले वस्त्राभूषणों को वर का ज्येष्ठ भाई देवताओं को अर्पित करके दुल्हन को देता है और फिर दुल्हन के सौभाग्य के लिये आशीर्वाद देता है। इस समय गाये जाने वाले गीतों में लड़के के बड़े भाई को सम्बोधित करते हुए कहा जाता है कि हमारी कन्या बड़े नाज़ों से पली हुई है। इसे अच्छे अच्छे वस्त्राभूषण देना और टीका लेकर 'गुरहत्थी' की विधि सम्पन्न करना --

अच्छा अच्छा गहना चढ़इये रे जेठ भैंसुर[1]
बड़ा जतन के धियवा[2] रे जेठ भैंसुरा
टिकवा ले गुरहँथिये रे जेठ भैंसुरा
नथिया ले गुरहँथिये रे जेठ भैंसुरा
हँसुली ले गुरहँथिये रे जेठ भैंसुरा
बजुआ ले गुरहँथिये रे जेठ भैंसुरा
सड़िया ले गुरहँथिये रे जेठ भैंसुरा।

'गुरहत्थी' के समय कन्यापक्ष की ओर से वरपक्ष वालों को गाली भी दी जाती है। दूल्हे के बड़े भाई द्वारा लाये हुए गहनों के लिये ऐसा कहा जाता है कि ये गहने माँगकर लाये गये हैं और दूल्हा वर्णसंकर है --

टिकवा देख मत भुलिहऽ हो दादा टिकवा हई मंगन[3] के
दुलहा हई सतपंचुआ[4] के जनमल दुलहिन हई जिमदार[5] के
नथिया देख मत भुलिहऽ हो बाबा नथिया हई मंगन के
झुमका देख मत भुलिहऽ हो चाचा झुमका हई मंगन के
हँसुली देख मत भुलिहऽ हो मामा हँसुली हई मंगन के
दुलहा हई सतपंचुआ के जनमल दुलहिन हई जिमदार के।

कन्या निरीक्षण

कन्यादान और सिन्दूरदान के पूर्व विवाह में 'कन्या निरीक्षण' होता है और इसी अवसर पर 'गुरहत्थी' की विधि भी होती है। दूल्हे का ज्येष्ठ भाई पहली और अंतिम बार छोटे भाई की बहू का स्पर्श कर उसे वस्त्र और आभूषण देता है। कन्या निरीक्षण की विधि सम्पन्न करने के लिये दूल्हे का बड़ा भाई कन्या के लिये वस्त्राभूषण लेकर आता है। इस अवसर पर कन्यापक्ष की ओर से गालियाँ भी गाई जाती हैं। किन्तु प्रश्न यह है कि वरपक्ष की ओर से लाई हुई सामग्री में कोई कमी नहीं है तो गाली कैसे दी जाये? उस पर दूल्हे का बड़ा भाई स्वयं बड़ा सजीला-सुन्दर है जो अपने छोटे भाई की पत्नी के लिये सुन्दर कुसुम रंग साड़ी, नथिया, हँसुली, कण्ठा लेकर आया है, उन्हें पहन कर दुल्हन बहुत प्रसन्न हो रही है---

---

१. दूल्हे का बड़ा भाई, २. बेटी, ३. मँगनी का, माँगकर लाया गया, ४. सात पाँच लोगों के द्वारा, वर्णसंकर, ५. जमींदार, रईस।

अइसन सुन्नर[१] भँसरू[२] के कइसे देबो गारी रे
सिया जोगे ले अइले कुसुम रंग सारी रे
पहिरेली सिया मोर हुलसेला[३] जिया[४] रे।
अइसन सुन्नर भँसरू के कइसे देबो गारी रे
सिया जोगे ले अइले नथिया बड़ भारी रे
सिया जोगे ले अइले हँसुली बड़ भारी रे
पहिरेली सिया मोर हुलसेला जिया रे।

किन्तु जिसे गाली देनी है, उसके पास दस बहाने हैं। उदाहरण के लिये कहा जाय कि दूल्हे के बड़े भाई ने आभूषणों का गलत चुनाव किया है, अथवा गलत कार्य मे रुपये इकट्ठे कर वह सामग्री लाया है अथवा आधी रात को बारात लेकर आया है

काड़ा[५] ले अइले भसुर छाड़ा[६] ना ले अइले रे
काड़ा के सोभा भसुर पायल ना ले अइले रे
एक त खराब कइले मइया बेच के लइले रे
दोसरे खराब कइले आधे राति अइले रे
बाजू ले अइले भसुर झबिया[७] ना ले अइले रे
झबिया के सोभा भसुर ककना[८] ना ले अइले रे
एक त खराब कइले बहिनी बेच के लइले रे
दोसरे खराब कइले आधे राति अइले रे।

इतने पर भी संतोष नहीं तो जेठ की मूँछ की उपमा कुत्ते की पूँछ से, उसके उचक्केपन की तुलना गाड़ी के चक्के से और अलबेलेपन की उपमा खेत के ढेले से दी गई है। अपनी बेटी को वे कोमल और सुकुमार बताते हैं क्योंकि वह गर्मी और पसीने से परेशान है। इसीलिये पुरोहित को विधि शीघ्र सम्पन्न करने के लिये कहा जाता है

जइसन कुकुरा[९] के पोंछ[१०] ओइसन भँसुरा के मोंछ[११]
मुनी बाम्हन हे बाम्हन, हाली-हाली[१२] गोतर[१३] उचारीं
धिया[१४] मोरी बारी[१५] अलप[१६] सुकुवाँर, पसीनवन[१७] भींजेला सारी।

कन्यापक्ष की औरतें कहती हैं कि दूल्हे का बड़ा भाई ऐसा मूर्ख है कि उसे पूजा के लिये दही, चावल, सिन्दूर और पान दिया गया। उसने इन्हें क्रमशः चाट लिया, चबा लिया, सिन्दूर लगा लिया और पान खाकर उन्मत्त की तरह कूदने-नाचने लगा।

उसे लोग कहते हैं कि भसुर नहीं, असुर है। कितने थान कपड़े, गहने आये और वह उन्हें बाजार में बेच आया। वरपक्ष के लोग ठग ही हैं। इस तरह का हास-परिहास 'कन्या निरीक्षण' के समय कन्यापक्ष के लोगों के यहाँ होता है।

---

१. सुन्दर, २. दूल्हे का बड़ा भाई, जेठ, ३. हर्षित होता है, ४. हृदय, ५. हाथ का आभूषण, ६. पाँव का आभूषण, ७. बाजूबंद आदि गहनों में रेशम के धागे में गुँथा एक आभूषण जो लटकता रहता है, ८. कंगन, ९. कुत्ता, १०. पूँछ, ११. मूँछ, १२. जल्दी-जल्दी, १३. गोत्र, १४. बेटी, १५. है, १६ अत्यन्त, १७. पसीने से।

खार-खूर चुनाई (कन्यापक्ष)

विवाह के समय कन्यापक्ष की ओर 'खर चुनने' की एक विधि है। इसमें दूल्हे की सास दरवाज़े से मण्डप तक तिनका छींट देती है जिन्हें दूल्हा चुनता है। इस समय गाये जाने वाले गीत में दूल्हे की माँ को गालियाँ दी जाती हैं--

सखी चुनवत पान मोहन प्यारे के
जबे जबे हरिजी खरही[१] चुनावे
गारी सुनावे मनमान[२] मोहन प्यारे के
ले खरहीं हरि टटर[३] बिनैबो[४] देतन तोर मैया दोकान
जोग के बीरा[५] सखियन देलन हर लेलन हरि के गेयान ।

कहीं कहीं ऐसा भी देखने में आता है कि कन्या जब विवाह के बाद ससुराल आती है तो एक रेशमी चादर पर एक कटोरी भर राई रख दी जाती है। इसे दूल्हा सात बार अपने पाँव से गिराता है और सातों बार दुल्हन उसे चुनकर रखती है।

लावा मेराई या लावा छिटाई

'लावा' शब्द की व्युत्पत्ति 'लाजा' शब्द से हुई है और 'मेराई' शब्द 'मिलाई' अर्थात् मिश्रण से बना है। 'लावा मेराई' नामक यह विधि सिन्दूरदान के समय अग्निकुण्ड के पास सम्पन्न की जाती है। कहीं कहीं इसे 'लावा छिटाई' भी कहते हैं। भाई अपनी बहन के हाथ में धान या उसका लावा देता है। बहन उसे पति के हाथ में दे देती है और पति उसे बिखेर देता है। दूल्हा लड़की का अँगूठा पकड़ कर भी लावा छींटता है। सात बार अग्नि की परिक्रमा करके यह लावा छींटा जाता है। इस विधि का एक विशेष कारण है। भाई बहन के हाथ में लावा भरता है, यह इस बात का संकेत है कि जैसे धान खेत में एक स्थान पर बोया जाता है, बाद में उसे उखाड़ कर अन्यत्र रोपा जाता है, उसी प्रकार कन्या पहले पिता के घर में फिर पति के घर में संरक्षण पाती है तथा फलती-फूलती है। इसका दूसरा कारण यह है कि जैसे धान की उत्पादनक्षमता छिलके के साथ ही है, उसी तरह लड़की को फलने-फूलने के लिये पति का संरक्षण चाहिये। तीसरा कारण यह भी है कि भाई, बहन की अंजलि इसलिये भरता है कि वह इतना ही लेकर घर से जाये, बाकी पर अधिकार भाई का है। बहन जब जब पिता के घर आयेगी, उसकी अंजलि इसी तरह भरी जायेगी और उसका आदर जतन होगा। यह लौकिक विधि भारतीय संस्कृति की पुरानी परम्परा की पहचान है। इस समय गाये जाने वाले गीत में किसी भाई को निर्देश दिया जाता है कि वह बहन के हाथ में लावा रखे और दूल्हे को यह निर्देश दिया जाता है कि वह दुल्हन का अँगूठा पकड़ कर लावा छींटे। इस गीत में इस बात का भी संकेत मिलता है कि पाँच भाँवर घूमने के बाद लड़की ब्याहता की पत्नी कहलाने लगेगी—

लउआ[६] मेरावऽ[७] ना कवन भइया बहिनी तोहार ए
अँगूठा धरऽ[८] ना कवन दुलहा सुहवा[९] तोहार ए

---

१. खर, तिनका, २. मनमानी, ३. फट्टी, परदा, ४. बुनवाऊँगी, ५. पान का बीड़ा, ६. लावा, ७. मिलाओ, ८. पकड़ो, ९. सुगृहिणी।

पाँच भँवर[1] जब भइया घूमि गइले बहिनी तोहार ए
अँगूठा धरऽ ना कवन दुलहा सुहवा तोहार ए ।

'लावा छिटाई' की विधि के समय 'शिलारोहण' नामक विधि भी सम्पन्न होती है। इस विधि में कन्या का दाहिना पैर सिल पर पाँच बार रखा जाता है और पाँचों बार वह अपना पाँव हटा लेती है। अन्तिम बार वह अपना पाँव स्थिर करती है। यह विधि इस बात का संकेत है कि कन्या पत्थर की तरह अपने हृदय को मजबूत कर जीवन के हर संघर्ष को झेले और सुखमय जीवन व्यतीत करे। दूसरा संकेत इस बात का है कि पाँच बार सिल पर पाँव रखकर उसकी एक सीमा समाप्त हुई। छठीं बार पाँव रखकर उसके दूसरे कुल की सीमा आरंभ हो गई। इस अवसर पर गाये जाने वाले एक गीत में सिल बट्टे को धोने और दूल्हे के लिये मंगलकामना करने का उल्लेख है—

सील[2] धोअऽ[3] सील धोअ कवन देइ
जेकर सोहाग सील है ।
सीलिया जे उपजेला रन बन[4]
लोढ़वा[5] बनारस है ।
जीअस[6] कवन राम लाख बरीस
जेकर बहू सील धोवे है ।

उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जनपद में 'शिलारोहण' नामक इस विधि को 'सिलपोहनी' नाम से जाना जाता है। इससे संबंधित एक गीत इस प्रकार है -

सिलिया तौ उपजी बनारस, लिहिन कवन रामा पोहइँ कवन देइ
नइहर के लहर पटोर तौ सिलपोहौ बउहरि ।

'लावा मेराई' को बुन्देलखण्ड में 'धान बुआई' की रस्म कहते हैं। इसमें वर-वधू पलंग पर बैठते हैं। कन्या का भाई तथा भौजाई गाँठ जोड़कर पलंग के चारों ओर सात परिक्रमा करते हैं। भाई अपने दोनों हाथों में धान ले लेता है और परिक्रमा करते समय थोड़ा-थोड़ा दोनों हाथों से जमीन पर छोड़ता जाता है। भौजाई एक लोटे में दूध-पानी लेकर पति के पीछे-पीछे चलती है और थोड़ा-थोड़ा दूध-पानी धरती पर गिराती जाती है। इसे 'धान बुआई' का दस्तूर कहते हैं। स्त्रियाँ गाती हैं -

धान बओ बीरन धान बओ
यारो बहन धनवन्ती होय
दुध सींचो भौजी दुध सींचो
ननद पुतवन्ती होय ।

'लावा मेराई' से इस रस्म में नाम और रिवाज का थोड़ा सा फर्क है किन्तु यह मात्र स्थान भेद के कारण है।

कन्यादान

कन्या के माता-पिता कन्या का हाथ लड़के के हाथ में देते हैं। इसके बाद विवाह,

---

१. फेरे, भाँवर. २. सिल, ३. धोओ, साफ करो, ४. अरण्य, वन, ५. लोढ़ा, ६. जीवित रहे।

फेरे आदि होते हैं। कन्यादान होने से पूर्व लड़की पिता के बगल में होती है। कन्यादान हो जाने पर लड़की दूल्हे की बाईं तरफ हो जाती है। छः भाँवर तक लड़की आगे होती है, सातवें में लड़का आगे हो जाता है। वैसे तो कन्या का जन्म ही माता-पिता की चिन्ता का कारण होता है किन्तु बेटी के कन्यादान की कल्पना से पिता-माता दोनों दुखी हो उठते हैं। सजे हुए मण्डप में पूर्णपात्र रखकर, दीपक जलाकर और सोने की डलिया में दूब, अक्षत रखकर मंत्रोच्चार के साथ कन्यादान करने का उल्लेख कन्यादान के गीतों में आता है-

गंगा बहिए[1] गेल जमुना बहिए गइल
सुरसरि बहे निरमल धार ए।
नाहि[2] पइसी[3] बाबा हो अदित[4] मनावेले
कइसे करब कनेयादान ए।
ऊँचे झरोखवा रे चढ़ि अम्मां जे रोवेली
कइसे करब कनेयादान ए।
जा दिन बेटी हो तोहरो जनम भइले
धरती उठल हँहकार[5] ए।
ए बेटी अएरिन[6] तू बेटी बैरिन
तुहूँ बेटी हरि लेन्‌[7] गेयान[8] हे।
सजले मड़उआ में पुरहर[9] धएल
दीपक लेसल[10] पहलाद[11] ए।
सोने के डलउआ में दूबी रे अछतवा
माड़व बीच सजाए ए।
सब बाभन मिलि गोतर[12] उचारे
बाबा करेले कनेयादान ए।

कन्यादान के समय मण्डप में मणिदीप जल रहा है और ब्राह्मण को मंत्रपाठ के लिये बुलाया गया है। लड़की को पहना-ओढ़ाकर लाया गया और पिता की गोद में बिठा दिया गया। दुल्हन का सुन्दर रूप देखकर दूल्हा तो अपने भाग्य को सराहने लगा किन्तु प्राणों से प्यारी आँखों की पुतली का दान करने में पिता का हाथ काँपने लगा। ब्राह्मण ने समझाया कि बेटी को जन्म देना और कुआँ खुदवाना दूसरों के लिये होता है इसलिये बेटी के कन्यादान में सोच विचार करना उचित नहीं। कन्या पराई तो होती ही है किन्तु दुःख का होना भी स्वाभाविक ही है --

मँड़वा बइठल बाबा, दुलरइता बाबा
चकमक मानिक दीप[13] हे।
कनेयादान के अवसर आएल
बराम्हन कयल हँकार[14] हे।

---

१. बह गई, २. उसमें, ३. प्रवेश करके, ४. सूर्य, ५. हाहाकार, ६. बैरिन, ७. हर लिया, ८. ज्ञान, ९. पूर्णपात्र, १०. जल गया, ११. आह्लाद, १२. गोत्र, मंत्रोच्चार, १३. माणिक का दीप, १४. पुकार।

झाँपि झूँपि[1] लवलन[2] मइया दुलरइता मइया
रखल बाबा केर जाँघ हे।
जब रे दुलरइता बाबा मुँहमा[3] उघारल
साजन रहल निरेखि हे।
का हथी[4] सीता हे सुरुज के जोतिय
का हथी चान के जोत हे।
अइसन सुनर कनेया कइसे मोरा भेंटल
धन धन हको[5] मोरा भाग हे।
कुसवा ले काँपथि बेटी के बाबू
कइसे करब कनेयादान हे।
तोड़ी देहु तोड़ी देहु करहु बियहवा
तोड़ी देहु जिया जंजाल हे।
कुइयाँ[6] खनउली[7] आउ बेटी बियाहली[8]
तनिको न करहु विचार हे।
बेद भनइते[9] बराम्हन काँपल
काँपि गेल कुल परिवार हे।
हमर धियवा पराय घर जयतन
अब भेल पर केर आस हे।

कन्यादान के साथ स्वर्ण, गाय, बर्तन, दासी आदि के दान का उल्लेख भी इन गीतों में आया है। कोई दूल्हा पत्नी को पाने के लिये उतावला हो उठा है किन्तु लड़की उसे सान्त्वना देती हुई कहती है कि आप गंभीर होकर धैर्य धारण करें। जब मेरे पिता विधिपूर्वक मेरा कन्यादान कर देंगे, तभी आप मुझे ग्रहण करेंगे। कच्ची कली को तोड़ना उचित नहीं है। जब कली फूल बन जाये, तभी उसे तोड़ना चाहिये। माता अपनी कन्या की रक्षा घी की गागर की तरह करती है और पिता उसे जल की मछली की तरह घर से बाहर भेज देते हैं। कन्यादान करते हुए बाबा की छाती विदीर्ण होती है और माता की आँखें सावन-भादों सी झरती हैं।

एक डोगरी गीत इस प्रकार है—

मेरे बाबल दे हाथ जल थल गड़वा
गंगाजल पानी, होर कुशा दी ए डाली, हे राम
सोने दा दान, बाबल नित उठी करदा
सबेरे उठी करदा, कन्या दा दान करदें मेरे राम।

एक गढ़वाली गीत में कन्यादान को सबसे बड़ा दान कहा गया है—

हीरादान, मोतीदान, सब कोई देला
तुम होला बाबाजी पुण्य का लोभी

---

१. ढँककर, २. लाई, ३. मुख, ४. क्या है?, ५. है, ६. कुआँ, ७. खुदवाना, ८. जन्म देना, ९. मंत्रोच्चार करते हुए।

दी देवा बाबाजी कन्या को दान
दानू मा दान होलो कन्या को दान ।

सिन्दूरदान

विवाह के बाद परदा करके लड़की की माँग में सिन्दूर डाला जाता है। इस समय सिन्दूरदान के गीत गाये जाते हैं। कोई सिन्दूर का व्यापारी सिन्दूर बेचने आता है। लडकी का पिता उसे अपने द्वार पर बिठाता है। सुन्दर दूल्हा उससे सिन्दूर खरीद कर अपनी दुल्हन को सिन्दूरदान करने चलता है। सिन्दूरदान करते समय भविष्य की कल्पना और गृहस्थी के भार की बात सोचकर वह केले के पत्ते की तरह काँपने लगता है। सिन्दूर के समय सौभाग्यवती दुल्हन की माँग ऐसी शोभा पा रही होती है जैसे लाल फूल पर भौंरे। सिन्दूरदान के समय दोनों के मंगलमय भविष्य एवं दीर्घायु होने की कामना की गई है --

पटना महरिया से आयल सेनुरिया[१]
सखी राजा के दुआर सिन्दूर बेचे हे ।
के बैठावेले दुआर सेनुरिया
से के करे सेनुरा के मोल, से के करे हे ।
बाबा बैठावेले दुआर सेनुरिया
आगे ऊहे सेनुरा उठावे सुन्दर वर हे ।
जब रे सुन्नर वर सेनुरा उठावे
काँपत हाथ जइसे कदली के पात, काँपत हाथ हे ।
लाली रे कुसुमिया पे काली रे भँवरवा
सोभत जइसे दुलहिनिया के माँग, सोभत जइसे हे ।
सुभ सुभ गाइले मंगल गाइले
वर दुलहिन के जोड़ी से जुगे जीए हे ।

कोई दूल्हा 'मोरंग देस' जाकर अपनी पत्नी के लिये सिन्दूर ले आता है। सिन्दूर और टिकुली देकर वह कन्या को अपने साथ चलने को कहता है। वह कहती है - मैं अभी कुँआरी हूँ, तुम्हारे साथ कैसे जा सकती हूँ? कोई दूल्हे को कहता है कि दुल्हन की माँग में चुटकी भर सिन्दूर दे दो, वह तुम्हारी हो जायेगी। दूल्हा सिधोरे में से चुटकी भर सिन्दूर लेकर दुल्हन की माँग भर देता है। कन्या पराई हो गई, यह जानकर बाबा मण्डप बीच, भैया खंभा पकड़ कर और माँ घर में रोने लगती है। दुल्हन सिन्दूर पड़ते यह सोचकर दुखी होती है कि चुटकी भर सिन्दूर ने मेरा नैहर छुड़ा दिया।

सेनुरा सेनुरा जनी करु सेनुरा बेसाहम[२] हे
धनि[३] लागि[४] जयबइ[५] सेनुरा के हाट से सेनुरा ले आयम[६] हे
एतना कहिए दुलहा उठलन, चलि भेलन[७] मोरंग[८] हे
मोरंग देसे सेनुरा सहत[९] भेलइ[१०] सेनुरा लेआवल हे

---

१. सिन्दूर बेचने वाला, २. खरीदूँगा, ३. पत्नी, ४. के लिये, ५. जाऊँगा, ६. ले आऊँगा, ७. चल पड़ा, ८. नेपाल का एक पूर्वी जिला, ९. सस्ता, १०. हो गया।

चुटकी भर लेहु न सेनुरवा सोहगइलवा[१] बेसाहहु[२] हे
भरि देहु धनि के माँग, धनी तोहर होयत हे
चुटकी भरि लिहलन सेनुरवा सोहगइलवा बेसाहल हे
दुलहा भरी देलन धनी के माँग अब धनी आपन हे
बाबा जे रोबथिन[३] मँड़उआ बीचे भइया खम्हवै[४] धयले[५] हे
अम्मां जे रोबथिन घरे बीच अब धिया परहाथे[६] हे
सखि सभ माथा बन्हावल लट छिटकावल[७] हे
अजी सखि, चलु गजओबर[८] अब भेल पर हाथ हे
सेनुरा सेनुरा जे हम कयलूँ[९] सुनेरा[१०] त काल भेल हे
सेनुरा से पड़लूँ सजन घर नइहर मोर छूटल हे
छूटि गेल भाई से भतीजवा अउरो घर नइहर हे
अब हम पड़लूँ परपूता[११] हाथे सेनुर दान भेल हे ।

सिन्दूरदान तथा कन्यादान के गीतों में कन्या के पराई होने का भाव आता है, अर्थात् उससे विछोह होने के समय का भान होता है, अतः इन गीतों में स्वत: करुणा उमड़ आती है। गाने वाले तथा सुनने वाले दोनों को ये गीत मर्मस्पर्शी प्रतीत होते हैं और उनका हृदय भर आता है।

सोहाग

'सोहाग' शब्द 'सौभाग्य' शब्द का ही अपभ्रंश रूप है। लोक संस्कृति में सोहाग माँगना एक तरह का जोग-टोना है जो आशीर्वाद के रूप में बड़ों से माँगा जाता है।

कोई बेटी आँचल में पान लेकर दादा के दरवाज़े जाती है। उसे आँचल में सोहाग दिया जाने लगता है तो वह कहती है आँचल का सोहाग झर जायेगा, पर माँग का सिन्दूर सदा सौभाग्य का सूचक होगा-

हाथ सेनुरवा गे बेटी खोंइछा[१२] जुड़ी[१३] पान
चलली दुलरइती[१४] गे बेटी दादा दरवाज[१५]
सुतल-हल[१६] जी दादा उठल चेहाय[१७]
कवन संजोगे[१८] गे बेटी अयली दरवाज
अरबो[१९] न माँगियो जी दादा दादी के सोहाग
एक हमहुँ माँगियो जी दादा दादी के सोहाग
लेहु दुलरइते गे बेटी अँचरा पसार
अँचरा के जोगवा[२०] गे दादी झरिय झुरि जाय
मंगिया के जोगवा ए दादी जनम अहियात[२१] ।

---

१. सिंधोरा, सिन्दूरदान, २. खरीदो, ३. रोते हैं, ४. खंभा, ५. पकड़ कर, ६. पराई, ७. बिखराई, ८ घर के भीतरी भाग में, ९. किया, १०. सिन्दूर, ११. दूसरे का पुत्र, १२. आँचल, १३. जोड़ी, १४. दुलारी, १५. द्वार, १६. सोये थे, १७. चौंककर, १८. संयोग से, १९. धन-दौलत, २०. टोना, २१. सौभाग्य।

विवाह के पूर्व दुलहिन माँ गौरी से उनकी तरह सुहाग माँगती है। माँ गौरी उसे अपना समझ कर सुहाग देने का वचन देती हैं, ताकि वह कमल के फूल की तरह विहँसती रहे -

महादेव के अंगने सोहाग के बिरवा[१]
तहँवा कवन बेटी ठाढ़[२] भइल हे
गौरा अपन सोहाग मोहि देहु
तोहरे अइसन हम होखब[३] हे
अनका[४] के देबों मैं पीपर के पात
कवन बेटी के पुरइन[५] के पात हे
कमल अइसन विहँसहु हे।

मुस्लिम गीतों में कहीं सुहाग की रात में दुल्हन के वस्त्राभूषणों की चर्चा है तो कहीं सोहाग माँगने के लिये दुल्हन अपने सम्बंधियों तथा घर वालों के पास जाती है, जहाँ उसे टोना लग जाता है

सोहाग माँगे गई बीबी, हजरत बीबी दरवाजे
बीबी देहु ना सोहाग, वाली भोली का सोहाग
नइहर वाली का सोहाग रे
मैं ना जानूं टोना कैसे होके लगा
बेली चमेली होके लगा
दाना मरुआ होके लगा
सोने संदल होके लगा
मैं ना जानूं टोना कैसे होके लगा।

कोहबर

विवाह के समय जिस घर मे कुलदेवता का पूजन तथा अन्य मांगलिक विधियाँ सम्पन्न की जाती हैं, उसे 'कोहबर' कहते हैं। विवाह के बाद वर और कन्या का प्रथम मिलन इसी घर में होता है तथा यहीं उनका गठबन्धन भी खोला जाता है। इस घर में दीवालों पर विधि-विधान तथा कुल परम्परा के अनुरूप मयूर, चिड़िया, पालकी, बाँस का पेड़, हाथी, मौर, सिधोरा, चन्द्रमा, सूर्य आदि के चित्र बनाये जाते हैं। यह एक प्रकार का देवतागृह कहा जा सकता है। यहाँ वर और कन्या से अनेक प्रकार की विधियाँ सम्पन्न कराई जाती हैं, दही-चीनी खिलाने का शकुन भी किया जाता है। कहीं-कहीं लड़की का जूठा दही लड़के को खिलाया जाता है। उसमें जाने से पूर्व साथ की लड़कियाँ द्वार छेकती हैं। कोहबरगृह वर और कन्या दोनों पक्षों की ओर होता है।

कोहबर की प्रथा भोजपुरी, मगही, मैथिली, अंगिका, वज्जिका, कन्नौजी, अवधी तथा व्रज इन सभी भाषा के क्षेत्रों में प्रचलित है। इस शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में

---

१. वृक्ष, २. खड़ी, ३. होऊँगी, ४. दूसरों को, ५. कमल।

विभिन्न मत हैं। अवधी कोश में 'कोहबर' शब्द की व्युत्पत्ति 'कोह' (क्रोध) + 'बर' की गई है जिसका अर्थ है - दूल्हे का रूठना या क्रोध करना। हिन्दी शब्दसागर में इसकी व्युत्पत्ति 'कोष्ठ+वर' की गई है किन्तु यह व्युत्पत्ति बहुत युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होती है। कुछ विद्वानों ने इसकी व्युत्पत्ति 'कोशवाट' शब्द से की है। 'कोश' उस स्थान को कहते हैं जहाँ रुपये—पैसे आदि कीमती सामान रखे जाते हैं और 'वाट' का अर्थ है घर। इसी 'वाट' या 'वाटी' शब्द से बँगला का 'बाड़ी' शब्द बना है। बँगला में 'कोहबर' के अर्थ में 'वसुधरा' शब्द का प्रयोग होता है जो 'कोशवाट' के अर्थ से मेल खाता है। 'वसु' का अर्थ 'धन' और 'धरा' का अर्थ 'स्थान' किया जा सकता है।

कोहबरघर की चित्रकारी लिखने का काम किसी सुहागन को सौंपा जाता है। कोहबर के गीत भी सुहागिन स्त्रियाँ ही गाती हैं। कोहबर की चित्र रचना में कुलप्रथा के अनुसार थोड़ा-बहुत अन्तर पाया जाता है। इस विषय में एक गीत इस प्रकार है

केकर कोहबर लहालही, केकर कोहबर लाल हे
केकर कोहबर कइसे उरेहल, एक चिरइयाँ दुइ मोर हे ।

भोजपुरी का एक कोहबर गीत इस प्रकार है --

कहँवा के कोहबर लाल गुलाल कहँवा के कोहबर रतन जड़ाई
बाहर के कोहबर लाल गुलाल भीतर के कोहबर रतन जड़ाई ।

कुछ क्षेत्रों में कोहबर का चित्र गेरू से बनाया जाता है तो कहीं चावल हल्दी के मिश्रण से। चारों कोनों और केन्द्र में स्वस्तिक का चित्र होता है।

कोहबर के गीतों में विशेष रूप से दूल्हे-दुल्हन के सोने पर किसी घटनाविशेष का वर्णन पाया जाता है। कहीं कोहबर में दूल्हे-दुल्हन सोये हैं। सवेरा होने पर दुल्हन उठने लगती है तो दूल्हा पूछता है— तुम्हें सबेरा होने का पता कैसे चला? दुल्हन कहती है— डाल पर कौवे बोल रहे हैं, गायें दुहने के लिये घर-घर ले जाई जा रही हैं और सवेरा होने की सबसे बड़ी पहचान यह है कि भोर के प्रकाश में मेरी माँग के मोतियों की चमक फीकी हो गई है अथवा दीपक की लौ धूमिल हो गई है।

कहीं कोहबरघर में किसी बात पर दूल्हे या दुल्हन के रूठने की चर्चा है। दुल्हन की भाभी ऐसे में दूल्हे को खरी-खोटी सुनाती है या दुल्हन रूठकर मायके जाने की बात करती है तो कहीं पति की शंकालु प्रवृत्ति स्पष्ट होती है। एक कोहबर गीत में पति-पत्नी के बीच होने वाले प्रेमालाप का वर्णन है—

रचि[१] एक कोहबर लिखलूँ हम कोहबर
लिखलूँ हम मनचित[२] लाय, अनजान लिखूँ कोहबर हे
सेहि पइसो[३] सुतलन दुलहा दुलरइता दुलहा
जवरे दुलहिनिया संघे साथ लिखूँ कोहबर
रसे रसे डोलहइ चुनरी लगल बेनियां
होवे लगल दुलहा दुलहिन बात, अनजान लिखूँ कोहबर

---

१. रचकर, २. ध्यान से, ३. प्रवेश करके।

हम त हिओ[1] धनि तोहर परनमा
तू हका[2] हमर परान, अनजान लिखूँ कोहबर ।

एक कोहबरघर में पति-पत्नी के बीच एक दूसरे के जन्मोत्सव की बातें हो रही हैं। पति बताता है कि उसके जन्म के समय नगर भर में धूमधाम से उत्सव मनाया गया, बड़े-बूढ़ों ने खूब आशीर्वाद दिया। पत्नी कहती है—मेरे जन्म की सूचना पाते ही घर के सभी लोग उदास हो गये। हम दोनों माँ-बेटी की बड़ी उपेक्षा हुई।

किसी गीत में दूल्हा-दुल्हन एक दूसरे के परिवार का परिचय पूछते हैं और अपने परिवार को श्रेष्ठ बतलाते हैं।

कहीं कोहबर मे प्रथम मिलन की रात में सोये हुए दूल्हे को प्रात: माँ और भाभी जगाती हैं तो अशिष्ट दूल्हा रंग में भंग हो जाने के कारण उन्हें अपशब्द कहता है—

काँचहि[3] बाँस के एहि नया कोहबर
मानिक जरि गइले दीप ए ।
ताहि पइसी बइठेले दुलहा कवन दुलहा
जवरे[4] ससुर जी के धिया ए ।
घड़ी रात गइले पहर रात गइले
अइले धरमवा के बेर ए ।
पइसी जगावेली दुलहा के अम्मां
उठीं बाबू भइले भिनुसार[5] ए ।
अइसन अम्मां मोगल[6] हाथ बेचबो
आधी रात लावे उदबास[7] ए ।
पइसी जगावेली दुलहा के भउजी
उठीं बाबू भइले भिनुसार ए ।
अइसन भउजी गोअरवा[8] हाथे बेचबो
बेरी बेरी[9] लावे उदवास ए ।

महादेव का कोहबर कदली वन में सजाया जाता है। कोहबर में उनकी सास पायताने सो जाती हैं। भगवान् शंकर उनसे अनुरोध करते हैं कि आप अलग सोयें, क्योंकि मेरे पाँव से चोट लग सकती है। सास कहती हैं—लगने दो चोट। मुझे अपनी बेटी का सुहाग देखकर ही प्रसन्नता होती है।

कहीं-कहीं ऐसी भी प्रथा है कि सिन्दूरदान के बाद कोहबर में विधि सम्पन्न कर दुल्हन अन्यत्र सोने जाती है। उसके बाद कोहबर में लड़के की सास या अन्य स्त्रियाँ सोती हैं।

जुआ खेलना

'जुआ खेलने' को 'हँसुली लुटाना' भी कहते हैं। यह प्रथा प्राय: सभी स्थानों पर प्रचलित हैं। विवाह के बाद एक परात में हल्दी का पानी रखकर उसमें वर-वधू को

---

१. हूँ, २. हो, ३. कच्चे, ४. साथ में, ५. भोर, ६. पठान, ७. स्थान से हटाना, ८. ग्वाला, ९. बार-बार।

अँगूठियाँ डाली जाती हैं। दोनों उस पानी में हाथ डालते हैं, जिसके हाथ अँगूठियाँ लगती हैं, उसकी जीत समझी जाती है। इस अवसर पर फैजाबाद जनपद में गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है --

जुआ जे खेलइँ दुलहे रामा, पाँसरि खेलइ
कोरवा सजन के धेरिया, जितहू जितहु करई ।

बाती मेराई

कोहबर में बैठे-बैठे रात बीत जाती है पर दूल्हे ने बाती नहीं जलाई। उससे पूछा जाता है कि क्या बाती से गर्मी लगती है। वह उत्तर देता है नहीं, बाती जलाने का नेग लगता है

बइठे बीति गई राती, लाल तुम काहे न मेरवौ बाती
की बाती जइहैं नगर अजोध्या की बाती लागइं ताती
ना बाती जइहैं नगर अजोध्या ना बाती लागइं ताती
ई बाती माँ नेगा लगत है पाँच रुपइया, गज पाँती ।

उबटन (विवाह के बाद)

'उबटन' शब्द संस्कृत के 'उद्वर्तन' का अपभ्रंश है। इसे उब्बटन, अबटन या अपटन भी कहते हैं।

उबटन की विधि विवाह के पूर्व तथा बाद में भी की जाती है। विवाह से पूर्व दूल्हे-दुल्हन के शरीर की सफाई और सौन्दर्य के लिये सधवा स्त्रियाँ उबटन लगाती हैं। यह उबटन जौ या गेहूँ के आटे, हल्दी, सरसों, चिरौंजी तथा सुगन्धित द्रव्यों के मिश्रण को पीसकर तैयार किया जाता है। विवाह के दूसरे दिन वर और कन्या को मण्डप में बिठाकर सुहागिनें उबटन लगाती हैं और गीत गाती हैं

सोने कटोरा में उबटन हरि उबटन
अब होवेला मंगलचार लगे हरि उबटन ।
गाय के गोबर अंगना लिपाई, सखि अंगना लिपाई
अब गजमोती चउका पुराई लगे हरि उबटन ।
चंदन काठ के पीढ़िया बनाई सखि पीढ़िया बनाई
अब सियाहि राम बइठाई लगे हरि उबटन ।
सोने के थार में मोतिया भराई, सखि मोतिया भराई
सिया राम के अँगुरी भराई लगे हरि उबटन

विवाह के पूर्व गाये जाने वाले एक उबटन गीत का भाव है कि कोई बेटे की माँ अत्यन्त प्रफुल्लित होकर अपने हाथों के कंगन को डुलाते हुए और अपनी चंचल आँखों को नचाते हुए दूल्हे को उबटन लगा रही है

ऊ जे जव[1] रे गेहुम[2] केरा अबटन
लावे अम्मां सोहागिन अबटन

---

१. जौ, २. गेहूँ।

हाथे कंगना डोलाइ नयना घुमाई
मे बेटा बइठेले अबटन
पनखवउआ[1] बइठेले अबटन
दँतंगुआ[2] बइठेले अबटन ।

मुस्लिम गीतों में उबटन को 'माँझा' भी कहते है। विवाह के अवसर पर सोने-चाँदी की कटोरी में उबटन, तेल आदि रखकर माँझा की विधि सम्पन्न करने का उल्लेख इन गीतों मे होता है

सोने कटोरी है तेरा उबटन रूपे कटोरी तेल
दादी लगावे उबटन हाँ जी बेटी, नानी लगावे तेल
महारी लाड़ो कौन लगावे तेल ।

पावणा (राजस्थान)

संभवतः 'पावणा' शब्द 'पाहुना' से बना है। किसी घर में ब्याहे जाने वाले व्यक्ति से संबोधित जो गीत गाये जाते हैं, वे 'पावणा' कहलाते हैं। ये गीत भोजन कराते समय तथा उसके बाद गाये जाते है। छोटी बालिकाएँ जीजा से संबोधित गीत गाती हैं -

हाँ रे बाला इण सरवरिया री पाल
जँवाई धोवै धोतियाँ जा म्हाराज
धोया धोया थाल परोस दिया भात जी
प्यारा पाहुणा ओ राज म्हारै जीमबा नैं आव ।

जेवनार

'जेवनार' शब्द 'जेमन' अथवा 'जीमन' शब्द से बना है। इसका क्रिया रूप 'जीमना' है। विवाह के अवसर पर दूसरे दिन दूल्हे को तथा बारातियों के लिये जेवनार यानी भोज का आयोजन किया जाता है। प्रायः जेवनार पर बैठने के पूर्व दूल्हा किसी वस्तु की माँग कर बैठता है, न देने पर रूठ जाता है, तब उसे मनाकर मनचाही वस्तु दी जाती है। इस समय गाये जाने वाले गीतों में अच्छी अच्छी भोज्य सामग्री का वर्णन आता है साथ ही दूल्हे का रूप-वर्णन भी होता है —

रुकमिनी जेवनार[3] बनाये मकसूदन[4] जेमन[5] आये जी
सोभित रत्न जड़ाओ कुंडल मोर मुकुट सिर छाजहीं
केसर तिलक लिलार[6] सोभित, उर बैजन्तरि माल हे
बाँहे बिजाइठ[7] सोबरन[8] बाला अँगुरी अँगूठी सोहहीं
स्याम रूप मुँह पीयर[9] बसतर[10] चकमक झकमक लागहीं
कनक कंकन चरन नेपुर रूप कहाँ लौं बरनऊँ
जिनकर रूप सरूप मुनिजन मनहि मन नित गावहिं

---

१. पान खाने वाला, २. रँगे हुए दाँतों वाला, ३. भोजन, ४. मधुसूदन, श्रीकृष्ण, ५. भोजन करने के लिये, ६. माथे पर, ७. बाँह का आभूषण, ८. स्वर्ण का, ९. पीला, १०. वस्त्र।

झारि बिछौना लाइ झारी[१] सबके पाँव धोवावहिं
कनक कलसवा, सुन्नर झारी गिलास दय आगे धर्यो
अंजुल[२] जोरी विनय करिके सभे के पाँत बइठावहिं
कनक थारी में रुचिर ओदन[३] दाल फरक[४] परोसहिं
सुन्नर भोजन परसि परसि घीउ[५] ऊपर ढरकावहिं
साग, बैगन, अलुआ[६] मूरी[७] कटहर बड़हर परोसहिं
अदरख, अमड़ा अरु करइला इमली चटनी लावहिं
कदुआ, ककड़ी अउर खीरा, राइ दही रइता[८] बनो
बारा[९] बजका[१०] आउ तिलौरी हरखि पापर देइ दियो
अदौरी दनौरी आउर मैथोरी हरखि दही आगे धर्यो
देइ अचमन[११] जल गंगा के बाद सभे बीरा[१२] दयो
खाइ बीरा हँसि हँसि बोलथि हरि रुकमिनी का चही[१३]
देऊँ परेम परगास[१४] हमरा हाथ जोरि विनती करी।

इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में समधी के स्वागत-सत्कार कराने और यथोचित विदाई देने का भी वर्णन आता है —

कहँवे से आवेले दस पाँच समधी
कहँवे से आवे दसरथ समधी
पुरुबे से आवे दस पाँच समधी पछिमे से
हे जनक, रउरी अँगना में मोती झहरी[१५]
कथिये[१६] बइठइबो[१७] मैं दस पाँच समधी
कथिये बइठइबो दसरथ समधी
पलंगे बइठइबो मैं दस पाँच समधी
खटिया बइठइबो दसरथ समधी
हे जनक, रउरी अँगना में मोती झहरी
कथिये खियइबो मैं दस पाँच समधी
कथिये खियइबो दसरथ समधी
भात दाल खिअइबो मैं दस पाँच समधी
खोअवा[१८] खिअइबो दसरथ समधी
हे जनक, रउरी अँगना में मोती झहरी
कथिये पेन्हइबो मैं दस पाँच समधी
कथिये पेन्हइबो दसरथ समधी
धोतिया पेन्हइबो मैं दस पाँच समधी
मलमल पेन्हइबो दसरथ समधी
हे जनक रउरा अँगना में मोती झहरी

---

१. पानी पिलाने वाला टोंटीदार बर्तन, २. अंजलि, ३. भात, ४. अलग, ५. घी, ६. आलू, ७. मूली, ८. रायता, ९. बरा, १०. एक प्रकार की पकौड़ी, ११. मुँह धुलाना, १२. पान, १३. चाहिये, १४. प्रेम की ज्योति, १५. झरेगा, १६. कहाँ, क्या, कैसे, १७. बैठाऊँगी, १८. खोवा।

कथिये समोधबो[1] मैं दस पाँच समधी
कथिये समोधबो दसरथ समधी
सोनवे समोधबो मैं दस पाँच समधी
असरफी समोधबो दसरथ समधी
हे जनक रउरी अँगना में मोती झहरी ।

जेवनार के अवसर पर लड़की के ससुराल पक्ष वालों को गाली देने की भी प्रथा है। इस प्रथा का वर्णन रामचरितमानस में भी आया है

जेवँत देहि मधुर धुनि गारी ।
लै लै नाम पुरुष अरु नारी ।।
समय सुहावनि गारि बिराजा ।
हँसत राउ सुनि सहित समाजा ।।[2]

लोकजीवन में भी गाली गाने की प्रथा है —

गारी गावत सभ मिलि नारी
राम रहल मुसकाइ कि हाँ जी
राउर पितु दसरथ हथ[3] गोरे
तू कइसे हो गइल्न कारी कि हाँ जी
बहिनी तोर साधु संगे इकसल[4]
फूआ के कउन ठेकाना कि हाँ जी
सात पुस्त[5] तोर भेलन छिनारी
तुहूँ छिनार के पूत कि हाँ जी ।

किन्तु किसी-किसी गीत में श्रीकृष्ण और बलराम को राजसी भोजन कराने, स्वादिष्ट भोजन के लिये रुक्मिणी की प्रशंसा तथा रुक्मिणी द्वारा फिर से आमंत्रण दिये जाने का वर्णन आता है।

कहीं सुरुचि सम्पन्न रसोई के लिये लड़के के पिता लड़की के पिता की प्रशंसा करते हैं—

धन धन रसोइया तोरा कवन साही
समधी अइले जेवनार हे ।

जेवनार गीतों का राग विवाह और तिलक के गीतों से भिन्न होता है। उनकी पंक्तियाँ सोहर की तरह लंबी होती हैं किन्तु उनमें लय के आरोह-अवरोह का क्रम सोहर से बहुत भिन्न होता है।

गाली

विवाह के दूसरे दिन जेवनार के समय गाली के गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में समधी का मज़ाक उड़ाया जाता है। उनके मुँह, दाँत, मूँछ, दाढ़ी, पेट और टाँग आदि की भद्दी उपमाएँ दी जाती हैं।

---

१. स्वागत करूँगी, २. रामचरितमानस— बालकाण्ड, दोहा ३२९ के पहले की चौपाई, ३. हैं, ४. निकल गई, ५. पीढ़ी, कुल-परम्परा।

समधी भँड़ुआ के मुँहवा कैसन[१] लागेला
जैसन[२] बानर के मुँहवा ओएमन[३] लागेला
समधी भँड़ुआ के मोंछवा[४] कइसन लागेला
जइसन बोतुआ[५] के पुछिया[६] ओएसन लागेला
समधी भँड़ुआ के दँतवा कइसन लागेला
जइसे खुरपी के नोखवा[७] ओएसन लागेला
समधी भँड़ुआ के दढ़िया कइसन लागेला
जइसन फेंदवा[८] के झोंटवा[९] ओएसन लागेला
समझी भँड़ुआ के पेटवा कइसन लागेला
जइसन भतवा[१०] के हँड़िया ओएसन लागेला
समधी भँड़ुआ के टँगवा कइसन लागेला
जइसन फाँवड़ा के लकड़ी ओएसन लागेला ।

वरपक्ष के लोगों का उपहास और कन्यापक्ष के लोगों की प्रशंसा इन गीतों में होती है

अरे दुलहा के बाबा बड़ा लोभी हई गे माई
तौली[११] बिछाइ नोटवा गिनहई गे माई
अरे कनिया के बाबा बड़ा धनी हई गे माई
मोहरा भँजाई रुपया गिनहई गे माई
कोहबर बइठल लाड़ो हँसहई गे माई
अरे हमर बाबा कीनहई[१२] नौकरवा गे माई ।

विवाह के अवसर पर गाई जाने वाली गाली झूमर की तर्ज पर होती है और उसकी लय में अधिक चपलता होती है। उनका विषय हास परिहास से, कभी कभी अश्लीलता तक उतर आता है। इसकी प्रथा बहुत प्राचीन है। सूर, तुलसी, केशवदास आदि ने भी विवाहादि के अवसर पर गाली गाये जाने का वर्णन किया है

देत महर को गारि । —*सूरसागर,* पद ६२२

सजन प्रीतम नाम लय-लय दय परस्पर गारि । —*सूरसागर,* पद ६६०

बुन्देलखण्ड में विवाह के समय होने वाले भोज को 'पंगत' कहते हैं। बाराती भोजन करने बैठते हैं, उसी समय स्त्रियाँ गारी गाना शुरू करती हैं। गीतों में समधी समधिन के प्रति मज़ाक किया जाता है। इस अवसर पर गंगा यमुना की गारी भी प्रचलित है। राम विवाह के अवसर पर गाई जाने वाली गाली इस प्रकार है---

लागत रहे नीके लाला आय हते जा दिन से
हमने सुनी अवध की नारी, दूर रहे पुरुसन से
खीर खाय सुत पैदा करतीं लाला बड़े जतन से
नार ताड़का तुम्हैं देख के दौरी आई वन से

---

१. कैसा, २. जैसा, ३. वैसा, ४. मूँछ, ५. बकरा, ६. पूँछ, ७. नोंक, ८. ताड़ का फल, ९. केशगुच्छ, १०. भात, ११. तौलिया, १२. खरीदता है।

और करतूत बनी नई तुमसे धर छेदी बानन में
बहन तुमारी तुम्हें छोड़ के जाय बसी गिमियन में
बुरो मान जिन जैयो लाला इन साँची बातन से
साँची झूठी तुम सब जानो का कह सकत बइन में ।

हरियाणवी लोकगीतों के अन्तर्गत बारातियों पर कटाक्ष करती हुई स्त्रियों द्वारा गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है --

मुरकियां वारो आयो री, मरोड़ घणी
सोने ने बाप बणायो री, मरोड़ घणी
बागे वाले आयो री, मरोड़ घणी
दरजी ने बाप बणायो री, मरोड़ घणी ।

'कुरमाली' गीतों में गाली गीतों को 'प्रतिवादी गीत' कहते हैं

मूतवा देख सुन के लिहाबा गो
बांग्क मायेक सोनरा भतार आहो
मूतवा मँगाइ लनो गो ।

अर्थात् कन्या की माँ, सूत देख सुन कर लेना, क्योंकि सुनार जिसकी माँ का पति लगता है वह खोटा सूत मँगा लेगा।

कठउती पर के गीत

बिहार के मगह क्षेत्र में विवाह के अवसर पर 'कठउती पर के गीत' गाये जाते हैं। एक व्यक्ति काठ की कठौत उलट कर उस पर राख रखकर डण्डों से घिसता है, जिससे एक प्रकार की मधुर ध्वनि निकलती है। यह क्रिया एक तरह के वाद्य का काम करती है। इसी के साथ कठउती पर के गीत गाये जाते हैं। ये गीत विवाह के दिन गाये जाते हैं। इन गीतों को 'अलचारी' भी कहते हैं। काठ की कठौती पर महीन गोइठे की राख देकर सखुए के डण्डे से बजाते हैं।

'कठउती' शब्द 'काठ' अथवा 'काष्ठ' से बना है। काष्ठ की कठौती पर गाने के कारण ये गीत 'कठौती के गीत' कहलाते हैं। प्राय इन गीतों में पति- पत्नी का प्रेम कलह देखा जाता है। एक गीत में दुल्हन अपनी ससुराल वालों को खबर भेजती है कि उसे मायके से जल्दी बुला ले। ससुराल वाले कुछ दिनो तक उसे मायके में ही रहने की सलाह देते हैं। तब वह पति को लिखती है। पति बिगड़ कर उसे कहला भेजता है कि जाओ, मायके में ही दूसरा पति कर लो। पत्नी भी क्रोध में आकर खबर भेजती है कि तुम्हारे जैसे को मैं अपने यहाँ गुलाम रखूँगी --

कही पेठाएम[१] ससुर जी से
झट दिना[२] गवना करावऽ अगहन में
डेरा पड़ल हइ राजा बगियन में

---

१. खबर भेजूँगी, २. शीघ्र ही।

झूलन पड़ल हइ राजा बगियन में
कही पेठायम बारी दुलहिन जी से
थोड़ा दिन गम खालऽ नइहर में
कही पेठायम सैंया जी से
झट दिना गवना करालऽ अगहन में
कही पेठायम बारी धनी जी से
दोसर खसम करलऽ नइहर में
कही पेठायम सामी जी से
तोरा अइसन गुलाम रखम नइहर में
डेरा पड़ल हइ राजा बगियन में
झूलन पड़ल हई राजा बगियन में।

डोमकछ

'डोमकछ' एक नाट्य रूपक है जिसमें केवल वरपक्ष की स्त्रियाँ ही सम्मिलित होती हैं। परिवार के सभी पुरुष बारात में सम्मिलित होने के लिये चले जाते हैं। विवाह के घर में रात में चोरों का भय रह सकता है, इसलिये स्त्रियाँ 'रतजगा' करती हैं और जागने के लिये ही 'डोमकछ' का आयोजन करती हैं। 'डोमकछ' एक प्रकार का अभिनय है, जिसमें कई पात्र होते हैं। इसमें 'जलुआ' नामक पात्र का विवाह होता है। स्त्रियाँ पुरुषों जैसे कपड़े पहन कर इस अभिनय में भाग लेती हैं और आपस में बड़ा उन्मुक्त व्यवहार करती हैं।

'डोमकछ' वस्तुतः एक सामाजिक स्वाँग है जो पहले ग्रामीण समाज में प्रचलित था और लड़के की बारात जाने के बाद डोम-डोमिनों द्वारा खेला जाता था। इसी कारण इसका नाम डोमकछ पड़ा। भिखारी ठाकुर की नाट्य रचनाओं में इस परम्परा के प्रसंग मिलते हैं। इन गीतों में डोम के पूरब देश चले जाने पर डोमिन की विकलता भी देखी जा सकती है ---

अनारकली डोमिनी के डोम कहाँ गइले।
डोम गइले कलकतवा नगरिया, उहँवे रमइले।

यह नाट्य कई दृश्यों में बँटा होता है। विवाह के बाद वंश-परम्परा का स्वाँग भी इनमें स्त्रियों द्वारा डॉक्टर, नर्स, प्रसूता आदि के रूप में होता है। शिशु के जन्म के साथ हास-परिहास कभी अश्लीलता के स्तर पर भी उतर आता है।

डोमकछ में गाये जाने वाले एक गीत में कोई साँवली सलोनी किसी चूड़िहारिन से चूड़ी का मोल-भाव करती है, साथ ही अपने पति के बाँकेपन का भी परिचय देती है ---

कहाँ के ऊ जे लामू[1] लहेरिया[2]
झुलनियाँ वाली गोर चूड़ी कते में[3] बिकाऊ

---

१. लम्बा, २. लहेरी, चूड़ी बेचने वाला, ३. कितने में।

हमरो जे चूड़िया साँवरो[1] लच्छ[2] रुपैया
तोर बहियाँ घूमि-घूमि जाय
हमरो जे पियवा साँवरो बड़ रंगरसिया
बने-बने[3] बंसिया बजावे ।

भोजपुर के इस 'डोमकछ' में नाट्य की प्रधानता रहती है। बुन्देलखण्ड में भी विवाह के समय इसी प्रकार का एक नाटक घरों में खेला जाना है जिसे 'बाबा बाई' कहते हैं। लड़के पक्ष की महिलाएँ बारात जाने के बाद पुरुष वेश में 'बाबा बाई' का आयोजन करती हैं। चोरों के डर से रात्रि जागरण होता है और महिलाएँ इस समय उन्मुक्त होकर अपने भावों की अभिव्यक्ति करती हैं। बारात जाने के बाद शाम को नाउन 'बाबा बाई' का बुलौआ गाँव में देती है। वर के घर से यह 'बाबा बाई' निकल कर अन्य घरों में भी पहुँचते हैं और समूह के रूप में इसमें हँसी-ठिठोली, गायन-नर्तन होता है। इसमें 'बाबा' और 'बाई' दो प्रमुख पात्र होते हैं, बाकी सहयोगी होते हैं जो गाते-बजाते और नाचते हैं।

'बाबा बाई' जब गाँव में निकलते हैं तो जो पुरुष बारात में नहीं गये होते हैं, वे घरों में छिप जाते हैं क्योंकि उन्हें महिलाओं द्वारा पिटने और गाली सुनने का भय होता है। इन गीतों में सुरीले और अच्छे गीत भी होते हैं। किन्तु विशेष रूप से इनमें अमर्यादित शृंगार होता है। इसमें महिलाओं एवं पुरुषों की नकल उतारी जाती है तथा समाज की कुरीतियों और पाखण्डों को भी प्रस्तुत किया जाता है। जातिगत स्वभाव: आदि का भी चित्रण इसमें होता है। एक प्रकार से यह संस्कृत के दश रूपकों का एक प्रकार 'भाण' है।

अवध क्षेत्र में इस विधि को 'नकटौरा' या 'नकटा' कहते हैं। कन्नौज में इसे 'नकटो' कहते हैं। कौरवी क्षेत्र में यह 'खोड़िया' और व्रज में 'खोइया' कहलाता है। हरियाणा में इसे 'जोड़िया' कहते हैं। ये गीत हास्यप्रधान होते हैं।

नकटौरा की परम्परा छत्तीसगढ़ से निकली। वहाँ एक लोककथा प्रचलित है। जब राजा दशरथ की बारात आई तो औरतों ने 'गाली गीतों' अथवा 'भड़ौनी गीतों' के द्वारा बारातियों से छेड़छाड़ कीं। सवासिनों ने व्यंग्य किया—

अरे बरतिया आँय रे, थोथना ल ओरमाय रे
आए बरतिया चुप्पे चुप्प
दुल्हा डौका के तीन तीन भाई
नकटा नाक और चेपटा से
तुंहर बहिनी फूफू मन, नाचत होती नकटा रे ।

कोशल में यह 'भड़ौनी गीत' प्रचलित है—

नकटी के डौका नकटा मन
तिरिया चरित नी जानय रे
नकटी मन के नकटा नाचल
सुन के अचरित मानय रे ।

---

१. साँवरी, २. लाख, ३. बन-बन में।

अर्थात् सभी बाराती बेशर्म नकटी औरतों के पुरुष हैं। इन्हें अपनी स्त्रियों के चरित्र का पता नहीं। वे नकटी होकर नकटा नाचती हैं। स्त्री होकर पुरुषों सा यौनाचार करती हैं और ये पुरुष लाठ बाट से बाराती बने हैं।

कालान्तर में नकटा नाच मात्र ठेठ गाँवों में ही रह गया और इसके लिये पेशेवर औरतों को बुलाया जाने लगा।

कुरु प्रदेश में इस प्रथा को 'कोयल' कहते हैं। बारात जाने के बाद उसी दिन रात्रि में सब घर व पड़ोस की स्त्रियाँ मिलकर एक प्रथा मनाती हैं, जिसको 'कोयल' कहते हैं। इसमें एक ब्राह्मणी नाई बन जाती है और समधनों को आकर बारात का हाल सुनाती है। घर की सब स्त्रियाँ उसे घेरकर बैठ जाती हैं और पूछती हैं कि बाग में क्या क्या किया? दावत कैसी का है? तब वह ब्राह्मणी जो नाई बनती है तरह तरह की अश्लील बातें करती है।

इसके बाद भाँग बनाई जाती है। एक लम्बा सा डण्डा लेकर नाई भाँग घोटता है। भाँग घोटते घोंटते वह गाना गाता है और मस्ती में झूमता रहता है।

इसके बाद एक ब्राह्मणी नाई बनकर आती है और आकर कहती है कि मुझे बारात में लड़के माँ, बुआ इत्यादि को खबर लाने के लिये भेजा गया है। उस समय वह एक गाना गाती है--

मैं तो दूरों में आया री माई रामलीला
मुझे जगदीश ने भेजा री माई रामलीला
बहू की सुध ला दे री माई मुक्खी की खबर ला दे
मुझे पास ही सुला दे री माई रामलीला।

इस प्रकार घर के प्रत्येक पुरुष का नाम लेकर उसकी स्त्री के साथ मज़ाक होता है।

इसके बाद चूड़ी पहनी जाती है। एक ब्राह्मणी मनिहार का वेश बनाकर आती है। घर में आने पर उससे सबसे पहले बहू का जोड़ा बँधवाते हैं। चूड़ी वाली बहुत मज़ाकिया स्त्री बनती है। वह गाती है -

जगदीश की पौड़ी पौड़ा रे मनिहार लला
कला का हाथ हठीला रे मनिहार लला
कला पहिरन बैठी रे मनिहार लला
वो तो बड़ी ही हठीली रे मनिहार लला।

चूड़ी सचमुच में नहीं पहनाई जाती बल्कि झूठ-मूठ का अभिनय होता है।

चूड़ियाँ पहनने के बाद आधी स्त्रियाँ छत के ऊपर चली जाती हैं और आधी नीचे चौक में बैठी रहती हैं। फिर 'कोयल' बुलाई जाती है। नीचे वाली स्त्रियाँ बोलती हैं - मत बोलो री बहनों।

इसी प्रकार घर के प्रत्येक पुरुष का नाम लेकर बोलती जाती हैं और ऊपर वाली स्त्रियाँ 'मत बोलो री बहनों' कहती जाती हैं। इस प्रकार 'कोयल' समाप्त हो जाती है। कहीं-कहीं इस क्षेत्र में कोयल के बन्नी बन्ने बनाकर उनके फेरे भी कराये जाते हैं।

बारात जाने के अगले दिन दोपहर को स्त्रियाँ गाना बजाना और नृत्य करती हैं।

यह लड़के के विवाह की मुख्य प्रथा थी जिसका प्रचलन अब कम हो गया है। इसमें लगभग सभी प्रकार के गीत गाये जाते हैं जो चलते हुए, हँसी-मजाक के होते हैं। इसको 'खोड़िया' भी कहा जाता है।

'खोड़िये' के बाद 'बधावा' गाया जाता है। घर की सब स्त्रियों के नाम लेकर उन्हें बधाई दी जाती है कि उसने ऐसे पुत्र को जन्म दिया है

बधावा है कमला की कोख
जिसने जाया है हरि सा पूत ।

ब्रज प्रदेश में 'कोयल' वह गीत है जो भात से तेल के दिन तक दोपहर को गाया जाता है -

मेरे पिछवारे अगर की री बिरुला
ता चढ़ि कोयल बोलियो
छाँड़ौ कोयल मेरो पिछवारो
लेहु नन्दन वन वास हो
उड़ि किन बैठो अंब की डरियाँ
कुहुक कुहुक रस लेउ हो ।

इस दिन 'रतजगा' होता है। इस अवसर पर प्रचलित हरियाणा का एक गीत इस प्रकार है

कैरै करेंगे हरके बाणियाँ केर करेंगे सुनार
आज बधावा मेरे राम का ।

वैवाहिक झूमर

'वैवाहिक झूमर' विवाह के अवसर पर गाया जाने वाला उल्लासपूर्ण भावों वाला एक सामान्य गीत है, जिसकी पृष्ठभूमि में विवाह की कोई विधि नहीं है। इन गीतों में प्रायः पति पत्नी के सुखमय जीवन, आपस के मान मनुहार और हँसी-मज़ाक के चित्र होते हैं। किसी नायिका को अपने हरे रंग की बूटेदार चादर इतनी प्रिय है कि वह उसके लिये अपनी बहनें यहाँ तक कि पति को भी बदलने को तैयार है, किन्तु चादर बदलने को तैयार नहीं है

कंगना भी बदलूँ, पहुँची भी बदलूँ
पिया बदल कोई लेवे
चदरिया न बदलूँ, हमर हरियर चद्दर बूटेदार
चदरिया न बदलूँ ।

परदेस जाते हुए पति को जाड़े में लौट आने के लिये पत्नी अनुरोध करती है। पति उसे आश्वासन देता है कि तुम्हारे जैसी सुघड़ पत्नी को मैं जाड़े के मौसम में वियोगजन्य दुःख नहीं दे सकता। कहीं सोये हुए दूल्हे को जगाने का उल्लेख है तो कहीं कम उम्र का दूल्हा हँसता-बोलता नहीं इसलिये उसकी पत्नी उसे पेड़ में बाँध देती है, दूल्हा उससे छुड़ाने के लिए आग्रह करता है --

छोटे मोटे पेड़वा न फूले जाने हे ननदो
न फरे[१] जाने हे ननदो
पेड़वा देब त कटवाई, सुन हे ननदो
छोटे मोटे पियवा न हँसे जाने हे ननदो
न बोले जाने हे ननदो
पियवा के देब त बँधाई सुन हे ननदो
बान्हल पियवा अरजिया करे हे ननदो
मिनतिया[२] करे हे ननदो
अब धनी लेहु ना छोड़ाए, सुनऽ हे ननदो ।

एक गीत में ऐसा उल्लेख है कि अत्यन्त प्रेम से लगाये हुए पान के बीड़े को खाकर नायक जो पीक फेंकता है, उसमें रँगाकर नायिका चुनरी पहनती है। चुनरी पहन कर वह बाजार जाती है तो कोई मनचला उसे देखकर मूर्च्छित हो जाता है। गर्वीली नायिका उसका उपहास करती हुई कहती है—क्या तुम्हें जाड़ा बुखार हो आया है अथवा सिर में दर्द है? मनचला कहता है--ऐसा कुछ नहीं है पर ऐ साँवरी, क्या तुम्हें साँचे में ढाला गया है या सोनार ने गढ़ा है? वह कहती है --ऐसा कुछ नहीं है। माँ की कोख से मेरा जन्म हुआ है और यह सूरत भगवान् की दी हुई है।

इन गीतों में प्राय: पति की पत्नी के प्रति अत्यन्त आसक्ति देखी जाती है तो कहीं भाँति-भाँति के जेवर गढ़वाने के लिये पत्नी द्वारा पति से किया गया अनुरोध है, पर पत्नी केवल आभूषण प्रेमी ही नहीं है; पति के विदेश जाने पर वह उसके लिये विह्वल हो उठती है। नैहर में सब सुख है पर पति बिना सब व्यर्थ है। उसके वियोग से दु:ख एवं आने पर मिलन की प्रसन्नता के वैसे ही भाव नायिका के मन में उठते हैं—

माँग मोरा टीकवा से हो भरी
टीकवा मोतिया मे रे जड़ी ।
आजु मोरा अइहें रे बलमुआ
सेजिया बालम से भरी ।
कालु मोरा जइहें रे बलमुआ
रतिया नीनियो ना परी ।
हाथ मोरा कंगना से हो भरी
कंगना मोतिया से रे जड़ी ।
बाँह मोरा बजुआ से हो भरी
बजुआ झबिया से रे जड़ी ।
गोड़ मोरा पायल से हो भरी
पायल घुँघरू से रे जड़ी ।
आजु मोरा अइहें रे बलमुआ
सेजिया बालम से हो भरी ।

---

१. फलना, फलों से युक्त होना, २. विनती।

कालु मोरा जइहें गे बलमुआ
रतिया नीनियो ना परी ।

मथझक्का

'मथझक्का' शब्द का अर्थ 'माथा ढँकना' है। माथा+झक्का=मथझक्का। माथा झाँपना, ढँकना आदि इसके अर्थ हैं। यह विधि कन्यापक्ष की ओर विवाह के बाद और विदाई के पूर्व होती है। इसमें लड़की का ससुर या जेठ लड़की के सिर पर घूँघट की तरह तीन बार साड़ी रखता है और लड़का तीन बार हटाता है। इसका तात्पर्य यह विदित होता है कि यदि लड़का किसी कारण लड़की का प्रतिपालन नहीं कर सका तो उसके पिता या भाई उसकी मर्यादा रखेंगे। इस समय गाये जाने वाले गीतों में विवाह के अवसर पर समधी समधी के आपसी व्यवहार अथवा पुत्री के पिता द्वारा लड़के की उम्र आदि न देखकर मात्र उसका कुलवंश देखने का वर्णन है। पुत्री कम उम्र के पति को देखकर दुखी होती है। कही लड़की की माँ अपनी दासी तथा सेवकों के द्वारा अपने समधी के घर-संपत्ति की जानकारी प्राप्त करती है। एक गीत में ऐसी चर्चा है कि कोई दूल्हा पान का बीड़ा अपनी दुल्हन की ओर फेंकता है पर बाबा की दुलारी कन्या उसे स्वीकार नहीं करती क्योंकि वह उस पर विश्वास नहीं करती। उसके रंगीलेपन को देखकर वह उस पर अपना अधिकार जमाना चाहती है।

कहीं बेटी के विवाह हेतु बारात सज-धज कर आ गई है। बारातियों के साथ समधी का यथोचित सम्मान होता है। समधी दहेज में वस्त्राभूषणों तथा घोड़े आदि की माँग करते हैं। मथझक्का की विधि सम्पन्न करते हुए ससुर बहू को देखता है। लड़की का पिता कहता है - मैंने आपको दान दहेज नहीं दिया, एकमात्र लक्ष्मी स्वरूपा कन्या ही आपको दे रहा हूँ। लड़के का पिता कहता है - ऐसी बाते कहकर आप मुझे लज्जित न करें। आपने मुझे लक्ष्मी ही दी है। आपकी कन्या ही अब मेरे कुल की लक्ष्मी है। इसके सिवा हमें क्या चाहिये --

देसहिं देस हम नेवता पेठाइले[१] नेवता निहार[२] सरमाये जी
जब बरियतिया गोएँड़[३] भीरि[४] आयल, समधी के घोड़ा अगुआएल[५] जी
जब बरियतिया दुआरे दल उतरे समधी के बइठे के चाहीं जी
लाली अलइचा[६] हे लाली गलइचा[७] समधी के बइठे के चाहीं जी
जब बरिअतिया दुअरिया भीरि अइले माँगले दुअरिया के नेग जी
हीरा मोती डाला भरि माँगे, माँगेले हंसराज घोड़ा जी
जब बरियतिया मड़उआ[८] भीरि उतरे मड़वनि[९] गउरा निरेखे[१०] जी
सोने के कटोरा में अगर चन्नन, समधी के हिरदा[११] में लगायो जी

---

१. भेजते हैं, २. देखकर, ३. गाँव के आसपास की भूमि, गोष्ठ, ४. पास, ५. आगे बढ़ा, ६. गलीचा का अनुकरणनात्मक प्रयोग, ७. एक प्रकार का बिछावन, जिसमें रंग-बिरंगे बेल-बूटे बने होते हैं, ८. मण्डप के, ९. मड़वे में, १०. देखते हैं, ११. हृदय।

समधी समधी मिलन आए मिलत दूनू[१] कर जोरी जी
दान दहेज समधी एकहुँ ना दीजो लछमिन[२] एकहुँ मैं दीजो जी
अइसन बोली जनि बोलहु ए समधी बोलइत देखि मरमायो जी
राउर धियवा[३] कवल[४] करेजवा सेहो लछमिन हमार जी ।

बेटी-विदाई

गीत के शीर्षक से ही स्पष्ट है कि विवाह के बाद जब कन्या ससुराल जाती है, उस समय कन्यापक्ष के भावों को व्यक्त करते हुए बड़े मार्मिक गीत गाये जाते हैं। नाज़ों से पाली, आँखों की पुतली बिटिया को पराये घर विदा करते हुए माता का कलेजा टूक टूक हुआ जाता है। वह बेटी से कहती है- मेरे घर को सूना करके तू ससुराल चली। अब तू आँखों से ओझल होकर मेरे लिये गूलर का फूल हो जाएगी। तेरी सखी सहेलियाँ अब मेरे पास नहीं आएँगी। तू सबेरे उठकर कोयल की तरह मीठी बोली बोलती है, वह बोली मेरे लिये दुर्लभ हो गई --

तुहूँ त चललू बेटी अपना ससुरवा
से सून कइलू ए बेटी हमरो अँगनवा ।
आँख के पुतरिया[५] नजर के ओट[६] भइलू
गोदी के बेटी भइलू डुमरी[७] के फुलवा ।
तोहरो सखिया सब फीरि फीरि[८] जइहें
भूलिये नाहीं अइहें अब हमरो अँगनवा ।
भोर भिनुसार[९] बेटी सून लागि घरवा
के अब बोलिहें उठि, कोइली के बोलिया ।

उधर बेटी को यह शिकायत है कि परिवार के लोगों ने घी की गागर की तरह बड़े जतन से कन्या को पाला पोसा लेकिन जल की मछली की तरह विवाह करके उसे घर से निकाल दिया ---

अम्मां के सँचली[१०] गगरिया त जइसे घीव गागर ए
सेहो दिहले बाबा निकाली त जइसे जल माछर ए
भउजी के सँचली गगरिया त जइसे घीव गागर ए
सेहो भइया दिहले निकाली त जइसे जल माछर ए ।

विदाई के गीतों में प्रायः ऐसा भाव आता है कि कन्या के माता पिता और भाई तो दुखी होते हैं, किन्तु उसके जाने से भाभी को बड़ी प्रसन्नता होती है-

निबुआ तले डोला रखि दे मुसाफिर
सावन के आइल बहार ।
केकरा के रोवे से गंगा बहत है
केई रोवे सागर धार ।

---

१. दोनों, २. लक्ष्मी, ३. बेटी, ४. कमल, ५. पुतली, ६. ओझल, ७. गूलर, उदुम्बर, ८. लौट जाएँगी, ९. सबेरे, १०. संचित, एकत्र।

केकरा रोवे से चुनरी भींजत है
केई के मनवा आनन्द हे।
अम्मां के रोवे से गंगा बहत है
बाबा रोवे सागर धार।
भइया के रोवे से चुनरी भींजत है
भउजी के मनवा आनन्द हे।
अम्मां कहे बेटी नित उठि अइहऽ
बाबा कहे छवरे[1] मास।
भइया कहे बेटी अवसर पे अइहऽ
भउजी कहे दूर जाहु हे।
का तोरा भउजी हे नून हाथ दिहलीं
ना देलीं पउती[2] पेहान[3] हे।
का तोरा भउजी हे चूल्हा चौका रोकलीं
काहे कहलू दूर जाहु हे।

इसी भाव से मिलता हुआ एक पंजाबी लोकगीत इस प्रकार है—

माँ रोंदी दी अंगिया भिज्ज गई
प्यू रोये दरया बहे
मेरा वीर रोये सारा जग रोय
मेरी भाभियाँ मन चाव होय।

यानी रोते रोते माँ की अँगिया भीग गई। पिता के रोने से दरिया बह गये। भाई को रोता देख संसार रो रहा है किन्तु भाभियों के मन प्रसन्न हैं।

विदाई के समय शोक विह्वल बेटी अपने पिता से कहती है— मेरे लखपति पिता ने मेरा विवाह विदेश में क्यों किया? भाई को तो राजपाट दिया और बहन को दिया परदेस

काहे बियाही बिदेस रे लखिया बाबुल मोरे
हम तो रे बाबुल खूँटे की गइया
जित हाँको हँक जाय रे लखिया
हम तो बाबुल तोरे पिंजरे की मैना
भोर भये उड़ि जाय रे लखिया
भइया को दिये बाबू महला दुमहला
हमको दिये परदेस रे लखिया बाबुल मोरे।

गढ़वाल प्रदेश में बेटी के हृदय की करुणा विदाई के मांगल में इस प्रकार व्यक्त होती है—

काला डांडा पीछ बाबाजी, काली च कुयेड़ी
बाबाजी एकुली, मीं लगदी च डैर

---

१. छठें, २. सींक की बनी पिटारी, ३. ढक्कन।

कनकैक जौलू बाबाजी विराणा बिदेस
आग दिऊलू बेटी त्वै सकल जनीन।

— पिता के गले लगती हुई बेटी कहती है — काले पर्वत के पीछे काले काले कुहरे के बादल छाये हैं। पिताजी, अकेले जाते हुए मुझे डर लगता है। पिताजी, उस विदेश में जहाँ अपना कोई नहीं है, मैं अकेली कैसे जाऊँगी? पिता बेटी को समझाते हैं— तुम्हारे साथ तुम्हारे बड़े और छोटे भाई जाएँगे। बारात में कई लोग हैं। आगे बारात जायेगी, पीछे मैं हाथी घोड़े भेजूँगा।

नये जीवन की प्राप्ति के लिये जिस बेटी का सर्वस्व छूट रहा हो, उसका परिवार के प्रति ममता होना स्वाभाविक है और इसीलिये उसके हृदय में कुहरा छाया रहता है। किन्तु आगामी जीवन का आकर्षण उसे ऐसे दु:ख को सहन करने की सामर्थ्य प्रदान करता है।

बेटी से घर की शोभा होती है। उसके जाने से सारा घर सूना हो जाता है। इसी भाव का एक कुरमाली गीत इस प्रकार है

माँगो, घार माझे बेटी रे जनम लेला
हाय रे घर सोभी गेला रे
माँगो, डाड़िया कान्दाये बेटी चली गेलो
हाय रे, घार सुन्य भेला रे।

मिथिला में बेटी की विदाई के समय माता अपने दामाद से कहती है -

नइहर सून कराने जाइछे रे जोगिया
तोरा बिन रहलो न जाए
नित उठ मुंहमा निरखल रे जोगिया
मुँह क खुआएल बीरा पान।

— अर्थात् ओ दूल्हे, तुम मेरे कोहबर घर को सूना करके जा रहे हो। मैंने तुम्हारा कितना आदर-जतन किया लेकिन तुम कितने निठुर निकले।

हरियाणा के विदाई गीतों में मायके वालों की करुणा तो मर्म को छू लेती है -

तुलियां का बंगला हो बाबल, चिड़ियें खोस गिरआ
मेरा गाड्डा अटक्या हो बाबल तेरा महल तले
दो ईंट कटादयां हे धीअड़ घर जा आपणे
मेरा डोला अटक्या हो बाबल तेरे बागां में।

कंकन छोड़ने तथा विदाई के गीत (बुन्देलखण्ड)

विवाह के बाद बुन्देलखण्ड की प्रथा के अनुसार किसी विशेष दिन दूल्हे द्वारा दुल्हन के कंगन की गाँठ खुलवाई जाती है। कंगन से बँधा एक लाल धागा होता है, इसे ही खोलते समय गीत गाया जाता है —

जो नै होय धनुष को टोरबो, कठिन कंकन छोरबो
तुमने जनकपुरी पग धारे, शिव के धनुष टोरकें डारे
जो नै होय मारीच को मारबो, कठिन कंकन छोरबो।

जनकपुरी की नारी आखिर सारी लगें तुम्हारी
जिनखों बिन हथियारन मारबो कठिन कंकन छोरबो ।
वे तो जनकपुरी की नारी हाँमी करें तुम्हारी
अब तो सीखो सिया सों कर जोरबो, कठिन कंकन छोरबो ।

बारात विदा होने लगती है। समधिनें कुछ नहीं चाहतीं। वे स्वयं वस्तुएँ देकर उन्हें समधी द्वारा ग्रहण किये जाने का आग्रह करके कृतार्थ होती हैं –

हँस जैयो सजना विहँस जैयो रे
तुमरो कछू नई चाहे विहँस जैयो रे
सो रूपो रुपैया साजन हमई से लै ले
सो अपनो करकें बताय जैयो रे
लौंगो के बटुआ सजन हमई से लै ले
सो अपनी करके खुँमाय जैयो रे
पानों की बिरियाँ साजन हमई से लैले
सो अपनी करके रचाँय जैयो रे ।

ओल्यूँ या ओलूड़ी (राजस्थान)

यह भी एक प्रकार का विदाई गीत है। राजस्थान में किसी की याद में भी 'ओल्यूँ' या 'ओलूड़ी' नामक गीत गाया जाता है। बेटी की विदाई पर घर की स्त्रियाँ इसे गाकर अपना दुःख हल्का करती हैं। यह गीत राजस्थान के माँड का ही एक प्रकार है। इसमें दोहों का प्रयोग अधिक होता है– –

अंदाता जी कुणी रे देसड़ली ओलूड़ी लगाई रे मारा सेण
अंदाता जी ओलूड़ी आवे छे अब छाने छाने रे मारा सेण
ओलू हरिया डूँगरा ओलू मज मेवाड़
ओलू प्यारी जी रे घूँघटे भाइना रे रूमाल ओलूड़ी लगाई रे
आपरी ओलूँ में करां मारी करे ना कोय
ओलू कर पीला पड्या लोग जाणें पंड रोग
अंदाता जी परदेसां पधारो
लारा माने लीजो सा मारा सेण
परणाई पीला पोतड़ा मेली ऊमरकोट
एक संदेसारां सावला, काई थारे कागजिया राटोट
अंदाता जी ओलूड़ी रा डेरा अब नेड़ा दीजो रे मारा सेण ।

—हे अन्नदाता, आप कौन से देश जाकर बैठ गये? मेरे स्वामी, आपकी याद आती है। हरियाले पहाड़, मेवाड़ के बीच के भाग, अपने घूँघट और आपके द्वारा भेंट किये गये रूमाल को देखकर आपकी याद आती है। आपकी याद मैं करती हूँ किन्तु मेरी याद कोई नहीं करता। आपकी याद से मैं पीली पड़ गई हूँ और लोग कहते हैं कि मुझे पाण्डुरोग है। हे अन्नदाता, परदेस जाओ तो मुझे भी ले चलना। बचपन में ब्याह के बाद

आपने मुझे उमरकोट ही छोड़ दिया। हे स्वामी, एक संदेश देने के लिये क्या कागज की भी कमी आ गई? हे साथी, हम याद करने वाली के डेरे समीप ही लगवाना।

समदाउनि

विवाह-समारोह सम्पन्न होने के बाद कन्या ससुराल जाने की तैयारी में होती है। उस समय मिथिला में एक विशिष्ट शैली का गीत गाया जाता है जो 'समदाउनि' नाम से प्रसिद्ध है। भोजपुर प्रदेश में इस गीत को 'समदावन' और मगध क्षेत्र में 'समदन' कहते हैं। यह गीत सभो क्षेत्रों में बेटी की विदाई के अवसर पर ही गाया जाता है। विदा के समय कन्या अपने संबंधियों के गले लगकर रोती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले मार्मिक गीत हृदय को छू लेने वाले होते हैं। ये गीत प्रेम और करुणा से ओत प्रोत होते हैं। मिथिला प्रदेश का एक समदाउनि गीत बहुत प्रसिद्ध है जिसमें नाज़ों से पाली हुई सीता के ससुराल जाने की वेला में उसकी तथा परिजनों की व्यथा का करुण चित्रण है

बड़ रे जतन सँ हम सिया धिया पोसलौं
से हो रघुबंसी नेने जाय आहे सखिया।
रानी जे रोवै रामा रोवै रनिबसिया
राजा जे रोवै दरवजवा आहे सखिया।
हाथी जे रोवै रामा रोवै हथिसरवा
घोड़ा जे रोवै घोड़सरवा आहे सखिया।
टोला ओ परोस मिलि अओर सब रोयलै
रोवै नगरिया के लोग आहे सखिया।
मिलि लिय मिलि लिय संग के सहेलिया
अब ने अयतन सिया राज आहे सखिया।

ससुराल जाते समय कन्या का मन भयभीत और उदास रहता है। उसे सान्त्वना देते हुए परिजन कहते हैं कि घबराओ मत, तुम्हारे साथ पाँच भाई और सेवा करने वाली दासी भेजी जा रही है। लड़की की माँ अपनी समधिन के पास संदेश भेजकर निवेदन करती है कि मेरी कन्या के साथ अच्छा व्यवहार करेंगी। किन्तु समधिन उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर देती है--

एक धिया[१] पतरी दोसर सुकुवाँरी
कइसे कइसे जइबू ए बेटी सात नदी पार
बाँवें[२] जइहें लोकनी[३] दहिने पांचों भाई
परभु जी के दहिने बहियाँ सिरहनवें[४] धइले जाई
सुनहु लोकनी सुनहु पाँचों भाई
समधिन से कहिहऽ ए लोकनी अरज हमार

---

१ बेटी, दुहिता, २ बायें, ३. सेवा-टहल करने के लिये कन्या के साथ जाने वाली दाई, ४. सिर के नीचे, चारपाई में सिर की ओर का भाग।

लाते जनि मरिहें पराते जनि गारी
बारी[१] नीनिए[२] धिया जनि जगइहें धिया मुकुवाँरी
सुनहु लोकनी सुनहु पाँचों भाई
समधिन से कहिहऽ ए लोकनी अरज हमार
लाते हम मारबो पराते देबो गारी
नीनिए हम जगइबो पूत बहुआरी[३] ।

समुझवनी

'समुझवनी' शब्द 'समझाना' क्रिया का ही अपभ्रंश रूप है। यह भी एक प्रकार का बेटी की विदाई का ही गीत है। विदा के समय बेटी को यह समझाया जाता है कि उसे ससुराल वालों के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। यह बड़ा मार्मिक गीत है। ननद की विदाई के अवसर पर भाभी के क्लेश का भी चित्रण इस गीत में है। जिस घर में वह पली बढ़ी, उसी के लिये वह अतिथि हो गई

कोई सखि माथा बन्हावे[४] कोई सखि उबटन हे
कोई सखि चीर सम्हारे, कोई रे समुझावत हे
सासु के बन्दिहऽ[५] पाँव, जेठानी बात मानिहऽ[६] हे
ननदी के करिहऽ पिरीत[७] देवर कोर[८] राखिहऽ हे
भउजी के बान्हथिन खोंइछा[९] अँचरा बिलमावथि[१०] हे
आज भवन सोग सून भेल ननद भेलन पाहुन[११] हे
बाबा जे हथिन[१२] निरमोहिया, त हिरिदिया[१३] कठोर भेल हे
हमरा के सौंपलन रघुनन्दन अपना पलटि[१४] घर हे ।

कन्या को विदाई के समय ससुराल पक्ष वालों के साथ सुन्दर व्यवहार करने का उपदेश देना एक पुरातन परम्परा है। कालिदास विरचित 'अभिज्ञानशाकुन्तल' में महर्षि कण्व द्वारा विदा होती हुई शकुन्तला को भी इस प्रकार का उपदेश दिया गया है।

'समुझवनी' गीतों में कहीं कहीं अन्य प्रकार का भाव भी मिलता है। किसी गीत में ननद के जाने से भाभी की प्रसन्नता व्यक्त होती है तो किसी गीत में बेटी की विदाई के समय माँ, चाची, भाभी और बहन की विह्वलता का चित्रण है। एक गीत में ऐसा भाव है कि विदाई के समय बेटी को उसके परिवार के लोग प्रेमवश खाने-पीने का आग्रह करते हैं तो बेटी उन लोगों के द्वारा किये गये व्यवहार की याद दिलाती है। लोग इसे समझाते हैं कि विदा के समय बीती बातों की याद दिलाकर क्यों हमारा दिल दुखाती हो ?

छोट अँगनवा ए बेटी, सजन बहुत
निहुरी निहुरी[१५] ए बेटी भेंटऽ परिवार

---

१. कच्ची, २. नींद, ३. बहू, पुत्रवधू, ४. गूँथती है, ५. वन्दना करना, ६. मानना, ७. प्रेम, ८. गोद, ९. विदा के समय महिलाओं के आँचल में अक्षत, हल्दी-दूब इत्यादि बाँधना, १०. ठहराती है, ११. अतिथि, १२. हैं, १३. हृदय, १४. लौट गये, १५. झुक झुक कर।

उठऽ उठऽ दुलारी धियवा[1] खाहु दही भात
होत भिनुसरवा ए बेटी जइबू बड़ी दूर
आपन भतवा[2] ए अम्मां अपना के थरऽ
केनवे[3] कीनत[4] ए अम्मां दिहलू झहराई[5]
चुप होखऽ चुप होखऽ बचिया[6] हमार
चलहि के बेरिया ए बेटी दिहलू समुझाई
उठऽ उठऽ दुलारी ननदी खाहु दही भात
होत फजीरवा[7] ए ननदी, जइबू बड़ी दूर
आपन दही भतवा ए भउजी, अपना के थरऽ
बसिए[8] माँगत ए भउजी दिहलू लुलिआई[9]
चुप होखऽ चुप होखऽ ननदी हमार
चलहिं के बेरिया ए ननदी दिहलू समुझाई ।

वधू-प्रवेश

ससुराल में वधू का गृह प्रवेश मांगल्य का सूचक माना जाता है। वधू का स्वागत गृह लक्ष्मी के रूप में किया जाता है और इस अवसर पर गढ़वाल में यह गीत गाया जाता है -

शुभ दिन शुभ घड़ी आई सुहागण
अमरित सिचदी आई सुहागण
मोतियों परोखदी आई सुहागण ।

-- आज के शुभ दिन और शुभ घड़ी में सुहागन का गृह प्रवेश हो गया है। अमृत को सींचती हुई और मोतियों को बिखेरती हुई यह लक्ष्मी वधू आ गई है। इस सुहागन का स्वागत है।

गढ़वाल में कोई भी शुभकार्य होने के पूर्व देवी-देवताओं की भाँति पितरों का भी आह्वान किया जाता है। शुभकार्य होने के बाद भी पितरों का आह्वान किया जाता है कि वे आकर अपने परिवार के इस कार्य को सम्पन्न कर आशीर्वाद दें --

जै जस देण पितरो देवता
आवा पितरो बैठा पितरो तुम्हारा मात लोक
यो जगिन उरियाओ, जैजस लेण पितर देवता
स्वर्ग का पितर गैण्यौ पूछदन
सुघर बेटा जन्म्यो कि बेटा को बढ़ाऊ छ ?
हमारा मातलोक यो मंगल कारिज छ ।

--पितर देवता! जय और यश दें। हे पितरो, हमारे मातृलोक में जाओ और बैठो।

---

१. बिटिया, २. भात, ३. विभिन्न सामान, ४. खरीदते हुए, ५. डाँट दिया, झिड़क दिया, ६. बच्ची, ७. सबेरे, ८. बासी, रात का बनाया हुआ अन्न, ९. डाँटकर मूर्ख बनाया।

हमारा यज्ञ हो रहा है। उसमें आकर हमें यश दो। ऐसे आह्वान को पाकर स्वर्ग के पितर तारों से पूछते हैं कि मातृलोक में कौन सा यज्ञ हो रहा है? सुगृह में पुत्र हुआ है या अन्य कार्य की बधाई बज रही है? इस पर पुनः यज्ञ करने वाले घर से आग्रह होता है कि हमारे घर में मंगलकार्य हो रहा है।

बेटा-पतोह परिछन

नई दुल्हन जब विवाह के बाद पहली बार ससुराल जाती है तो डोली से उतरने पर वर वधू का परिछन लोढ़े से किया जाता है, आरती उतारी जाती है

अयलन[1] रुकमिन[2] जदुराई[3] हे परछों[4] वर नारी
नगरी में पड़लो हँकार[5] हे परछों वर नारी
कंचन थारी सजाऊँ हे, परछों वर नारी
मानिक दियरा बराऊँ हे, परछों वर नारी
दस पाँच आगे पाछे चललन परिछे, गीत मधुर रस गावे हे
रुकमिन हथिन चान[6] के जोतिया, बाल गोविन्दा[7] सुकुवाँर हे
काहे तो हहु[8] हरि नीने[9] अलसायल, काहे हहु मन बेदिल हे
का तोरा सासु नइ किछु देलन, का सरहज तोर अबोध हे
नइ मोर सासु हे नइ किछु देलन, नइ मोर सरहज अबोध हे
मोर सासु हथिन लछमिनियाँ, सरहज मोर कुलवन्ती[10] हे
मोर ससुरार न भोराय[11] हे, परिछों वर नारी।

कोई कन्या अल्पवयस्का है। उसे परिछने के लिये सास सूर्य देव की प्रार्थना करती हैं। सूर्य को वे मना भी नहीं पाती कि वधू सो जाती है-

मचिया बइठल तुहू अम्मां आदित[12] मनावेली हे
आदित ए होखऽ ना परसन्न[13] बहुआ परीछबि[14] हे
आदित मनावहि ना पावेली बहुआ ओंएरि[15] गइली हे।

दौरा में डेगधराई

दूल्हे दुल्हन का परिछन हो जाने के बाद दोनो का गठबन्धन कर दुल्हन को दौरे में पाँव रखवाते हुए कुलदेवता के घर तक ले जाते हैं और वहाँ विशेष विधि सम्पन्न कराई जाती है। कहीं-कहीं बहू के सिर पर कोरी नदिया में जमा हुआ दही सन के बीठा पर रखा जाता है। उसे दूल्हा हाथ से पकड़े हुए अन्दर तक ले जाता है। लड़की के पाँव दौरे में रखे जाते हैं। एक से दूसरे दौरे में डग उठाते हुए दुल्हन घर में प्रवेश करती है। इस समय गाया जाने वाला गीत इस प्रकार है –

---

१. आये, २. रुक्मिणी, ३. कृष्ण, ४. परिछन करो, ५. निमंत्रण, ६. चाँद, ७. बालगोविन्द, ८. हो, ९. नींद से, १०. कुलीन, ११. भूलता, १२. सूर्य, १३. प्रसन्न, १४. परिछन करूँगी, १५. लेट गई, सो गई।

काँचहि बाँस के डलवा[१] बिनायो[२]
बहुआ के पाँव ढरायो[३] बहू आयो
गलियनि गलियनि जाजिम[४] बिछायो
बहुआ के डँड़िया[५] धरायो बहू आयो।

गोड़लग्गी

'गोड़' का अर्थ है पाँव। पाँव लगने को ही क्षेत्रीय भाषा में 'गोड़लग्गी' नाम दिया गया है। डोली से उतर कर कोहबर तक जाने के लिये बहू को दौरे में पाँव रखवा कर इसलिये ले जाया जाता है कि वह जमीन पर पैर नहीं रख सकती या कि ऐसी प्रथा नही है। कोहबर में चुमावन की विधि सम्पन्न करके बहू को लड़के का जूठा दही-गुड़ या दही चीनी खिलाया जाता है। इसके बाद बहू का मुँह देखा जाता है। बहू बड़ों के पाँव छूती है और उनका आशीर्वाद प्राप्त करती है -

आवेली दुलहिन सुन्नर देखि मन विहँसेला ए
ए लागे अपना अम्मांजी के पाँव त पयरे[६] पयेरेली[७] ए।
जुगे जीवो ए दुलहिन जुगे जीवो भर माँग सेनुर ए
ए जुगे जुगे बाढ़ो[८] एहवात[९] ए मोरा रे पुतर संगे राज करू ए।
आवेली दुलहिन सुन्नर देखि मन विहँसेला ए
ए लागे अपना गोतनीजी के पाँव त पयरे पयेरेली ए।
जुगे जीवो ए दुलहिन जुगे जीवो भर माँग सेनुर ए
ए जुगे जुगे बाढ़ो अहिवात ए मोरा रे देवर संगे राज करू ए।

चउठारी

'चउठारी' शब्द चतुर्थी का अपभ्रंश है। इसे 'चौथारी' भी कहते हैं। विवाह के चार दिन बाद मण्डप में रखे कलश के पानी से लड़के लड़की दोनों को नहलाया जाता है। यदि लड़की की विदाई नहीं हुई तो दोनों अपने-अपने घर के मण्डप के कलश से नहाते हैं। गाँव में पहले देवी-स्थान जाकर फिर सारे देवस्थानों में जाकर शादी की मिठाई प्रसाद के रूप में चढ़ाई जाती है। पंडित उसी दिन कंगन खोलते हैं। लड़की के हाथ का सूत्र खोलकर लड़की की माँ के गले में और लड़के के हाथ से सूत खोलकर उसकी माँ के गले में पहनाया जाता है। यदि लड़की ससुराल में है तो दोनों के हाथ का धागा लड़के की माँ पहनती है और सवा महीने के बाद उतारती है। इस अवसर पर अमुक गीत गाया जाता है --

सँकरी[१०] गलिया रउरी कवन देव ए
आहो हाथी मोरा पैरो[११] ना लेइ[१२] ए
कइसे गढ़[१३] परिछबि[१४] हे।

---

१. बाँस की कमाचियों से बना हुआ गोलाकार टोकरा, २. बिनवाया, ३. रखवाया, ४. एक प्रकार की चादर, ५. पालकी, ६. पैर, ७. पूजती है, ८. बढ़े, ९. सुहाग, १०. संकीर्ण, ११. पाँव भी, १२. रखता है, १३. देव-स्थान, १४. प्रदक्षिणा करूँगी।

मिथिला के विवाह-गीतों में अधिकतर शिव-पार्वती एवं राम-सीता का चित्रण है। वहाँ गाये जाने वाले एक चौथारी गीत में ऐसा ही भाव है—

मुदित जनकपुर आज जतेक युवती गण हे
आहे रामजीक चतुर्थी आजु सकल जन हर्षित हे।
घर घर नाइनि हँकारि[1] समय पर आएल हे
आहे आतुर बसन[2] सम्हारि समय अलसायलि हे।
कैओ सखी जानकी आनि पसाहनि फोलल हे
आहे श्रीरघुनाथक संग सिया नहबाओल हे।
पाँच ऐहब[3] मिलि आनि पठाओल कोबर घर हे
आहे तैखन मेज उठाय निपल सगरे घर हे।
अष्टदल कमल अनके मृगा मृग मयूर हे
आहे ऐहब अरिपन देल ताहि देल सिन्नुर हे।
गमहि चलल जनक गृह शीश नबाओल हे
आहे सारहि[4] छेकल दुआरि कि सखी हँसाओल हे।

चाल-चलाई

मुस्लिम समाज में विवाह के चौथे दिन 'चाल चलाई' की विधि सम्पन्न की जाती है। उस दिन आँगन में दूल्हे को बिठाकर उसके सामने दुल्हन को, शृंगार करके, सेहरा पहना कर गीत गाते हुए घुमाया जाता है। दुल्हन आँखें बन्द किये रहती है। इसी तरह उसे कोहबर में ले जाया जाता है। इस अवसर पर निम्न गीत गाया जाता है --

लाड़ो[5] को लाल बुलावे, यह बाजूबन[6] झूमता
सहाना[7] लाल बुलावे, यह बाजूबन झूमता
हजरिया[8] लाल बुलावे, यह बाजूबन झूमता
माँगो[9] टीका पेन्ह के तुम मेरी सेज पर चलि आओ
लाड़ो को लाल बुलावे, यह बाजूबन झूमता
नाको बेसर पेन्ह के तुम मेरी सेज पर चलि आओ
कानों बाली पेन्ह के तुम मेरी सेज पर चलि आओ
हाथों कंगन पेन्ह के तुम मेरी सेज पर चलि आओ
लाड़ो को लाल बुलावे, यह बाजूबन झूमता।

किसी-किसी गीत में सजी हुई दुल्हन से धीरे-धीरे चले आने का आग्रह किया गया है, जिससे उसका दूल्हा उसे देख सके—

माँग लाड़ो टीका सोभे मोतिये की बहार
लाड़ो हौले चलि आओ ए बोलावे दिलवरजान

---

१ बुलाती है, २. वस्त्र, ३. सुहागिनें, ४. सालियाँ, ५. लाड़ली, ६. बाजूबन्द, बाँह पर पहनने का एक आभूषण, ७ शहाना, बादशाह जैसा, ८. हजारपति, ९. माँग में।

नाक लाड़ो बेसर सोभे उस पर चुनिये[1] की बहार
लाड़ो हौले चलि आओ तनी देखे दिलवरजान
गले लाड़ो माला सोभे उस पर सिकड़ी की बहार
लाड़ो हौले चलि आओ तनी देखे दिलवरजान
साँवली सलोनी लाड़ो, सर के लम्बे बाल
लाड़ो हौले चलि आओ ए बोलावे दिलवरजान।

नहवावन

चौथारी के समय नहवावन यानी स्नान कराने की विधि सम्पन्न की जाती है। इस समय गाये जाने वाले गीतों में पोखरा खुदवाने, उसमें पानी भरवाने और इस विधि को सम्पन्न करने के लिये प्रचुर मात्रा में पुरस्कार देने का वर्णन होता है---

केई जे पोखरा खनावेला घाट बन्हावेला ए
केकर भरेला कहार त राम नेहवावेले ए।
राजा दसरथ पोखरा खनावेले घाट बन्हावेले ए
कोसिला देइ[2] के भरेला कहार त राम नेहवावेले ए।
केई देला अँगूठी मुनरिया[3] केईया देला रूपा[4] ए
ए केई देला रतन पदारथ भरि गइले सूप ए।
अम्मां देली अँगूठी मुनरिया बहिनी देली रूपा ए
ए भउजी देली रतन पदारथ भरि गइले सूप ए।

गौना

'गौना' शब्द 'गमन' से ही बना है। गौना का अर्थ है -कन्या का अपनी ससुराल के लिये गमन। जो लड़की विवाह के समय विदा नहीं होती, उसके गौने में फिर से बाराती आते हैं। समदावन गाया जाता है। दान-दहेज के साथ लड़की ससुराल जाती है किन्तु गौने की विदाई में चौथारी की रस्म नहीं होती।

गौने के समय लड़की को विदा कराने के लिये दूल्हा आता है। ममता, प्रेम के कारण बेटी के माता-पिता आदि दूल्हे से कुछ दिन और बेटी को छोड़ देने का आग्रह करते हैं। दूल्हा रूखा उत्तर देता है कि आप लोगों को अपनी बेटी इतनी प्यारी थी तो मेरे साथ विवाह क्यों किया? क्यों स्वजनों को इकट्ठा किया? क्यों गौने का दिन तय कराया? क्यों पालकी सजाई और ओ मेरी सलहज साहिबा, आपको अपनी ननद प्यारी है तो आप ही मेरे साथ चली चलिये---

कहँवा से आवेला चाक-चकइया[5] मोरे परान हरी
कहँवा के दुलहा गवन कइले जाला मोरे परान हरी
सभवा बइठल ससुर कइले मनुहारी[6] मोरे परान हरी

---

१. माणिक या लाल का छोटा नग, २. देवी, ३. मुद्रिका, ४. रुपया या चाँदी, ५. चकवा-चकवी, ६. खुशामद।

दिन दस रहे देहु धियवा[१] हमारी मोरे परान हरी
जहँ तोरे ए ससुर धियवा पियारी मोरे परान हरी
काहे लागी सजन बिटोरलऽ[२] हमार, मोरे परान हरी
मचिया बइठल सासु करे मनुहारी मोरे परान हरी
दिन दस रहे देहु धियवा हमारी मोरे परान हरी
जहुँ तोरे ए सासु धियवा पेयारी मोरे परान हरी
काहे लागि गवना के दिनवा धरइलऽ[३] मोरे परान हरी
गेनवा[४] खेलत सखा[५] करे मनुहारी मोरे परान हरी
दिन दस रहे देहु बहिनी हमारी मोरे परान हरी
जहुँ तुहुँ ए सखा बहिनी पियारी मोरे परान हरी
काहे लागी पालकी सजवलऽ मोरे परान हरी
भनसा[६] पइसल[७] भउजी करे मनुहारी मोरे परान हरी
दिन दस रहे देहु ननदी हमारी मोरे परान हरी
जहुँ तोहे ए सरहज[८] ननदी पेयारी मोरे परान हरी
लगहुँ सजन संग साथ हो मोरे परान हरी।

विदाई के समय माँ और बेटी के बीच होने वाले मार्मिक संवाद भी इन गीतों में चित्रित है। कहीं ननद भाभी के आपसी वैमनस्य की चर्चा है तो कहीं पति-पत्नी के उत्कट प्रेम का वर्णन है।

दोंगा

'दोंगा' शब्द 'द्विरागमन' अर्थात् दूसरी बार गमन या आगमन से बना है। गौने के बाद लड़की का जब दूसरी बार ससुराल आगमन होता है या जब वह ससुराल के लिये गमन करती है तो वह उसका दोंगा या द्विरागमन कहलाता है। दुल्हन का दोंगा कराने के लिये वर अपनी ससुराल मे आता है। उसके स्वागत और कन्या की विदाई की जोर-शोर से तैयारी होती है। गाय के गोबर से आँगन लीपा जाता है। कोहबर बनाकर उसमें लाल रंग की चादर बिछाई जाती है। चन्दन की लकड़ी की खाट में झालर लगाई जाती है। माणिक का दीप जलाया जाता है-

सोरही गइया के गोबरे आँगन गहागही लीपल हो
गजमोती चउका पुरायम[९] ता राम अइहें दोंगा करे हो
लालिय[१०] पट केर जाजिम झारि[११] बिछायम हे
काटब खरही[१२] के बाँस त कोहबर बनायम हे
चनन खाट बिनायम[१३] झालर लगायम हे
मानिक दियरा बरायम[१४] राम अइहें दोंगा करे हे

---

१. बेटी, २. इकट्ठा किया, ३. रखवाया, ४. गेंद, ५. साला, पत्नी का भाई, ६. रसोईघर में, ७. प्रवेश करके, ८. पत्नी की भाभी, ९. पुराऊँगी, १०. लाल, ११. झाड़कर, १२. एक प्रकार की घास, १३. बिनवाऊँगी, १४. जलाऊँगी।

केकरे सोभहे पगड़िया त केकर चुनरिया सोभे हे
रामजी के सोभहे पगड़िया त सिया के चुनर सोभे हे
जोड़े जोड़े होवहे[१] मिलान[२] लगन अगुआएल[३] हे ।

विसर्जन

'वि' उपसर्ग पूर्वक 'सृज्' धातु में 'ल्युट्' प्रत्यय लगाकर 'विसर्जन' शब्द बना है जिसका शाब्दिक अर्थ है- उड़ेलना, डालना, त्याग देना आदि। जैसा कि नाम से स्पष्ट है—विवाह में विसर्जन का अर्थ है - मण्डप में बची चीजों को दउरे में उठाकर, जौ का पीठा उठाकर, कोइलर का गीत गाते हुए कोइलर नाम के देवता को चढ़ा देना।

विसर्जन के गीत में दूल्हे-दुल्हन के लिये वस्त्रादि तैयार करने और दोनों को आशीर्वाद देने का वर्णन आता है —

लाल सूई लाल डोरा लाल दरजी बोलाइ के
जुग जुग जियथी[४] दुलहा दुलरइता दुलहा
जिनकर जामा सिलामहिं[५] ।
लाल सूई लाल डोरा लाल दरजी बोलाइ के
जुग जुग जियथिन दुलहिन दुलरइतिन[६] दुलहिन
जिनकर लँहगा सिलामहिं ।

मृत्युगीत

'गीता' के अनुसार वस्तुतः मृत्यु मात्र शरीर बदलने की प्रक्रिया है। 'मृ' धातु में 'त्युक्' प्रत्यय लगाकर 'मृत्यु' शब्द बनता है जिसका अर्थ है -- मरण। गीता में कहा गया है— जातस्य हि ध्रुवो मृत्युध्रुवं जन्म मृतस्य च[७]- अर्थात् आत्मा एक शरीर से निकल कर अपने प्रियतम परमात्मा से मिलने जाती है। संसार से उसकी विदाई का अत्यन्त करुण एवं मार्मिक चित्रण मिलता है, किन्तु जाने वाले का तो परमात्मा प्रियतम से साक्षात्कार होता है, इसलिये संसाररूपी नैहर को छोड़ने की व्यथा उसे छू भी नहीं पाती। इस तरह के भाव जिन गीतों में पाये जाते हैं उन्हें 'निर्गुण' संज्ञा दी जाती है। इनमें प्रतीकों के माध्यम से अध्यात्म का संकेत है।

मानव का शरीर मन्दिर है, जिसके द्वारा सांसारिक सुखों का भोग होता है। वह शरीर चिताग्नि पर धधकता है और आत्मा मुक्त होकर प्रिय के पास चली जाती है।

आत्मा अपने प्रियतम परमात्मा के समीप आती है। स्वामी उसे पानी लाने को भेजता है। वहाँ की भीड़ में उसका घड़ा फूट जाता है। कुआँ संसार है और भीड़ आवागमन है। घड़ा शरीर है। परमात्मा हृदय मन्दिर में है। ननद रूपी बुद्धि उसे जगाती है क्योंकि पाँच

---

१. होना है, २. वर एव कन्यापक्ष की ओर से परस्पर एक दूसरे को दिये गये वस्त्र, द्रव्यादि के साथ मिलन, ३. आगे आ गया, ४. जियें, ५. सिलवाऊँगी, ६. दुलारी, ७. श्रीमद्भगवद्गीता २/२७।

इन्द्रिय रूपी चोर शरीर रूपी घर में घुस आये हैं। इनसे प्राणों को बचाना है। सभी अज्ञान निद्रा मे लीन हैं। प्रभु का नामस्मरण ही इस अज्ञान से मुक्त होने का उपाय है।

एक निर्गुण गीत में पाँच प्राणवायु को 'पंचनदिया' कहा गया है, जिनकी एक धारा प्राणधारा है। उसके बीच नाभि का सहस्त्रार कमल खिला है, जो प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं से खिलता है। संसार के अच्छे पदार्थों को चुनना 'फूल लोढ़ना' है। 'बारी' अर्थात् फुलवारी संसार है और साड़ी शरीर है। 'डोरी अटकल' का अर्थ सांसारिक भोगों मे फँसना है, उससे छुड़ाने वाला एकमात्र सतगुरु ही है। फूलों से चंगेरी भरने का अर्थ है अच्छे कार्य से जीवन सफल बनाना। सतगुरु के साथ जाने और सखियों से आँचल छुड़ाने का मतलब है अन्तिम विदाई लेना। इस प्रकार भौतिक दृष्टान्तों से आध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति की गई है

पाँच नदिया रामा एक बहइ[१] धरवा[२] रामा
ताहि बीच कमल रे फुलायत हो राम।
फूल लोढ़े गेली बारी[३] सारी[४] मोरा अटकल डारी
गुरु बिन केऊ न छोड़ावइ हो राम।
फुलवा लोढ़िय लोढ़ि भरली चंगेरिया[५] रामा
सतगुरु अयलन लियावन[६] हो राम।
छोड़ु छोड़ु संग के सथिया आज मोरे अँचरवा रामा
सतगुरु के संगवा अब हम जायब हो राम।
कहत कबीरदास पद निरगुनियाँ रामा
संत लोग लेहु ना विचारिय हो राम।

किसी निर्गुण गीत मे प्रियतम से मिलने के लिये आत्मारूपी दुल्हन के द्वारा श्रृंगार किये जाने का वर्णन है। यम को यहाँ ठग के रूप में चित्रित किया गया है, जिसने शरीर रूपी नगरी को लूट लिया है--

कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो।
चंदन काठ के बनल खटोलना, तापर दुलहिन सूतल हो
उठो री सखी मोरी माँग सँवारो, दुलहा मोसे रूठल हो
आये जमराज पलंग चढ़ि बैठे, नैनन अँसुआ टूटल हो
चार जना मिलि खाट उठाइनि, चहुँदिसि धू धू ऊठल हो
कहत कबीर सुनो भई साधो जग से नाता टूटल हो।

यद्यपि इस समय साधारणत: गीतों का विधान नहीं होता, पर स्त्रियाँ इस समय लय में गाती हैं और उसके साथ जो शब्द वे कहती हैं, वह प्राय: मृत व्यक्ति की प्रिय वस्तुओं का नाम लेकर शोक प्रकट करती हैं। इस प्रथा को कौरवी क्षेत्र में 'उलाहणी' कहते हैं।

---

१. बहती है, २. धार, धारा, ३ फुलवारी, ४ साड़ी, ५ एक प्रकार की सींक की डलिया, ६. लिवाने के लिये।

इन शोकगीतों के वर्ण्य विषय, मृतक तथा उससे संबंधित वस्तुओं व स्वभाव होते हैं। वृद्ध की मृत्यु के अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है—

ए चन्दन रख कटाइयोणी ऐ बाढ़ी बेग बुलाइयोणी
ऐ सात्तो बाजे बाजियाणी, ऐ बेट्टों मूँड़ मुँड़ाइयाणी
ए बहुये सेस सिडाइयाणी, ए पोत्तों चँवर डुलाइयोणी
ए दोहतों रास कराइयोणी, ऐ भर बजारो कढ्ढोणी ।

वृद्ध की मृत्यु पर नायन जिस गीत को गाती है, वह 'उठावणी' भी कहलाता है। उठावणी का अर्थ है—अरथी उठाने के अवसर पर गाया जाने वाला गीत। मृत्यु के समय 'पल्ले लेकर' रोने की प्रथा अभी भी प्रचलित है।

वृद्ध की मृत्यु पर गाया जाने वाला एक उलाहनी गीत इस प्रकार है—

अए हए बुड्ढे का मरना, हरी हरी बोल
तेरे बेट्टे मूँड मुँडाइयो, बुड्ढे का मरना
बहुआ खेस खिडाइयो री के, हरी हरी बोल
पोत्ते चँवर ढुलाइयो, धेवते संख बजाइयो
ए कौन परी परमात्मा रे, हरी हरी बोल
गइयो दान कराइयो
सुग्ग विमान चढ़ाइयाँ, बुड्ढे का मरना
चन्दन चिता चढ़ाइया, गंगाजल ले नहलाइयो री ।

आदिवासी क्षेत्र का एक मृत्युगीत अथवा शोकगीत इस प्रकार है—

रसिया[१] के काहे नागा डँसल[२] रे
भाई रोवे गोड़तर[३]
बहिन रोवे मुँड़तर[४]
धनियाँ रोवे पटसार[५]
चारों कुटुम मिलि एकमत होवे
ले चल जमुना किनारे असनान करे
काटी काटी डँसना[६] बनावे
भुइयाँ[७] सारंग[८] मेड़रावे[९] ।

एक मृत्युगीत में निर्धनता की पराकाष्ठा का चित्र है। पति की अन्त्येष्टि के लिये पत्नी को अपने आभूषण तक बेचने पड़े—

केतकि[१०] राति आवरो[११] रे सखि
भिनुसहराँ छूटेला परान
काहे खातिर जिया मेड़राये
बहिनी रोवे मूँड़े तरे भाई रोवे पाटी लागि

---

१. प्रेमी, २. डँस लिया, ३. पैर के पास, ४. सिरहाने, ५. पाटी पर, ६. बिस्तर, चिता, ७. भूमि पर, ८. स्त्री, ९. लोटती है, १०. कितनी, ११. और।

तिरिया गोड़े तरे जाइ हो
हँसुली बेचि हम लकड़ी गढ़उबे
बिछुवा बेंचि अरथी सजउबे
टुमकिया[1] बेंचि मुँह आगि लगउबे ।

जीवन का अन्तिम संस्कार मृत्यु संस्कार संसार की प्रायः सभी सभ्य-असभ्य जातियों में होता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को समदाओन, मरसिया, निर्गुण, मरखी और कीर्तन भी कहते हैं। थारू जाति के बीच ऐसे गीत निर्गुण रूप में गाये जाते हैं, जिनमे काया की क्षणभंगुरता, संसार का मिथ्यापन, माया का झूठा व्यामोह, मृत्यु की अनिवार्यता, जीव की असहाय अवस्था आदि भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। थारुओं पर कबीर मत का प्रभाव प्रतीत होता है

सभुआ बइठल छेल देवा लोक हे
जम पोथिया उतार
आयेन जम निरमोहिया हे
चोदिस बइठ मरगाइ
बहियाँ पकड़ि जम लये गेल हे
कोय न जायेन संग साथ
आमाहि रोवइ बबूर तर बहिनी ससुरारी
तिरिया जे रोइब भानसघर
कोय देल जोड़ी बिछराय
अरिजन रोवइ परिजन रोवइ
रोवइ कुल पलिवार
लागल हटिया ओसरि गेल
कामिन मन पछताइ
चानन बटी बिरछा रोपल
सेहो भेल सिमल पलांस
फुल देखि धइरज बान्हब हे
फल देखि होयेब निराम
चान बयेरी मेघ बादली
मछली बयेरी महाजाल
तिरिया बहे री दुहु लोचन
पंथ चलित हुवे लाज
सोना बिना कइसे सोहावल
बिना मोती कैसे हार
बिना रे आमा केर नइहर
बिना स्वामी कइसन सिंगार ।

---

१. नाक का आभूषण।

हिमाचल प्रदेश के भीतरी भाग किन्नौर में क्रिया-कर्म के समय शोकगीत गाये जाते हैं जिन्हें 'छण्टयायिक गीथङ्' कहते हैं।

रोंचो तोइयां खोलो द्बारे
रोंचो तोइयां पशिङ् रागा
रोंचो तोइयां गोरा गीरशिरा
दई या गिरे रोमाराजा चिट्ठी।

*

अध्याय ७

ऋतुओं के गीत

ग्रीष्म ऋतु

लोकगीतकारों ने ग्रीष्म ऋतु में किसी सौन्दर्य की कल्पना नहीं की इसलिये ग्रीष्म ऋतु के गीत प्रायः नहीं मिलते। यह दूसरी बात है कि इस अवधि में होने वाले व्रतों के अवसर पर गीत गाये जाते हैं। ग्रीष्म ऋतु का चित्रण करते हुए कुछ गीत लोकभाषा में लिखे गये हैं।

आधुनिक भोजपुरी गीतकार ठाकुर विश्राम सिंह ने ग्रीष्म संबंधी अपने एक गीत में ग्रीष्मकालीन प्रकृति का कैसा सूक्ष्म चित्र खींचा है

आइ गइले जेठ के महिनवाँ ए भइया
लुहिया[१] त अब चलेले झकझोर।
तपत बाटें सुरज नाचति बाय दुपहरिया
अगिया उड़ावै चलि-चलि पछुआ बयरिया।
सूखि गइली ताल तलई नदिया सिकुड़ली
हरियर उसगैहीं[२] घास दरियैं भुकुड़ली[३]।
पेड़वन के छाँह चउवा करेले पगुरिया
गावै चरवहवा फेरि फेरि अपनी मउरिया[४]।
अइसने समय में खरबूजा हरिअइले
अउरी हग भइल बाय बोरो धान।

भोजपुरी के एक कवि वसन्तकुमार ने ग्रीष्मकालीन लू का कैसा वर्णन किया है---

सँपवा समान लप लप करि लुकिया
चलत चँवरवा उदास
खेत के फसलिया झुलसि मुरझइली
आगे के न बाटे कुछो आस।

आदिवासी प्रदेश में ग्रीष्मकालीन गीत पाये जाते हैं, इन गीतो मे ग्रीष्म की भयंकरता के चित्र हैं साथ ही वनप्रदेश में ग्रीष्म में आदिवासी जीवनोपयोगी वस्तुओं के अभाव की चर्चा है---

दिनवाँ में घाम लागे, रतिया बरसे आगी
चलु छैला परदेस भागी

---

१. लू, २. ऊसर में पनपी हुई, ३. मुरझा गई, ४. गरदन, सिर।

ईहाँ[१] नाहीं कोयला मिले
नाहीं मिले काठी[२]
ईहाँ नाहीं चिरंवजी[३] मिले
नाहीं मिले भँवर[४] रे
गुलरी[५] कऽ पेड़ नाहीं
कइसे टिकुरी लगाइ[६] रेऽऽ ।

विपत्तियों के निवारणार्थ आदिवासी टोना, टोटका, ओझाई, मंत्र का सहारा लेते हैं। एक गीत में दावाग्नि के शमन हेतु प्रथम बार बच्चा देने वाली नीलगाय के दूध के प्रयोग की बात कही गई है और अंतिम पंक्ति में प्रयोग के प्रभाव पर प्रकाश डाला गया है

चकमक ढोंकि[७] से आगि सुलगावे हे राम
लेसले[८] केदुल[९] वन हे राम
जरत आवे अगिया फुलल घन बाँसे हे राम
रोवत आवें बनसपती[१०] हे राम
कइसे दइया बचब[११] आजु हो
रोझनी के पठरी[१२] सबले बुधि आगी
सात सर्गक दुधवा दुहावे हे राम
दूधन अगिया बुतावे[१३] हे राम
एक धार दुहले दुसर धार दुहले
तीसर समुन्दर[१४] बोहि[१५] जाले हे राम ।

वर्षा ऋतु के गीत

वर्षा ऋतु गीतों की ऋतु है। पावस के गीत लगभग चार महीने तक गाये जाते हैं। किन्तु इनमें सावन सबसे अधिक वर्षा का प्रतीक है। वर्षागीत दो प्रकार के होते हैं – प्रबन्ध गीत एवं मुक्तक।

प्रबन्ध गीत

इस प्रकार के गीत बड़े रोचक होते हैं। इनमें छोटी या बड़ी कथाएँ होती हैं। आकार के आधार पर प्रबन्ध गीतों के भी दो भेद हो जाते हैं—लघुवृत्त और दीर्घवृत्त।

छोटे कथागीतों यानी लघुवृत्त में नटवा, कलारिन, मनिग, धोबिया, भानजा, जाट गीत आदि मशहूर हैं। चन्दना, चन्द्रावली, निहालदे, जाहर गुग्गापीर, मिरगानैनी, पनिहारी, डाबरनैनी, ढोलामारू तथा सरमन आदि के गीत दीर्घवृत्त में आते हैं।

ये अधिकांश गीत स्त्री पुरुष के पारस्परिक संबंधों के हैं। इनके प्रधान विषय के रूप में कोई कथा होती है जिसका प्रारंभ किसी उद्यान या कुएँ के दृश्य से होता है।

---

१. यहाँ, २. लकड़ी, ३. चिरौंजी, ४. मधु, ५. गूलर, ६. चिपकेगी, ७. चकमक पत्थर के टुकड़े, ८ जला दिया, ९. कदली वन, १०. वनस्पति, ११. बचूँगा, १२. युवा नीलगाय, १३. बुझाते हैं, १४. समुद्र, १५ उमड़ कर।

मुगलों के अत्याचार, पति का भ्रष्टाचारी होना, सौत की ईर्ष्या आदि इन कथाओं के विषय होते हैं। इन गीतों में नौकरी हेतु पति के दक्षिण जाने का भी उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट होता है कि इन गीतों की रचना मराठों के उत्कर्ष के समय हुई थी। इन गीतों की एक विशेषता और है कि इन प्रेम-प्रसंगों के अधिकांश नायक काम करने वाले व्यवसायी, धोबी, नाई, सुनार, बजारे आदि हैं। एक गीत में तो राजा की बेटी का बंजारे से प्रेम और उसके साथ भाग जाने का उल्लेख है।

कुँवर निहालदे—इस प्रेमकथा में लोक लाज और मर्यादा का विचार प्रभावकारी है। स्त्रियाँ नरवरगढ़ के हाकमा नरसुलतान और निहालदे की इस प्रेमकथा को बड़े उत्साह से गाती हैं। सुलतान ने ढोला की स्त्री मरमण को अपनी बहन माना था। मरमण अत्यन्त सुन्दरी है। वह माँ के मना करने पर भी बाग में झूला झूलने जाती है। मुगल उसे पकड़ लेते हैं। बाद में सुलतान मुगल को मारकर बहन मरमण को छुड़ा लाता है। इस कथा से सम्बंधित गीत 'पवाड़े' कहलाते हैं जिन्हे जोगी चतुर्मास में सारंगी पर गाया करते हैं

समय भी बड़ो है ओ दाता नरकों के बड़ो
समय भी चिणादे नर नैं कुआ बावड़ी
समय भी मंगादे नर नैं भीख
पलका भी बायेड़ा मोती नीपजै।

चन्दना एक ऊढ़ा नायिका है। पीहर में उसका एक सुनार से प्रेम हो जाता है। माँ समझाती है, चरखा कातने के लिये कहती है और अन्त मे तंग आकर उसकी ससुराल में खबर करती है। पति स्थिति को समझता है और विदा कराने के बाद रास्ते में चन्दना को हत्या कर देता है।

चन्द्रावली मरठ गाँव की स्त्री है, जो किसी कामुक के चंगुल में फँस जाती है। छूटने के अनेक उपाय करने के बाद असफल होने पर वह आग लगाकर मर जाती है।

जाहर गुग्गापीर—यह कथागीत आत्मा की अमरता में विश्वास जगाने वाला तथा लोकमर्यादा की रक्षा के लिये उच्चतम बलिदान का चित्र है। रानी बाछल को मालूम था कि उसका पुत्र जाहर मर चुका है पर वह अपनी प्रियतमा सिरियल के पास नित्य अभिसार के लिये आता है, इसलिये वह अपने को विधवा नहीं मानती। सावनतीज को झूले पर बैठी सिरियल के माथे का आँचल उड़ता है तो उसका सिन्दूर लोकचर्चा का विषय बनता है। सास को लज्जा होती है, संदेह भी। बह इस लांछन के उत्तर में सही बात बताती है। सास प्रमाण माँगती है तो वह गुग्गा को दिखा देती है। इसके बाद वह धरती में समा जाता है क्योंकि उसने इस मिलन-भेद को गुप्त रखने के लिए कहा था। इस गीत में लौकिक एवं अलौकिक तत्त्वों का अद्भुत मेल है।

डाबरनैनी एक वृक्ष पर झूला झूल रही है। सात सहेलियाँ साथ हैं। सातों के पति घर में हैं। इस डाबरनैनी के पति परदेस गये हैं। एक बटोही उससे कहता है-- तुम हमारे साथ चलो, मैं तुम्हें सोने-चाँदी से मढ़ दूँगा। उसने सास के पास जाकर सारा वृत्तान्त कहा। सास उससे बटोही का रूप वर्णन सुनकर कहती है---वही तो तेरा पति है। यह

सुनकर डाबरनैनी रोष में आकर कहती है कि वह पराई स्त्री की ओर आँख उठाता है। मैं उसकी दाढ़ी-मूँछ जला दूँगी, उसके रसभरे नैनों को फोड़ दूँगी।

ढोलामारू राजस्थान में गाया जाने वाला वर्षाऋतु का एक प्रसिद्ध प्रबन्धगीत है। पुंगल देश में एक समय अकाल पड़ा। वहाँ का राजा पिंगल परिवार सहित नरवर देश चला गया। वहाँ के राजा नल ने अपने पुत्र ढोला से पिंगल राजा की पुत्री मारू का विवाह कर दिया। मारू उस समय छोटी थी। बड़े होने पर ढोला का विवाह मालवा की राजकुमारी मरमण के साथ हो गया। मारू के साथ विवाह की बात उसे मालूम नहीं थी। युवती होने पर मारू ने स्वप्न में अपने पति ढोला को देखा और वह बड़ी कठिनाई से उस तक पहुँची। 'ढोलामारू' शब्द राजस्थान में स्त्री-पुरुष के पर्याय रूप में भी माना जाता है। इस नाम से प्रचलित एक लोककाव्य है जिसे 'ढोला मारू रा दूहा' कहते हैं। इसका पहला दोहा इस प्रकार है --

पुंगल देश दुकाल थियूँ, किणही काल विसेस ।
पिंगल ऊचालउ कियउ, नल नरवर चई देस ॥

यहाँ रातीजगा में 'सनेही ढोला' नाम से एक गीत गाया जाता है, जिसमें मरमण की व्यथा चित्रित है --

नरवल देश सुहावणो रै लाल
बसै ए महाजन लोग
जीतर बसगो गोरी को सायबो
ढोला· पान मिठाई को भोग
सनेही ढोला मारूजी घर आव
नणदल रा बीरा ढोलाजी घर आव ।

भरथरी नामक कथागीत जोगी चतुर्मास में गाते हैं -

ऐ जी म्हारे लेरा लागा रमता जोगी
अरे लार मड़या पिंगला
राजाजी अरे सासू ने बना सूनो सासरो
माता बना कैसा पीर, राजा भरथरी ।

इस कथागीत में उज्जैन के राजा भर्तृहरि और उनकी पटरानी पिंगला की कथा है। पिंगला द्वारा विश्वासघात किये जाने पर इन्हें संसार से विरक्ति हो गई थी।

नरसीजी रो माहेरो भी चतुर्मास में गाया जाने वाला काव्य है। गुजरात के भक्त नरसीजी ने अपनी बहन नानीबाई का भात भगवान् कृष्ण की मदद से भरा था, उसी का वर्णन इसमें है।

रुक्मणि मंगल नामक कथागीत भी राजस्थान में चतुर्मास में गाया जाता है। इसमें रुक्मिणी और श्रीकृष्ण के विवाह का वर्णन है। इसमें मारू राग का प्रयोग अधिकतर हुआ है—

आओ सखी सहेलियाँ मिलो भुजा पसार
अबका बिछड्या कद मिलां दूर बसांगा जाय ।

मन जागै बाबल मिलूँ बार्टाड़िया जल जाय
अबका बिछड्या कद मिलां दूर द्वारका जाय ।
पद्म भणे रुकमण कहे बिनती एक हे माय
बंगला में म्हारी ढूलियां थे नो सम्हालो नी जाय ।

मूमल नाम का एक लोकप्रिय गीत राजस्थान में वर्षाऋतु में गाया जाता है जिसमें जैसलमेर की राजकुमारी मूमल का नख-शिख वर्णन है। यह श्रृंगारिक गीत है। इसमें मांड के स्वर लगते हैं। मूमल का महल लोद्रवा या जैसलमेर से चार मील दूर था जिसे अभी भी 'मूमल की मेड़ी' के नाम से जाना जाता है। वह एक साहसी पति चाहती थी। सूमरे सोढ़ों के सामन्त ऊमरकोट के महेन्द्र ने उसकी प्रतिज्ञा पूरी की किन्तु किसी भ्रान्त धारणा में मूमल का अन्त हुआ। मूमल के रूप का नख शिख वर्णन करते हुए एक गीत इस प्रकार है--

काली तो काली काजलिया री[1] रेख[2] सा
काली तो बादल में चमके बीजली
ढोलारी मूमल हाले[3] तो ले चालूँ मुरधर देश ।
सीस मूमल रो बागड़ियो[4] नारेल[5] सा
चोटी तो मूमल री बासग[6] नाग जी । ढोला०
नाक मूमल रो सूवा[7] केरी चांच[8] सा
आँखिया मूमल री प्याला मद भरिया । ढोला०
पेट मूमल रो पीपलीयारो[9] पात[10] सा
छतिया मूमल रे भँवरा भँवरिया । ढोला०

मरमन नाम के गीत में स्त्री के मायके का एक चित्र है। लड़की माँ से आग्रह करके कुएँ पर पानी भरने गई है। वहीं कुएं पर बटोही मिलता है, जो उसकी बाँह पकड़ लेता है। वास्तव में वह उसका पति है। वह घर आकर माँ और भाभी से कहती है-- तुम्हारे जमाई या ननदोई आये हैं। गेहूँ पिसाओ, पूरियाँ सेंको। पति उसे लिवा ले गया। चम्पा के बाग में डोला उतारा गया। वहाँ मरमन को साँप ने डँस लिया। पति समझ रहा है कि मरमन सो रही है किन्तु दूसरा कोई बताता है कि वह जीती नहीं है। दु:ख से विह्वल पति कहता है--

ए मरमन याँ तोकूँ रोवैगौ कौन
मायके मरी न सासुरे ।

कलारिन नाम के गीत में एक कलारिन पानी भरने गई है। गागर और रस्सी कुएँ पर रखकर वह बाग में गई। दतुवन तोड़ी, दाँत साफ किये। मल मल कर पैर धोये। वहीं एक बटोही आया। दोनों एक दूसरे के मन को भा गए। पुरुष ने कहा— हमारे देश में आना, तुम्हारी जोड़ी के वर वहाँ मिल जाएँगे। कलारिन गई पर उस पुरुष ने यह कहकर किवाड़ नहीं खोला कि शय्या पर तो विवाहिता सोयेगी। कलारिन ने कहा— हमारे देश में

---

१. काजल की, २. रेखा, ३. चाहे, ४. बागड़ प्रदेश के, ५. नारियल, ६. बासुकि, ७. सुग्गा, ८. चोंच, ९. पीपल के, १०. पत्ते।

आना, तुम्हारी जोड़ी की बन्नो वहाँ मिलेगी। पुरुष पहुँचा तो उसने भी किवाड़ लगा लिये और कहा कि घर लौट जाओ। शय्या पर तो विवाहित पति ही सो सकता है।

नटवा गीत में भावज और ननद पानी भरने गई हैं। भावज नट पर रीझ गई है। बहन ने आकर भाई से यह बात कही। भाई ने नट को बुलाया, तमाशा कराया और झरोखे पर बैठी अपनी स्त्री उसे दे दी। नट के यहाँ हर बात पर उसे राजा और राजमहल याद आता। कहाँ महलों का सुख और कहाँ फूस की झोपड़ी! राजा शिकार खेलते हुए एक बार नट के यहाँ रानी से मिले। रानी बहुत रोई, पर अब क्या हो सकता था?

बनजारा गीत में एक राजा की बेटी का बंजारे से प्रेम दिखाया गया है। बंजारे की स्त्री ने जब उससे पूछा कि यह कौन है तो बंजारे ने उत्तर दिया

ना मैं लायो दोमरी रे महलों की रानी
ना लायौ मेहमान जी
राति कूँ पीसै तेरो पीसनौ रे
दिन को खिलावै नन्दलाल जी।

रानी की बेटी को यह बात बुरी लगी और वह विष खाकर मर गई।

धोबिया नाम के गीत में एक स्त्री का एक धोबी से प्रेम हो जाता है। कोई स्त्री चूनरी धुलाने गई। धोबी ने धुलाई में आधा यौवन और संपूर्ण सुख सेज माँगी। पर द्वार पर ससुर है, पौरी में पति। धोबी छत पर चढ़ गया और सोती हुई स्त्री को गठरी में बाँधकर ले आया।

जाटनी नामक एक गीत में एक पुरुष पटना से जाटनी ले आया है। उसकी पत्नी सभी कुटुम्बियों से फरियाद करती है, पर कोई उसकी सहायता नहीं करता। अन्त में उसकी ननद यह उपदेश देती है

हिलमिल रहियो भाभी साथ
भैया जी को लागे प्यारी
जाटनी जी महाराज।

कुछ गीतों में घर के आन्तरिक भ्रष्टाचार का वर्णन है। पति बारह बरस बाहर रहा है। यहाँ बहू पर जेठ का मन डिग गया। जेठ से बहू को एक लड़का हुआ। जेठ ने उसे दुलरी पहनाई। पति के आने पर स्त्री ने कहा

तुमने कमाये पिया मोहर अशरफी
हमने कमाये नन्दलाल।

मुक्तक गीत

प्रबन्ध गीतों के अतिरिक्त वर्षाऋतु में अनेक प्रकार के मुक्तक गीत पाये जाते हैं। इस तरह के गीतों में कोई कथा नहीं होती। वस्तुतः ये ही गीत वर्षाकाल में विशेष रूप से प्रचलित हैं। इनमें तरह-तरह के मिलन-विरह संबंधी मनोभाव पाये जाते हैं। ये गीत पारंपरिक भी होते हैं और किसी के द्वारा रचे गये भी। इन गीतों में कजरी, बारहमासा, चौमासा, छमासा, झूला, मलार, सावन, बरसाती, मोरा, चाँचर, चौहट, उधवा आदि हैं, जिनका विस्तृत विवरण आगे किया जायेगा।

कजरी

कजरी का उद्‌भव

कजरी का नामकरण श्रावण में घिरने वाले काजल सरीखे बादलों की कालिमा के कारण हुआ है। 'काजल' शब्द 'कज्जल' का अपभ्रंश है, इसी से 'कज्जली' शब्द बनता है, जिसे बोलचाल की भाषा में 'कजली' या 'कजरी' कहा जाता है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है -

कु धातु — कुत्सितं जलं, यस्मात् शुभ्रमपि जलं
संयोगात् स्ववर्णत्वं नयतीति ।
कज्जलं — काजल इति भाषा
कज्जली — कु + जल + क्विप् + अच् + ङीष्[1] ।

काजल सरीखे कजरारे बादलों को देखकर गाने की कल्पना को लेकर ही वर्षाकालीन गीत विशेष को कजली या कजरी नाम दे दिया गया। काला रंग बरखा का द्योतक है। ब्राह्मणग्रन्थ मे कहा गया है कृष्णो वै भूत्वा पर्जन्यो वर्षति।

संबंध-भेद से कज्जली के चार अर्थ हैं (१) वर्षा की काली घटा, (२) कजली देवी, विन्ध्याचल की काली देवी, (३) कजरी का त्योहार, (४) कजरी रागिनी या गीत।

भविष्यपुराण, जयद्रथतंत्र, मार्कण्डेयपुराण एवं आल्हाखण्ड मे कजरी का उल्लेख मिलता है।

भविष्यपुराण के उत्तरपर्व के बीसवें अध्याय में कजरी पर्व और हरिकाली व्रत का विस्तृत विवरण है। युधिष्ठिर के एक प्रश्न के उत्तर में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि एक बार शिव ने विष्णु आदि की उपस्थिति में नीलकमल सी आभा वाली अपनी पत्नी हरिकाली को परिहास में काजल सी कह दिया। हरिकाली ने इसे अपना अपमान समझा और अपनी श्याम कान्ति को हरित शाद्वल मे छोड़कर भस्म हो गई। बाद में उसने हिमाचल के घर माँ गौरी के रूप में जन्म लिया।

ऐसा लगता है कि पति शिव द्वारा श्याम वर्ण के कारण अपमानित और कुपित कजरीदेवी का अग्नि-प्रवेश और पुनः माँ गौरी रूप में जन्म लेने की कथा से प्रभावित होकर स्त्रियों मे कजरी त्योहार और सावन के गीतों में कुछ परिवर्तन कर एक नये कजरी गीत को जन्म दिया।

जयद्रथतंत्र के अनुसार भाद्रपद कृष्ण द्वितीया की रात में तारादेवी का जन्म हुआ था। मार्कण्डेयपुराण और काशी के स्वामी देवतीर्थ कजरी पर्व का संबंध विन्ध्याचलदेवी से मानते हैं, जो यशोदा के गर्भ से जन्मी थीं। किन्तु कजरी के लोकाचार अथवा गीत से इस पर्व का संबंध यशोदा की पुत्री से होना प्रमाणित नहीं होता। अत: कजरी के दृष्टिकोण में भविष्यपुराण का कथन ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

आल्हाखण्ड में कजरी के खेल का वर्णन है। संभवत: कजरी नृत्य और गीत भी उस

---

१. *शब्द कल्पद्रुमकोश* — भाग-२

समय यानी बारहवीं शताब्दी में प्रचलित हो। आल्हाखण्ड में कजरी त्योहार और गीत का उल्लेख तो है किन्तु उससे कजरी के रूपशिल्प के बारे में कोई जानकारी नहीं मिलती।

बारहवीं शताब्दी के 'ढोलामारू' में बादलों के काले रंग द्वारा बरखा की सूचना का उल्लेख है। स्पष्ट है कि मेघों का कजरारापन ही कजरी गीतों के नामकरण का निदान बना।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कजरी के नामकरण का एक दूसरा ही कारण बताया है। उनका कथन है कि मध्यभारत में दादूराय नाम का एक राजा था। एक बार उसके राज्य में भारी अकाल पड़ा। उस समय इस राजा ने अपनी देवभक्ति के बल पर पानी बरसाया, जिससे उसकी लोकप्रियता बढ़ गई। उसके दिवंगत होने पर उसकी पत्नी नागमती सती हो गई। उस राज्य की स्त्रियों ने शोक प्रकट करने के लिये एक नये राग का आविष्कार किया, जिसका नाम कजली पड़ा। यह नाम संभवत: इसलिये भी दिया गया हो कि आँसुओं से काजल धुलने की कल्पना इस गीत में रही हो।

इस अनुमान के अतिरिक्त भारतेन्दु जी ने कजरी के नामकरण के दो अन्य कारण भी बताये हैं—

(१) दादूराय के राज्य में 'कजली' नाम का वन था, उसी के नाम पर इस गीत का नाम 'कजली' पड़ा।

(२) श्रावण, भादों के शुक्लपक्ष की तीज का नाम, जिस दिन यह गीत गाया जाता है, 'कजली तीज' है। इस नाम से भी इसकी उत्पत्ति मानी जाती है।

पंडित बलदेव उपाध्याय के मत से आजकल की कजली प्राचीन लावनी की ही प्रतिनिधि है। मिर्जापुर में प्रचलित लोककथा के अनुसार कजली नाम की स्त्री का पति परदेस गया था। वर्षा ने विरहिणी के जले पर नमक छिड़कने का काम किया। वह अष्टभुजी पर कज्जल वाली देवी के आसपास घूम घूम कर पति-मिलन के लिये विलाप करने लगी और उसके गीत कजरी नाम से लोकप्रिय हुए।

एक अन्य किवदन्ती के अनुसार कज्जलीदेवी युवावस्था होने पर उत्तेजित होकर इधर-उधर विचरण करने लगीं और जो भी सामने आता उसे शाप देने लगीं। इसी दौरान एक मुसलमान सामने आ गया। वे उसे भी शाप देने के लिये दौड़ पड़ीं। मुसलमान ने करुण रस में एक गीत गाया, जिससे देवी को मानसिक शान्ति मिली। उन्होंने उसी धुन तथा लय में गीत को बारम्बार गाने का आग्रह किया। अन्त में कजलीदेवी ने प्रसन्न होकर वरदान दिया और लोगों को विश्वास हो चला कि उसी धुन तथा लय में गीत गाने से देवी मनचाही मुराद पूरी करती हैं, वही गीत 'कजली' नाम से प्रसिद्ध हुआ।[१]

कजली का संबंध एक धार्मिक तथा सामाजिक पर्व के साथ भी जुड़ा हुआ है। भादों के कृष्णपक्ष की तृतीया को कज्जली व्रत नामक पर्व मनाया जाता है। यह स्त्रियों का मुख्य त्योहार है। इस दिन स्त्रियाँ नये वस्त्राभूषण पहन कर कज्जलीदेवी की पूजा करती हैं और अपने भाइयों को जई देती हैं। उस दिन वे रतजगा करती हैं और सुन्दर गीत गाती हैं। इन गीतों को कजली कहकर जाना जाता है। कजरी वस्तुत: वह वर्षागीत है जो नागपंचमी से

लेकर हरतालिका तीज में भी गाया जाता है। सावन-भादों की तीनों तीजों के बीच भाद्र कृष्ण तृतीया की कजरी (भाद्रस्य कज्जली कृष्णा) ही कजरी का मुख्य पर्व है।

भारतेन्दु जी की 'दादूराय की कहानी' में ऐतिहासिक अंश कितना है, यह कहना कठिन है। किन्तु कजली तीज के दिन गाये जाने के कारण इस गीत का नाम 'कजली' पड़ा है, इसमें तथ्य है। डॉ० ग्रियर्सन ने भी कजली के नामकरण का यही कारण बताया है —

(१) मिथिला में इस तीज का नाम 'मधुश्रावणी तीज' है। इस दिन तीज के गीत गाये जाते हैं। मधुश्रावणी कजली का ही पर्याय मानी जा सकती है।

(२) कुछ कजरी गीतों में कजरी खेलने का भी वर्णन है—

कइसे खेले जइबू सावन में कजरिया
बदरिया घेरि अइले ननदी।

संभवत: सावन-भादों के महीने में वृक्षों की डाल पर झूला झूलने और वर्षा का आनन्द लेने से कजरी खेलने का संबंध है।

कजरी के उद्‌भव का वास्तविक इतिहास चाहे जो रहा हो, किन्तु इतना निश्चित है कि इसके मूल में बादलों की श्यामलता एक बड़ा कारण रही है। भक्तकवि सूरदास ने वर्षा की इसी श्याम छटा का वर्णन किया है

जहँ देखो तहँ श्याम्मयी है
श्यामकुंज वन यमुना श्यामा
श्याम श्याम घन घटा छई है।

पावस को वैदिककाल से ही साहित्य में स्थान मिला है। कालान्तर में लौकिक साहित्य, हिन्दी जगत् में भी उसका सौन्दर्य बहुचर्चित रहा। हिन्दी के कुछ कवियों ने तो लोकगीतों की शैली के आधार पर वर्षा वर्णन किया। हर प्रान्त के लोकगीतों में वर्षागीतों का प्रवेश नितान्त आवश्यक रहा है, चाहे वह व्रज का मलार या सावन का पटका हो, बुन्देलखण्ड का राछरा हो अथवा मिर्जापुर और बनारस की कजरी तथा बारहमासा।

कुछ विद्वान् कजरी के जन्म का संबंध मिर्जापुर और बनारस में प्रचलित शक्तिपूजा या गौरीपूजा तथा वैष्णव धर्म वाले इसे विशेष रूप से कृष्णोपासना या लावनी से जोड़ते हैं। मिर्जापुर के कुछ गायक कजली को अष्टभुजी विन्ध्याचल की देन मानते हैं। उनके अनुसार काली कज्जली के चार रूपों — काली, दुर्गा, विन्ध्याचल की अष्टभुजी और मैहर की मनियादेवी के द्वारा व्यक्त भाव कजली द्वारा गाये गये, अत: कजली नाम से प्रसिद्ध हुए।

कजरी गीतों को सर्वप्रथम किसने लिखा यह कहना कठिन है। किन्तु लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व भोजपुरी के सन्त कवियों, विशेषकर लक्ष्मी सखी की रचनाओं में कजरी गीत उपलब्ध होते हैं। भारतेन्दु युग को 'कजरी का स्वर्णयुग' कहा जाता है। उस समय साहित्य, संगीत एवं लोकजीवन में कजरी को प्रतिष्ठित स्थान मिला था। इसके भाव, भाषा और लोकप्रियता के कारण साहित्यकार कजरी की ओर आकृष्ट हुए। किन्तु धीरे-धीरे इनका शृंगार वर्णन छिछला और स्तरहीन होता गया। तब काशी के भारतेन्दु जी तथा

तत्कालीन अन्य कवियों ने इसे स्वस्थ साहित्यिक रूप की गरिमा प्रदान की। इनमें अम्बिकादत्त व्यास, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

शैली तथा स्थानीयता की दृष्टि मे कजरी के प्रमुख तीन भेद हो जाते हैं-

१. भोजपुरी कजरी

२. बनारसी कजरी

३. मिर्जापुरी कजरी

अधिकांश कजरियाँ मिर्जापुर और चुनार की क्षेत्रीय भाषा में है। छपरा की कजरी प्राय: मिर्जापुर की कजरी का ही अनुकरण है। वस्तुत: कजरी के विकास का श्रेय मिजापुर को ही है।

उत्तर प्रदेश में मुख्य रूप से कजरी की शैली दो प्रकार की मानी जा सकती है। एक को ग़जल की शक्ल मे कजली दंगलों में सुना जा सकता है। दूसरी है ढुनमुनिया कजरी, जिसे औरतें वृत्त बनाकर ताल देती हुई झुक झुक कर गाती हैं। घरों की बहू बेटियाँ घरेलू कामकाज पूरा करने के बाद रात को कहीं एकत्रित होकर कजली गाती हैं --

कहो चित लाके मौस नवा के
गणपति बाँके ना
साँवलिया सुत गिरिजा के ना।

जहाँ कजली दंगल में सवाल जवाब में कजली सुनने को मिलती है वहाँ कजली का वास्तविक सौन्दर्य एवं माधुर्य नारी स्वर में गाई जाने वाली कजरियों मे ही मिलता है।

कजरी का वर्ण्य विषय

शृंगार भावना—मूलत: कजरी का वर्ण्य विषय प्रेम है। इसके अन्तर्गत शृंगार के उभय पक्ष— संयोग एवं वियोग पक्ष की झाँकी मिलती है। पारिवारिक पृष्ठभूमि पर रचे गये गीतों में पति-पत्नी के पारस्परिक आचरण-व्यवहार का उल्लेख है। पति को जल्दी घर लौट आने की सलाह, जुआ खेलने से रोकना, गरीबी का उपालंभ, वस्त्राभूषण की माँग, पीहर जाने का अनुरोध, प्रणय निवेदन, बदली घिर आने से कजरी न खेल पाने की विवशता, दम्पति-परिहास आदि कजरी के मुख्य विषय है।

संयोग पक्ष के एक चित्र में कोई पत्नी अपने पति के पास नाना प्रकार के व्यंजन तैयार किये बैठी है। वह पति से जल पीने और भोजन करने का आग्रह करती है। भोजन के बाद वह पति को शय्या पर सुला देना चाहती है—

कि आरे रामा हीरा जड़ी सन्दूक
मोतिन के माला रे हरी
सोने के थाली में जेवना परोसौं रामा
कि आरे रामा जेमौं ननद जू के भइया
तुम्हारे परैं पैंया रे हरी।

एक गीत में पति-पत्नी की सुन्दर तकरार है। पत्नी ने रूठकर किवाड़ बन्द कर लिया है। पति कहता है— किवाड़ खोलो नहीं तो मैं विदेश चला जाऊँगा। पत्नी कहती

है तुम विदेश जाओगे तो मैं मायके चली जाऊँगी। पति कहता है--मायके जाओगी तो तुम पर मेरा जितना खर्च हुआ है, उतना देकर जाओ। पत्नी हाजिरजवाब है। कहती है -- रुपया लोगे तो तुम भी मुझे वैसी ही बना दो जैसी कुमारी कन्या के रूप में मेरे बाबा के घर से लाये थे।

मनोविनोद का एक और चित्र देखें। पति कहता है --फागुन में नैहर जाकर तुमने मेरा फगुआ फीका किया तो सावन में परदेस जाकर मैं भी तुम्हारी कजरी नीरस कर दूँगा

फागुन मास धनि हमरो फगुनवां
तू हमें छोड़ि गइलू हो नैहरवा
सावन मास धनि तोहरी कजरिया
त तोहें छोड़ि जाबै हो विदेसवा ।

किसी किसी गीत मे पति पत्नी की प्रेमलीला चित्रित है -

अरे बावा बहेला पुरवैया
पिया मोरा सोवै रे हरी ।

एक कजरी में नायिका अपने पति से ताजा मेंहदी तोड़कर मँगाने और छोटी ननद से पिसवा देने का आग्रह करती है -

हमका सावन में मेंहदी मँगा दऽ बलमू
हाली बगीचा में जाय, लाव टटका तोराय
छोटकी ननदी से कहके पिसा दऽ बलमू ।

विदेश जाते हुए पति से कोई स्त्री घर रहने की प्रार्थना करती हुई कहती है- -तुम इस सावन में घर रहो तो मैं सब तरह से तुम्हारी सेवा करूँगी। यदि तुम हठ करके गये तो तुम्हारी नाव डूब जाएगी, तुम्हे चोर बटमार लूट लेंगे। पति कहता है---मेरी नाव पार लग जाएगी और मैं तुम्हे मुगल के हाथ बेचकर दूसरा विवाह कर लूँगा।

एक कजरी गीत में पति-पत्नी के मान-मनुहार की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति है। पत्नी कहती है--तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ मेरे स्वामी, इस सावन में विदेश न जाओ। पति कहता है--तुम कितना भी मनाओ, मै इस सावन में विदेश जरूर जाऊँगा। हारकर पत्नी काली बदली से निवेदन करती है कि तुम मूसलाधार बरसो ताकि मेरे पति यात्रा न कर सकें। पति कहता है- कुछ भी कहो, मैं छाता ओढकर चला जाऊँगा। पत्नी छाता बनाने वाले से अनुरोध करती है ---भैया छतिहार, इस सावन में तुम छाता न बनाना। पति कहता है--तो मैं कम्बल ओढ़कर मोरंग देश चला जाऊँगा। पत्नी तब कम्बल बुनने वाले से प्रार्थना करती है—भैया भेड़िहर, इस सावन में तुम कम्बल मत बुनना। पति कहता है- — तुम कितना ही रोको, मैं भीगते, जलते हुए ही विदेश चला जाऊँगा। लाचार होकर पत्नी पति से कहती है—स्वामी, यदि तुम विदेश जाओगे तो मैं रास्ते की काई बनकर तुम्हारी राह रोकूँगी। ऐसे भावभीने उद्‌गार सुनकर पति मुस्कुराता है और सावन में घर पर ही रहकर पत्नी के साथ कजरी गाने का संकल्प करता है।

एक मनचला एक ग्राम्या का नख-शिख वर्णन करके उसे रिझाना चाहता है। नायिका कहती है -- तुमसे सुन्दर मेरा प्रियतम है। यह और बात है कि मेरे पिता ने अब तक मेरा गौना नहीं किया। मनचला कहता है -- बिना गौना हुए तुमने उसे देखा कैसे? वह कहती है — सिन्दूर देते समय हाथ देखे और मौर उतारते समय रतनारे नयन --

सेनुरा बहोरत कूँ चिन्हलीं चुटिकिया
मउरा छोरत लाली अँखियाँ, अरे साँवरिया ।

ननद-भावज का संबंध—कजरी गीतों में ननद-भावज के संबंधों की मधुरता भी चित्रित है। कोई ननद अपनी प्रोषितपतिका भाभी से कदम्ब वृक्ष पर झूला झूलने का आग्रह करती है, पर भाभी अपने प्रियतम की अनुपस्थिति में जाना नहीं चाहती--

हिडोलवा लागल हइ कदमवां भौजो चलहु झूले ना
पियवा सावन में बिदेसवा ननदो हिंडोलवा भावे ना ।

कहीं कजरी खेलने के लिये उत्सुक भाभी को ननद समझाती है कि गह में उसे लोग छेड़ेंगे।

एक पति अपनी पत्नी के लिये पान-सुपारी लाया है। वह अकेले न खाकर अपनी प्यारी ननद को बुलाती है। मोतियों से उसकी माँग भरती है, पर अन्त में एक कठोर चेतावनी भी देती है—

जो ननदुलि तुम लरौ भिरौगी
मूसर तें धमकाऊँगी ।

भाई-बहन का प्रेम—कजरी गीतों में भाई-बहन के निःस्वार्थ प्रेम के सुन्दर चित्र मिलते हैं। ससुराल में रहने वाली बहन मायके से काग द्वारा भाई का संदेश मँगाना चाहती है। उसी समय भाई भी आ जाता है। वह बहन के लिये कुछ नहीं लाया, इसलिये सास-ससुर उसके भाई का अपमान करते हैं। दूसरी बार जब वह बहुत सामान लाता है तो उसका बहुत सम्मान होता है। इस गीत में धन का महत्त्व वर्णित है। इसमें समाज के प्रत्येक भाई-बहन और माता की आत्मा चित्रित है ---

वीर आए कछु न लाए, सासु ननद मुख मोरि जी
वीर आए सब कुछ लाए सासु ननद हँसि बोलि जी ।

पहले-पहल ससुराल गई एक बहन अपने भाई की राह देख रही है --

सागर अस हँउवे हमरे बबइया हो ना
रामा, गंगहिं अस मोरी माई हो ना
चन्दा अस हउवे भइया जे हमरे हो ना
रामा, ओनहूँ खबरिया न लेई हो ना ।

भाई के प्रति एक बहन का प्यार उमगा है। वह नन्हा-नन्हा सूत कातती है। उससे वह भाई के लिये रेशम की पगड़ी बनाएगी। उसे पहन कर भाई नौकरी पर जायेगा तो राह में राधागूजरी की नज़र लग जाएगी। बहन भाई पर राई-नोन औंछकर राधा को कोसेगी।

एक बहन अपने यहाँ आये भाइ को यह कहकर लौटा देती है कि वह भाई के यहाँ नहीं जाएगी, क्योंकि भावज ने उसे सपने में अपने घर जाने को कहा है और ससुराल

में कैसे रहा जाय, इसकी शिक्षा भी दी है।

एक गीत में ऐसा चित्रण है कि बहन अपनी ससुराल में आँगन बुहार रही है। बुहारी की सींक टूट गई। सास ने उसके भाई को गाली दी तो उसे भाई की याद आ गई। बहन काग को भाई का संदेश लाने दक्षिण भेजना चाहती है, पर काग के उड़ने के पूर्व भाई आ जाता है। बहन उसका बहुत सत्कार करती है और भाई के साथ डोली में बैठकर चल देती है।

वियोग भावना--कजरी के संयोग पक्ष में शृंगार का जैसा मनोहारी चित्रण है, वियोग पक्ष की करुणा भी वैसी ही हृदयग्राही है। पावस में वियोगिनी विकल हो उठती है। मेघ बरसने को आये, किन्तु उसके प्रियतम नहीं आये।

स्याम नहि आये आई स्याम बदरिया।

एक वियुक्ता स्त्री सपने में अपने पति को योगी होते देखती है। वह पति के साथ रहना चाहती है। अतः अपने सुकुमार शरीर की चिन्ता न कर वह स्वयं भी जोगिन हो जाना चाहती है और सखी से कहती है

सपने में सखी सैंया जोगिया भये
हमहूँ जोगिन हुइ जायें।
जोगिया के लाले लाले कपड़ा हो
जोगिन के लामे लामे केस।
जोगिया बजावै सोने की किगरी
जोगिन गावै मल्हार।

और कही कोई पति अपनी पत्नी के वियोग की उत्कंठा में जोगी हो जाना चाहता है -

मयना, तोहे बिना भावे न भवनवां
चले नदिया उतान, लागे सुधिया के बान
मयना, जोगी होबै तोहरे करनवां।

वर्षाकाल में सखियों के उल्लास को देखकर विरहिणी अपने भाग्य को कोसती हुई करुण स्वर में बोल उठती है---

बादर गरजे बिजुरी चमके
जियरा लरजे मोर सखिया
सैंया घरे ना अइले
पानी बरसन लागे मोर सखिया।

सावन के महीने में पति के आने की बात थी। किन्तु उसके न आने से प्रोषित-पतिका स्त्री की व्याकुलता का वर्णन कितना स्वाभाविक है। वह स्त्री अपनी सखी से कहती है---पति ने आज आने को कहा था, शाम हो गई, सूरज डूब चला परन्तु पति अभी तक नहीं आये। ऐ काग, शुभ शकुन सूचित करने वाली बोली बोलो। परन्तु अब तो काली घटा घिर आई, बादल बरसने लगे, बिजली कौंधने लगी। भला, मेरे पति अब कैसे आएँगे।

सखिया साँझ भइल बेरी बिसवे
सामी घरे ना अइले हो
बोलु बोलु कगवा सुलच्छन बोलिया
हरि घरे ना अइले हो ।

कोई विरहिणी स्त्री बादल के द्वारा प्रियतम के पास संदेश भिजवाना चाहती है। यह बात विलक्षण किन्तु स्वाभाविक है -

अरे अरे कारी बदरिया तुहइँ मोर बादरि
बदरी, जाइ बरिसहु वहि देस जहाँ पिय छाये ।

वर्षा की झड़ी में भी विरहिणी का हृदय सूखा रहता है। प्रिय के वियोग में बादल की गडगड़ाहट उसके हृदय में कम्पन उत्पन्न करती है और वर्षा का जल जलन पैदा करता है। कोई स्त्री कहती है -हे देव बरसो, परन्तु तुम्हारा बरसना मुझे अच्छा नहीं लगता। मेरा पति लड़कपन से ही शौकीन है। न मालूम, आज वह कहाँ भींगता होगा

बरिसहु ए देव बरिसहु
मोरा नहीं मने भावेला हो
ए देव, मोरा पिया नान्हें के रे बिसनिया
अकेला कहाँ भींजेला हो ।

एक कजरी गीत में चकवी की व्यथा का कैसा मार्मिक चित्रण है। रुक्मिणी का हार यमुना में गिर पड़ा है। वह चकवी से उसे निकालने की प्रार्थना करती है। चकवी कहती है -तुम्हारे हार में आग लगे, मोती पर बज्र पड़े। साँझ से ही मेरा चकवा खो गया है, मैं उसी को ढूँढ़ रही हूँ।

एक प्रोषितपतिका अपनी सखी से कहती है --चारों ओर सघन काली घटाएँ घिर आई। बूँदें छहर-छहर कर पलंग पर गिर रही हैं। मेरी सुन्दर कुसुम रंग की चुनरी भीग रही है। प्रियतम के बिना आज मेरा सिंगार सूना है। कीचड़ से राह बाट फिसलन भरी हो गई हैं और मेरे प्रियतम प्रवासी हैं।

इधर एक वियोगिनी प्रियतम की पाती की प्रतीक्षा कर रही है -

आये रे सावनवां नाहीं आये मनभावनवां रामा
जोहते दुखाली दूनो अँखियाँ रे हरी ।

कहीं कौशल्या की वात्सल्य भावना चित्रित है --

सावन भदउआ के रतिया उमड़ि दैवा गरजे हो
दैवा जनि बरिसेउ ओही वन में, जहाँ मोर लड़िकन हो
राम के भिजिहैं मुकुटवा, लखन के पटुकवा हो
मोरी सीता के भिजिहैं सिंदुरवा, लवटि घर अवतेनि हो ।

कजरी में कृष्ण के प्रसंग--शृंगार से विशेष संबंध होने के कारण कजरी गीतों में बहुधा श्रीकृष्ण का प्रसंग मिलता है। एक गीत में उस समय का वर्णन है जब पूतना ने श्रीकृष्ण के वध का प्रयास किया किन्तु कृष्ण अपने बल से सुरक्षित बच गए। उल्टे पूतना को ही मारकर उन्होंने यमलोक पहुँचा दिया----

कंस महलिया से निकले रानी पूतना
चलि भइली नन्द के महलिया ए हरी
बालका उठाइ रामा छतिया लगवली
दूनो छतिया जहर लगवली ए हरी ।

जहाँ कहीं झूला झूलने का वर्णन आया है, वहाँ तो कृष्ण कजरी के नायक और राधा नायिका बनी हैं। कहीं कृष्ण राधा की गलिया में चूड़ीहार का रूप धरे घूम रह हैं और राधा चूड़ी पहनने के लिये उन्हें बुलाती हैं। कृष्ण चूड़ियाँ पहनाने के बहाने राधा की कलाइयाँ दबाते हैं। राधा उन्हे पहचान जाती हैं

धरे हरि रूप मनिहारी को
ऊँची अटा मे राधा बुलावें
इते लाओ लाल नई चुरियाँ रे
कर मसके चुरियाँ पहिरावें
निरख रहे रूप राधाप्यारी के ।

और कहीं राधा ग्वालिन बनकर दधि बेचने आती है। कृष्ण मनिहारी बनकर उसे छलते हैं -

ग्वालिन बने राधिका प्यारी
कृष्ण मनिहारी ए रामा ।

एक गीत में पौराणिक मान का चित्रण आया है। राधा ने मान किया है। उन्हें शिकायत है कि जिन सखियों को कृष्ण ने फूल दिये हैं, उन्हीं के पास जाएँ। कृष्ण बाग से फूल चुनकर लाये हैं। उन्होंने सबको फूल बाँटे लेकिन राधा की बारी आते आते पुष्प समाप्त हो गये। इस बात पर राधा को गुस्सा है। वह उत्तर देती हैं -

एजी जित बाँटे झोली भर फूल
उतै पड़ सो रहो भगवान ।

कृष्ण प्रतिकूल परिस्थिति के प्रति राधा का ध्यान आकृष्ट करते हैं। बादल बरस रहे है और वे भींग रहे हैं। उन्हें अँधेरी रात में डर लग रहा है, लेकिन राधा कृष्ण से घर की दीवारें भी नहीं छुलाना चाहतीं क्योंकि भित्ति पर बनी हुई चित्रकारी नष्ट हो जाएगी। राधा के ये विचार कृष्ण को खल जाते हैं और वे चले जाते हैं। अब राधा को पछतावा होता है। वे कृष्ण की खोज में निकलती हैं। कृष्ण सोते हुए मिलते हैं। कातर होकर राधा जार- जार रो उठती हैं।

धार्मिक भावना—कजरी के वर्ण्य विषय में धार्मिक भावना भी निहित है। पं० देवीदास की यह कजरी देखें --

तोहरे करनवां बाबा भैल्यो बदनमवां रामा
हरि हरि तेहु पर न दिहल्यो दरसनवां ए हरी ।

अयोध्यावासी श्री रामप्रसाद शरण 'दीन' ने अपनी रचना में श्रीराम के सरयू तीर पर कजरी खेलने का चित्रण किया है—

कजरी खेलैं सरजू तिरवा
पिया संग जनकदुलारी ना ।

एक गीत में वन जाते समय सीता के द्वारा सास और अयोध्या नगरी को छोड़ने का दु:ख वर्णित है---

धीरे चलऽ हम हारी ए रघुबर
एक तऽ छूटेला नगर अजोध्या
दोसर छूटेला महतारी ए रघुबर ।

कुछ निर्गुण कजरियाँ भी मिलती हैं। मृत्यु के बाद शरीर की दशा का वर्णन एक गीत में है---

सुगना निकल गइल पिंजरा से
खाली पड़ल रहल तस्वीर ।

राष्ट्रीय भावना---शृंगार के अतिरिक्त कजरी में देश की सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों का घटनाक्रम भी स्पष्ट परिलक्षित है। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में सारे देश में राष्ट्रीय आन्दोलन का सैलाब आया तो गायकों ने कजरी गीत मे चरखा कातने का आह्वान किया---

चरखा कातो मानो गाँधीजी की बतिया
बिपतिया कटि जइहें ननदी ।

असहयोग आन्दोलन नारी जागरण का युग था, जिसमें ग्रामीण बाला भी पति की अर्द्धांगिनी के रूप में देशसेवा का व्रत लेती है। देशसेवी पति की खातिर वह भी जोगिन होने की कामना करती है---

जो पिया बनिहें रामा देसवा लागि जोगिया
हमहूँ बनि जइबो तब जोगिनियाँ ए हरी ।

देश-प्रेम संबंधी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की यह कजली भी दर्शनीय है--

काहे तू चौका लगाये जयचंदवा ।
अपने स्वारथ लुभाये काहे, चोरी चोरी कहवाँ बुलाये जयचंदवा ।
अपने हाथ से अपने कुल के काहे तें जड़वा कटाये जयचंदवा ।
फूट के फल सब भारत बोये बैरी के राह खलाये जयचंदवा ।
और बासि तैं आयो बिलाने, निज मुँह कजली पुताये जयचंदवा ।

स्वदेश-प्रेम की भावना की पुष्टि करते हुए इस गीत में देशद्रोही का तिरस्कार किया गया है।

माधव शुक्ल की एक कजरी राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत है। परतंत्रता की बेड़ियां में जकड़े भारतवासियों के प्रति उनकी व्यथा इस कजरी गीत में व्यक्त हुई है----

काली छाय रही अँधियारी
घर में घुसी फूट बन चोर
बरबस हाय हमारी संपति
नासत सबै बटोर ।

श्रमजीवियों की दशा---बनारस के एक कवि ने कजरी गीत में रिक्शा खींचने वालों के शोषण एवं दुर्दशा का वर्णन किया है--

रिक्शा चला बनारस में कलकतिया चाल बाय
गद्दी बिछल बा मखमल के तकिया लाल बाय
रिक्शा खींचे आदमी के पेट बड़ा चण्डाल बाय ।

नगरपालिका द्वारा करवृद्धि के कारण इक्कों की हड़ताल हुई। इससे इक्का चलाने वालों की दुर्दशा हुई। इसी भाव को एक कजरी गीत में प्रस्तुत किया गया है--

सावन अइस मचवलेस सोर
बदरिया झूम के आइल ना
पर हरताल भइल इकवन के
हौ दुखदायी ना ।

एक कजरी गीत में १९३४ ई० के बिहार के भूकम्प की चर्चा है -

का सुनाई हम भूडोल के बयनवां ना
सहर दरभंगा मुँगेर भइले मुजफ्फरपुर
चौपट कइलेस अनगिनत मकनवाँ ना ।

सामाजिक कुरीतियो के चित्र

बदरीदास 'प्रेमघन' ने अपनी कजरिया मे सामाजिक कुरीतियों पर चोट की। अंग्रेजी फैशन के लिये पागल लोगों के लिये उन्होंने लिखा-

मोहै न तोके पतलून साँवर गोरवा
कोट बूट जाकट कमीज क्यों
पहिन बने बैबून साँवर गोरवा
अच्छर चारि पढ़त अँगरेजी
बन गइले अफलातून साँवर गोरवा ।

अम्बिकादत्त व्यास ने भी अंग्रेजी की नकल करने वालों से आग्रह किया----

प्यारे हो के हिन्दुस्तानी बाबू अँगरेजी ना बोल ।

कजरी गीतों में बाल विवाह तथा बेमेल विवाह के भी चित्र हैं --

हरि हरि फुसलावा जिनि, दै दै बुन्दा बाला रे हरी
असी बरस के भया बूढ़ तू, जस हमार परबाबा रामा
हरि हरि हम बारहै बरिस के अबहीं बाला रे हरी
जब लग चढ़े जवानी हम पर, तब लग तू मरि जावा रामा
हरि हरि तब हमार फिर होय, कौन हवाला रे हरी
हरि हरि तजौं बुढ़ाई में तो, गड़बड़झाला रे हरी ।

कजरी लोकगीतों में जनजीवन का स्वाभाविक चित्रण मिलता है। एक बाल-विवाहिता युवती, जिसका पति से अब तक मिलन नहीं हुआ है, गौना के लिये उत्कंठित हो पिता से कहती है---

कोठवा पे बोले कोठी वाली हो चिरइया
कि बनवा में बोलेला हो बनवा मोरवा ।

मोरवा के बोली सुनि बिहरे करेजवा
से कइ दऽ बाबा हमरो गवनवा ।

कजरी में हास परिहास के अनेक विनोदपूर्ण चित्र मिलते हैं। ननद भावज, पति पत्नी और देवर-भाभी के मधुर परिहास के अतिरिक्त कही कहीं सास बहू के मनोरंजक उद्‌गार भी प्राप्त होते हैं। एक बहू के शब्दों मे सास का मनोरंजक स्वरूप इस गीत मे वर्णित है—

बूढ़ा बड़ी जहर के कूड़ा, बाइस रोटी झटकै जाँई ।
ऊँचे खाले से मिट्टी लाई, चूल्हा लिहें बनवाई ।
कठवति भरिके पिसान सानइ, कोंचा लिहेनि पकाई ।
हाँड़ी भरिके दाल पकाई, ओमें नून जहर होइ जाई ।
दुइ दुइ रोटी मुँह में ठूँसइ, उँटिया अस पगुराई ।
इन्द्रपुरी से विमान आये, बैठी प्रेम लगाई ।
जम के दूत आइ जब घेरे, बूढ़ा दिही मुँह बाई ।

बहू की स्थिति घर में बड़ी दयनीय होती है। वह कजरी खेलने गई तो सास, ननद और पति ने उसके साथ दुर्व्यवहार किया—

कजरी खेले गइली हे तूत के गली
झुमका हेरइले हे अमरूद के गली
सासु कहे मार मार ननदू करे चुगली
सैंया जालिम जोर कहें, मारे अँगुली ।

इन कजरी गीतों में भावप्रवणता तो है ही, साथ ही ये वर्णनात्मक भी है। बिजली और बादलों का गर्जन लोकनारी के हृदय पर उस सीमा तक प्रभाव डालते हैं कि भयभीत हो प्रिय के समीप रहने की आकांक्षा उसमें बलवती हो उठती है।

मेघों की रिमझिम, बूँदों का नर्तन, पपीहे की पुकार, कोयल की कूक, मोर का शोर, घनघोर घटाएँ और दामिनी की चमक ये सब तन मन में कम्पन उत्पन्न कर प्रिय की कामना के लिये उद्दीपन का काम करते हैं। वर्ण्य विषय की दृष्टि से इन गीतों में सामाजिक आदर्श, इष्ट वियोग, अकस्मात् मिलन और विलासिनी नायिकाओं के गुप्त अभिसार चित्रित होते हैं। इन गीतो पर स्थानीय संस्कृति का भी प्रभाव होता है।

सावन के गीतों मे प्रकृति से सखा भाव जोड़ा गया है। इन गीतों में बिजली, बादल, पुरवैया आदि को संबोधित किया गया है जो इस बात का द्योतक है कि नारी उनमें साहचर्य की भावना का अनुभव करती है। राधा कृष्ण, व्रज के गोप, भाई के प्रेम, भाभी के तिरस्कार, देवर के व्यवहार आदि का वर्णन लोकनारी के जीवन से ही सादृश्य रखता है। इनमें शृंगार एवं करुण इन्हीं दो रसों की प्रधानता रहती है।

कजरी दंगल : मिर्जापुर और बनारस के अखाड़े तथा कजरी मेले

अवध प्रदेश, भोजपुर और बुन्देलखण्ड कजरी से विशेष रूप मे प्रभावित रहे हैं। भारतेन्दु जैसे कवि भी कजरी की साज-सज्जा मे आकृष्ट हुए। कजरी गायकों के अखाड़ों

की धूम यो कलकत्ता तक थी किन्तु मिर्जापुर और काशी की विशेषता एक कजरी गीत में इस प्रकार बताई गई है --

हरि हरि मिर्जापुर ले काशी गुलजारा ए हरी ।
मिर्जापुर में फूले रामा बेलिया रे चमेलिया
हरि हरि काशी जी में फूलेला हजारा ए हरी ।
मिर्जापुर में बहे रामा नदिया से नलवा
हरि हरि काशी जी में बहे गंगधारा ए हरी ।

इन स्थानों पर कजरी एक ऐसी लोकप्रिय गीतशैली थी जो सड़कों से चौराहों तक, बाग बगीचों, मेलों और सामान्य गोष्ठियों से लेकर रईसों की महफिलों तक में गाई जाती थी। धान रोपने वाली ग्रामीण स्त्रियों के कण्ठ में भी ये कजरी गीत थे। काशी, मिर्जापुर में सावन-भादों के मेले या स्नान पर्व में गायकों के दल स्थान-स्थान पर कजरी गाते हुए मेलों में जाते थे। लोग गायकों का स्वागत तो करते ही थे, प्रसन्न होने पर उन्हें पुरस्कृत भी करते थे। पुरुष गायकों की तरह स्त्री गायिकाओं की मण्डली भी कजरी के मादक स्वरों से श्रोताओं को विभोर करती थी।

भारतेन्दु जी का समय कजरी का स्वर्णयुग था। उस समय कजरी को साहित्य संगीत एवं लोकजीवन में बड़ा ऊँचा एवं प्रतिष्ठित स्थान मिला था। कजरी सुनने के लिये बनारस में लाखों की भीड़ उमड़ती थी। जगह जगह पर कजरी दंगल और कजरी की महफिलें रात रात तक चलती थीं। कजरीतीज से सप्ताह या दो सप्ताह पूर्व कजरी का आकर्षक माहौल तैयार हो जाता था। श्रोता रात भर कजरी का आनन्द लेते थे।

भादों कृष्णपक्ष की तीज के पहले महिलाएँ झुण्ड में कजरी गीत गाती हुई जाती थीं और स्नान करके ताल की मिट्टी घर लाकर उसमें जई बोती थी। मिर्जापुर के कजरी मेलों में उस समय बड़ी भीड़ होती थी। सबसे अधिक भीड़ विन्ध्याचल के कजरी मेले में उमड़ती थी। इसके मूल में अष्टभुजीदेवी एवं विन्ध्याचलदेवी का आकर्षण था। मेले में रसिकजन भाँग पीकर कजरी का दूना आनन्द लेते। बनारस के संगीत प्रेमी भी विन्ध्याचल के मेले में सम्मिलित होते थे। कवि प्रेमघन ने विन्ध्याचल के कजरी मेले का बड़े सरल और सरस शब्दों में चित्रण किया है -

सावन सरस सुहावन सावन गिरिवर विन्ध्याचल पै रामा
हरि हरि मिर्जापुर की कजरी लागै प्यारी रे हरी ।
हरिमंगल तिकोन का मेला होला अजब रंगीला रामा
हरि हरि जंगल में है मंगल की तैयारी रे हरी ।
उल्टा सहर बनारस मिरजापुर के रसिक रसीले रामा
हरि हरि गुंजत कुंज मनहुँ कोकिल किलकारी रे हरी ।

नागपंचमी से पहले यहाँ झूले पड़ जाते हैं। कजरीतीज के दिन रात भर उत्सव होता है। वहाँ के ओझिला पुल पर आज भी पावस ऋतु युवतियों की सरस कजलियों से गूँज उठती है।

विन्ध्याचल, ओझिला ही नहीं, मिर्जापुर की गली गली में कोकिलकण्ठी नारियों की कजरी गूँजती रहती है। सावन का मेला समाप्त होते होते कजरी का उल्लास भी अपने शिखर पर पहुँच जाता है -

बितै पहाड़ी मेला सावन के जब कजरी आई रामा
हरि हरि मिरजापुर में तब छाई छबि प्यारी रे हरी ।

सार्वजनिक कजरी मेलों, दंगलों के अतिरिक्त मठों, मंदिरों तथा रईसों के बाग बगीचों में आयोजित कजरी उत्सव का अनोखा रंग था। आमंत्रित लोग भाँग खाकर तवायफों और गौनिहारिनों की कजरी का आनन्द उठाते थे। जिसके बाग में जितने अधिक झूले पड़ते थे, वह उतना ही अधिक रईस समझा जाता था। उत्सव में भाग लेने वाली गायिकाओं के लिये विशेष रूप से धानी रंग की साड़ी और गोटे लगे ब्लाउज की व्यवस्था होती थी, जिन्हें पहन कर वे झूले पर बैठती थीं।

मिर्जापुरी रूपहाट की रतजगा महफिलों का प्रेमघन ने 'कजरी की कजरी' में अच्छा शब्दचित्र प्रस्तुत किया है

डटे जवान बाँहड़ औ अक्खड़ ठाढ़े नजर लड़ावें रामा
हरि हरि चले यार लोगन में छुरी कटारी रे हरी ।
निरमोहानी नारघाट औ सड़क पसरहट्टा पर रामा
हरि हरि चलें दोतरफ़ नैनन की तलवारी रे हरी ।

बनारस और मिर्जापुर में आषाढ़ से जो गीतों का क्रम चलता है, वह आश्विन के आरंभ तक रहता है। फूलों की सजावट, बिजली की जगमगाहट के साथ कजरी, बिरहा दंगल कार्यक्रम शृंगार का अपरिहार्य अंग है। कजरी दंगलों के लिये विभिन्न स्थानों का चुनाव किया जाता है।

कुछ विद्वानों ने कजरी दंगल करने वालों के अखाड़ों एवं घरानों का वर्णन किया है—

जहाँगीर का अखाड़ा—यह अखाड़ा बहुत मशहूर है। ऐसा कहा जाता है कि लगभग डेढ़-दो सौ वर्ष पूर्व मुहम्मद ने कजरी अखाड़ों की प्रतिष्ठा की थी जिसमें गायक एवं शायर दोनों शामिल थे। जहाँगीर के तीन शिष्यों ने उनके अखाड़ों का नाम रोशन किया। ये शिष्य थे- अक्षयवर पण्डित, सिद्दीक अब्बास और लालता महाराज। इन शिष्यों की शिक्षा दीक्षा भले ही कम रही हो और इनकी सामाजिक स्थिति भले ही बहुत ऊँची न रही हो किन्तु इनमें से कुछ शिष्यों ने काव्य प्रभाकर, छंदारुण पिंगल, अलंकार मंजूषा आदि का अध्ययन करके अखाड़े के ख्यातिलब्ध गीतकार के रूप में कजरी दंगलों में अपनी साख जमाई।

एक शायर श्यामलाल ने कजरी दंगल में झण्डा, पदक और रुपये जीतकर प्रसिद्धि प्राप्त की। एक-एक दंगल में बीस पच्चीस हजार से अधिक श्रोताओं का जमघट होता था। इसमें सवाल-जवाब होते थे। एक गौनिहारिन ने सवाल किया था

बहे पुरवइया सवनवां का लहरा
आ जा मोरे बालमवाँ ।

इस पर श्यामलाल ने कहा था

तोहरे दुअरिया में कैसे आऊँ
सिपहिया का पहरा रे बालमवाँ ।

रामदास गायक को दंगल में सनातन कजरी गायकों के बीच सर्वश्रेष्ठ रचना और गायन के कारण 'अधर सितारे हिन्द' की उपाधि से सम्मानित किया गया था।

शरव बफत द्वारा प्रतिष्ठित अखाड़े की पुरानी परम्परा कजरी के अलावा कजरी की बनारसी मिर्जापुरी धुनों में निर्गुण बेलवरी और पचरा यानी देवी भवानी के गीतों के लिये विख्यात हुई। जगन्नाथ महाराज, रामदुलार सिंह, मुरलीधर मराल, बद्रीनाथ बिहारी, बैजनाथ विश्वनाथ आदि ने इस अखाड़े की परम्परा को आगे बढ़ाया।

संत कल्लूशाह का अखाड़ा कजरी गीतों में निर्गुण, रामकृष्ण, महाभारत, भर्तृहरि चरित्र, शृंगार, ऐतिहासिक से लेकर आशिकाना कजरी तक के लिये संत कल्लूशाह तथा उनके शिष्य मशहूर थे। शिष्यों में बाबा बद्रीनाथ ने गुरुगोविन्द सिंह के बच्चों के बलिदान के सबंध में एक कजरी लिखी

गुरु गोविन्द सिंह की दोनों संतान सहर दिल्ली में
हो गये दोनों धर्मलाल कुरबान सहर दिल्ली में ।

रघुनाथ निगोरा वाले अखाड़े के मेवालाल को मिर्जापुर कजरी दंगल में 'सितारे हिन्द' का खिताब और शाही पताका मिली थी।

कभी कभी इन दंगलों में छन्द रचना के साथ गायक की बुद्धि की परीक्षा भी होती थी और इसके लिये रात रात भर दंगल चलता था। उन दिनों कजरी में अश्लीलता एवं अभद्र आक्षेप वाले 'फटहा' चलने थे, इसी कारण शिष्ट एवं उच्च वर्ग के श्रोता कजरी से दूर होते गए।

मिर्जापुर में रतजगा होता है। ढोलक की थाप के साथ कजरी के स्वर गूँजते हैं --

बिनु हरि के उमिरिया
कि कइसे बीतइ ना ।

बुद्धू नाम के एक कजरी गायक का अलग रंग रहा। ये शरद पूर्णिमा के लिये जालीदार हँड़िया बनाते थे। छन्नूलाल होरी सिंहार की तालीम से ये कजरी गायक बने। बीस बीस हजार की भीड़ में बुद्धू गायक की बुलन्द आवाज में कजरी गूँजती थी -

झाँसी के मैदान में जब
लछमी की तलवरिया चमकी
चारों ओर धूम मची ना ।

अखाड़ों की तरह कजरी के कुछ घराने भी प्रसिद्ध हुए, जैसे---रामप्रकाश पंडित का घराना, छबिराम घराना, भैरो घड़ीसाज का घराना, खुदाबख्श घराना, नज़र घराना, अलीबख्श का घराना, सरस्वती घराना, बिहारी बिरहिया या तेग अली का घराना आदि।

ये दंगल बाद में शब्दालंकार प्रधान हो गये। इनमें कुछ सस्ते सवाल-जवाब भी होने लगे इसलिये जवाबी दंगल प्रायः लुप्त होते गये।

दंगली कजरी के प्रकार

अखाड़िया या दंगली कजरी में गुरु-शिष्य की परम्परा है। गीत के अंतिम चरण में गुरु का नाम लिया जाता है। दंगली कजरी के आरंभ और अन्त में बिरहे की लय मे दो दो अतिरिक्त पंक्तियाँ जोड़कर उसे बिरहा बना लिया जाता है। विषयवस्तु की दृष्टि मे दंगली कजरी के सात भेद किये जा सकते हैं -(१) भक्तिपरक, (२) रसखान, (३) बयान, (४) सामाजिक, (५) राष्ट्रीय, (६) जवाबी, (७) फटका।

(१) भक्तिपरक रचनाएँ तीन तरह की होती हैं

(क) हदीसी कजली में मुसलमान पैगम्बरों के क्रिया कलापों का वर्णन होता है।

(ख) निर्गुणिया रचनाएँ निर्गुण उपासना से संबद्ध हैं।

(ग) लीलागान मे भगवान् राम तथा उनके भक्तों का चरित्र होता है।

(२) रसखान---यह रचना शृंगारिक होती है। इनके इश्किया और नख शिखी दो भेद होते हैं। इश्किया कजली मे सयोग, वियोग, प्रेम निवेदन और छेड़छाड़ होती है। नख शिखी मे देवी या मानवी के अंग सौन्दर्य और साज-सज्जा का वर्णन होता है।

(३) बयान---इसमें विवरणात्मक कजली होती है। इतिहास, पुराण की प्रसिद्ध घटना से लेकर बाढ़, भूकम्प, किसी दुर्घटना का विवरण तक इन कजलियों में होता है।

(४) सामाजिक कजली में सामाजिक कुरीति आदि का वर्णन होता है।

(५) राष्ट्रीय कजलियों मे देशप्रेम संबंधी वर्णन होता है।

(६) जवाबी—दंगली कजली में दो गायक दल आपस मे सवाल-जवाब करते हैं। एक दल सवाल करता है, दूसरा दल उसका जवाब देकर एक प्रश्न भी करता है। जवाबी कजरी मे प्रायः किसी बयान को आधा गाकर प्रतिद्वन्द्वी से उसे पूरा करने को कहा जाता है।

(७) फटका—सवाल-जवाब करते दोनों दल प्रायः गाली-गलौज पर उतर आते हैं। इस तरह के दंगलों मे बरजस्ता अर्थात् आशुकविता का प्रयोग होता है।

दंगली कजरी शायरी लोकसाहित्य की विवरणात्मक विधा है। गायक का ध्यान रस परिपाक की अपेक्षा चमत्कार प्रदर्शन पर अधिक होता है। काशी के नज़र मुहम्मद ने एक विरहिणी का चित्र इस प्रकार खींचा है -

हमें छोड़ अकेली गये भये पिउ सपना
सखि जब से चढ़ा अकास बुरा दिन गाढ़
मैं खाती पछाड़ पिया की सौगन
हमें देके गये विरोग मैं भई विरोगन।

भाव, भाषा और विषयवस्तु की दृष्टि से बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने कजरी का वर्गीकरण किया है

(१) कजली— जो सामान्य ग्राम गीत के आरंभ में बनी और अपने उसी रूप में रह गई। इस कजरी के तीन भेद हुए (अ) जो मूल गीत मे ही रह गई। (ब) जो ढुनमुनिया में परिवर्तित होकर निर्विवाद कजरी हुइ। (स) जो परिष्कृत होकर शिष्ट समाज में गाई जाने लगी।

(२) ढुनमुनिया— सामान्य अवसर के गीतो के भाव और भाषा को धारण किये हुए कुछ कुछ परिमार्जित होकर भी जो अपने पूर्व रंग और लय में स्थिर रही, उसे ढुनमुनिया कजरी की संज्ञा दी गई। भारतेन्दु जी की एक ढुनमुनिया इस प्रकार है —

ताकऽ हमरी ओरिया
भर नजरिया रे हरी।

(३) उजली— जो भाषा और लय में परिवर्तन रखकर भी कजली के अस्तित्व को बनाये रखती हो

मुख मृगांक महताबी रबजे
गोल कपोल गुलाबी रामा
हरि हरि भौं कमान जुग चढ़े
बंग से बाके रे हरी।

(गोस्वामी वामनाचार्य)

(४) कजरा— इसमे भाषा और प्रबन्ध कजरा शैली का होता है, परन्तु भाव भिन्न होते हैं

जिनकर बीहड़न से बहाना रे हरी
गाँव ले मरदाना जेकर लड़े-भिड़े के बाना रामा
आगे तो जरीबाना फेर जेहलखाना रे हरी।

(५) कजला— इसके भाषा, भाव और प्रबन्ध कजरी से भिन्न होते हैं किन्तु रस और लय में समानता होती है -

बयस सिरात, गेरे नहीं बर साथ
बैरी भई बरसात
दुख दुसह महमा रे बालमुआ।

(६) उजल— यह कजरी की शैली से बिल्कुल भिन्न है, जिसे कोई घराने वाले से तालीम पाकर गा सकता है। इसमें छन्द अटपटे होते हैं, अन्य भाषाओं के बेमेल शब्द होते हैं—

जुल्फ बने निहारे मीम लाम रे साँवलिया
बाजे संबुज आं रैहान बाजे कहते हैं चौगान
बाजे हवस कमंदे बाजे शाम रे साँवलिया।

(७) लगनी— उपहास के लिये किसी व्यक्तिविशेष को लक्ष्य करके जिसकी रचना की गई हो—

मैं तोसे पूछूँ सँवरो गोबिन्दिया
काहे तोसे बिगड़ा रे बाभनवाँ ।

(८) फटका—जो भद्दी तुकबन्दी, अश्लील शब्दों और भावों से भरी रचना हो

गोरिया पटेबाज तू निकलेउ
कुल में दाग लगवलू ना ।

(९) स्वतंत्र कविता—किसी विशेष विषय पर किसी कवि द्वारा कजली की धुन में बनाई गई मनोहर रचना

आओ गाओ रे कजरिया बोलो साँचे साँचे बोल
लिबरल दल को विजय भई है मीटिंग डाँवाडोल
शिमला छाँड़ि विलायत भागे लाट लिटिन बमबोल ।

(प० मदनमोहन मालवीय)

लय के आधार पर कजरी का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है

(१) ठहकी लय— कजरी का मूल रूप यही था जिसे घर की स्त्रियाँ गाती थीं। अन्य धुनें बाद में विकसित हुई, जैसे--

(क) **मिर्जापुरी धुन**— इसमें स्वरों का आरोह अवरोह शुरू से अन्त तक एक सा बना रहता है

बरसे अदरा क बुनवा ठाड़ी भींजे गूजरी ।

या

पेंगा धीरे धीरे मारो डरिया ओनै ओनै जाय ।

(ख) आरंभ में द्रुतलय और मन्द स्वर तथा अन्त में विलंबित लय और तीव्र स्वर जिसमें हो; जैसे

कौन रंग मुंगवा कवन रंग मोतिया
कवन रंग भउजो मोर बिरना ।

(ग) **गौनिहारिनों की लय**—इसमें स्वर के आरोह अवरोह और विराम पर विशेष ध्यान दिया जाता है

सावन बीतल जाय सुहावन
सैंया नाहीं आये मोर
बादर बरसे बिजुरी चमके
उठी घटा घनघोर
साँवरिया उठी घटा घनघोर ।

(२) बनारसी लय—बनारसी लय की कजरियों के चरण अपेक्षाकृत लंबे होते हैं—

तिजिया बीति गइल कुल बोरनू
छिंटिया नाहीं लिअइला ना ।
मारी खरिदलऽ सवत पहिरवलऽ
हमके नाहीं जनवला ना ।

(३) चलती लय—यह भी तीन प्रकार की होती है—

(क) **कुलवधुओं की**—घर की स्त्रियाँ चलती लय की कजरियाँ द्रुत लय और धीमे स्वर में गाती हैं -

नाहीं लागे जियरा हमार बिनु सैंया रे
एक त भवनवाँ के गान अँधेरी
दूसरे झिंगुरवा झनकार बिनु सैंया रे ।

(ख) **द्रुततर लय की कजरियाँ** समूह में गाई जाती हैं

अइसन माम मुनर रम बिरना
काहे खोखलिव हो ननदी
रात भर बेनिया अरे डोलवलिव
नयन बिच रखलिव हो ननदी ।

(ग) **गौनिहारिनों की चलती लय**- यह कुलवधुओं जैसी द्रुत लय की होती है किन्तु आरोह अवरोह की अधिकता के कारण विलंबित जान पड़ती है। गौनिहारिने उच्च उच्च स्वर से गाती है

जान मारे तोरी आँख के पुतरिया ना
पुतरिया ना हो पुतरिया ना ।

(४) मिर्जापुरी जनानी धुन—ऐसी कजरियों में अन्त्यानुप्रास होता है तथा लय द्रुत होती है

अबकी सावन में रँगाय द चुनरिया पिया
रंग रहे केसरिया पिया ना ।

(५) रामा हरी की चाल—करुण भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिये ऐसी कजरियाँ उत्तम होती है। इस धुन की कजरियाँ प्रायः विप्रलंभ शृंगार की है। ये विलंबित लय और मन्द स्वर में गाई जाती है—

तजि के गये बिहारी सावन के महिनवाँ रे हरी
अपुनो न आवे पापी चिठियो ना पठावे रामा
अरे रामा लिखी लिखी भेजेल्यूँ बिरोगवा रे हरी ।

(६) चलती लय की फूलदार कजरी—कजरी की टेक में फूल स्तोभ कहीं-कहीं लगता है। फूल प्रायः निरर्थक होते हैं, पर कभी कभी ये संबोधनसूचक भी होते हैं। गीत के अर्थ मे इनका विशेष संबंध नहीं होता। इनकी टेक हैं —रे साँवरिया, अरे साँवलिया, रे करबन्दा, रे दुइरंगी, बुन्देलवा बाँके बलमा, मोरे बलमा, बलमू, रंगरसिया, मनमोहना, रे लालनवाँ आदि।

दुनमुनिया कजरी कई प्रकार से गाई जाती हैं। इसमें नृत्य गीत का प्रयोग होता है -

(क) इसमें कई स्त्रियाँ मण्डलाकार एक दूसरे का हाथ पकड़ कर खड़ी हो जाती हैं और हाथ बाँधे हुए निहुर-निहुर कर गाती हैं।

(ख) गाते-गाते मण्डलाकार घूमती हैं।

(ग) मण्डलाकार खड़ी स्त्रियाँ कमर तक झुककर चुटकी बजाती हुई

सीधी खड़ी होती हैं, साथ ही गोलाकार घूमती भी जाती हैं।

(घ) दो स्त्रियाँ निहुर निहुर कर चुटकी बजाती हुई विपरीत दिशा में चलती हैं और कुछ दूर चलकर एक साथ मुड़ जाती हैं। यह क्रम बार-बार चलता है।

कजरी का साहित्यिक पक्ष

यद्यपि कजरी गाँवों की सीमा में ही प्राणवती है। फिर भी यह कहना उचित नहीं है कि कजरी के कवि काव्यकला से अनभिज्ञ रहे है। बहुतेरे कजरी के कवियों ने पिंगलशास्त्र का अध्ययन किया था। कजरी के साहित्यिक पक्ष की गंभीरता हमें यत्र तत्र देखने को मिलती है।

अखरावट या ककहरा शैली मे कजरी

हिन्दी साहित्य में अखरावटी (अक्षरावृत्ति) कविता का रूप हमे कबीर की 'चौंतीसी रमैनी' एवं जायसी के 'अखरावट' में देखने को मिलता है। इस शैली में कुछ कजरियाँ भी मिलती हैं

कहा सुयोधन ने दुशासन लावो द्रुपदी की चीर
खौफ किया वह लगा खींचने साड़ी को बेपीर
गयी सहम रानी बोली क्या तेरा गया विचार
घोर पाप कर रहे दुशासन नारी को मक्कार ।

उक्त पंक्तियाँ क्रमशः क, ख, ग, घ व्यंजनों से आरंभ होकर म वर्ण तक जा सकती हैं। अनुनासिक वर्ण इनमें छूट जाते हैं।

कजरी में अनुप्रास

जवाबी कजली में प्रायः चमत्कारपूर्ण रचनाएँ गाई जाती हैं। पर कुछ रचनाओं मे यमक और अनुप्रास के सस्ते प्रयोग हैं। एक अनुप्रासयुक्त रचना में मछलियों में देवता का वास बताया गया है- -

मोह में महादेव, पढ़िना में पारवती
गेहू में रामचन्द्र, सौरी में सीतासती
गैहड़ी में राधेजी, कउल कोतरा में कन्हाई ।

कहीं-कहीं कजरी में पूरा ककहरा अनुप्रास अलंकार में लिखा गया है। ककहरा के जिस अक्षर से पंक्ति का आरंभ होता है, पूरी पंक्ति में उसी अक्षर का अनुप्रास होता है --

करत किलकिला कंदर से कहँ कहाँ के अस लश्कर
खड़े खरारी लखे लखन खन-खन सेना खर खर
गगन जाम गर्जते ग्राह गिर गहे अंग आगर
घहर घहर घनघोर घटा घाटी घाटत जाघर ।

इन पंक्तियों के आरंभ में कवर्ण का अनुप्रास है, पर अन्त में भी कर, खर, गर, घर में क, ख, ग, घ अक्षरों के प्रयोग का चमत्कार है। अ, श और ह वर्णों का अनुप्रास

बहुत कम देखा जाता है, किन्तु कजरी में यह भी देखने को मिलता है

> अस्नि अक्षर आग्ध्य आभा आप्त आकर्षक रहै
> ले ललित लालित्य लखि लखि मोद मन श्रोता लहै
> शब्द शुचि शैली सुशिक्षक जानि जन शिक्षा गहै
> हुवा हरि हिव का सेहर हुल्लड़ मे खाली दिल रहै ।

इन कजरिया में एक ही अक्षर का अनुप्रास देर तक चलता है, जिसे ककहरा मे बन्द किया जाता है

> नीक निपुन नूतन नरतत आनन में छुरी अलकन की छटा
> निखरि नवीन निरूपन शोभा को निजमन परखन की छटा
> नगद निरखि भ्रकुटिन नयनन मे धनुसृना उठौ गगन की छटा
> निघटे नीरज नयन मीन खंजन वकुरजन कृपि सघन की छटा ।

उक्त पद में 'न' के अनुप्रास के अलावा आरंभ तथा अन्त में ककहरा का बन्द है नीक (न+क), निखरि (न+ख), नगद (न+ग), निघटे (न+घ) और अन्त में अलकन (क+न), परखन (ख+न), गगन (ग+न) और सघन (घ+न)। अनुप्रास की यह कला किसी बड़े कवि की काव्यकला की समता कर सकती है।

कजरी बेमंतरा

अब्दुल बिस्मिल्लाह ने यह शीर्षक अपने पूर्वजों की हस्तलिखित पोथियों मे पाया।[1] इसमे पूरी कजरी बिना मात्रा के शब्दों की सहायता से लिखी गई है। 'बेमंतरा' शब्द 'बेमात्रा' का ही अपभ्रंश हो गया है। बिना मात्रा के शब्दो से काव्य की रचना करना आसान नहीं है। एक उदाहरण देखें

> तज कर जगत सकल हर हर कह हर
> पल सतल वहल कर हर चरनन धर
> वह नर जब भजन बन ठन कर भगत सच
> पद पर रहत तब सहत भजन
> मर मर कर बचत बच बच कर मरत ।

महाकवि सूरदास की कल्पना के 'अद्भुत अनुपम बाग' की तरह कजरी के एक कवि ने भी ऐसी कल्पना की है- -

> तफ़रीहन मैं पहुँचा यारो एक रोज गुलज़ार में
> जो कुछ देखा चमन के अंदर कहता हूँ अशयार में
> महवे हैरत हुआ देखकर अजीब हालत चमन की जी
> गेंदा में गंगाधर तिलक थे गुलाब में थे गाँधीजी
> बेला में थे वीर भगतसिंह लटके हुए थे फाँसी पर
> जवाहरलाल जूही के अन्दर दिखाते थे अपना जौहर ।

---

१. *कजरी का काव्यचमत्कार*— अब्दुल बिस्मिल्लाह, धर्मयुग–८ अगस्त, १९७६।

इस कजरी में प्रत्येक महापुरुष के नाम का प्रथम अक्षर है। इन गीतों में चमत्कार की प्रवृत्ति संभवत: मुकाबले के उद्देश्य से आई। कजरी के अखाड़ों में गायकों का एक दूसरे से काव्ययुद्ध होता है। मिर्जापुर में जहाँगीर और सिद्धनाथ के अखाड़े इसके लिये मशहूर हैं। इन अखाड़ों में एक पक्ष दूसरे पक्ष से ऐसे-ऐसे सवाल करता है कि जवाब देने मे छक्के छूट जाते हैं। सवाल के स्तर का ही जवाब भी देना पड़ता है।

एक दंगल में विश्वनाथ ने यह दार्शनिक सवाल किया था

विश्वनाथ करते सवाल
सँड़मी बनी कि घन पहले ।

कोई गायक इसका उत्तर नहीं दे सका तो विश्वनाथ ने ही उत्तर दिया

अव्वल आखिर नूर नज़र
ना हम पहले ना तुम पहले ।

इन कजरियों मे चमत्कार के अलावा काव्य वैभव भी है। कजरियाँ निर्गुण, सगुणोपासना, साहित्यिक सौन्दर्य, गंभीर भाव, रस और अलंकार प्रधान भी होती हैं।

लोकगीतों में कजरी सबसे अधिक लोकप्रिय है जिसने लोकगीतकारों के साथ भारतेन्दु, प्रेमघन जैसे साहित्यकारों को भी आकृष्ट किया। बिहारी के दोहों जैसी सशक्त अभिव्यक्ति इन लोकगीतों में मिलती है। वर्षा की पहली झड़ी की अर्जुन के बाणों से तुलना कुशल गीतकार की ही कल्पना हो सकती है

पुरुब देस मे चढ़े बदरवा पच्छिम बरसइँ जाइ
पहिल बदरवा कसि के बरसइ जस अरजुन के बान ।

शब्दचित्रण की दृष्टि से कजरी गीतों मे वर्षा का जैसा सजीव चित्रण मिलता है, श्रेष्ठ काव्य में भी वैसा नहीं मिलता। घुमड़ते बादलों, शीतल झोंकों के बीच नायिका खड़ी है और इधर बरसात की पहली झड़ी है-

छाई बदरिया नभमंडल मां
अउर रसै रस बहै बयार
बुन्न बुन्न में अमरित टपकै
भर गये ताल तलंभर नार ।

भक्तिरस प्रधान गीतों मे राधा कृष्ण के वैभवपूर्ण झूले तथा कृष्णलीला का सजीव चित्रण मिलता है। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम जैसा गंभीर व्यक्तित्व भी कजरी गीतों से अछूता नहीं बच सका। यह दूसरी बात है कि श्रीराम को रामलीला से जोड़ा नहीं जा सकता। कजरी मुख्यत: शृंगार-प्रधान शैली है। किन्तु किसी कवि ने अत्यन्त कुशलता के साथ वात्सल्यरस-प्रधान कजरी में श्रीराम की ओर संकेत करते हुए अपने पुत्र वनवासी राम के वियोग में दुखी माँ कौशल्या की मनोव्यथा का मार्मिक चित्रण किया है –

असाढ़ मास घन गरजत घोर
रटत पपीहा कुहुकत मोर
लखन सिया राम खड़े तरुवर तर

सावन में बरसे घन नीर
कैसे धरें कौसिल्या धीर ।

इन कजरियों पर प्राचीन कवियों का प्रभाव भी देखा जा सकता है---

स्याम नहिं आये आई स्याम बदरिया।

इस पंक्ति को सूरदास की इन पंक्तियों से मिलाया जा सकता है --

बरु ये बदरा बरसन आये
अपनी अवधि जानि नन्दनन्दन
गरजि जाग घन छाये ।

राजस्थान में सावन शुक्लपक्ष की द्वितीया को श्रृंगार पर्व 'सिजारा' के रूप में ही मनाया जाता है। स्त्रियाँ प्रकृति के साथ 'सोलहों सिंगार' करने लगती हैं। एक ग्राम्या नायिका का नख शिख वर्णन इस प्रकार है

अँखिया में सोहइ जानीकर हो कजरवा,
मथवा में ऍगुर का दगवा अरे हो साँवरिया ।
अँगिया के सोहइ पचरंग चोलिया,
उपरं कुसुम रंग चोली अरे हो साँवरिया ।

एक विरहिणी अपनी ननद से आँचल के कागज पर नयन नीर की स्याही से पाती लिखकर प्रिय के पास भिजवाने की मार्मिक प्रार्थना करती है। इस गीत में करुण रस की सुन्दर अभिव्यंजना हुइ है-

अंचल फारि कगदवा हो ननदी
नयनन कइ मसिहान,
लछिमन देवरवा कयथवा हो ननदी
लिखि चिठिया भेजि देउ ।

ऐसी नायिका की विवशता पंछी से भी अधिक है -

केहि विधि जाई उड़ि पियवा के पाई गमा
उड़लो ना जाये बिना पंखिया रे हरी ।

कजरी में मेघ द्वारा संदेश भेजने की अभिव्यक्ति में लोकगीतकार कालिदास से भी पीछे नहीं हैं-

नाहीं अइहें अदरा के बदरा
चलि गइलैं कतहूँ बिदेसवा
सुन बहिनी हमार पुरवइया
बदरा से कह तू सनेसवा
देसवा क कटते कलेसवा
झूलै के देबइ तोहे बाँसे क कइनियाँ
सोवइ बदै तालै कै लहरिया

खाये बदे देबइ तोहे मकई क बलिया
अँचवे के भुँअरी क दुधवा।

बिहारी ने राधा कृष्ण का हृदयग्राही वर्णन इस प्रकार किया था

जा तन की झाईं परै स्याम हरित दुति होय।

कजरी में भी मेघ और दामिनी को राधा-कृष्ण का प्रतीक बनाकर लोकगीतकार ने प्रस्तुत किया है -

गोरी गोरी बिजुरी बदरवा बा करिया
करिया बदरवा के गोरकी मेहरिया
बदरा के रंग माँगि जनमे कन्हैया
देहले बा रधिया के रंगवा बिजुरिया।

एक गीत में पावस की तुलना पृथ्वीराज के युद्ध से की गई है -

इत मघवा दल ले चढ़ो जी
एजी कोई उन दल पृथिवीराज
इत घन चमकै मेरी आली बीजुरीजी
एजी कोई उत चमकै तरवार।

एक नायिका के हृदगत भावों को कवि ने सुन्दर रूपक देकर सजाया है

कारी बदरिया बहिनि हमारी
मेघा बीरन लगै हमार
आज बरसि जा गढ़ मोहबा में
कंता एक रइनि रह जाय।

प्रकृति सौन्दर्य, मानवीय भाव प्रधान शब्द, अलंकारपूर्ण कजरी में शृंगार के अतिरिक्त अन्य रसों का समावेश है। करुण रस की व्यंजना भी इसमें अत्यन्त कुशलता से हुई है।

कजरी से सबद्ध कृतियाँ एवं रचनाकार

भावों की प्रधानता एवं लोकप्रिय शैली के कारण साहित्यकारों का ध्यान कजरी की ओर आकृष्ट हुआ था। कालक्रम से कजरी का शृंगार वर्णन छिछला होकर अश्लीलता तक पहुँचने लगा तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनकी मण्डली के अन्य कवियों ने इसे स्वस्थ दिशा दी। उन्होंने शिष्ट कजरी गायन के आयोजनों के अतिरिक्त स्वयं भी कजरी लिखना आरंभ किया। इस साहित्यिक परम्परा के साथ साहित्य एवं सुसंस्कृत समाज में कजरी को प्रतिष्ठा मिली।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—भारतेन्दु के रसबनारस, वर्षाविनोद, भारतेन्दुसुधा तथा पावसगीत संग्रह में उनकी रचनाओं की बानगी देखने को मिलती है। ध्वन्यात्मक शब्द चित्रण द्वारा वर्षा को प्रस्तुत करने वाली उनकी कजरी देखें---

अगगग अगगग घन गरजै, सुनि सुनि मोरा जिया लरजै
जुगनू चमकै बादल गरजै, बिजुरी दमकै झमकै तरजै

ऐसे समय चले परदेसवा पिय नहि मानत मोरी अरजै
ऐसन नहिं कोई याद्का गहिकै पिय हरिचन्दहि को बरजै ।

अपने 'वर्षाविनोद' मे उन्होंने मेघों के घिर आने के साथ किसी प्रिया को झूलने का आमत्रण दिया है

प्यारी झूलन पधारो झुकि आये बदरा
ओढ़ौ सुरुख चुनरिया तापै श्याम चदरा
देखो बिजुरी चमक्के बरसै अदरा
हरीचन्द तुम बिन पिय अति कदरा ।

'भारतेन्दु ग्रन्थावली' मे उनके द्वारा विरचित वर्षा सबंधी एक लावनी गीत मिलता है -

बीत गई अब रात न अब तक आए दिलजानी
खड़ी अकेली राह देखती बरस रहा पानी ।

भारतेन्दुजी ने अपनी समृद्ध भाषा मे संस्कृत कजली की भी रचना की -

वर्षति चपला चारु चमत्कृत
सघन सुघन नीरे
गायति निजपद पद्मरेणु रत
कविवर हरिश्चन्द्र धीरे ।

इनके अतिरिक्त इन्होंने मल्लार, हिंडोला और सावनी गीत भी लिखे।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'---काशी के साम्स्कृतिक जीवन मे जो स्थान भारतेन्दुजी को मिला, वही महत्त्व मिर्जापुर के लोकजीवन में बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' का था। कजरी पर उन्होंने 'वर्षाबिन्दु' शीर्षक ग्रन्थ लिखा जिसमें उन्होने कजरी के विभिन्न प्रकार गृहस्थिनों, नटिनों के गीत बनारसी और मिर्जापुरी लय में लिखे हैं। उनकी एक कजरी है -

सिर पर सजी रे ओढ़निया ओढ़े खेलै कजरी
हिलमिल झूला संग झूलैं सब सखी प्रेमभरी
सजी प्रेमघन सावन के सुख मिरजापुरी नगरी ।

कजरी सामान्यत: भोजपुरी, अवधी मिश्रित ग्राम्य भाषा मे मिलती है पर प्रेमघन जी ने भाषा की दृष्टि से नये प्रयोग किये। खड़ी बोली, व्रजभाषा के अतिरिक्त उन्होंने उर्दू में भी कजरी की रचना की। उनकी एक कजरी में लोकगीत का सौन्दर्य और उर्दू शायरी का मज़ा है---

वारी वारी जाऊँ तुम पर दिलवरजानी सौ सौ बार
दिखा चाँद सा चेहरा मतकर तीरे नज़र से वार ।

अम्बिकादत्त व्यास---ये सुकवि नाम से कविताएँ करते थे। रसमाधुर्य, शृंगार एवं शब्द-चयन की दृष्टि से इनकी एक कजरी में पद-लालित्य एवं सरसता ध्यान देने योग्य

छैल रंग बैनवां मदन रंग सैनवां
पै अलस रंग तोरा रे नयनवां।

इनके अतिरिक्त भारतेन्दुजी के समकालीन किशोरीलाल, श्रीधर पाठक, माधव शुक्ल एवं द्विज बलदेव ने भी कजरी भंडार को समृद्ध किया।

अमीर खुसरो— इनकी एक रचना पावस गीत के रूप में मिली है, जो कजरी में गाई जाती है --

अम्मां मेरे बाबा को भेजो जी कि सावन आया
बेटी तेरा बाबा तो बूढ़ा री कि सावन आया।

सैयद अली मुहम्मद 'शाद'— आपके 'फिकरे वलीग' में कुछ भोजपुरी गीत संग्रहीत हैं। उनमें एक सावन गीत इस प्रकार है --

असों के सवनवां मैंया घरे रहु
घरे रहु ननदी के भाय
साँप छोड़ेला साँप केंचुल हो
गंगा छोड़ेली अरार
रजवा छोड़ेला गृह आपन हो
घरे रहु ननदी के भाय।

कजरी गीतो के लिये कई संग्रह चर्चित हैं जिनमें मिर्जापुरी कजरी, सावन फटका, मिर्जापुरी घटा, झूलन-प्रमोद सकीर्तन, सावन का गुलदस्ता, कजली कौमुदी, सावन का भूकम्प, सावन का सवाल, सावन दर्पण आदि उल्लेखनीय है।

रचनाकारो के रूप में धीरू, काशीनाथ, बटुकनाथ, शायर मारकण्डे, भगवानदास छबीले, देवीदास, जगेसर, रसिककिशोरी, शायर निराले, शायर महादेव, नरोत्तमदास, मानिकलाल, रसीले, मनई, मोती, शिवराम, पद्मश्री विन्ध्यवासिनी देवी के नाम लिये जा सकते हैं।

कवि भैरो— इन्होंने एक निर्गुण कजरी लिखी है -

चेन चेन बारी धनिया
एक दिन सासुर चलना
जेह दिन पियवा भेजी मनेसवा
देसवा होइहें सपना।

कवि भगेलू— निर्गुणपंथी संत कवि भगेलू की भी ऐसी ही एक निर्गुण कजरी है—

नैहरे में रहलू खेललू गुड़िया मउनिया
भउजिया मारे ताना रे साँवलिया।

रूपन— इनकी निर्गुण कजरी इस प्रकार है -

सुगना बहुत रहे हुसियार
बिलइया बोलत बाटे ना।

बुद्धू—ये गायक थे। इन्होंने भी निर्गुण कजरियाँ लिखी है—

मेरे पिया का महल है झिलमिल
सेज लगी है लासानी
उसी सेज पर सूते पिया
कोई लख पाये बिरला ज्ञानी।

कजरी का सांगीतिक पक्ष

ऐसा कहा जाता है कि मिर्जापुर में सैकड़ों वर्ष पूर्व जहाँगीर खलीफ़ा ने कजरी गायन परम्परा को आरंभ किया था। शास्त्रीय गायन की तरह कजरी गायन के भी अपने नियम और विशिष्ट परम्पराएँ हैं। कजरी निश्चित टेक के अनुसार परम्परागत निर्धारित धुनों में गाई जाती है। टेक होती है -- रामा, रे हरी, बलमू, साँवर गोरिया, ललना आदि। ननद भाभी के वार्त्तालाप में कजरी की टेक 'ननदी' भी होती है --

कइसे खेले जइबू सावन में कजरिया
बदरिया घेरि अइले ननदी।

द्विज बलदेव नामक कवि ने एक कजरी में 'मोरे बारे बलमू' टेक का प्रयोग किया है।

आई सावन की बहार मोरे बारे बलमू।

मिर्जापुरी कजरी की टेक प्राय: रामा, रे हरी तथा बनारसी कजरी की टेक 'साँवरिया' या 'साँवर गोरिया' होती है -

हमें ना भावे यारी रे साँवरिया।

कजरी की प्रचलित धुनों को लेकर इसे अलंकार मुर्की के साथ शास्त्रीय पद्धति से भी गाया जाता है।

मिर्जापुर में एक ढुनमुनिया कजरी की भी प्रथा है, जिसे गुजरात के गरबा नृत्य की तरह स्त्री-पुरुष मिलकर ताली बजाते हुए गोलाकार में घूमते हुए गाते हैं। इस कजरी शैली में झूम-झूम कर गाने वालों के साथ सुनने वाले भी झूमने लगते हैं --

घर घर झूला झूलैं करैं किलोलैं गलियाँ गलियाँ रामा
हरि हरि ढुनमुनिया खेलैं जुबती औ बारी रे हरी।

कजरी गीतों की धुनें विशेष प्रकार की होती हैं। इन गीतों में वर्षा का वर्णन ही हो, यह कोई आवश्यक नहीं। कजरी धुन में गाया जाने वाला किसी भी विषय पर आधारित गीत मात्र वर्षाऋतु में गाया जा सकता है क्योंकि कजरी गीतों की पहचान धुनों से अधिक होती है, विषयवस्तु से कम।

कजरी में कोमल स्वरों का प्रयोग कम होता है। शुद्ध स्वरों का प्रयोग होने के कारण गायकों ने इसका संयोजन 'देसराग' अथवा 'खमाज' में किया। वस्तुत: 'खमाज' में ही कजरी अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है किन्तु खमाज थाट लोक संगीत के उद्‌भव के बाद की वस्तु है। कजरी गीतों के स्वर-समूह से यह थाट मेल खाता है, इसलिये इसे 'खमाज' में रखा गया। वस्तुत: लोकगीतों का कोई नियमबद्ध शास्त्र नहीं था। कालक्रम से जब राग-

संगीत का विकास हुआ तो रागों ने कुछ रंग लोकधुनों से और लोकधुनों ने कुछ रंग रागों से लिये। इस आदान-प्रदान ने निश्चय ही प्रत्येक गायन शैली का परिष्कार किया।

शास्त्रीय संगीत के विकास के पूर्व जो लोकधुनें थीं, उनमें प्राय: कोमल स्वर या अधिक स्वर लेने की प्रथा नही थी। इसका कारण संभवत: लोकगीतो मे स्वर ज्ञान या अभ्यास की कमी हो। सा, रे, म, प, नी 'सारंग' का यह अंग ही अधिकतर लोकधुनों की नींव रहा है। कजरी के स्वर समूह 'खमाज थाट' के अन्तर्गत आते हैं, इसलिये इनमें अब कही-कहीं 'कामल निषाद' का प्रयोग होने लगा है। कुछ कजरी गीत 'पीलू', 'खमाज', 'काफी' और 'सारंग' में भी मिलते हैं।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, शास्त्रीय गायक लोकधुनों में अपनी गलेबाजी तथा कलात्मक ज्ञान का समावेश करने लगे। इसलिये वे उन्हें 'ठुमरी शैली' में गाने लगे। यही कारण है कि कहीं कहीं 'तिलककामोद', 'देस' या 'तिलंग' में भी कजरी सुनने को मिलती है। हल्के रागों मे ही लोकगीतों को सीमित कर देने के कारण ही इनका लालित्य बना रह गया।

कजरी में मुख्यत: 'कहरवा' और 'दादरा' इन्हीं दो तालों का प्रयोग होता है। कजरी उल्लास के गीत हैं। इनमें चंचलता का भाव होने से दादरा का प्राधान्य है। कुछ गीतों में आठ या छ: मात्राओं में एक विशेष ताल का प्रयोग होता है, जो उछाल कर बजाया जाता है। इस तरह के ताल वाले गीत में उत्साह बहुत रहता है। लय इतनी चलती हुई होती है कि सुनकर पाँव थिरकने लगते है। इस ताल को 'भड़कतिल्ला' या 'भरताला' कहते हैं। कजरी में धीमी लय के गीत कम होते हैं। वियोग श्रृंगार वाले कजरी गीत मार्मिक होते हैं, पर इनमें 'बारहमासे' और 'चौमासे' ही अधिक गाये जाते हैं और इनमें 'रूपक ताल' का प्रयोग अधिक होता है।

कजरी अखाड़े के मशहूर गायकों के अतिरिक्त गिरिजा देवी, मुन्नी बाई, सिद्धेश्वरी देवी, बब्बा बाई, राधेरानी, बेगम अख्तर, पं० महादेव मिश्र, शोभा गुर्टू आदि ने कजरी क्षेत्र को अपने गायन से समृद्ध किया है। बड़े गुलाम अली खाँ जैसे संगीत के महारथी ने ठेठ शास्त्रीय शैली में कजरी गाई। गया के स्व० रामजीप्रसाद मिश्र ने कजरी गायन में नये प्रयोग किये। उन्होंने 'भैरवी' में कजरी गाकर लोगों को मुग्ध किया। बिहार की बहुचर्चित लोक संगीत साधिका पद्मश्री विन्ध्यवासिनी देवी के पास न केवल सम्मोहक स्वर है, अपितु उनके पास स्वरचित एवं संकलित कजरी गीतों का अमूल्य ख़ज़ाना भी है।

बारहमासा

उद्भव और विकास

जैसा कि नाम से स्पष्ट है—'बारहमासा' नामक गीत में बारहों महीने का बड़ा रुचिकर वर्णन होता है। ऋतुगीतों में यह बड़ा लोकप्रिय है। ये गीत वर्षाऋतु में गाये जाते हैं। इन गीतों में बहुधा कृष्ण की वियोगिनी राधा या गोपियों को आधार बनाया जाता है। इस गीत की परम्परा बहुत पुरानी है।

संस्कृत साहित्य में षड्ऋतु-वर्णन की परम्परा बड़ी प्राचीन है। कालिदास का 'ऋतुसंहार' तो इसी विषय पर आधारित है। आदिकवि वाल्मीकि, महाकवि माघ एवं भारवि आदि की रचनाओं में भी छहों ऋतुओं का बड़ा सुन्दर वर्णन है। लोक साहित्य ने संस्कृत ऋतु-वर्णन की पद्धति को न अपनाकर 'बारहमासा' की परिकल्पना की और विरहिणी की मर्म-वेदना को वाणी दी।

हिन्दी काव्य के सुप्रसिद्ध प्रेममार्गी कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने 'पद्मावत' महाकाव्य में नागमती के विरह का वर्णन आषाढ़ मास से आरंभ करके ज्येष्ठ मास में समाप्त किया है। इसमें विप्रलंभ शृंगार की अभिव्यंजना की गई है—

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा
साजा बिरह दुंद दल बाजा
सावन बरस मेंह अतवानी
मरन परी हौं बिरह झुरानी
भरि भादों दुपहर अति भारी
कैसे भरों रयनि अँधियारी
मंदिर सून पिय अन्तहि बसा
सेज नाग भइ दहि दहि डसा।

वीरगाथाकाल के 'बीसलदेवरासो' में भी राजमती का बारहमासा है। सूरदास विरचित एक बारहमासी गीत इस प्रकार है—

नहिं आये हो हमारे स्याम
जेठो न आये असाढ़ौ न आये
तरकइ भुभुरि ऊपर कइ धाये
सावन न आये भादों न आये
बहि चली नदिया उमड़ि चले नारे
क्वारौ न आयें कातिक नहि आये
उई गई जुन्हैया छिटिक गये तारे
अगहन न आये पूस न आये
तर काँपै गड़ुआ ऊपर काँपै सेज
माघ न आये फागुन नहिं आये
उड़त गुलाल खेलैं सखि फाग
चैतो न आये बैसाखो न आये
फरि गये अमवा फूलि रहे टेसू
'सूर' श्याम बलि आस चरन के
उठहु सखिया घर आये श्याम।

ह्यूफ फ्रेजर के 'फ़ोक लोर्स फ्रॉम वेस्टर्न गोरखपुर' (Folk Lores from Western Gorakhpur) में भरथरी के नाम से प्रकाशित एक बारहमासा मिला है—

चन्दन रगड़ों सोवासित हो गूँथी फूल के हार
इंगुर मंगिया भरइतों हो सुभ के असाढ़
सावन अति दुख पावन हो दुख सहलो न जाय
इहो दुख परे ओही कूबरी हो जिन कन्त रखले लोभाय।

बारहमासों के मासक्रम का कोई नियम नहीं है। यह वर्णन चैत से आरंभ करके फागुन में भी समाप्त किया जा सकता है।

डॉ० रघुवंश ने 'प्रकृति और काव्य' नामक अपनी पुस्तक में बारहमासा प्रस्तुत करने की तीन प्रमुख रीतियों का उल्लेख किया है। एक में वर्णन चैत से शुरू होता है, दूसरे में आषाढ़ से और तीसरे मे अवसर के अनुसार। प्रचलित परम्परा के अनुसार बारहमासे का प्रयोग उद्दीपन विभाव की दृष्टि से होता आया है। सेनापति के बारहमासो में यही बात पाई जाती है, जो बसन्त से आरंभ हुये है। बारहमासों की यह साहित्यिक परम्परा संस्कृत काव्य के मार्ग से होती हुई प्रबन्ध के क्षेत्र में आज भी प्रिय विषय बनी हुई है। 'साकेत' का बारहमासा इस दृष्टि से हिन्दी क्षेत्र का उदाहरण है। हिन्दी का आदिसाहित्य लोकभाषा की निधि से प्रभावित था अत: बारहमासी गीतों की परम्परा का लोक साहित्य से प्रभावित होना असंभव नहीं प्रतीत होता।

बारहमासा की परम्परा प्राचीन साहित्य में भी मिलती है। डॉ० नामवर सिंह ने विनयचन्द्र सूरि (१२०० ई०) की 'नेमिनाथ चउपई' को पहली अपभ्रंश रचना माना है, जिसमें बारहमासा मिलता है। उससे पहले वे बारहमासा की परम्परा को नहीं मानते। डॉ० अगरचन्द नाहटा ने अपने ग्रन्थ 'प्राचीन काव्यों की रूपपरम्परा' में डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा लिखित 'अगविज्जा' की भूमिका के साक्ष्य पर उक्त ग्रन्थ के बारहमासा को सबसे प्राचीन बारहमासा माना है। इसे चौथी शताब्दी की रचना माना जाता है। इस प्रकार बारहमासा की परम्परा बहुत पुरानी सिद्ध होती है।

आचार्य केशवदास की 'रसिकप्रिया' के दसवें प्रभाव में शिक्षाक्षेप के उदाहरण में 'छप्पय बारहबानि' में प्रकृति का उद्दीपन रूप में चित्रण है किन्तु षड्ऋतु वर्णन की प्रकृति आलंबन रूप में है। कालान्तर में रीतिकालीन कवियो ने इस परम्परा का पालन किया और बारहमासा में विरहिणी की अनुभूतियों को मूर्त रूप दिया किन्तु लोक साहित्य की सहृदयता उनमें उस रूप में नहीं मिलती।

ऐसा लगता है कि जायसी से बहुत पहले लोकगीत के रूप में बारहमासा प्रचलित था। जायसी ने उसी परम्परा का अनुसरण किया। जायसी के पश्चात् भी अनेक सन्त कवियों ने बारहमासा लिखकर विरहिणी स्त्री के दुखों की मार्मिक अभिव्यंजना की है। इस कारण इसे 'विरहमासा' कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

बंगला में इन गीतों को 'बारमाशी' कहते हैं जो बारहमासा का ही रूपान्तर है। बंगला साहित्य के पल्लीगान और विजय गुप्त के मनसामंगल (१५वीं शताब्दी) में बेहुला की बारमाशी का वर्णन पाया जाता है। भारतचन्द्र के 'अन्नदामंगल' में भी बारहमासा उपलब्ध है। 'बारमाशी' में प्रत्येक माह में होने वाले व्रतों का भी वर्णन मिलता है। पंजाब

में इन्हें 'बारामाहाँ' कहते हैं। मुहम्मद समृरुद्दीन द्वारा संपादित 'हारामणि' में इन गीतों का संग्रह हुआ है। वस्तुतः बारहमासा की परम्परा इतनी लोकप्रिय हुई कि आभिजात्य साहित्य को इसे अपनाना पड़ा।

बारहमासा वस्तुतः वियोग का गीत है। वियोग से दुखी नायिका पर वर्ष के विविध महीनों की क्या प्रतिक्रिया होती है, इसी की अभिव्यक्ति इस गीत में होती है। ये प्रकृति-वर्णन के गीत हैं किन्तु इनमें प्रकृति वर्णन वियोग शृंगार के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आता है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में प्रवासकथन में 'मन्दाक्रान्ता' छन्द का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार लोकगीतों में वियोग वर्णन में बहुधा बारहमासा ही प्रयुक्त होता है। साहित्य में षड्ऋतु वर्णन का जो स्थान है वही लोकगीतों में बारहमासे का है।

बारहमासा गाने का समय पावस ऋतु ही है। बारहमासा मैथिली लोक साहित्य की अनुभूत्यात्मक अभिव्यंजना है। राकेश जी के शब्दों में, "इसके नैसर्गिक सौन्दर्य के आगे कीट्स के हल्के पैर, गहरे नीले रंग की बनफशा सी आँखें, कढ़े हुए बाल, मुलायम पतले हाथ, श्वेत कण्ठ और सुन्दर वक्षप्रदेश वाली नायिका भी फीकी पड़ जाती है। बारहमासा की भावधारा पुरानी शराब सी तीखी है और नित्र टेनदार सा स्वच्छ है। पद में शृंगार की रोचक सरसता है। जैसे नीलम पर धूप पड़ने से उसकी लावण्यमुद्रा खिल जाती है, वैसे ही ग्रामीण कवियों की पारदर्शी आँखों का बिम्ब पड़ने से बारहमासा के अवगुंठनमय सौन्दर्य में कला की कमनीयता आ गई है।"[१]

बारहमासा की स्थानीयता

बिहार के गाँव गाँव में यहाँ की बोलियों में बारहमासा की करुण स्वरलहरी गूँजती है। भोजपुरी, मगही, मैथिली, अंगिका, वज्जिका आदि बोलियों में इसका विस्तार हुआ है। एक मगही बारहमासा इस प्रकार है

भादों रयनि भयावन रात
कड़कई बरसई जियरा डेरात
गुंजन गुंजइत फिरइ भुजंग
राम लखन आउ सीताजी संग।

मैथिली बारहमासा

प्रथम मास असाढ़ हे सखि
साजि चलल जलधार हे।
एहि प्रीति कारन सेत बाँधल
सिया उदेस सिरी राम हे।
सावन हे सखी सबद सुहावन
रिमझिम बरसय बूँद हे।

---

१. *मैथिली लोकगीत*—डॉ० रामइकबाल सिंह 'राकेश', पृ० ४०४।

सभके बलमुआ रामा घर घर आयल
हमरो बलमु परदेस हे ।

बघेली लोकगीतों के अन्तर्गत एक बारहमासा देखें -

फागुन माँ फगुआ खेलबै
चइत नौमी रहबै हो
अब बैसाख माँ फूली कुसुमिया
त पियरी रंगउबै हो ।

बुन्देली बारहमासा

चैत मास जब लागे सजनी बिछुरै कुँवर कन्हाई
कौन उपाय करौं या ब्रिज में घर अंगना न सुहाई
बैसाख मास जब लागै सजनी घामें जोर जनाई
पलंग सिजरिया मोय नींद न आवे कान कुँवर घर नाईं ।

छत्तीसगढ़ का बारहमासा

चैत महीना घर बन टेसू फूलत हैं
बैसाख में कुंज निबारे हो
गले पुहुप के हार ।

मालवी बारहमासी

असाढ़ मास करी हमारी, अन्न पानी मड़ भावे जी
जाय मिले कुब्जा से श्याम जो भंग पिलावे रे
बिरज कुल हाय लजावे रे ।
सावन आवन कै गए सजनी सब सखि तीज मनावे रे
नखसिख गैणों पेरी सब कंकू उड़ावे रे
बिरज कुल हाय लजावे रे ।

अवधी बारहमासा

लागो असाढ़ चहूँ दिसि बरसै
भरि आए ताल नदिय सगली
सावन सखियाँ डाले हैं हिंडोला
चुनि-चुनि मोतियन माँग भरी ।

कौरवी बारहमासा

आया है जेठ जे मास सूकी है जल कूबटी
सूका है सरवर ताल सूकी है जल माछरी ।
आया है साढ़ जे मास भरी है जल कूबडी
भर गए सरवर ताल सुखी है जल माछरी ।

आया है सावन मास रचे हैं हिंडोलने
रेसम बेड़ बँटाय सहेली संग झूलती ।

व्रज का बारहमासा

उमगे से बादर फिरत कामिनी गाजि घोर सुनाइये
ऐसे नंद के लाल कहिये असाढ़ मास जो लागिये
सामण रिमझिम मेहा बरसै जोर से झर लाइये
हरियल वन में मोर बोलैं कोइल सब्द सुनाइये ।

गढवाली बारहमासा

गढ़वाली बारहमासा 'दोहा शैली' में भी लिखे गये हैं, जिनकी प्रथम पंक्ति में ऋतुक्रम के अनुसार धान बोने, गहूँ काटने और फसल निराने का वर्णन आता है। दूसरी पंक्ति में विरह व्यथा का चित्रण मिलता है। जिन ऋतुओं में खेती का काम नहीं होता उनमें ऋतु-सौन्दर्य का चित्रण होता है -

आयो मैना चैत को, हे दीदूयो हे राम
उठीक फुलारी झुसमुस, लगि गैन निज काम
मैना आयो बैसाग को, सुख की नी आस
आयो मैना जेठ को, भक्को हैंग भौत
स्वामी मेरो घर नी, समझी रयूं सी मौत
मास पैलो बसगाल को आयो यो आसाड़
मैं पापणी झुर झुर मरयूँ, मास रयो न हाड़
मास दूसरो बसगाल को आयो स्यो सौण
चिट्ठी नी पतरी ऊँकी कुजाणो कब घौर औण
मास आयो भादों को, डाँड्यूँ कुयेड़ी लौंकी
तेरी खुद स्वामी, जिकुड़ी माँ बिजली सी चौंकी
आयो मैंना असूज को, बादल गैन दूरू
जोन कांठो माँ औंदी, जिया लाग बूरू
आई दिवाली कातिकी, चढ़े घर घर तैकू
यूँ दिनों स्वामी का बिना ज्यू लगदो कैकू ?
आयो मैंना मगसीर को हे बैण्यों, हे राम
स्वामी की खुद माँ हाड़ रयो ना चाम
पूष मास की ठंड बड़ी, थर थर कंपद गात
कनि होली भग्यान स्या पति होला जौंका सात
लगी मैना माघ को, गौं गौं छन ब्यो
ब्योली औंखी झुकैक, ब्योला से मिलदी स्यो
फागुण मैना आये, हरी भरी हैन सारी
मी झूरि झूरि मरियूँ, एकुला बांदर की चारी ।

कुमायूँ की बारामासी

फुलैवो बिंदिया फुलै बुरूँसी
सबै फूला फूलीगो चैतोई मासा
बैसाख मास भुँवापति बाता
सिरै को अँचरा उड़ि उड़ि जालो
जेठई मासा तवकी गे धूपा
हुरुकै दे विजना ठंढी सरूपा
असाड़े धरतरी किरिले सिंगारा
गिरादिमा एगो मेघ बहारा ।

नेपाली बारहमासा

वैसाख महीना तालु छेड़ने धूप
हरे राम अग्निजस्तै रूप
जेठको मास टनटलापुर घाम
असार मास दहि च्यूरा खानु
हरे राम हलीको बचि गयो भानु
साउन मास दूध को खीर ।

बंगला बारमाशी

यौवन ज्वाला बड़ुई ज्वाला शहिते ना पारि
यौवन ज्वाला तेज्य करे गलाय दिव दड़ि
दुःख यौवन प्रानेर बैरी ।

पंजाबी बारामाहाँ

परे बे बसाख चल पिया प्यारे
नैणाँ नूँ नींद न आये
नैणाँ नूँ नीद न आमड़ी चीरे वाले आ
मैनूँ लै चल्ल अपने नाल ।

हरियाणा में जो बारहमासा प्रचलित है, उनमें से एक में विप्रयुक्ता राधा अपनी असहाय अवस्था में नाना अभाव अनुभव करती है। उसे शुकशावक से शिकायत है कि उसने मिथ्या आशा बँधाई। अन्त में नायिका निराश हो उसे मार डालने की धमकी देती है, परन्तु शुक दैवज्ञ है, वह राधा को सान्त्वना देता है।

राजस्थानी बारहमासा

राजस्थानी बारहमासों में वहाँ का जीवन एवं संस्कृति चित्रित है। इनमें कृष्ण और राम के विरह-वर्णन प्रमुख हैं—

सावण आवण भँवर जी कह गया जे
हाँ जी कोई बीत्या बारहमास
इब घर आवो
अँधेरे घर रा चानणा जे ।

कश्मीर में पावस या बारहमासा के गीत 'वहरात' कहलाते हैं। इन गीतों में प्रेमिका की वेदना की अभिव्यक्ति होती है। जीविकोपार्जन के लिये घर का स्वामी परदेस गया है। कई वर्षों से लौटा नहीं। ऐसी दशा में विरहिणी की वेदना पराकाष्ठा पर है --

अग्नह गगनह गयि गगरायि
नभह मंजह नागह वुज़मलह ग्रायि
अनतन पी। अनतन पी ।

कुल्लुई लोक साहित्य में बारहमासा को 'बरमासड़ी' नाम से जाना जाता है ---

आओ महीनो चैत्र नाजा फाके मूके थैंत्र
आओ महीनो बशौ, चिड़ए लागे बै
आओ महीनो जेठ, मेरो पाहुणा णेठ ।

गुजरात की बारहमासी

सखि लागो असाड़े मास प्रभु जन चाल्या रे
चाल्या चाल्या रे दुवारिकानाथ हरिमंदिर सूनो रे
सखि लागो सावण मास बिजेला चमके रे
झीणी झीणी पड़ रही बुन्द सालूड़ा भींजे रे ।

निमाड़ी क्षेत्र में 'कृष्णचन्द्र का बारहमासा' मिलता है जिसमें बारहों महीने की विविध स्थितियों का वर्णन होता है।

मोरंग के गाँवों मे पावस के आते ही विरहिणी के आँसुओं का ज्वार उमड़ आता है। पहाड़ों, जंगलों और खुले मैदानों में पसरे हुए थारू गाँवों में पावस दीर्घकालीन मेहमान की तरह है। इसलिये यहाँ के बारहमासा गीतों में करुणा की गहन अनुभूति दिखाई देती है।

थारू जाति में सामान्य बारहमासा के अतिरिक्त निम्न प्रकार के महत्त्वपूर्ण बारहमासा मिलते हैं— साँची बरमास, पहु बरमास, हरि बरमास, साधु बरमास, जगरनथिया बरमास, केलि बरमास, नारी बरमास, चैतावली बरमास आदि।

साँची बरमास में प्रकृति के कामोद्दीपक रूप में नारी के सतीत्व की परीक्षा, पहु बरमास में प्रवासी पति को संबोधित विरह वेदना, हरि बरमास में जीवन के प्रति छोह-मोह, साधु बरमास में साधु के प्रति प्रणय निवेदन, जगरनथिया बरमास में श्री जगन्नाथपुरी की शोभा, केलि बरमास में प्रकृति की उद्दीप्त पृष्ठभूमि में काम-क्रीड़ा, नारी बरमास में नारी सौन्दर्य एवं चैतावली बरमास में चैत से प्रारंभ होने वाले मासक्रम की मोहक एवं करुण अभिव्यक्ति हुई है। यहाँ के सामान्य बरमास अन्य बारहमासों से मिलते-जुलते विषय के होते हैं।

थारू जाति का एक **विशेष बरमास** इस प्रकार है---

देखो देखो सखी ब्रिजबाला
कहाँ गेले जसोदा कुमर नंदलाला
प्रथम अखार पूजइ बरसाती
सब सखी घर घर झूला लगाती
झूलि झूलि गावै मंगल बानी
साओन भेलै अलमस्त जवानी
भादों मास अन्हियारी राती
हामें कइसे काटब पिया बिनु राती
कइसे जियब धरब उर धीरा
आसिन मास नयेन ढरु नीरा
कातिक मास पुनिअत महीना
सब सखी करत सिंगार नवीना ।

बारहमासा की विषयवस्तु

बारहमासे की प्रकृति विरहिणी का रूप है। विषयवस्तु की दृष्टि से बारहमासों में एकरूपता पाई जाती है। दीप लिये देहरी पर प्रतीक्षा करती हुई वियोगिनी हो या नीर भरी आँखों से पुत्र की मंगलकामना करती हुई माँ हो, दोनों की भावनाओं में विप्रलंभ शृंगार साकार है—

कइसे खेलौ कजरिया सखिया हरि मोर छाये दखिनवाँ ना
असाढ़ मास रिमिय झिमि बरसे, सावन जोर महिनवाँ ना
भादों बिजुरी चमाचम चमके हरि के देखौं सपनवाँ ना ।

अथवा

भादों रैनि भयावनि ऊधो गरजै अरु घहराय
लौका लौकै ठनका ठनकै छतिया दरदि उठि जाय ।

राम-वनवास के आख्यान पर आधारित बारहमासे अपेक्षाकृत अधिक करुण हैं। राम-वनवास की कल्पना दोमुखी है--एक ओर हैं वर्षा, पाला, ओस और लू में निर्जन वन में भटकते राम और दूसरी ओर हैं अयोध्या के राजमहल में चिन्ता-जर्जर कौशल्या माता—

कातिक की उजियारी रात घर घर दीपक बारहिं नार
राजा दसरथ जी त्यागेन प्रान, हमरी अजोध्या परी अन्हार ।

❑ ❑ ❑

असाढ़ मास घन गरजत घोर
उड़त पपिहरा कुहुकत मोर
नान्हीं नान्हीं बुँदिया बरिसत देव
भींजत होइहैं लछिमन राम खड़े तरुवर तर ।

बारहमासा में अधिकतर राधा या गोपियों की विरह-व्यथा चित्रित है। एक

बारहमासा में गोपियाँ उद्धव को सबेरे-सबेरे मथुरा भेजती हैं कन्हैया को मनाकर ले आने के लिये। वे उद्धव को असाढ़ में भेज रही हैं। उनका अनुमान है कि यह महीना तो जाने में ही बीत जाएगा---

ऊधो भोरै से मधुपुर जाव हो कन्हैया को लिवाय दीयौ ना
जब लग ऊधो मधुपुर जइहें बीतत मास असाढ़
बरही से जब तिरही लागै मिलै कन्हैयालाल ।

अन्य महीनों के वर्णन के बाद अन्त में जेठ मास का वर्णन करती हुई गोपियाँ कहती हैं--

जेठ मास की खरी दुपहरी मोपै चलो न जाय
जाय कहो उन बारे बलमवाँ बँहिया पकरि लै जाय ।

एक बारहमासा के अन्तर्गत विविध महीनों के क्रिया कलापों में वियोगिनी अपने पति का स्मरण करती है---

क्वांर मास रितु लागी री सजनी सब कोई दान लुटावै
हमरे तो कृस्न बिदेस छाय रहे हमरे को दान लुटावै
कातिक मास रितु लागी री सजनी सब कोई गंगा नहाय
हमरे तो कृस्न बिदेस छाय रहे हमरे को गंगा नहाय ।

एक गीत में ऐसा वर्णन मिलता है कि व्यापार के लिये पति परदेस गया है। बरसों से लौटकर नहीं आया। छप्पर चू रहा है, पर कोई छवाने वाला नहीं है। ऐसी दशा में विरहिणी का विरह उत्कर्ष को प्राप्त होता है।

एक ऐसा बारहमासा भी है जिसमें बारह सखियाँ हैं और जो एक-एक करके प्रत्येक मास में होने वाले विरहिणी के कष्टों का वर्णन करती हैं।

एक विरहिणी रोती हुई कह रही है—हे एकान्त में खड़ी मेरी ऊँची अटारी! तू क्यों डगमगाई? तेरी तो शुभमुहूर्त में नींव पड़ी है और स्वयं स्वामी ने खड़े होकर तुझे चुनवाया है। प्रेमी के स्नेह और ममता के ईट-गारे से इस विरहिणी का पवित्र प्रेमभवन बना है। प्रिय, यह घर पुराना हो गया है और उसके पाये अब चटखने लगे हैं। हे सुन्दर स्वामी, अब तो घर आ जाओ। मेरी सौभाग्य बिंदुली की हिंगुली में जाला लग गया है और आँजन के काजल में सिवार लग गई है! मेरे अँधेरे घर के पाहुने, अब तो आ जाओ।

हे रसिक, सावन में लौटने का वचन दे गये थे, पर बारह मास बीत गए। पीपल फूलों के लिये आजीवन रोता है और पलाश का पेड़ फलों के लिये। क्या मैं भी इन्हीं की तरह निराश होकर रोती रहूँ? मेरे रसलोभी भँवरे! तेरे विरह में बिसूर-बिसूर कर मेरा शरीर जर्जर हो गया है। मेरा वेश बदरंग हो गया है, अब तो आ जाओ।

लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के मनोभावों के चित्रण के साथ एक बारहमासा मिलता है, जिसमें कैकेयी को उपालंभ दिया गया है; जिसने राम, लक्ष्मण और सीता को वन भेज दिया है। उनके बिना अयोध्यावासियों की दुनिया उजाड़ है। वहाँ के महल सूने हैं। फागुन में भरत रंग घोलकर खड़े हैं किन्तु राम-लक्ष्मण के बिना वह रागरंग किसी को नहीं सुहाता।

लंका पर आक्रमण करते समय लक्ष्मण जी शक्तिबाण लगने से मूर्च्छित हो जाते हैं। राम विलाप करते हैं। उधर हनुमान जी संजीवनी लाकर देते हैं और लक्ष्मण जीवित हो उठते हैं। यह वर्णन भी एक बारहमासा गीत में आया है और कहीं कौशल्या कैकेयी को उपालंभ देती हुई अपने वनवासी पुत्रों के दुखों को सोचती हुई शोक प्रकट कर रही हैं।

कुछ बारहमासे निर्गुण शैली में भी मिलते हैं, जिनका भाव है-- हे सखी, मेघ गरजने लगा। अब हम पिया के देश को चलें। उस देश में सदा जगमग ज्योति जलती है। वहाँ आकाश में महाध्वनि घनघोर रूप में उठती है। जलेश इन्द्र अमृत की वर्षा करते हैं।

इस कोटि के बारहमासो के अतिरिक्त दूसरी कोटि के बारहमासा गीत वे होते हैं जिनमें कृषक जीवन के श्रम की परिस्थितियों की अपेक्षा ऋतु की विशिष्टता और उससे उद्वेलित विरहव्यथित हृदय का चित्रण होता है। एक गीत का भाव है -

सावन के महीने में रिमझिम पानी बरसता है। पति को छोड़कर कौन अभागिन काम पर जाती है। भादों के महीने में तालाबों को काटकर नहरें निकालीं। आ जाओ स्वामी, हम सानन्द रहेंगे। मंगसिर के महीने सरसों फूली, मैं स्वामी के बिना कैसे रहूँगी? माघ के महीने वन में मुर्गियाँ बोलती हैं, तूने मेरे स्वामी, अपना मुँह कहाँ छिपा लिया?

बारहमासा के क्षेत्र में गढ़वाली लोकगीतों में एक नई बात देखी गई है। इसमें प्रत्येक मास की विशेषता बताते हुए कुछ निषेधों के साथ उपदेश दिये गये हैं - -

'देखो, चैत चोरी का महीना है, चोरी न करना। चोरी का चीज को हाथ से न छूना।

वैशाख प्यारा महीना है, तू तम्बाकू का धुआँ न पीना, तेरे कलेजे पर काला दाग पड़ जायेगा और तू खाँसकर गिर पड़ेगा।

जेठ ज्येष्ठ महीना है, ठंडा पानी बाँटकर पियो।

आषाढ़ बात बिगाड़ता है, तू ईर्ष्यालु न होना।

सावन में बिस्तर झाड़कर लगाना, ऐसे ही जमीन पर न सोना।

भादों कौवे जैसा काला है, भाई-भाई में विवाद फैलाता है।

आश्विन बेबूझ होता है, तू हरि का भजन करना।

कार्तिक की रात प्यारी होती है। काला कंबल ओढ़ना, बिछाना। मंगसिर में तू ढंग से रहना, उन्मत्त न होना।

पूस प्यारा होता है, खूब मालिश किया कर।

माघ आता है तो पतिविहीन नारी जगह-जगह फिरती है।

फागुन आया है, बहिन काम कर, बातें न किया कर।

बारहमासा की गायन शैली

बारहमासों की धुन प्रायः कजरी अथवा सोहर से मिलती-जुलती है। चौरासी-नाच के बारहमासों की धुन बिरहा और पुरानी कजरी शायरी के पचरे का मिश्रण है।

राम -वनवास की कथा से संबंधित कुछ बारहमासे दस मात्रा की चौपाई में हैं, जो चैत्र की रामनवमी मे आरंभ होकर फागुन के वर्णन से समाप्त होते हैं। विरहप्रधान होने के कारण बारहमासा अधिकतर धीमी लय में गाये जाते हैं। इनमें मुख्य रूप मे 'रूपकताल' तथा कभी- कभी 'कहरवा' का प्रयोग होता है।

चौमासा

बरसात के कुल चार महीनों की विरह व्यथा इन गीतों में पाई जाती है। समय की दृष्टि से ये बारहमासा से अधिक गाये जाते हैं क्योंकि इनके गाने में कम समय लगता है। विषयवस्तु एवं गायन शैली की दृष्टि से ये बारहमासे की तरह ही होते हैं।

चौमासा बारहमासे का ही लघुरूप है। इसमें आषाढ़ से क्वार तक प्रकृति का विरहिणी के मन पर प्रभाव चित्रित किया जाता है। वर्षो पहले चौमासे में व्यापार बन्द रहते थे। जीविका के लिये परदेस गये लोग घर लौट आते थे और घर की मरम्मत कराकर, आषाढ़ी फसल बोकर क्वार में चले जाते थे। जिस स्त्री के प्रिय नहीं आते थे, उसकी विरह व्यथा इन गीतो मे अंकित रहती है। चौमासा का समग्र वातावरण बरसाती होता है। वर्णन भी वर्षा के साथ होता है। गढ़वाल प्रदेश का एक चौमासा इस प्रकार है --

आयो आयो चौमासा त्वैक जागी रयो
मैं पापणीं सदा मन भारी रयो
मेरा स्वामी को मन निठुर होयो ।

छमासा

छमासा भी बारहमासे का ही एक संक्षिप्त रूप है। इसका वर्ण्य विषय बारहमासा की तरह ही होता है। अन्तर मात्र इतना है कि इनमें केवल छः महीनों का वर्णन होता है। ये गीत अपेक्षाकृत कम प्रचलित हैं।

मलार

कजरी का ही एक रूप मिथिला में मलार नाम से प्रसिद्ध है। मलार पावस में स्त्री पुरुष दोनों गाते हैं लेकिन दोनों के गाने के ढंग अलग-अलग हैं। औरतें इन्हें गाने के समय किसी साज-बाज की मदद नहीं लेतीं। वे इन्हें हिडोले पर बैठकर गाती हैं। पुरुष ये गीत साज-बाज के साथ गाते हैं। पंचम स्वर में उनकी ऊँची आवाज के साथ तबले और मृदंग की थाप सुनने लायक होती है। व्रज में भी मलार नाम ही अधिक प्रचलित है। इन गीतों के बारे में कहा गया है कि ''मलार का अन्तरंग बिल्लौरी काँच की तरह रंगीन है। इनमें हमें जीवन के प्यार, मिलन, आकर्षण, उसके मधुमय स्वप्न और सुनहले रंग के आभास दृष्टिगोचर होते हैं। इनके तरानों में मानव हृदय का प्रेम कवि की अनुभूति की आग में तपकर कुन्दन बन गया है और विरह की जड़ हृदय के पाताल में इतनी दूर चली गई है कि सूर की राधा की निम्र उक्ति स्मरण हो आती है---

मोरे नैना विरह की बेलि बई
सींचत नीर नैन के सजनी
मूल पताल गई ।''[१]

इन गीतों के बारे में एक किवदन्ती यह भी है कि एक बार तानसेन ने 'दीपक राग' गाया, जिससे उनके शरीर में असह्य जलन होने लगी। तब उनकी बेटी ने 'मल्हार' गाकर पानी बरसाया और पिता की वेदना शान्त की। तब से मलार बरसात के गीतों का पर्याय बन गया।

मलार का महत्त्व मिथिला में वही है जो भोजपुर में कजली का। इन गीतों का वर्ण्य विषय है--प्रेम। मलार में प्रेम के उभय पक्षों की अभिव्यक्ति होती है जिसमें विप्रलंभ की प्रधानता है।

लोकगीतों का मलार राग मलार का ही लोकरूप है। थारू क्षेत्र में इसके मुख्यत: दो रूप पाये जाते हैं- धुरिया मलार तथा मेघ मलार। धुरिया मलार प्राय: बैशाख जेठ में और मेघ मलार बरसात में गाया जाता है। मलार के साथ मेघ का अनिवार्य संबंध है। मलार गीतों में प्रोषित-भर्तृका नायिका एवं कृष्ण वियोगिनी गोपियों का ही वर्णन अधिक मिलता रहा है। किन्तु एक ऐसा भी मेघ मलार गीत है जिसकी करुणा को देवकी के रुदन ने और भी गहरा कर दिया है--

जसोमती नजरी खेराबइ
देवकी रोबइ ये ।
नाहीं मोरा कंत बिदेस गेल
कोखी दुख रोबइ ये ।
सातम पुत्र बिसुन देल
कंस भइया हरी लेल ये ।
आठम गर्भ मोरा बीतल
तिनका भरोसे नहीं पाय ये ।

इनके अतिरिक्त थारू क्षेत्र में हेमती मलार का भी प्रचलन है, जिसमें हेमती रानी के सौन्दर्य का चित्रण है --

ऊँची धरहर गे हेमती झिझरी केबारे
झिझरी के ओट दाये जोगिया निहारे ।
कजला जे पिन्हले गे हेमती कोयलिया के पांखे
टिकुली जे पिन्हले गे हेमती पुरनिमा के चाने ।
सोलहो सिंगार गे हेमती बतीसो अभरन
लाये दरपण गे हेमती सुरती निहारे ।

सावन

सावन के गीतों में अधिकतर भाई-बहन के प्रेम का वर्णन मिलता है। हर लड़की

---

१. *मैथिली लोकगीत*--- डॉ० रामइकबाल सिंह 'राकेश', पृ० ३१०।

सावन में अपने मायके आना चाहती है। मुख्य रूप से यही सावन गीतों का विषय होता है। इनमें उल्लास के स्वर भी होते हैं और करुणा के भी। महीने के नाम के आधार पर ही इन गीतों का नामकरण हुआ है। एक गीत देखें --

ठाड़ी झरोखा मैं चितवउँ
नैहरे से कोउ नहि आइ
ओही रे मयरिया कैसन बपई रे
जिन मोरी सुधियो न लीन
ओही रे बहिनियाँ कैसन बीरन
ससुरे में सावन होइ।

एक गीत में बहन एक कौवे से भाई के पास संदेश भेजती है-

कागा हो मोरे कागा
भैया ढिग कहे सनेस
ससुरे सावन बेटी ना करे।

अवधी क्षेत्र में सावन गीत सुख-दुःख के रंगों से मानव जीवन की अनेक भावात्मक स्थितियों का चित्रण करते हैं। सावन के गीतों के संबंध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इनमे से कुछ गीत 'पँवाड़ा' शैली के हैं, पर उन्हें 'सावन' ही कहा जाता है।

व्रज के गीतों में सावन के गीत बहुत लोकप्रिय हैं और सावन के गीतों में 'मोरा' गीत की स्वरलहरी हमारा मन मोह लेती है--

भर भादों की मोरा रैन अँधेर
राजा की रानी, पानी नीकरी जी।

व्रज में सावन के महीने में प्रबन्ध गीत भी गाये जाते हैं। कथा शैली पर आधारित इन गीतों में बड़ा भाव-प्रधान वर्णन होता है। सावन के गीतों में शृंगारी उक्तियाँ होती हैं। विरहिणी स्त्रियों के लिये यह बड़ी दुखदायिनी ऋतु है। एक नायिका परदेस जाते हुए प्रिय से कहती है --

प्रेम पिरित रस बिरवा
तुम पिय चलेउ लगाय।

हरियाणा प्रदेश में सावन की तीज के समय कुलवधू की चूनर और इन्द्रधनुष के रंगों में होड़ मच जाती है। पर इस प्रकार के गीतों में करुण रस को भी स्थान मिला है। हरेक कुलवधू सावन में नैहर नहीं जा पातीं। इस समय 'सरिहल रानी' के गीत गाये जाते हैं जो किसी दुःखान्त लम्बे काव्य के अवशेष हैं---

सामण आयो रंग लो कोई
आई रे हरियाली तीज
सास म्हारी प्यारी गजब की मारी
मोकै तो खंडा दै पीहर को
म्हारी लाड़ सासुला प्यारी।

यहाँ सावन के गीतों में छद्म गीत भी गाते हैं। लश्कर स्थित पति के पास बुलावे

का संदेश भेजा जाता है। वह तरह-तरह के बहाने बनाकर टालता है। अन्त में पत्नी के मरण का वृत्तान्त सुनकर चिन्तातुर हो घर लौटता है। यह वृत्तान्त झूठा निकला। इससे वियोग का दुःख तो संयोग सुख में बदला किन्तु आजीविका-त्याग दुःख का कारण है।

कौरवी लोकगीतों में सावन के गीतों में विरह-वर्णन अधिक देखा जाता है--

आम की डाली रिसिरियल पड़ी है पंजाली
कोई झूलन जाय रनबास मियां।

राजस्थान में भी सावन गीतों का प्रचलन है, जिन्हें 'सावण' कहते हैं। एक गीत इस प्रकार है--

सावण तो लहर्‌यो भादवो रे बरसे च्यारूँ कूँट
म्हारा मोरला सावन लहर्‌यो रे।

मालवा में सावन के गीत दो भागों में विभक्त हैं--(१) कुमारियों के गीत और (२) ब्याहताओं के गीत। सावन में बालिकाएँ 'लीबीली' गाती हैं। चूँकि सावन गीत वर्षा के गीत हैं, अतएव भाई-बहन के व्यापक प्रेम और युवाओं के प्रणय प्रसंगों की पूर्णता इनमें समाई हुई है। मालवा का एक सावन गीत इस प्रकार है---

लींब लिंबोली पाकी सावन महिनो आयो जी
उठो हो म्हारा वाला जीरा लीलणी पलाणो जी
तमारी तो प्यारी बेन्या सासरिया में झूले जी
झूलो तो झुलवा दिजो अबके सावन आवाँ जी।

बुन्देलखण्ड में सावन के गीतों को 'साउन गीत' कहते हैं। सावन के ये गीत प्रायः झूले की हिलोर पर पनपते हैं और कहीं-कहीं बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से जीवन की रूपरेखा में रंग भरते हैं। बहन-भाई के प्रश्नोत्तर भी इनमें होते हैं--

सामन भादों जोर कै
भइया मने ले जाय
हूँ कैमे आऊँ मेरी बेंदुली
तेरो नाग ने घेरो है घाट
सामन जिन जाय रे।

बहन के लिये 'बेंदुली' शब्द का प्रयोग सावन के गीतों की विशेषता है। 'सामन जिन जाय रे' की टेक में शीघ्रगामी सावन को पकड़ कर रखने की अभिलाषा है।

बुन्देलखण्ड का एक प्रसिद्ध 'साउन गीत' इस प्रकार है --

एक चना दो देउलीं, माई साउन आये
कौना सीं बिटिया सासरैं, माई साउन आये
गौरा सीं बिटिया सासरैं, माई साउन आये
को जो लुआउन जाए री, माई साउन आये
सुरजमल लुआउन जाए री, माई साउन आये
हात रचे दोई पाँव रचे, माई साउन आये
झूला की जोती टूट परी, माई साउन आये
गौरा गिरीं भदाक री, माई साउन आये।

एक अन्य गीत इस प्रकार है --

असों के सावना राजा घर करौ, पर के करियो बिदेस
रहौ तौ पैगें हरी चूनरी जाओ तौ दक्खिनी चीर ।

निमाड़ी लोक साहित्य में सावन के ऐसे गीत मिलते हैं जिनमें बहन के द्वारा भाई को राखी बाँधने और भाई के द्वारा बहन को भेंट देने का उल्लेख है।

सावनी गीत

वर्षा ऋतु के गीतों में सावनी की धुन सबसे कठिन है। लोक जीवन में सावनी का प्रचार बहुत कम है। सावनी की लय विलंबित होती है। एक सावनी गीत देखें-

पपीहू पिउ कर बोली रे पापिहरा न बोल
पिया मोर देस बिदेस जरे मोरा जीउ
कारी बदरिया घेरि आई चहूँ दिसि
पीउ नहि मोरे देस बिदेस ।

बरसाती रसिया

बुन्देलखण्ड में 'बरसाती रसिया' नामक एक गीत भी प्रचलित है। इसमें 'रसिया' शब्द का प्रयोग प्राय: गीत के प्रत्येक अन्तरे में होता है

गाड़ी बारे मसक दै[१] बैल
अबै पुरवइया के बादर ऊनये[२] ।
कौन बदरिया ऊनई रसिया
कौना बरस गये मेघ ।
घुँगटा[३] बदरिया ऊनई रसिया
गलुअन[४] बरस गये मेघ ।
गलुअन बदरिया ऊनई रसिया
छतिया बरस गये मेघ ।
अग्गिम[५] बदरिया ऊनई रसिया
पच्छिम बरस गये मेघ ।

झूला या हिंडोला

वात्स्यायन के कामसूत्र से पता चलता है कि घर के आस-पास वाटिका में किसी वृक्ष पर झूला डाला जाता था, यानी झूले की प्रथा दो हजार वर्ष पुरानी है। भादों में तीज तक हिंडोला चलता है तथा गीत गाये जाते हैं। इस प्रकार के गीत विशेष रूप से झूले पर ही बैठकर गाये जाते हैं, अत: ये गीत नारीस्वर-प्रधान ही होते हैं।

ऋतुशोभा और झूले के गीतों को सामान्यत: अलग-अलग नहीं किया जा सकता।

---

१. दौड़ा दे, २. उठे, ३. घूँघट, ४. गाल, ५. पूर्व दिशा।

ऋतुशोभा के सभी गीतों में झूले का समावेश नहीं है किन्तु झूले के प्राय: सभी गीतों में ऋतुशोभा का कुछ उल्लेख अवश्य है।

झूले के गीतों में कई जगह चम्पाबाग का उल्लेख आया है। कहीं-कहीं चन्दनबाग का भी चित्रण है। इस बाग में हिंडोले पड़ रहे हैं। उस पर कोई राजकुमारी या राधिका अपनी सखियों के साथ झूल रही हैं। झूले के गीतों में ये गोरी, साँवरी सुन्दरियाँ सुन्दर आभूषण पहने दिखाई पड़ती हैं। सजधज कर राजकुमारी या राधिका अपनी सखियों के साथ बाग में झूलने जाती हैं। मल्हार की मधुर ध्वनि से नौलखा बाग मुखर हो उठता है। जिसके कृष्ण कन्हैया घर हैं, वे उमंग भरी झूलती हैं, पर जिनके कन्त पास नहीं, वे पीड़ा से विकल हैं। झूले के गीतों में निम्न गीत बड़ा प्रसिद्ध है

झूला झूले राधिका प्यारी
संग में कृष्णमुरारी ना।
सोने के पालना रेसम के डोरी
कदम के डारी ना।

व्रज में झूले के गीतों का बड़ा प्रचार है। राजस्थान में भी हिंडोले का यह गीत प्रचलित है---

हींडो घला दे ओ आरे म्हारा कानकँवर सा वीर
आवए सावणीयाँ की तीजाँ बाई हींड सी।

सावन में मैके के अनेक आकर्षणों में एक हिंडोला भी है- -

दैया मोहे लागे हिडोरवा कसाव रे
गुनवाँ के बाग में।
पैंया मैं लागूँ तोरे बिरन भइया
भैया मोहे पाटे के झुलुवा डलाव रे
बहिनी अबकी त पटवा महँग भैले
बहिनी परूअ त जैबे सजन घर
भइया झुलइहें धनिया तोहार रे
गुनवाँ के बाग में।

बारहमासा गीतों में वियोग शृंगार का प्राधान्य है। इसके विपरीत झूला या हिंडोला गीतों में संयोग शृंगार की प्रधानता है। कहीं रेशम की डोरी में सोने का झूला बगीचे में डालकर राधा-कृष्ण के झूलने का वर्णन है तो कहीं नायिका द्वारा नायक को झूला झुलाने का वर्णन है। कहीं प्रेमालाप और हँसी-ठिठोली का भी चित्रण है। प्रेम की पेंगें बढ़ाई जा रही हैं और झूले के आने-जाने के साथ सुख की हिलोर आ रही है—

झूला झूलै नन्दलाल संग राधा गूजरी
कहैं राधाजी पुकार पेंगें मार सरकार
उड़े पगिया तोहार मोरा उड़े चूनरी।

एक हरियाणवी झूला गीत इस प्रकार है -

झूला घल रया हे मां मेरी बाग में झूला हींडण
छनियां पै लटके नौमर हार, सखी सहेली
हे मां मेरी मैं साथ गई
सावन छाया है माँ मेरी भादुवा
इंदु राजा ने झड़ी लगा दी
घरर घरर घरराय, झूला हींडल ।

सावन का भींगा मौसम हो और कदम्ब के पेड़ पर झूला पड़ा हो तो कुमारी ननद का मन झूलने के लिये मचल उठता है। वह भाभी से झूला झूलने के लिये चलने का आग्रह करती है किन्तु उसकी भाभी प्रोषितपतिका है। सावन की बूँदे उसके शरीर में दाह उत्पन्न करती है, इसलिये झूले के प्रति उसकी उदासीनता स्वाभाविक है।

कुछ झूला गीतो का विषय अध्यात्म से संबंधित है- मेरे मायके मे जनक की जगमगाती फुलवारी मे हिंडोला लगा हुआ है, मैं वहाँ कैसे जाऊँ? लाज की बात है। अरी सखी, लाज छोड़कर सुख कर ले, नही तो संसाररूपी नाटक के खेल मे हमारी हार होने वाली है।

कहीं कदम्ब के नीचे हिंडोला लगा हुआ है। गोपी विहार कर रही है। मेघ बरस रहे हैं। वंशी बज रही है। सागर के उस पार तक वह अपनी तान छेड़ रही है।

और कहीं अगम देश में झूला लगने की चर्चा है। वहाँ के सन्त पुरुष सुहागिन नारी के ससुर और जेठ है। वह रातरूपी डोली में सुरति की डोरी से हिंडोला लगाएगी और सुन्दर कन्त को लेकर उसमें बैठेगी।

लागेला हिंडोला गगनपुर
जहँवा झूला झूलेला मोरा कन्त
कइसे चलों लाज सरम सखी मोरा
ससुर भसुर सब सन्त
रात कर डोलिया सुरति कर डोरिया
सुन्दर बइठेला महंथ ।

कबीर के एक शिष्य लक्ष्मीसखी ने आध्यात्मिक एवं निर्गुण रचना के रूप में झूला गीत लिखे हैं

लागेला हिंडोलवा से अमरपुर में
झूलेला सन्त सुजान
चलु सखियन सुन्दर वर देखे
खेलि लेहु गगन पेखान ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने पावस संबंधी काव्य में झूले के बहुत गीत लिखे हैं—

प्यारी झूलन पधारो झुकि आये बदरा
ओढ़ौ सुरुख चुनरी तापै श्याम चदरा
देखो बिजुरी चमक्के बरसे अदरा
हरीचन्द तुम बिन पिया अति कदरा ।

दिल्ली के झूले मुगलकाल में मशहूर थे। सखियाँ झूला झूलती हुई बाग में गाती थीं

नन्हीं नन्हीं बुँदिया रे सावन का मेरा झूलना
इक झूला डारा मैंने अमवा की डार पर
लंबी लंबी पेंगें रे सावन का मेरा झूलना।

ऐसे और भी गीत मिलते हैं

सावन की आई बहार रे चलो झूले हिंडोले
राधा झूलें कृष्ण झुलावें
सखियाँ गावें मल्हार रे।

झूले के गीतो के रूप मे बहादुरशाह जफ़र की भी रचनाएँ मिलती हैं

झूला किन डारो रे अमरैयाँ
रैन अँधेरी ताल किनारे
मोरवा झँगारे बादल कारे
बुँदियाँ पड़ें फुय्याँ फुय्याँ
दो सखि झूलें दो ही झुलाएँ
चार मिलि गैयां भूल भुलैयाँ।

जफर साहब ने एक झूला गीत में हिन्दू-मुसलमान को एक प्रेम की डोर मे बाँधा है

मेरे दिल की कुंजी मेरी जान झूला
मेरी आरजू मेरा अरमान झूला
यह अदा है एक हिन्दुस्तान की
क्यों न झूलें हिन्दू मुसलमान झूला।

बरसाती

कृषि-प्रधान गीतों मे वर्षा का स्वाभाविक महत्त्व रहता है। मगध प्रदेश मे ग्रामीण महिलाएँ एकत्र होकर इन्द्र का आवाहन करती हुई बरसाती गीत गाती हैं

दइया इन्द्र के करहू इन्द्र पूजवा हे ना
दइया गाँव के ठिकुदरवा अनजानू साही ना।
दइया घोड़वा चढ़ल निरखई बदरा हे ना
दइया मूसरे के धार पनियाँ बरसई हे ना।

चौहट

यह भी वर्षा के गीतों का एक प्रकार है, जो मगध क्षेत्र में प्रचलित है। इसमें स्त्रियों के दो दल आपस में सवाल-जवाब करते हैं। इसमें तरह-तरह के अभिनय भी किये जाते हैं और ऐसे गीत भी गाये जाते हैं, जिनमें 'जँतसार' और 'झूमर' की तरह पारिवारिक जीवन की मधुर झाँकियाँ हैं—

कौना कोने उमड़ल कारी रे बदरिया
सुन साँवरो रे कहँवा बरसे जलजोर।

पूरब कोना उमड़ल कारी रे बदरिया
सुन साँवरो रे पच्छिम बरसे जलजोर ।

छींजा

कुल्लूई लोक साहित्य में पावसकालीन गीतों में 'छींजा' गीत प्रसिद्ध है। पावस ऋतु संबंधी छींजा उस विरहिणी की मनोव्यथा का चित्रण करता है, जिसका कन्त परदेस गया है। विदा होते समय आश्वासन दे गया था कि शीघ्र लौट आएगा, साथ में उपहार लाएगा। किन्तु समय बीत चला, वह नहीं आया। उधर वर्षा ऋतु आरंभ हो गई। आकाश में बादल देखकर विरहिणी का हृदय खिन्न हो उठा

काड़ीए बादड़िए मुड़ ए, बरखांदो मेहा वे
कींह बरखे लोकड़िए मुड़ए, बागरे बारूरा वे ।

उधवा

यह एक प्रकार का विरह गीत है जो वर्षा ऋतु में गाया जाता है। इसकी व्युत्पत्ति 'उद्धव' से है, जो विरह का संदेशवाहक है। बरसात के आरंभ में जब आकाश में बादल मँडराने लगते हैं, तब 'उधवा गीत' गाया जाता है

सुनीले कन्हैया हमरो जोगी भइले
हमहूँ जोगिन होइ जाव ।

पपैयो या पपइया

वर्षा ऋतु में पपीहे के बोलने का वर्णन हिन्दी साहित्य एवं लोक साहित्य में बहुत हुआ है। राजस्थान में भी वर्षा ऋतु में गाया जाने वाला गीत 'पपैयो' या 'पपइया' पपीहे की बोली से प्रभावित है। किसी किसी गीत में ऐसा वर्णन आता है कि कोई युवती किसी विवाहित युवक को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहती है किन्तु युवक का प्रेम एकमात्र अपनी पत्नी पर है। कुछ गीत इस प्रकार हैं --

भँवर बागाँ में अइज्यो जी
बागाँ में नार अकेली, पपइयो बोल्यो जी ।
बोले रे पपैयो हाँजी रे पिपड़ो रे
गाढ़ा रे मारू मग दिये रे ।

बादली

वर्षा के बादल किसानों को अच्छे लगते हैं। काली काली घटाएँ घिर आई देखकर राजस्थान की किसान स्त्रियाँ गाती हैं --

आज म्हारी बादली बरसैगी
आयो आयो सावण भादवो
कोओ, काली घटा घिर आय ।

बिरना

'बिरना' शब्द भाई के लिये प्रयुक्त होता है, जो 'वीर' शब्द से बना है। सावन में बहनें झूला झूलते समय अपने भाई को संबोधन करके जो गीत गाती हैं, उन्हें 'बिरना' कहते हैं। ये गीत उत्तर प्रदेश में बहुत गाये जाते हैं

बजर कइ छतिया माई तोरी
जेकरि बिटिया सावन ससुरारी
बलैया लेवेउँ बिरना
कोइलरि जो बोलइ आनन्द वन
सुगन भइया बोलई पहार
ससुरे में बोलइ कुसुम बहिनी
बिरन भइया मोहि लै जाउ।

एक अन्य गीत में हृदय की कैसी पीर है

नाहीं अइले बिरना तोहार हो
सवनवाँ आइ गइले ननदी
रसे रसे छलकेला रस के गगरिया
रिमझिम बरसे फुहार हो।

सैरा गीत

श्रावण तथा कजली के अवसर पर बुन्देलखण्ड में चाँदनी रात में 'सैरा गीत' गाया जाता है। सैरा गाने वालों की टोली दो छोटे छोटे डण्डे लेकर गोलाकार खड़ी हो जाती हैं। गाना और नृत्य साथ साथ होता है। टोली के सभी आदमी एक साथ गाते हैं। दोनों तरफ के लोगों के हाथों के डण्डे पर चोट करते हैं तथा गोलाकार घूमते हुए गाते हैं --

तोरे गुन जान गई अरे बलमा रे
जब तो कहत ते रंगमहल हैं
टूटी टपरिया में लाये बलमा रे
जब तो कहत ते सेजा सुपेती
टूटी खटुलिया पे लाये बलमा रे।

एक अन्य 'सैरा गीत' इस प्रकार है- -

तोरइया[१] रे सदा न फूलै सदा न सावन होय
सदा न राजा रन चढ़ै सदा न जीवै कोय।
जुड़ई[२] बाजरा जिन बओ पिया मेरे को रखवइया[३] जाय
हम दुर जैहैं[४] अपने मायकैं कउँ सुआ बाल लै जाय।

---

१. एक साग विशेष, जिसकी बेल सावन में फूलती है, २. ज्वार, ३. रखवाला, ४. चले जाएँगे।

सैरे गीत के अन्तर्गत 'सैरे की गारी' नामक एक गीत भी बुन्देलखण्ड में प्रचलित है—

स्याम बजार ए सुर बीना, अरे जमुना में ठाड़े
काहे की बनी हर की रंग मुरलिया
सो काहे कौ बनों सुर बीना
हरे बाँस की हर की रंग मुरलिया
सो सोनैं कौ बनों सुर बीना
छै सुर बाजैं हर की रंग मुरलिया
सो सात सुरन सुर बीना।

राछरा

वर्षा के मौसम में बुन्देलखण्ड में 'राछरा' नामक एक अन्य गीत गाने की प्रथा है—

चन्द्रकुँवर को राछरो।
रे भाई काहे को महल उठाइयो, काहे को ढोरे हैं बाँस
रहबे खों महल उठाइयो, शोभा खों ढोरे हैं बाँस
दिन दस रहन न पाइये, डस लये करिया नाग
पाँव महावर नई छूटियो, फरिया के छूटे न दाग
इन्द्रलोक मे गहनो जो आयो बहुआ चन्द्रावल के जोग
हम कैसे गहनो पहरियो, बारे में भओ है बिनास
माथे पै बिंदिया बाँधी नई, मोतों भरी नैया माँग
हम विध को काहो बिगारियो, बारे में हो गये बिनास
बर तो जैयो मैया तोरी कूँख जिनमें लये अवतार
जल बिन नदिया बिहूनी रे भाई वैसई पती बिन नार।

आल्हा

सावन में पुरुष वर्ग आल्हा गाता है। आषाढ़ के महीने में बरसात आते ही फसल बो दी जाती है। इसके बाद किसान को क्वार और कार्तिक मास में बोई जाने वाली फसलों तक कुछ अवकाश मिल जाता है। इसी अवकाश के अवसर को ग्रामीण आमोद-प्रमोद में व्यतीत करते हैं, जिसका प्रमुख रूप समूह में बैठकर गाना-बजाना होता है। पुरुष वर्ग आल्हा में अपने अनुरूप वीर रस की अभिव्यक्ति पाता है, इसीलिये उसे आल्हा रुचिकर लगता है तथा आल्हा छन्द भी इस ऋतु के अनुकूल होता है--

कजरी वन के हाथी सजिगे
सजिगे राजस्थानी ऊँट
सजिगे वर्धा मकनापुर के
सजिगे नये जवाँ रंगरूट।

चाँचर

'चाँचर' का अर्थ है—परती छोड़ी हुई जमीन। पावस ऋतु में खेत रोपते हुए

किसान दो दलों में बँटकर 'चाँचर' गाते हैं। यह प्रश्नोत्तर रूप में गाई जाती है। इसका मूल नाम संभवत: 'चर्चरी' है, जिसकी चर्चा संस्कृत साहित्य में है। एक दल सम्मिलित स्वर में प्रश्न करता है, दूसरा उसका समीचीन उत्तर देता है। ऊपर वर्षा होती रहती है और नीचे घुटने भर जल में कमर झुकाए कृषक जमीन को धान से आबाद करते जाते हैं। गाने का सिलसिला चलता है -

कौन मासे हरियर ठूँठ पकरा
कौन मासे हरियर धेनु गाय।
चइत मासे हरियर ठूँठ पकरा
भादों मासे हरियर धेनु गाय।

चाँचर गीतों का विस्तार नेपाल में तराई से लेकर पहाड़ों तक फैला है। थारू लोग इसे कई रूपों में गाते हैं। दिन के प्रत्येक प्रहर का अलग-अलग चाँचर होता है। कहीं पावस के मेघों की छाया में इसे धनरोपनी के साथ गाया जाता है तो कहीं इसे वृत्त नृत्य में हुड़के की लय पर गाया जाता है। यह भाषानिबद्ध गीत है, जो नृत्य छन्द से अलंकृत है। इनमें मुख्यत: शृंगार की अभिव्यक्ति हुई है -

ओही पार रसिया बंसिया बजावल
अही पार तारोनी नहाबे, लला हो
बंसिया सबद सुनि हिया मोरा साले
चित नाहीं रहे मोरा थीर, लला हो।

पीपली

वर्षा ऋतु की समय-सीमा में तीज त्योहार के कुछ दिन पूर्व से राजस्थान के कई भागों में 'पीपली' नामक गीत गाया जाता है। इसके स्वर प्राय: देश राग के हैं। रेगिस्तानी इलाकों में यह स्त्रियों का सावन महीने का गीत है। बाद में उसका साहित्यिक मूल्यांकन भी हुआ। एक गीत इस प्रकार है-

बाय चाल्या छा भँवर जी पीपली जी
हाँजी ढोला हो गई घेर घुमेर
बैठण की रुत चाल्या चाकरी जी
ए जी म्हारी लाल नणद रा ओ वीर
पिया की पियारी नैं सागै ले चलो जी
परण चल्या छा भँवर जी गोरड़ी जी
हाँजी ढोला हो गई जोध जवान
विलसण की रुत चाल्या चाकरी जी
ओ जी म्हारी सास सपूती रा पूत
मत ना सिधारो पुरब की चाकरी जी।

-- अर्थात् हे स्वामी, आप पीपली बो कर चले थे, हे ढोला, वह घेर घुमेर हो गई। उसकी छाया का आनन्द लेने का समय आया, तब तुम नौकरी के लिये चल पड़े।

मेरी लाल ननद के भाई, मुझे भी साथ ले चलो। जब मैं छोटी थी तब तुमने विवाह किया था, अब मैं पूर्ण युवती हो गई हूँ, ऐसे समय तुम चल पड़े। विलास की रुत आई तो तुम चल पड़े। ओ मेरी सास के सपूत, नौकरी के लिये पूरब देश मत जाओ।

ढोला गीत

यह गीत प्रायः वर्षा ऋतु में गाया जाता है। साधारणतः यह 'चिकाड़े' पर गाया जाता है, जो सारंगी की शक्ल का होता है। ढोला पैरियों में विभाजित होता है, जो संभवतः प्रहर से निकला है। पहली पारी डेढ़-दो घण्टे तक चलती है। अवकाश में ढोला गायक मनोरंजक लोककथा कहते हैं।

व्रज मे एक और ढोला स्त्रियों द्वारा गाया जाता है। किसी मांगलिक अवसर के अन्त में चलते समय घर के बाहर आकर ढोला गाया जाता है। लोकगाथा के ढोला और व्रज के ढोला की व्युत्पत्ति मे अन्तर है। पहला 'दूलह' से बना प्रतीत होता है और दूसरा 'ढोला' से, जिसका अथ है डोलना।

बुन्देलखण्ड में ढोला गीत इस प्रकार गाया जाता है---

कजरा जिन[१] डारौ, ऊमेंई[२] नैन लगैं कजरारे।
कारे भमर[३] केस करिहा[४] लौं, खोल गजब ढारे।
रिरकत[५] से बैंदा के मोती, माथे बैठारे।
करधौनी लरदार कमर में, बिछुआ अनियारे।
सारी जरतारी देहिया पै, चमकारई तरे।
सुघर सलौनी मूरत देखत, बड़े बड़े हारे।

एक अन्य गीत इस प्रकार है --

बन खौं जब जइयौ कै लाला
घर न्यारौ कर जइयो।
अटा[६] नई लैनें अटरिया नई लैंने
बंगला लै लेऊँगी कै बाकी
भोर टहल[७] कर लेऊँगी।

हरपरौरी

भोजपुर क्षेत्र में वर्षा ऋतु में वर्षा न होने पर औरतों द्वारा 'हरपरौरी' का आयोजन किया जाता है। इसके लिये औरतें गाँव की सीमा के बाहर किसी निर्जन स्थान पर एकत्र होती हैं। एक स्त्री सिर पर साड़ी की पगड़ी बनाकर किसान का अभिनय करती है। दो स्त्रियाँ झुककर अगल-बगल चलते बैलों का स्वाँग रचती हैं। किसान का अभिनय करने वाली स्त्री सचमुच का हल लेकर चलती है और गाँव के मुखिया या प्रधान का नाम लेकर चिल्लाती है कि हम लोग प्यासी मर रही हैं और वह पानी नहीं दे रहा है। इस

१. मत, २. वैसे ही, ३. भँवरे, ४. कमर, ५. खिसकता हुआ, ६. अट्टालिका, ७. सेवा व सफाई।

संपूर्ण क्रिया के साथ गीत भी चलते हैं। प्रदर्शन के पूर्व स्त्रियाँ काली आदि की स्तुति करती हैं। बाद में वर्षा के अभाव में वे वरुणदेव का आवाहन करती हैं—

बरखू हो बरखू बँसवा के खुंटिया लुकइन हो बरखू
साठी धनवां बोअवली पनिया के परले अकाल
लोदवा के पुअरा में तोहर मुँह झँउसो पनिया के डरवे अकाल ।

'हरपरौरी' आयोजन में होने वाला प्रदर्शन स्त्रियाँ प्राय: नग्न होकर करती हैं। यह परम्परा उत्तर भारत में भी है। **सर जेम्स फ्रेज़र** ने 'द गोल्डेन बाउ' नामक अपने ग्रन्थ में अनावृष्टि होने पर नग्न स्त्री द्वारा हल जोतने तथा स्वाँग भरने की प्रथा का उल्लेख किया है। कहो-कहीं औरतें इसमे 'कठघोड़वा' का खेल भी प्रस्तुत करती हैं। सिर पर पगड़ी, बदन पर कुर्ता, पायजामा पहन, पैर में काठ की खड़ाऊँ, काठ के घोड़े को कमर में डालकर सारे गाँव में घुड़दौड़ लगाती हैं और मिट्टी के बर्तन में गंदी मिट्टी भरकर किसी सोये हुए व्यक्ति के ऊपर फेंकती हैं।[१]

पावस गीतों की स्थानीयता

वर्षा गीत प्रत्येक प्रान्त में प्रचलित हैं भले ही इन्हे विभिन्न नाम और रूप से जाना जाता हो।

दिल्ली

किसी समय भारत की राजधानी दिल्ली में सावन के झूलों की बहार बड़ी आकर्षक होती थी। उधर घटाएँ घिरती थीं, इधर बागों मे झूले पर बैठकर स्त्रियाँ गाती थीं -

नन्हीं नन्हीं बुँदिया रे सावन का मेरा झूलना
इक झूला डारा मैंने अमवा की डारी पे
लंबी लंबी पेंगें रे सावन का मेरा झूलना ।

झूले की यह प्रथा बाद में मुसलमानों के बीच प्रचलित हुई। अमीर खुसरो और बहादुरशाह जफर की रचनाओं से इस बात की पुष्टि होती है। इन्होंने सावन या झूले संबंधी गीतों की रचना की है। अमीर खुसरो का एक सावन गीत बड़ा प्रचलित रहा है - -

अम्मां मेरे बाबा को भेजो री कि सावन आया ।

पंजाब

पंजाब में सावन या झूले के गीत यहाँ के स्त्री गीतों में विशेष स्थान रखते हैं। सौन्दर्य और प्रेम के इन तरानों की पृष्ठभूमि में जल, थल और आकाश का सौन्दर्यबोध बार-बार मचल उठता है। बार-बार यहाँ मेघों से बातें की जाती हैं —

बरसीं तां बरसीं मींहा मेरे बाबल दे देस
होर बी बरसीं सौहरे क्यारिएँ

---

१. *भोजपुरी क्षेत्र के स्त्री प्रस्तुतिपरक लोकनाट्य,* लेख—डॉ० आद्या प्रसाद द्विवेदी, छायानट अंक-१९।

बरसिया तां बरसिया बीबी तेरे बाबल दे देस
होर बी बरसिया बीबी सौहरे क्यारिएँ ।

बरसना, बरसना हे मेघ! मेरे पिता के देश में और ससुराल की क्यारियों में भी बरसना।

मैं बरस आया हूँ हे कुलवधू! तेरे पिता के देश और ससुराल की क्यारियों में भी बरस आया हूँ।

मेघों के साथ यह आत्मीयता लोकसंगीत की देन है। बारहमासा गीतों को पंजाब मे 'बारामाहाँ' कहते हैं।

हरियाणा

यहाँ स्त्रियाँ झूला झूलते समय वर्षा ऋतु में तरह-तरह के गीत गाती हैं। हरियाली तीज का गान जब सावन की फुहार के साथ भींगता है तो नववधू अपने नैहर जाने को लालायित हो उठती है। पेड़ों पर झूले पड़ जाते हैं। नई वधू की चूनर इन्द्रधनुष की समता करती है। किन्तु हास-उल्लास के इन गीतों में करुणा का भी स्थान है। 'सरिहल रानी' का गान एक लम्बे दु:खान्त काव्य सा है। हरियाणा का एक वर्षा गीत इस प्रकार है--

सामण आयो रंग लो कोई आई रे हरियाली
सास म्हारी प्यारी गजब की मारी
मोके तो खंडा दै पीहर को
म्हारी लाड़ मासुला प्यारी ।

यहाँ सावन के मल्हारों में मात्र वर्णन ही नहीं, भावपक्ष भी होता है। एक मल्हार में नायिका के मान का चित्र खींचा गया है। नायिका सावन में ऐसा बँगला छवाना चाहती है, जिसमें चन्द्र सूर्य का पर्याप्त प्रकाश पड़े। अपनी इच्छा पूरी न होते देख वह रथ जुड़ाकर पिता के घर चली जाती है। जेठ, देवर, ससुर सब मनाने आते हैं, पर वह नहीं लौटती। अन्त मे पति जब उसकी इच्छा पूरी करने का वचन देता है, तब वह लौटती है।

यहाँ कौरवी लोकगीतों के अन्तर्गत सावन के गीतों में विरह-वर्णन अधिक देखा जाता है --

आम की डाली रिसिलियल पड़ी है पंजाली
कोई झूलन जाय रनबास मियाँ ।

यहाँ बारहमासा गीत भी गाये जाते हैं।

सिन्ध

सिन्धी लोकगीतों में मेघों का आमंत्रण एक नई परम्परा है। सिन्ध के सूफी कवि शाह लतीफ़ की रचनाओं में भी इसकी प्रेरणा मिलती है—

सारंग, साए सिद्ट जैहड़ी लाली लाख जी
एन से उबन अग्या जिअसे चने चिट्ठ
बरस्यो पासे भिद्ट भरचाँ कुन्न किराड़ जा ।

– हे मेघ (सारंग), एकदम बरस, जैसे लाह की लाली होती है। जो नंग धड़ंग घूम रहे हैं, वे भी वर्षा होने से भीगे हुए चनों की भाँति फूल जाएँ। भिट्ट (भीत) की ओर बरस, ताकि बनिये के मटके अनाज से भर जाएँ।

हिमाचल प्रदेश

यहाँ के कुल्लू गीतों मे वर्षा ऋतु में विरहगान गाया जाता है। एक छींजा गीत भी प्रचलित है, जिसका प्रारंभ प्राय: किसी भजन से होता है तत्पश्चात् विविध प्रकार के गीत गाये जाते हैं। इनमें कभी किसी प्रवासी कन्त को बुलाया जाता है तो कभी रूठे देवर को मनाया जाता है। किसी गीत में निर्दयी सास द्वारा सताई गइ बहू का क्रन्दन है तो किसी में भाई के लिये बहन का स्नेह-प्रदर्शन होता है। छींजे में ही बारहमासा का भी स्थान है, परन्तु बारहमासा आधुनिक प्रतीत होता है क्योंकि इसकी शब्दावली स्पष्टत: हिन्दी रूप लेकर चलती है।

पावस ऋतु संबंधी छींजा में उस विरहिणी की मनोव्यथा मिलती है, जिसका पति परदेस गया है। विदा होते समय वह आश्वासन दे गया था कि शीघ्र ही लौटकर आएगा, पर समय बहुत बीत गया, प्रवासी लौटा नहीं। इधर वर्षा आरंभ हो गई। आकाश में छाये मेघ देखकर विरहिणी का हृदय व्याकुल हो उठा और जब वर्षा होने लगी तो हृदय का बाँध रोके न रुका -

काली बादलिए मुड़ये बरखाँदो मेहा बे
कींह बरसे लोकड़िए मुड़ये, बरखाँदो मेहा बे ।

बारहमासा को यहाँ 'बरमासड़ो' कहते हैं। यहाँ का एक बारहमासा इस प्रकार है

राधा सोच करे मन माँहीं
शाल मास घिरी बादली
बिजुली चौमके
चौमके चौमके चौहू दिशा दीं चौमके
चौमक रह्यो तेरे आँगणा में ।

चम्बा प्रदेश में विशेष रूप से वर्षागीत तो नहीं प्राप्त होते किन्तु ऐसे गीत मिलते हैं, जिनका वर्ण्य विषय वर्षाकाल से संबंधित है। एक गीत में मेघ से प्रार्थना की गई है —

कुथुए दी आई काली बादली हो
कुथुए दा बरसेया मेघा हो ।
छाती री आई काली बादली हो
नैणां रा बरसेया मेघा हो ।

आदिवासी क्षेत्र के पावस गीतों के रंगारंग चित्र हैं। एक गीत इस प्रकार है --

भरि गइले तलवा मछरिया लगलि डाँकइ[1]
रे छैला, चनवाँ[2] पै बदरा मेड़राला[3]

१. कूदने, २. चाँद, ३. घिरता है।

पुरुवा करेजा में तीर अस समाला[१]
हमके भुलाइ तोइँ[२] गइले परदेसवा
भीलनी परमवाँ[३] भुलाई के खोजेले सहरतिया[४]
कैसे भेजाई रे सनेसवा सवनवाँ जाला बीतल ।

एक अन्य गीत में कैसी सुन्दर कल्पना है! पलाश के पत्ते पर सोता हुआ तोता पुरवैया के झोंकों मे झूल रहा है, जिसे देखकर स्त्री का मन करता है--काश! मेरे पति होते; जैसे सारी प्रकृति झूल रही है, मैं भी उनके साथ झूला झूलती--

परसा पत्तई[५] सुत्तल[६] सुग्गा झूले
डारि झूले खुले पुरुबी बयार
देखि मोरा मन परे पिया परदेस घरे
हे हे मइ[७] का करूँ मगरो[८] मगर[९] झूले
बढ़ि गइले नदी नार पिया परदेस घरे ।

आदिवासी क्षेत्र में गाया जाने वाला एक झूला गीत इस प्रकार है

किया हो सिया भउजी झूलि झूलि जाइ
किया हो झुलुवा के टूटेला बँडेर[१०]
किया रे सीता भउजी गिरइ अनाचेत[११]
किया रे तिरनी[१२] गइले छितराइ[१३] ।

कांगडा

यहाँ के गीतों में भी लोकजीवन लक्षित होता है क्योंकि काले बादल मनुष्यों के हृदय मे उठते हैं और मेह विरहिणी के नयनो मे बरसते हैं।

काश्मीर

काश्मीर में पावस या बारहमासी गीतों के रूप में 'वहरात' गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में प्रेयसी को वेदना की अभिव्यक्ति पाई जाती है। एक विरहिणी अपनी सखी से कहती है कि पावस आ गया किन्तु उसका प्रिय नहीं लौटा-

अग्नह गगनह गयि गगरायि
नभह मंज़ह नारह बुज़मलह द्रायि
अनतन पी। अनतन पी ।

---गगन में बादलो का गर्जन हुआ। भूमण्डल पर बादलों की बिजली चमकी। सखी, पी को ढूँढ़ ले, पी को ढूँढ़ ले।

राजस्थान

राजस्थान में कजरी के स्थान पर जिन गीतों का प्रचार है, उन्हें 'सावण' कहते हैं।

---

१. प्रवेश करता है, २ तुम, ३. प्रेम, ४. शहर का, ५. पलाश के पत्ते पर, ६. सोया हुआ, ७. मैं, ८. संपूर्ण, ९. प्रकृति, १०. बेड़ा, बल्ला, ११. अचेत, १२. नीबी, १३. बिखर गई।

यहाँ के वर्षागीत सौन्दर्य चेतना और भावावेग के जीवन्त चित्र हैं—

बादलियो घररावै छै
आया आया जेठ असाढ़ ओ स्याम
इन्दरियो घररावै छै
मेंहारी भल आई ओ स्याम
इन्दरियो घररावै छै।

यहाँ बारहमासा गीत भी प्रचलित है—

सावण आवण भँवरा जी कह गया जे
हाँ जी कोई बीत्या बारहमास।

राजस्थानी लोकगीत में बार-बार मयूर के नर्तन की चर्चा है। हरियाली तीज के अवसर पर नैहर के स्वप्न देखती हुई बहनों के गीत जिन्होंने राजस्थान में सुने हैं और 'म्हारा मोरला सावन लहर्‌यो रे' की भावपूर्ण तान जिनके कानों में पड़ी है, वे ही कह सकते हैं कि मयूर ने राजस्थानी लोकगीत में कितना महत्त्वपूर्ण स्थान पाया है -

सावण तो लहर्‌यो भादवो रे
बरसे च्यारूँ कूँट
म्हारा मोरला सावन लहर्‌यो रे
सावण बाई गवराँ सास रे।

सावनी तीज में यहाँ झूले के गीत इस प्रकार गाये जाते हैं—

आई आई पेल सावण की ये तीज
मने भेजो मां सासरे जी।

वर्षा ऋतु में राजस्थान में 'बादली गीत' भी गाया जाता है -

आज म्हारी बादली बरसैगी
आयो आयो सावण भादवो
कोई काली घटा घिर आय।

राजस्थानी क्षेत्र के अन्तर्गत **'यादवभूमि अहीरवाल'** में प्यासी भूमि एक नई प्रेरणा लेकर आती है। अंकुर फूटते हैं और धरती हरे वस्त्र ओढ़कर एक नई चेतना पाती है। खेत सावन के लोकगीतो से गूँज उठते हैं। यहाँ सावन के गीत लोककथा के आधार पर भी गाये जाते हैं। 'मुलतान' और 'निहालदे' की वियोग गाथा भी इन्हीं में वर्णित है। छ: वर्ष के लिये सुलतान प्रवास में गया था। छठें सावन में निहालदे की विरह व्यथा चरम सीमा पर पहुँच जाती है—

हे री सखी सावण मास धन लाग्यो
एरी सब सखियाँ झूलण जायें
हमन्यू ए फिरें जंजाल
ननदी ऐसा खत लिखवा दो
मेरे प्रीतम को बुलवा दो।

राजस्थान के एक 'हाड़ौती' लोकगीत में पत्नी के अनुनय करने पर भी पति प्रवास चला जाता है। ऐसी स्थिति में उसे वर्षा ऐसी लग रही है जैसे कटारी के घाव लग रहे हों।

उसकी बैरन आँखें ऐसी बरस रही हैं मानो सावन और आँखों में बरसने की होड़ लगी हो—

नैणां बरसे सेज पर जी, आँगन बरसे मेंह
होड़ा होड़ी लग रही, इत सावन उत मेह ।

मध्य प्रदेश

बुन्देलखण्ड में 'भुजलियां' के रूप में कजली साकार होती है। श्रावण पूर्णिमा के दूसरे दिन यानी भादों की कृष्ण प्रतिपदा के दिन बुन्देलखण्ड मे 'भुजलियां का त्योहार' मनाया जाता है। रात मे ढोलक पर कजरी गीत होते हैं -

हरे रामा उठी घटा घनघोर
बदरिया कारी रे हरी
जिनके पिया परदेस बसत हैं
अँसुवन भींजे गुलसारी ।

बुन्देली गीतों मे वर्षा ऋतु में एक विशेष प्रकार के लम्बे वर्णनात्मक गीत मिलते हैं, जिनकी रचना कौटुम्बिक जीवन की किसी काल्पनिक घटना अथवा किसी ऐतिहासिक अनुश्रुति के आधार पर होती है और जिन्हे सच्चे अर्थ मे 'गछरा' कहा जाता है। इनमें 'अमान सिंह का गछरा' बहुत प्रसिद्ध है। स्त्रियाँ झूलते समय मेघों के साथ गाती हैं- -

बदरिया रानी बरसो बिरन के देस
कानाँ से आई कारी बदरिया
कानाँ बरस गये मेह ।
अगम दिसा से आई बदरिया
पच्छिम बरस गये मेह ।

सावन के गीतो को यहाँ 'साउने गीत' या 'मल्हारे' कहते हैं। वर्षा ऋतु में विशेषकर श्रावण या कजरी के अवसर पर यहाँ 'सैरगीत' गाये जाते हैं। 'सैरा' तथा 'राई' नृत्यगीतों का आयोजन होता है। 'सैरा नृत्य' पुरुषों की टोली करती है जबकि 'राई नृत्य' स्त्रियाँ करती हैं। बुन्देलखण्ड का यह अत्यन्त लोकप्रिय नृत्य है -

असढ़ा तो लागे रे मोरे प्यारे
डूब गई हरियाय
बीरन लुबौआ न आये
मैंने चुनरी धरी रंगाय
मोरो चित्त न लगे रे बालमा ।

ये गीत प्राय: प्रेम-प्रसंगों पर ही आधारित होते हैं। अन्य प्रदेशों की तरह बारहमासी गीत भी यहाँ प्रचलित हैं जिन्हें 'बारामासे' कहते हैं। इनका वर्ण्य विषय परम्परागत है - -

कैसे कटें दिन रैन को दरे पीर दरद मोहे भारी
चैत चितैं चारुउँ और ढूँढ़ ब्रजदारी
बैसाख आई न नींद बिना बनवारी

जेठ बिरद अंग झुलसें तपन भई भारी
असढ़ा बोले मोर सोर भये भारी
सावन मासे जमुन बाढ़ी विपन दरिया री
भादों डर लागे मोहे देख निस कारी।

वर्षा ऋतु में व्रज के लोककथा युक्त गीतों की शृंखला की कड़ी में बुन्देलखण्ड का 'मानोगूजरी' गीत होता है। यहाँ सावन के गीत झूलों की हिलोर पर गाये जाते हैं।

बघेली

बघेली लोकसाहित्य में इन गीतों को 'कजली' या 'सावन' की संज्ञा दी गई है

सदई न फूलइ भौजी रामतरोइया
पै सदहू खेलन हम जायइ हो ना।

बघेलखण्ड के प्रमुख पावस गीत कजली, हिण्डुली, खजुलैया, ढेरिया गीत और तीज पर गाये जाने वाले गीत हैं। हिण्डुली कजली का एक प्रकार है और तीज पर कजली या शिवभक्ति के गीत गाये जाते हैं। बघेली कजली गीतों में पारिवारिक जीवन की सुन्दर झाँकी होती है। ये गीत प्राय: कथात्मक होते हैं ---

हमरे दुआरे निमियां के बिरवा
पै बहै लाग मरसी बयरियउ हो ना।
निकरि के ठाढ़ी हई राजा के कुँवरिया
बहि लागी सरमी बयरिया हो ना।

ऐसे में कोई परदेसी आकर उससे पानी माँगता है। बातचीत के प्रसंग में पत्नी परदेसी प्रिय को पहचानती है और प्रसन्न मन से उसे पानी पिलाने को उठती है।

बघेली गीतों में कहीं-कहीं परकीया प्रेम के भी उदाहरण मिलते हैं। बघेली पावस गीत प्राय: रक्षाबन्धन के समय रोपा लगाते, झूला झूलते, चक्की पीसते समय गाये जाते हैं। बघेलखण्ड के कजली गीत अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। यह एक समूहगीत है, जिसे ग्रामबालाएँ या ग्रामवधुएँ समवेत स्वर में गाती हैं। कहीं-कहीं कजरी के व्यक्तिगत रूप से भी गाने का प्रचलन है। यहाँ के कजली गीतों में बघेली समाज एवं व्यक्ति की भावनाओं का चित्रण है। इनमें कहीं भाई-बहन के प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति है; कहीं सास, ननद, बहू के संबंधों की यथार्थ अभिव्यक्ति है; कहीं दाम्पत्य एवं प्रेम भावनाओं की सफल एवं स्पष्ट अभिव्यक्ति है; कहीं राजपूत राजाओं द्वारा अबोध कन्याओं के अपहरण की चर्चा है; कहीं सावन की हरियाली और आम की डाल पर पड़े हिंडोलों का वर्णन है तो कहीं रामकृष्ण के चरित्र का मानवीकरण है।

छत्तीसगढ़

छत्तीसगढ़ में बारहमासी प्रमुख रूप से प्रचलित है -

जेठ महीना गे लिख पतिया भेजथे
आवत लगिगे असाढ़ हो

सावन बूँदिया रिमझिम बरसे
भादों में गाहर गंभीर ।

यहाँ श्रावण मास में नागपंचमी से राखी तक 'भोजली' त्योहार मनाया जाता है। नागपंचमी के दिन 'भाजली' बोई जाती है और राखी के दिन विसर्जित की जाती है। 'भोजली' गीतों में देवी प्रार्थना, पारिवारिक जीवन तथा भाई-बहन के स्नेह के चित्र रहते हैं---

महर महर करे भोजली के बाउत
जय हो देवी गंगा
देवी गंगा लहर तुरंगा
तुमरो लहर में देवी भींगे आठों अंगा
पानी बिन मछरी पवन बिन धाने
सेवा बिन भोजली के तरसथे प्राने ।

भोजली विसर्जन के बाद स्त्रियाँ दुखी होती हैं। इसके अतिरिक्त इस अवसर पर स्त्रियाँ अपना प्रिय 'सुआ नृत्य' करती हैं। एक वृत्त के मध्य में एक टोकरी में सुए की मिट्टी की प्रतिमा रख ली जाती है। स्त्रियाँ बारी बारी से अपने पैरों पर बोझ डालकर अगल-बगल डोलती हैं और सुआ गीत गाती हैं -

चिट्ठी लिख-लिख बहिनी भेजत है रे सुवना
कि मोरो बन्धु आवे लेनहार ।

इन गीतों में नारीजीवन के सुख-दुःख के सजीव चित्र मिलते हैं। कुमारियाँ 'पोवा' गीतों के साथ आषाढ़ सावन में विशेष रूप से यही नृत्य करती हैं।

इनके अलावा यहाँ वर्षागीतों में 'उन्हारी लीला' के गीतों की प्रमुखता है। ये सावन महीने में पुरुषों के द्वारा गाये जाने वाले व्यक्तिगत गीत हैं। इनमें स्थानीय उपज और साग भाजियों का उल्लेख चमत्कारपूर्ण शैली में होता है -

कोदों कहे मैं सबोल छोटे
छोटे बड़े कर भरथौं पेटे ।

उज्जैन

उज्जैन में इन्द्र के आह्वान की भावना पाई जाती है। अन्य गीतों में झूले के गीत, भाँगड़ली, बारहमासी आदि हैं।

मालवा

मालवा प्रदेश में सावन के गीत दो भागों में विभक्त हैं --(१) कुमारियों के गीत, (२) सुहागिनों के गीत। यहाँ बालिकाएँ सावन में 'लीबीली' गाती हैं- -

लींब लिबोली पाकी सावन महिनो आयो जी
उठो हो म्हारा वाला जीरा लीलड़ी पलाणो जी
तुमारी तो प्यारी बेन्या सासरिया में झूले जी
झुलो तो झुलवा दिजो अबके सावन में आवाँ जी ।

चूँकि सावन गीत वर्षा के गीत हैं अत: भाई-बहन के पावन प्रेम और युवाओं के प्रेम-प्रसंगों की पूर्णता इनमें समाई हुई है।

निमाड़ी क्षेत्र

निमाड़ी लोकसाहित्य में सावन के ऐसे गीत मिलते हैं, जिनमें बहन के द्वारा भाई को राखी बाँधने और भाई के द्वारा बहन को भेंट देने का उल्लेख है। यहाँ चौमासा तथा बारहमासा गीतों की भी प्रथा है। इनमें एक 'कृष्णचन्द्र का बारहमासा' पाया जाता है। गीत मे राधा कृष्ण को स्थान देकर अज्ञात लोककवि ने उसमें प्रेमरस भर दिया है। सावन में एक विरह गीत का कैसा चित्रण है --

झुकि आया बादल काळा पियाजी परदेस गया
सूरज का बैरी हो बादला जल का बैरी जम्माव
म्हारा बैरी हो सायबा नहि संदेसो पठाय
हउँ तो पनघट पर रोवती जाऊँ पिया की बाट
देस परायो भूमि आपणी नहि मिल जाण पहिचाण ।

इस मौसम में गोंड़ जाति के लोग 'ददरिया' गाते हैं। असम के आदिवासी वर्षा ऋतु में 'कचारी गीत' गाते हैं।

गुजरात

मलार के स्वर गुजराती मानस को भी छू गये हैं। अनुभूति, कल्पना और चिन्तन ने वर्षागीतों पर दुलार लुटाया है। गुजरात मे 'गरबा की बारहमासी' प्रचलित है - -

सखि लागो असाड़े मास प्रभु बन चाल्या रे
चाल्या चाल्या रे दुआरिकानाथ हरिमंदिर सूनो रे ।

अन्य बरसाती गीतों का विशेष प्रकार तो नहीं मिलता, किन्तु इस भाव पर आधारित गीत मिलते हैं- -

आषाढ़ बरसे एलिये गाज बिज घनघोर
तेजी वाद्या तरुवरे मधरा बोले मोर
मधरा बोले मोर ते मीठा
धन भूला साजन सपना मां दीठा
ते तमाची सुमरो रीसानी ढेलने मनावे मोर ।

बंगाल

बंगाल में बारहमासा गीत गाये जाते हैं, जिन्हें 'बारमाशी' कहते हैं। बंगला साहित्य के 'पल्लीगान' में और विजयगुप्त के 'मनसामंगल' में बेहुला की बारहमासी का वर्णन पाया जाता है। भारतचन्द्र के 'अन्नदामंगल' में भी बारहमासा मिलता है। इसमें प्रत्येक मास में होने वाले व्रतों का भी विवेचन होता है। मल्हार गीतों की स्मृति में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने बड़े भावपूर्ण चित्र खींचे हैं।

महाराष्ट्र

महाराष्ट्र प्रदेश की कृषकवधू का मेघ के प्रति प्रदर्शित किया गया अपनत्व भाव बड़ा सरस है। वह मेघ को कुछ प्रलोभन भी देती हैं कि तू यथासमय बरस जा। यदि मक्का पक गई तो तुझे पुरस्कार रूप में भुजबन्ध का आभूषण दूँगी।

उड़ीसा

उड़ीसा का वर्षा संबंधी एक गीत इस प्रकार है—

मेघुया अकासे बिजली खेलूछी
भंगा कुड़िया रे सीताया भालूछी महाप्रभु से
जायो हे लइखन बेगे बिलकु
आजी बाकु रामं कु निज घर कु महाप्रभु से
पवन बहुछी मेघ गरज् छी
अन्दार कुड़िया रे सीताया बरस् छी महाप्रभु से।

आकाश पर बादल छाये हैं और बिजली चमक रही है। टूटी फूटी झोपड़ी में सीता का मन उदास है। हे लक्ष्मण दौड़कर खेत को जाओ, राम को घर बुला लाओ। हवा चल रही है, बादल गरज रहे हैं। अँधेरी कोठरी में बैठी सीता का मन उदास है।

नेपाल

यहाँ भी बारहमासा गाने का रिवाज है। श्रावणी तीज के गीत भी गाये जाते हैं—

वर्ष दिन का तीजमा मैया लिन आए का
पठाउनुस् न राजै। माइत बरिले।

बिहार

बिहार प्रान्त में लोकगीतों का क्षेत्र पाँच बोलियों के बीच विभक्त है—भोजपुरी, मगही, मैथिली, अंगिका और वज्जिका। किन्तु मुख्य रूप से इनका क्षेत्र प्रायः तीन खण्डों में विभक्त हो जाता है— भोजपुरी, मगही और मैथिली क्षेत्र। अंगिका का क्षेत्र भागलपुर तथा उसके आसपास है। इसी तरह वज्जिका वैशाली तथा मुजफ्फरपुर के निकटवर्ती क्षेत्रों में प्रचलित है। इन दोनों बोलियों में प्रायः सभी प्रकार के लोकगीत पाये जाते हैं। यह दूसरी बात है कि इनका क्षेत्र सीमित है। अतः भोजपुरी आदि की अपेक्षा इन बोलियों के गीतों का कम प्रचार है। कजरी का भी सबसे अधिक प्रचार इसी कारण भोजपुरी क्षेत्र में ही है। कजरी के साथ-साथ बारहमासा, चौमासा आदि के गाने की प्रथा भी यहाँ है। यहाँ के कजरी गीतों का लालित्य अपने आप में अनूठा है—

कइसे खेले जाइबि सावन में कजरिया
बदरिया घेरि अइले ननदी।

और भी—

एकवा बगल करो एकवनवा
हरि मोरा भींजत होइहें ना।

मगध— मगध क्षेत्र में वर्षा ऋतु में कजरी के अलावा बरसाती एवं चौहट गीतों का प्रचलन है। 'बरसाती' गीत में इन्द्रदेवता का आह्वान किया जाता है। 'चौहट' गीत प्रश्नोत्तर शैली में स्त्रियों के दो समूहों द्वारा गाया जाता है। बारहमासा, चौमासा गीत भी यहाँ गाये जाते हैं।

मिथिला— मिथिला मे कजरी गीत 'मलार' गीत के रूप मे प्रचलित है। कजरी गाने की प्रथा मिथिला में नई है किन्तु मलार के बिना मिथिला का लोकसाहित्य सूना है। मलार पावस मे स्त्री-पुरुष दोनों गाते हैं लेकिन दोनों के गाने के ढंग अलग हैं। औरतें गाने के वक्त किसी साज-बाज की मदद नहीं लेतीं, वे इन्हें हिंडोले पर बैठकर गाती हैं और पुरुष साज-बाज की मदद से गाते हैं। एक मलार गीत इस प्रकार है

कारि कारि बदरा उमड़ि गगन माझे
लहरि बहे पुरवइया
मत बदरा बूँद-बूँद झहरह
घगए पलंग पर भींजत
कुसुम रंग सड़िया ।

उत्तर प्रदेश

उत्तर प्रदेश के बनारस, मिर्जापुर, अवध, व्रज, गढ़वाल, कुमाऊँ आदि स्थानों पर सावन के गीतों का अपना ही रंग है।

अवध क्षेत्र में सावन के महीने में कजली गाने की प्रथा है। प्रायः ये गीत झूला झूलते समय गाये जाते हैं। कजली की भाँति एक और प्रकार के गीत अवध में गाये जाते हैं, जिन्हें 'सावन' कहते हैं। इन गीतों का नाम महीनों के नाम पर ही रखा गया है। 'सावन' गीतों मे कहीं उल्लास है तो कहीं करुणा की अभिव्यक्ति है। बारहमासी, छमासा और चौमासा भी यहाँ के पावसकालीन गीत हैं, किन्तु इनके अनुसार बारहमासी गीतों का अन्य ऋतुओं में गाना भी निषिद्ध नहीं है। यहाँ झूला झूलते समय जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें 'सावन', 'बिरना' या 'कजरी' कहते हैं। ये गीत बहनें भाई को संबोधन करके गाती हैं

बजरि कइ छतिया माई तोरी
जेकरि बिटिया सावन ससुगरी
बलैया लेवेउँ बिरना ।

यहाँ सावन में पुरुषवर्ग आल्हा गाता है, जिसमें प्रायः वीर रस संबंधी कोई कथा चलती है। अवध की एक कजरी देखें—

सैंया विलमि रहे परदेसवा
सपनेहु दीख सुरतिया ना ।

कान्हा की लीलाओं से पवित्र व्रजभूमि में कहीं कहीं गाँव के चौपालों पर गरजते बादलों, चमकती बिजली, झनकारती झिल्ली और दादुरों के शब्द में किसानों का समूह एकत्रित होकर आल्हा या ढोला गीत गाता है।

सावन भादों के महीने में ये गीत रक्षाबन्धन की पूर्णिमा के दिन पूर्ण उत्कर्ष पर पहुँच जाते हैं। सावन के गीतों में यहाँ मल्हार, वर्षा वर्णन, पति वियोग, बारहमासा, झूला और प्रेम के गीत गाये जाते हैं।

व्रज में सावन के गीत 'मल्हार' कहलाते हैं। यहाँ के दो मल्हार देखें, इनमें कितना अर्थगांभीर्य है

चौकी तो चन्दन इन्दर राजा बैठनो जी
एजी कोई दूध पखारूँगी पाय।

मेघासिन रानी कित गई जी
रानी भैयन छाड़ी हैं बहिन
रानी आग इन धीर बँधाइयो
और बरसौ गहर गंभीर।

बरसाने का एक मल्हार भी ऐसा ही आकर्षक है -

एरी मुकुट झोंका लै रह्यो
एजी लै रह्यौ जमुना के तीर।

व्रज में सावन गीतों के अन्तर्गत 'मोरा' गीतों की स्वरलहरी बड़ी मनमोहक होती है---

भर भादों की मोरा रैन अँधेर
राजा की रानी पानी नीकरी जी
काहे की गगरी मोरा काहे की लेज
काहे जड़ाऊ धन ईडरी जी।

यहाँ सावन का 'पटका' भी बड़ा प्रचलित है -

सावन का महीना मेहा रिमझिम बरसे
ठंढी ठंढी बियार बादल बरसे हैं फुहारें।

व्रज में सावन के जो गीत गाये जाते है, उनमें पनिहारिन, नटवा, चन्दना, बिजैरानी आदि प्रबन्धगीत भी हैं। सावन के गीतों में यहाँ चन्द्रावली की कथा भी गाई जाती है। सावन के दिनों में चन्द्रावली एक चिड़िया से मायके संदेश भेजती है। उसका भाई उसे लिवाने आता है। मायके के रास्ते में चन्द्रावली के डोले को एक मुगल सिपाही रोक लेता है। चन्द्रावली एक चिड़िया से विनय करती है कि वह उसका संदेश ससुराल तक ले जाये। ससुराल से ससुर, जेठ और पति तीनों घोड़े पर चढ़कर उसकी सहायता को आते हैं किन्तु चन्द्रावली को स्वयं ही अपनी सहायता करनी पड़ती है।

चम्बा— चम्बा प्रदेश में सावन के महीने में गाये जाने वाले गीतों को **'कूँजड़ी गीत'** कहते हैं—

उड़ उड़ कूँजड़िये, वर्षा दे धियाड़े ओ
मेरे मायां जिन्दयां दे भेलें हो

वे मना याणी मेरी जान
उड़ उड़ कूँजड़िये, पर तेरे सूने के मढ़ावाँ ।

आदिवासियों के बीच आषाढ़ मास से ही पावस गीत आरंभ हो जाते हैं जिनमें वर्षा के आनन्द के साथ विरहिणियों की वेदना भी चित्रित है—

भरि गइले तलवा, मछरिया लगलि डांकइ
रे छैला चनवा, पै बदरा मेडराला
पुरुवा करेजा मे तीर अस समाला
हमको भुलाई तोई गइले परदेसवाँ ।

डोगरी गीतों में भी वर्षा के आनन्द के साथ वियोगिनी की पीड़ा पिरोई गई है -

रिमझिम बरसी
तुसें मारी कलेजे पड़छी
असें हत्थे पर पड़छी
ध्वाड़ी जिन्द नई तरसी
कुत्थै चलयो छोड़िऐ
मेरी नाजक जिन्दगी ।

कुरमाली क्षेत्र में वर्षा ऋतु में गाये जाने वाले गीतो में 'भादुरिया गीतां' का विशेष महत्त्व है। इनमें प्रवाह है, चपलता है साथ ही विरह-वेदना भी -

बरसे मेघ जाल, नाचत शिखी जाल
डसे बिरह भुजंगिनी ।

गढ़वाल में मात्र चौमासा तथा बारहमासा गाने की प्रथा है—

फागुण मैना फगुणेटु बाई
तीन मेरा स्वामी मुखड़ी लुकाई
चैत मास बुती जाला धान
मिन खरी खाये स्वामी का बान ।

कुमाऊँ में बारहमासा गीत को 'बारामासी' कहते हैं। यह गीत 'हुड़कियों' द्वारा गाया जाता है। इसमें बारहों महीने की विशेषता बताई जाती है—

सावन मासा गरजी गोयो मेघ
बरसना लागा सागरे तोला
भादोई भवन भयो घनघोरा
पिहु पिहु बोले बनका ई मोरा ।

कजरी की क्षेत्रीयता के संबंध में मिर्जापुर को विशेष स्थान मिला है —

लीला रामनगर के भारी
कजरी मिरजापुर सरनाम ।

बनारस और मिर्जापुर में तो कजरी के लिये रतजगा होता है, अखाड़े चलते हैं, मेले लगते हैं, उनमें कजरी दंगल होता है। दोनों स्थानों के नामों से संबद्ध एक कजरी गीत इस प्रकार है—

मिर्जापुर कइलऽ गुलजार
कचौड़ीगली सून कइलऽ बलमू ।

शरद ऋतु के गीत

ऋतुगीतों के रूप में पावस गीतों मे एक मादकता है, फागुन के गीतों में मस्ती है किन्तु शरद ऋतु के गीतों म एक अद्‌भुत शान्ति है। इस समय के गीतों में कहीं-कहीं सामन्तवादी भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। बुन्देलखण्ड के शरत्कालीन विरहा गीतों में मालिकों की प्रशंसा एवं सामाजिक संबधों के अनूठे चित्र मिलते हैं। वस्तुत: शरत्कालीन गीतों की सरलता, साहित्यिकता और सरसता अनुपम है। इन गीतों में जीवन के प्रत्येक पहलू के रंगारंग चित्र हैं जो मनोहारी, प्रभावशाली तथा मर्यादित हैं। शरद ऋतु के चित्रण का एक आधुनिक भोजपुरी गीत देखें -

आइल सरद रितु उगल अँजोरिया
दुधवा में लटके नहाइल नगरिया
सिहरि गइल सखि छतिया निरखि चाँद
पुरवा झटकि मिहरावे कोइलिया ।

(अर्जुन कुमार 'अशान्त')

टेसू के गीत

बुन्देलखण्ड मे शारदीय नवरात्र के दिनों में सायंकाल के समय बालकों के समूह तीन सरकण्डों को आड़े बाँधकर, उनके बीच म सरसों के तेल का एक जलता दीपक और एक सरकण्डे के सिर पर मिट्टी के खिलौने के समान मानवशीश रखकर, कुछ अपनी रचनाओं का पाठ करते हुए घर-घर माँगते हुए घूमते हे। इसे 'टेसू माँगना' कहते हैं --

मेरा टेसू यहीं अड़ा
खाने को माँगे दही बड़ा ।

उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद में टेसू का निम्न गीत प्रचलित है--

टेसू आए बावन वीर, हाथ लिहे सोने का तीर
एक तीर हम माँग लिया, चढ़ घोड़े सलाम किया
घोड़े घोड़े बन्द की डाढ़ी लागी बोका की
लाग गई त्रिलोका की
लाग लगौनी केन्हे पाई, पाई सारे डलुआ
डलुआ सारे मर गए तो पाय लई बछेड़ी
डिल्लिया के ओर छोर पड़े-पड़े भन्नाता है
जै गुरु पै जाता है
गुरु हमारे घोसिया, हम टेसू के मौसिया ।

मामुलिया गीत

बेरी, नीबू या नारंगी आदि कँटीले वृक्ष की डाली तोड़कर उसे फूलों, वस्त्रों से

अलंकृत करके बनाई गई लड़की का प्रतीक है मामुलिया। बुन्देलखण्ड की कुमारी बालिकाएँ भादों तथा क्वार के कृष्णपक्ष में मामुलिया का गीतयुक्त खेल खेलती है। इसके लिये कोई निश्चित तिथि या वार नहीं है। यह खेल सध्या समय खेला जाता है। आँगन के बीच गोबर से चौकोर लीपकर और चौक पूरकर बबूल के काँटों वाली हरी शाखा लगा दी जाती है, इसी को 'मामुलिया' कहते हैं। हल्दी और अक्षत से पूजा करके काँटों मे फूल खोंस दिये जाते है। भुने हुए चने, ज्वार के फूल, फूट, कचरिया आदि का प्रसाद चढ़ाकर बालिकाएँ उसकी परिक्रमा करती हैं। बाद में उसे उठाकर किसी तालाब या नदी में सिरा देती हैं। वे मामुलिया को पुष्पादि से सजाती हुई उसके गीत गाती है

मामुलिया के आ गए लिबौआ[१], झमक[२] चली मामुलिया
जहाँ जहाँ आजुल[३] जू के बाग, जहाँ मेरी मामुलिया
रानी आजी देखन गई बाग, सजाय ल्याई[४] मामुलिया
ल्याओ[५] चम्पा चमेली के फूल, सजाओ मेरी मामुलिया
ल्याओ घिया तुरैया[६] के फूल, सजाओ मेरी मामुलिया
जहाँ जहाँ काकुल[७] जू के बाग, जहाँ मेरी मामुलिया
रानी काकी देखन गई बाग बनाय ल्याई मामुलिया
ल्याओ चम्पा चमेली के फूल, सजाओ मेरी मामुलिया ।

झेंझी गीत

क्वार मास की नवरात्रि के बाद जब बालक टेसू गीत गाते हैं उस समय बालिकाएँ झेंझी गीत गाती हैं। कहा जाता है कि झेंझी नरकासुर दैत्य की कन्या थी। बब्रुवाहन या टेसू जब कुरुक्षेत्र का युद्ध देखने चला तो मार्ग मे झेंझी से उसकी भेंट हुई। टेसू ने उससे विवाह की प्रतिज्ञा की, किन्तु विवाह के पूर्व शरत्पूर्णिमा के अवसर पर टेसू का शिरोच्छेदन कर दिया गया।

झेंझी कच्ची मिट्टी का एक छोटा मटका होता है, जिसमें बगल मे जगह- जगह छेद होते हैं। इसे 'ढिरिया' भी कहते हैं। झेंझी के भीतर एक जलता हुआ दीपक रखा जाता है। बालिकाएँ सामूहिक रूप से झेंझी माँगने प्रत्येक घर में जाती हैं। झेंझी को वे एक जगह जमीन पर रख देती हैं और राख को जमीन पर डालकर हाथों से थपथपाती हैं

नारे नरवरगढ़ से चली बिटीना
झेंझी माँगन जाय
नारे पूछत पूछत चली बिटीना
कौन जसोदा की पौर
नारे जाइ खिलाये कुँवर कन्हैया
जेई जसोदा के लाल

---

१. लेने वाले, ससुराल ले जाने वाले, २. ठसक की चाल, ३. दादा, ४. लाई, ५. लाओ, ६. एक तरह की सब्जी, ७. काका।

थार भरे मोती लाई जसोदा
लेहु बिटीना भीख
इतने देति हौं अरज करति हौं
फिर पहराऊँगी चीर ।

पंद्रह दिन झेंझी खेलने के बाद पूर्णिमा की रात को टेसू और झेंझी का विवाह कर दिया जाता है।

उत्तर प्रदेश के उन्नाव जनपद में यह झेंझी गीत 'झुँझिया गीत' के नाम से प्रचलित है जो क्वार शुक्ल चतुर्दशी के दिन गाया जाता है। एक गीत इस प्रकार है-

मोर झुँझिया आउर माँगै
चाउर माँगै, मोग्ह सिगार माँगै
माँग भरे का सेंदुर माँगै
बाँह भरे का चूड़ी माँगै रड़िया माहुरिया माँगै
बेला भर चाउर माँगै ऊपर से एक बट्टी माँगै
मोरी झुँझिया चली परदेस कि ऐसो नहियाँ
कोऊ मोरा झुँझिया का रखि बिलमाय ।

दिवारी गीत

दीपावली के अवसर पर प्रायः अहीर-ग्वाले लोग दिवारी गाते हैं। इन गीतों में एक ही पद रहता है। यह एक निराला राग है जिसमें गीत गा लेने के बाद वाद्य बजाये जाते हैं

वृन्दावन बसबो तजो अर होन लगी अनरीत
तनक दही के कारने फिर बैंया गहत अहीर
ऊँची गुबारे बाबा नन्द की, चढ़ देखें जसोदा माय
आज बेरदी की भओ, मोरी भर दुपरे लौटी गाय रे ।

श्यामा-चकेवा या सामा-चकवा

छठ की समाप्ति के बाद कार्तिक महीने के शुक्लपक्ष में श्यामा-चकेवा के गीत गाये जाते हैं। श्यामा-चकेवा बालिकाओं का एक खेल है, जो बिहार के मिथिला क्षेत्र के कुछ खास गाँवों या नगरों में खेला जाता है। सांस्कृतिक दृष्टि से मिथिला क्षेत्र से प्रभावित होने के कारण भोजपुरीभाषी मोतिहारी जिले में भी इसके अभिनय का प्रचार है। कई स्थानों पर, विशेष रूप से बिहार के बाहर लोग इसका नाम भी नहीं जानते।

श्यामा चकेवा एक नाट्यगीत है। यह एक तरह का देहाती अभिनय है, जिसमें नाच भी किया जाता है। इसमें श्यामा और चकेवा खेल के प्रधान पात्र-पात्री हैं। श्यामा बहन है, चकेवा भाई। इनके अलावा इस खेल में छः पूरकपात्र और हैं—(१) चुंगला, (२) सतभइया, (३) खँड़रिच, (४) वनतीतर, (५) झाँझी कुत्ता और (६) वृन्दावन।

चुंगला—यह इस खेल का दिलचस्प पात्र है। 'चुंगला' का अर्थ है — दूसरे की निन्दा करके अपना उल्लू सीधा करने वाला। श्यामा-चकेवा के खेल का उद्देश्य भाई-

बहन के हृदय में विशुद्ध प्रेम का संचार दिखाना है। चुंगला अपनी कलुषित वृत्ति के कारण उस प्रेम में व्यवधान डालता है, इसलिये इस खेल में चुंगला की खिल्ली उड़ाई जाती है। मूर्खों की तरह चुंगला की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उसकी कमर में आर-पार छेदकर पाट के करीब सूत लगा दिये जाते हैं, जिसको श्याम-चकेवा खेलने वाली लड़कियाँ प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा करके जलाती हैं और निम्न गीत की बार बार आवृत्ति करती हैं---

चुंगला करे चुगली, बिलइया करे म्याउँ
धऽला चुंगला के फाँसी दीउ
जहँ हमार बाबा बइसे
तहाँ चुंगला चुगली करे
जहँ हमार भइया बइसे
तहाँ चुंगला चुगली करे।

सतभइया— श्यामा चकेवा से किसी खास भाई-बहन का ही बोध होता है, इसलिये इस खेल में 'सतभइया' नामक एक नये पात्र की कल्पना की गई है ताकि इस खेल में भाग लेने वाली सभी बहनों के भाइयों का गुणगान किया जा सके। इस खेल में 'सतभइया' की जो मूर्ति बनाई जाती है, उसकी आकृति मनुष्य की तरह होती है तथा संख्या सात होती है। 'सतभइया' का अर्थ होता है - सात भाई। इसी से सात भाइयों की मिट्टी से मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। इससे संबद्ध एक गीत इस प्रकार है -

साम चाको साम चाको अइहऽ हे
कूँर खेत में बइसिहऽ हे
सब रंग पटिया ओछइहऽ हे
ओहि पटिया पर कय कय जना सातो जना
एक एक जना के कय कय पुरि
एक एक जना के सात सात पुरि।

खँड़रिच— मिथिला के गाँवों में खंजन की जगह 'खँड़रिच' शब्द का प्रयोग होता है। खंजन शरद ऋतु का दूत होता है और इसी ऋतु में श्यामा चकेवा के खेल खेले जाते हैं। इसके आगमन पर मंगलगीत गाये जाते हैं।

वनतीतर—श्यामा-चकेवा के गीत नदी किनारे, खेतों या वनों में गाये जाते हैं, इसलिये वनतीतर नामक एक वनवासी पात्र की कल्पना की गई है। यह झाड़ी-झुरमुटों में ही रहता है।

झाँझी कुत्ता— गाँव के गृहस्थों के घर में एक पालतू कुत्ता होता है, जो परिवार की शोभा और उसका रक्षक समझा जाता है। श्यामा-चकेवा खेलने वाली लड़कियाँ वन, बागों और खेतों में जाते हुए कुत्ते को भी साथ ले लेती हैं ताकि जंगल के खूनी जानवरों से आत्मरक्षा की जा सके।

वृन्दावन—इसका आशय वनविशेष से है, लेकिन इसकी आकृति मनुष्य के मुख

जैसी बनाई जाती है और इसके शरीर में पतली-पतली लम्बी सींकें लगा दी जाती हैं। जब गीत गाती हुई लड़कियाँ वन, बागों और खेतों में जाती हैं तो इन सींकों में आग लगा देती हैं और गाती हैं -

वृन्दावन में आग लागल कोई न बुझावय हे
हमरा से कोन भइया तिनहि बुझावय हे।

उपर्युक्त छहों पात्रों को मूँज अथवा बाँस की चँगेरियों में रखकर श्यामा-चकेवा खेलने वाली लड़कियाँ उसमें दीपक जला लेती हैं और उन्हें सिर पर रखकर टोले-मुहल्ले तथा गाँव की परिक्रमा करती हैं। इसके बाद लड़कियाँ खेतों के किनारे तुलसी चौरे के निकट या किसी पेड़ की छाँह में बैठकर श्यामा-चकेवा के पात्रों को अपनी-अपनी चँगेरियों से निकाल कर जमीन पर रखती हैं और उन्हें हरी-हरी दूब की नन्हीं-नन्ही फुनगियाँ चरने को देती हैं। इस प्रकार पात्रों को चराने के बाद लड़कियाँ अपने-अपने घर लौट जाती हैं।

श्यामा चकेवा का खेल कार्तिक महीने के शुक्लपक्ष की सप्तमी तिथि से आरंभ होकर कार्तिक पूर्णमासी को समाप्त होता है। पूर्णमासी के दिन खेल में भाग लेने वाली बालिकाएँ केले के थंभ का बेड़ा बनाती हैं और अपने-अपने पात्रों को उस पर रख देती हैं। रास्ते में पात्रों के कलेवा के लिये मिट्टी के एक बर्तन में चावल, दूसरे में चूरा, तीसरे में मिठाई, दही रखकर बेड़े पर रख देती हैं। इसके बाद बेड़े को गाँव के निकटवर्ती तालाब या नदी में विसर्जित कर देती हैं। विसर्जन के समय यह गीत गाया जाता है-

सामा हे, चकेवा हे
उड़ि उड़ि खेत में रहिहऽ हे
ढेंपा फोरि फोरि खइहऽ हे
ओस पी पी रहिहऽ हे
हमरा भाई के आसीस दीह
अगिला साल फेरि अइहऽ हे।

इस तरह के गीत श्यामा-चकेवा के विदाई गीत कहे जाते हैं। इन गीतों में करुण रस प्रधान होता है। विदाई गीत के साथ श्यामा-चकेवा नामक गीतिनाट्य का सरस एवं भावपूर्ण अवस्था में समापन होता है। इस गीतिनाट्य में न तो किसी वाद्ययंत्र की आवश्यकता पड़ती है, न ही प्रदर्शन के लिये किसी मंच की। गाँव के बाहर का खेत, बगीचा, मैदान या नदी के किनारे ही इसका अभिनय किया जा सकता है। डलिया में रखी हुई विभिन्न पक्षियों की प्रतिकृतियाँ और कलात्मक ढंग से गीत गाने वाली लड़कियाँ ही इस आयोजन का पात्र बन जाती हैं। गाते समय लड़कियों के दो दल हो जाते हैं। गीतिनाट्य का यह प्रदर्शन अनुष्ठानपरक है।

श्यामा-चकेवा के गीतों में भाई-बहन का अनुराग झलकता है। इसी आशय का एक गीत देखें—

माई नदिया के तीरे-तीरे
चकवा भैया खेलय सिकार

कहि पठाओ माई हे
खररिच बहिनो के समाद
गे माई भैया ऐलन मेहमान
कोठी नाहीं आरव चउरा
पलवटवे नाहीं बीड़ा पान
केहि विधि राखब गे माई
चकवा भैया करे मान ।

किसी विद्वान् का कथन है कि स्कन्दपुराण में श्यामा-चकेवा का उल्लेख है। उसमें यह बताया गया है कि श्यामा के पिता कृष्ण हैं। उन्हें किसी दुष्ट ने बताया कि श्यामा किसी मुनि से प्रेम करती है। पिता ने शाप दिया कि वह श्यामा पक्षी हो जाये। श्यामा के भाई शाम्ब ने कार्तिक पूर्णिमा के दिन उसे जाल से छुड़ाया। श्यामा के पति का नाम चारुवक्त्र (चकेवा) था। इससे स्पष्ट होता है कि श्यामा-चकेवा में पति-पत्नी का संबंध था, भाई-बहन का नहीं। तथ्य जो भी हो, किन्तु यह सच है कि मूलतः इस कथा में भाई-बहन का प्रेम वर्णित है। श्यामा चकेवा के गीतों को विषयवस्तु भी भाई बहन से ही संबंधित है—

पनवा जे खएलऽ हो भइया
पिकिया देलऽ हो नेराय
मेहो पिकिया अएलइ हे भइया
जमुनवा केर हे बाढ़
ओही पार चकवा भइया
खेलय हे सिकार
एही पार खररिच बहिनो
रोदना हे पसार ।

बिलवारी गीत

ये गीत बुन्देली एवं बघेली क्षेत्र में शरद-ऋतु में कृषिकार्य करते समय गाये जाते हैं। इन गीतों के विषय प्रेमभावना, दाम्पत्य आदि हैं--

दैहों दैहों कनक उरदार
सिपहिया डेरा करो मोरी पौंर
अरी ओरी गुइयाँ
कहाँ गए तोरे जेठ ससुर
औ कहाँ गये तोरे घरवारे
तुम लरकिनी कां रहत अकेली
ऊँचे महल दियना बारे
दूर गये मोरे ससुर जेठ
परदेस गये घरवारे

सास गई मायके, ननद गई सासरे
हम घर रहत अकेली
ऊँचे महल दियना बारे
अरे हाँ रे सिपहिया
डेरा करो मोरी पौंर में ।

दादर

बघेलखण्ड में शरद ऋतु में 'दादर' गाने की प्रथा है। ये दो प्रकार के होते हैं --

(१) **सामान्य दादर** जो सामूहिक रूप से घर में गाये जाते हैं -

फूलझरनी होइ गई देहिया हमार
पहिले लिबौआ ससुर मोरे आये
हो कोइली रंग होइ गई देहिया हमार
दूसरे लिबौआ जेठ मोरे आये
अरे गेहुँआ रंग होइ गई देहिया हमार
तीसरे लिबौआ बलम मोरे आये
फूल रंग होइ गई देहिया हमार ।

(२) **गेलहाई दादर** जो राह चलते गाये जाते हैं। इनमे राम, सीता तथा कौशल्या का प्रसंग बहुधा आता है---

अंगने राम रथ साजई हो
कलपति कौशिल्या ।
राम वन जइहीं पियासन मरि जइहीं
लोटा करोला संग साजई हो
कलपति कौशिल्या ।

तूरि बअत (शरद और शिशिर)

पतझड़ के बाद सारी कश्मीर घाटी में फूलो और फलों की भरमार हो जाती है। शरद ऋतु के आरंभ में एक प्रेमिका सूर्यमुखी से कहती है---

सुलि फोलखो गुलि आफ़ताबो
सगहनावथ दाधि के आबो लो
चोन रंग कन्य गमन कोरमुत ज़र्द
तम्यि गमकुई छुय तबहताबो लो
छुय सीनस कमि कीनह गोमुत दाग
कवा ज़रदी छय हरदह ब्रोंह प्येमिच
बरह गछनस छुई इज़्ज़तराबो लो ।

---सूर्यमुखी, तुम फूले। आ गले लगाऊँ। सींचूँ दूध से और नयन जल से। बोलो क्यों हो रंग विहीन? वियोग में तेरा हृदय दीन? ईर्ष्या ने मन किया मलीन? दूर अभी

शरत्काल, होगा जब वनस्पति का हबस, हुए अभी क्यों पीले? दु:ख पाकर ही तुम फूले?

कांगरी गीत

कश्मीरी कांगरी के भरोसे सर्दी में जीवित रहते हैं। कम्बल या गर्म कुर्ते के नीचे वे कांगरी रखते हैं, जिससे गर्मी पहुँचती है। कांगरी को संबोधित करते हुए एक स्त्री कहती है- -

माघ ओवुय द्राग वोथुय कांगरी
फागुन ओवुय जागुन चोय कांगरी
चिथर ओवुय मुथुर प्योय कांगरी
बह्यक ओवुय रह्यक कत्यी कांगरी
जेठ ओवुय ब्रेठ गयरव कांगरी
हार ओवुय लार लाजिय कांगरी।

— अतिशीत माघ का महीना आया और तेरा मिलना कठिन हो गया। फागुन आया तो मैंने तेरे विरुद्ध षड्यन्त्र रचा। चैत की जलफुही में तेरे साथ बुरा बर्ताव करने लगी। वेशाख की हवा में तू क्या करेगी कांगरी? जेठ मास में तेरी रही-सही बुद्धि भी चली गई और आषाढ़ की गर्मी में लट्ठ लेकर तेरे पीछे पड़ गई।

आदिवासी क्षेत्र में गाया जाने वाला शिशिर ऋतु का एक गीत इस प्रकार है। इसे **'शीत गीत'** की संज्ञा दी गई है—

माघ कऽ लुक्की[१] अस दीन[२] भइल
तबउ न सुहाइ रे
राति पड़े पाला हाथ ठिठुरल जाइ रे
ससुवा पथावै[३] हमसे गोबरा
ननद हेरावइ[४] हमसे ढील[५]
बिछुवा[६] कऽ भार ले के
रतिया कग्मा गाऊँ मैं ना रे
तोर सुधि बचपन कऽ साथ बुलावइ रे
मतरा[७] कऽ बोली कपार[८] मोर खाइ रे।

इस गीत में विरहिणी की मनोदशा एवं प्रिय की अनुपस्थिति में सास-ननद द्वारा उसकी उपेक्षा का यथार्थ चित्रण किया गया है।

वसन्त ऋतु के गीत

वसन्त ऋतु में गाये जाने वाले गीतों में होली और चैती विशेष उल्लेखनीय हैं।

फाग या होली के गीत

'फाल्गुन' शब्द 'फल्' धातु में 'गुक्' प्रत्यय लगाकर बना है। फल्गु › फग्गु ›

---

१. तिनके की आग, २. दिन, ३. उपले बनवाती है, ४. ढुँढ़वाती है, ५. जूँ, ६. पैर का आभूषण, ७. सास, ८. सिर।

फागु > फाग। यह महीना लगभग फरवरी-मार्च में पड़ता है। फाल्गुन मास में गाये जाने के कारण इस समय के गीतों को 'फाग' कहा जाने लगा।

होली गीतों के नामकरण के लिये एक कथा प्रचलित है। प्राचीन काल में हिरण्यकशिपु नाम का एक दुष्ट राजा था। उसको प्रह्लाद नामक एक भक्त पुत्र हुआ। चूँकि पुत्र की भगवद्भक्ति से पिता प्रसन्न नहीं था, इसलिये उसने अपने पुत्र को बार-बार मारने का प्रयास किया किन्तु भगवान् विष्णु पर अटूट आस्था के कारण प्रह्लाद की बार-बार रक्षा होती रही। अन्त मे हिरण्यकशिपु ने अपनी बहन होलिका को ऐसा वस्त्र ओढ़ाकर, जिसे अग्नि नहीं जला सकती थी, प्रह्लाद के साथ अग्नि में बिठाया। किन्तु ईश्वर की कृपा से वह वस्त्र उड़कर प्रह्लाद पर आ गया तथा होलिका भस्म हो गई। बाद में नृसिंह रूप धारण कर भगवान् ने हिरण्यकशिपु का वध किया और विश्व का उद्धार किया। यह कथा पाप पर पुण्य की विजय का प्रतीक है।

लोकजीवन में यह पर्व 'होलीदण्ड' या 'प्रह्लाद' नाम से भी प्रसिद्ध है। इसे 'नवान्नेष्टि का यज्ञस्तंभ' भी माना जा सकता है। होलिकादहन को नवान्नेष्टि यज्ञ के रूप में मानने का एक कारण है। इस अवसर पर नवीन धान्य यानी जौ, गेहूँ और चने की फसल पककर तैयार हो जाती थी। हिन्दू लोग यज्ञदेवता को अर्पण किये बिना नवान्न का उपयोग नहीं करना चाहते थे। अत: फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को समिधा स्वरूप उपले आदि एकत्र करके उसमें यज्ञ विधि से अग्नि का स्थापन, प्रतिष्ठा, प्रज्वलन और पूजन करके जौ-गेहूँ के बालों की आहुति दी जाने लगी और हुतशेष धान्य को घर लाकर प्रतिष्ठित किया गया।

होली के विषय में एक और कथा प्रचलित है। चक्रवर्ती सम्राट् रघु के राज्य में एक प्रचण्ड राक्षसी ढुण्ढा बड़ा उत्पात करने लगी थी। वह माली नामक राक्षस की पुत्री थी। वह नित्य छोटे-छोटे बालकों का रक्त चूस जाती थी। बालक धीरे-धीरे सूखकर ठूँठ हो जाता और अन्त में मृत्यु को प्राप्त हो जाता था। वस्तुत: शिव की आराधना करके और उनका वरदान पाकर ही वह तीनों लोकों को आतंकित करने लगी थी। उसके अत्याचार से धरती काँपने लगी। उन्हीं दिनों कहीं से देवर्षि नारद आ पहुँचे। सम्राट् रघु ने उनसे इस राक्षसी के उत्पात से छुटकारा पाने का उपाय पूछा। नारद ने उन्हें होलिका को प्रसन्न करने के लिये 'सर्वदुष्टापह' यज्ञ करने का परामर्श दिया। किन्तु इस यज्ञ का सारा आयोजन बालकों के द्वारा पूरा होना था। पूरे राज्य में घोषणा कराने के बाद बालकों का झुण्ड एकत्र होने लगा। बनाई गई विधि के अनुसार उन्होंने अग्निस्वरूप शमी की लकड़ी से होलिका की प्रतिमा तैयार की और उसे उत्साहपूर्वक भूमि पर प्रतिष्ठित किया। चारों ओर घास-फूस और लकड़ियों का ढेर लगा दिया गया। होलिका की पूजा, प्रदक्षिणा के बाद बालकों ने आग जलाई और विजय का उद्घोष किया। अग्नि की लपट देख और शोर सुनकर ढुण्ढा राक्षसी घबरा कर राज्य छोड़कर भाग गई।

ढुण्ढा को सन्धिजा और समशीतोष्ण का प्रतीक भी माना गया है। वस्तुत: यह राक्षसी नहीं, दो ऋतुओं का सन्धिकाल है। होलिकादहन का धुआँ तापवर्द्धक और कीटाणुनाशक है तथा नन्हें बालकों का उद्घोष मन के विकारों का अन्त है।

होलिका-व्रत वाले दिन उसकी ज्वाला देखकर ही भोजन करने का शास्त्रीय विधान है। ऐसी भी मान्यता है कि इसी दिन चन्द्रमा प्रकट हुआ था। अत: चन्द्रोदय होने पर उसका पूजन करना चाहिये। चन्दमा सोमरस का दाता होता है। वह फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा की रात को काम के उद्रेक में सहायक होता है। उसी समय से ज्यों-ज्यों चन्द्रकला क्षीण होती है, त्यों त्यों कामोद्रेक कम होता है। होलिकादहन इसलिये भी महत्त्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त होलिकाग्नि वायुमण्डल को कीटाणुओं से मुक्त करने वाली होती है। धुआँ-सेवन तथा मुक्त हास्य स्वास्थ्य के लिये परम हितकारी होता है। धूल-भस्म के बाद स्नान से शरीर की सफाई हो जाती है और रंग-गुलाल तथा अबीर कफ निवारण में सहायक होते हैं। यह उत्सव स्वास्थ्यवर्द्धक होता है। इसलिये इस उत्सव को स्वास्थ्य-उत्सव, कृषकोत्सव और नवान्नेष्टि यज्ञ भी कहा जाता है।

होलिकादहन के दिन सायंकाल भगवान् को हिंडोले में विराजमान कर उनका पूजन करके झुलाया जाता है और आरती करके यथास्थान विराजमान करने के बाद भोजन किया जाता है। इस उत्सव को दोलयात्रा या दोलोत्सव कहते हैं, जो कलियुग का एक महत्त्वपूर्ण उत्सव है। यह दोलयात्रा भगवान् श्रीकृष्ण की होती है। कहते हैं - दोलस्थित कृष्ण के दर्शन से सकल पाप नष्ट हो जाते हैं। स्कन्दपुराण में दोलोत्सव के संबंध में कहा गया है कि इस उत्सव में गोविन्द स्वयं जनगण के आमोद प्रमोद के लिये क्रीड़ारत होते हैं। सोलह स्तंभों वाला वेदिकायुक्त मण्डप इस समय बनाया जाता है जिसे चारु चन्द्रातप, माला, चामर तथा ध्वज बन्दनवार से सुसज्जित और सुशोभित किया जाता है। वेदी पर श्रीकृष्ण की प्रतिमा स्थापित की जाती है। उन्हें विविध भाव से पूजा जाता है। तूर्यनाद, शंखध्वनि, जयशब्द, स्तोत्रपाठ, ध्वज-पताका, चामर और व्यजन आदि तरह तरह के उपकरणों से महोत्सव होता है। श्रीगोविन्द को हिंडोले में स्थित कर झुलाया जाता है।

होली या दोलयात्रा के संबंध में एक अन्य कथा इस रूप में प्रचलित है कि भगवान् विष्णु ने होलिका या शंखचूड़ का वध कर होलिकोत्सव किया था। होलिकादहन का उत्सव कहीं-कहीं स्मरशान्ति का प्रतीक भी माना जाता है।

इस दिन चतुर्दश मनुओं में से एक मनु का जन्म माना जाता है, इसलिये यह मन्वादि तिथि भी है। कुछ शास्त्रकारों ने इसे अग्नि का प्रतीक स्वरूप मानकर उसका पूजन बताया है।

होली के विकास सूत्र को इस प्रकार चार खण्डों में विभक्त किया जा सकता है -

(१) होली की परम्परा वैदिक काल से लेकर हमारे सांस्कृतिक विकास से जुड़ी है, क्योंकि होली वस्तुत: कृषियुग की देन है। वैदिक ऋचाओं और संहिताओं से ज्ञात होता है कि हमारे यहाँ जितने भी उत्सव और पर्व मनाये जाते हैं, उनका संबंध किसी न किसी रूप में ऋतु-परिवर्तन और फसल कटने से अवश्य रहता है। फाल्गुन पूर्णिमा को वैश्वदेव पर्व की पवित्र अग्नि में भूना जाने वाला अन्न 'होलक' कहलाया। इसका अपभ्रंश 'होला' और उससे संबंधित उत्सव 'होलिकोत्सव' कहलाया, जो बाद में होली नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(२) होली के साथ कुछ पौराणिक गाथाएँ जुड़ी।

(३) होली का उत्सव संस्कृत साहित्य में 'वसन्तोत्सव' और 'मदनोत्सव' के रूप में वर्णित है।

(४) विभिन्न प्रदेशों की होला संबंधी सांस्कृतिक परम्परा से भी होली के विकास का चित्र स्पष्ट होता है।

वसन्तोत्सव पर पहले नाटक खेले जाते थे। होली मे नृत्यगीत, अभिनय होते थे। मुगलकाल में इस परम्परा में कुछ अवरोध हुआ था। आयुर्वेद में भी होली का महत्त्व माना गया है। आज होली के उत्सव के साथ नई नई परम्पराएँ जुड़ गई है।

पंडितो द्वारा निर्धारित शुभमुहूर्त में विधिवत् प्रदक्षिणा करके लोग होलिकादहन करते हैं। इसमें धूप, जौ आदि हवन द्रव्य भी डाले जाते है, जिससे चतुर्दिक सुगन्ध फैलती है। महिलाएँ अपने बच्चों के शरीर मे उबटन लगाकर उसके निकली हुई मैल होली की अग्नि में इस विश्वास के साथ डालती है कि पुराने संवत् के साथ बालक के शरीर के सारे रोग भस्मीभूत हो जाएँगे और वह अगले वर्ष पूर्ण नीरोग रहेगा। जिस समय होली जलती रहती है, उस समय गाँव के लड़के सूखी पत्तियों को लाठी में बाँधकर अथवा जलती लकड़ी को लेकर घुमाते है, जिसे 'लुकाड़ी' या 'लुकाठी भाँजना' कहते है। यह पुरातन प्रथा शायद वीरता प्रदर्शन के लिये है।

होलिकादहन के दिन लोग किसी निश्चित स्थान पर लकड़ियाँ इकट्ठी करके जलाते हैं। लड़के घर घर जाकर लकड़ियाँ माँगकर लाते हैं, इसे समत या संवत् जलाना भी कहते है। मगध, भोजपुरी आदि बिहार के क्षेत्रों में इसे संवत् जलाना इसलिये कहते हैं कि इसके बाद चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को नये वर्ष का आगमन माना जाता है। होलिकादहन के लिये लोग बहुत पहले से किसी गाँव या शहर के चौराहे पर लकड़ी, काठ, पत्ता, गोइठा, कुण्डी, भूसी, बल्ली, बाँस आदि इकट्ठे करने लगते हैं। जलावन की इस सामग्री को कभी कभी लोग चोरी से भी एकत्रित करते हैं -

चोरी करि होरी रची
भई तनक में छार।

फाल्गुन पूर्णिमा की रात्रि को होली का जलाया जाना अपना एक महत्त्व रखता है। कड़ाके की ठण्ड के बाद यह पहली पूर्णिमा रात्रि होती है जब लोग घर के बाहर इकट्ठे होकर आनन्दोत्सव मना सकते हैं। पुराने समय में शिशिर के अन्त मे खेतों में फसल तैयार होने के बाद 'सस्येष्टि' नामक कृषियज्ञ किया जाता था। इस यज्ञ द्वारा किसान नई फसल का कुछ हिस्सा अग्नि में अर्पित करने के बाद ही उपयोग में लाता था। आज भी संभवत: उसी यज्ञ के अवशेष के रूप में होलीदहन के समय जौ और चने को आग में भूनकर अपने घर ले जाकर प्रसाद रूप में खाते हैं। गाँवों में इस अग्नि मे विशेष रूप से गेहूँ की बाली भूनने की प्रथा है।

इस दिन गाँव के सभी वर्ग के लोग मजहबी कैद को तोड़कर इकट्ठे होते हैं। इस समय गाँव के गवैयों की संगीत महफिलें जमती हैं। वे ढोल, डफ, मृदंग, झाल के स्वर में

स्वर मिलाकर एक विशेष गतिमय लय में गाते हैं।

अगले दिन प्रातः जब होली जल चुकी होती है तो उसकी राख को बड़े व बच्चे सब अपने अंग पर लगाते है। बच्चों के लिये थोड़ी-सी राख को उठाकर घर के लिए रख लिया जाता है। इससे बच्चों पर प्रेतादि की छाया का प्रभाव नहीं पड़ता।

होली की अग्नि के शान्त होने के साथ ही दूसरे दिन यानी चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को धुड़ेरी, धुरखेली, धुलण्डी अथवा धूलिवन्दन होता है। पुरुष और लड़के सड़क पर 'धुरखेली' आरंभ करते हैं। वे परस्पर विविध रंग, मिट्टी, कीचड़, धूल आदि लपेटते, गाली गाते और स्वाँग बनाते है। इन गालियों का कोई बुरा नही मानता। गालियों को लोग 'कबीर' संज्ञा से भी जानते हैं --

अररर भइया सुनऽ कबीर
गाली के भइया बुरा न मनिहऽ
होली है भई होली है।

होली के अवसर पर गाये जाने वाले गीतो को 'जोगीड़ा' कहा जाता है, जिनमें प्रायः अश्लील शब्दों का भी प्रयोग होता है।

होली चूँकि फसल का पूर्वकाल है अतः इसमें सृजन का तत्त्वदर्शन होता है। संभवतः इसीलिये होली में नग्नता और अश्लीलता का प्रदर्शन होता हो, किन्तु 'कबीर' और 'जोगीड़ा' का स्वस्थ रूप भी कहीं कहीं देखा जाता है। इसमें प्रश्नोत्तर होते हैं।

होली की मस्ती में हास परिहास के लिये बड़े छोटे, ऊँच नीच का भेद नही रह जाता। रंग खेलने के दिन पुरुष लोग विभिन्न रूप बनाकर झुण्ड में होली खेलते हैं। उनमें से किसी को सहरा और मौर आदि बाँधकर, फटे कपड़े पहनाकर, गधे पर बिठाकर निकालते हैं, जिसे 'होली का भड़ुआ' कहते हैं। हास-उल्लास की अभिव्यक्ति का यह अनोखा साधन है। घरों में स्त्रियाँ भी होली खेलती हैं।

होली का यह हुड़दंग सबेरे से दोपहर तक चलता है। इस दिन भोजन के लिये विशिष्ट पकवान बनते हैं। स्नान और भोजन के बाद सायंकाल सूखा रंग खेला जाता है। गाँव के लोग एक दूसरे के गले मिलते है और गुलाल, अबीर लगाते है। छोटे लोग बड़ों के पाँव पर अबीर लगाकर उनका आशीर्वाद लेते हैं। इस दिन प्रायः लोग पुराना वैर भूलकर आपस में गले मिलते हैं।

गाँव में किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के यहाँ इस दिन फाग गाया जाता है। भंग छनती है। इस दिन फगुआ गाने का दृश्य बड़ा मनोहारी होता है। फाग के गवैये बहुधा दो दलों में झाँझ-मृदंग की थाप पर होली गाते हैं।

होली ऋतु-परिवर्तन का त्योहार है। शीतकाल की जड़ता के बाद धरती पर ऋतुराज बसन्त आता है, जो धीरे-धीरे ग्रीष्म में परिवर्तित होता है। इस समय की वसन्ती बयार और गुलाबी जाड़ा एक विचित्र मादकता जगाते हैं। यह दो ऋतुओं के सम्मिश्रण का महीना है, जिस समय हल्के होकर कुछ मनोरंजन करने की इच्छा होती है। इस रंगीन महीने में मानव के अन्तर का उल्लास होली की धुन में गूँज उठता है----

फागुन आया मोद बढ़ाया, फरक उठे अंग अंग
होरी गाओ फाग मनाओ और बजाओ चंग ।

होली का प्रभाव वसन्त पंचमी के दिन से आरम्भ हो जाता है किन्तु यह मुख्यतः फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा और चैत्र कृष्ण प्रतिपदा के दिन ही मनाई जाती है। किन्तु कहीं-कहीं होली पर्व के अगले मंगल तक होली का प्रभाव होता है, जिसे 'बुढ़वा मंगल' कहते हैं। होली के गीतों में उल्लास और मस्ती के कारण बूढ़ों का भी उत्साह दूना हो जाता है—

फागुन मस्त महीना हो लाला
फागुन में बुढ़ऊ देवर लागे ।

होली की स्थानीयता

हर प्रदेश मे अपने अपने रीति रिवाजो के अनुसार अलग अलग धार्मिक कथाएँ होली पर्व के साथ जुड़ी हैं। इस तरह एक होली के अनेक रूप हो गये हैं। वैसे तमिलनाडु, केरल, आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, जम्मू-कश्मीर आदि कुछ प्रदेशों को छोड़कर सारे देश में होली के रंगों की बहार समान रूप से होती है।

कमोवेश यह उत्सव स्थायी जनरुचि तथा सांस्कृतिक भावना से व्यवस्थित होता है। इसलिये देश के अलग अलग भागो मे होली मनाने की विभिन्न रीतियाँ हैं। किन्तु विभिन्न धर्म और संप्रदाय वाले इस देश में होली एक ऐसा त्योहार है, जो किसी जाति के बन्धन को नही मानता।

आमतौर पर अभिजात्य वर्ग द्वारा दो दिन की होली मनाई जाती है—एक दिन जलाने वाली और दूसरे दिन खेलने वाली। कानपुर में रंगों का खेल कई दिन तक चलता है। व्रज में तो होली पूरे सत्तर दिन यानी वसन्त पंचमी से लेकर चैत्र पूर्णिमा तक किसी न किसी रूप में खेली जाती है।

असम, मणिपुर, बंगाल प्रदेशों मे और भील, संथाल, आदिवासी तथा मछुआरे वर्ग मे होली-नृत्य में पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी शामिल होती हैं। बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, गुजरात तथा अन्य प्रदेशों मे होली-नृत्य मे मुख्यतया पुरुष ही भाग लेते हैं। स्त्री का स्वाँग भी पुरुष ही करते हैं।

भारतीय जनों ने होली आदि उत्सवो के साथ प्राचीन परम्पराओ, धार्मिक एवं नैतिक भावनाओं तथा कथा-कहानियों का समन्वय कर उसके स्वरूप को बल प्रदान किया है। इसी कारण हर प्रदेश के लोगों की अलग-अलग मान्यताएँ हैं।

बिहार

बिहार के गया क्षेत्र में होली के एक दिन बाद तक रंग का त्योहार होता है, जिसे 'झूमटा' कहते हैं। इस दिन गंगाजली में रंग भरकर बैलगाड़ी में लादते हैं, फिर जुलूस के साथ बैलगाड़ी सड़क पर चलती है। पिचकारी में गंगाजली से रंग भरकर चारों ओर डाला जाता है। होली के बाद वाले मंगलवार को भी मगधक्षेत्र में इस त्योहार में शामिल माना जाता है, जिसे 'बुढ़वा मंगल' कहते हैं। इस दिन सूखे रंग-गुलाल का प्रयोग होता है।

मिथिला में फाग या होली का त्योहार बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। होलिकादहन के बाद धुलैंडी के दिन चारों ओर मस्ती भरा वातावरण हो जाता है। मिथिला की होली पर वैष्णव धर्म का प्रभाव दिखाई पड़ता है- --

व्रज के बसइया कन्हैया गोआला
रंग भरि मारय पिचकारी
वइ पार मोहन लहँगा लुटै सखि
एइ पार लूटथि सारी ।

जनकपुर के रंगमहल में राम लक्ष्मण दोनों भाई गुलाबजल से पिचकारी भरकर एक दूसरे को सराबोर कर रहे हैं -

जनकपुर रंगमहल होरी
खेलथि दशरथलाल
लय पिचकारी राम लखन दोउ
भरि मुख मारत गुलाल ।

मिथिला में होली के गीतों को 'फाग' कहते है। इन गीतों की गति, उनकी भाषा का बन्ध और स्वरों का सन्धान अत्यन्त मधुर होता है। मिथिला में गवैयों की टोलियाँ गाँव भर में फिरती हैं। इन लोकगीतों मे 'कबीर' एक प्रतीक बन गया है। इनमें शृंगार, आनन्द, उछाह के अलावा रतिक्रीड़ा का भी वर्णन रहता है

गोरी कहँमा गोदउलू गोदना
बहियाँ गोदउली छतिया गोदउली
पिया के पलंग पर रोदना ।

भोजपुर प्रदेश में फाग या फगुआ गाने का दृश्य अत्यन्त मनोहर होता है। गाँव के मुखिया या प्रतिष्ठित व्यक्ति के द्वार पर गाँव की टोली आती है और दो दलों में विभक्त होकर बैठ जाती है। ढोलक, झाँझ, जोड़ी की ध्वनियों के बीच दोनों दलों के गीत गूँजते हैं। इन्हें 'ताल ठोंकना' भी कहते हैं। यहाँ पुरुष स्वाँग भी बनाते हैं। बिहार के मगही, अंगिका एवं वज्जिका भाषा भाषी प्रदेशों में भी होली गीतों का प्रचलन है। यहाँ सम्मत जलाकर लोग उसमें मिष्ठान्न, अन्न आदि अग्निदेवता को अर्पित तो करते हैं, किन्तु उसे प्रसाद रूप में ग्रहण नहीं करते। मगध में 'जोगीड़ा' और 'कबीर' गाने की भी प्रथा है।

उत्तर प्रदेश

पूर्वी उत्तर प्रदेश में होलिकादहन को 'सम्मत बाबा' कहते हैं। होलिकादहन में सम्मत अर्थात् पूरा संवत्सर जल जाता है। लकड़ी, उपले, घास फूस के ढेर, वृक्ष की डालें सभी सम्मत बाबा की चिता में भस्म होते हैं। प्रायः लोग उस राख को अपने सिर पर लगाकर धूलिवन्दन करते हैं। इस अवसर पर ढोलक, झाल के साथ धोबी, चमार और अहीरों का नृत्य देखते ही बनता है। यहाँ होलिकादहन के दिन सायंकाल स्त्रियाँ शृंगार करके साथ में जौ की बालें, कच्ची कूकड़ी, पानी का लोटा, चावल, हल्दी और गोबर की

बनी ढाल, तलवार आदि ले जाती हैं। होली के स्थान पर बैठकर वे कच्ची कूकड़ी का तागा पूरती हैं तथा हल्दी चावल से पूजन करती हैं।

लड़कियाँ दो दलों में बँटकर आमने सामने खड़ी होती हैं। बीच में एक रेखा खींच ली जाती है। एक बार एक ओर की लड़कियाँ कन्धा पकड़ कर गाती हुई रेखा तक आती है और फिर गीत गाती हुई वापस चली जाती हैं। दूसरे पक्ष की लड़कियाँ भी इसी प्रकार करती हैं। रात में होली जलाई जाती है। पुरुष इसकी परिक्रमा करके इसमें जौ की बालें भूनते हैं और गाँव की जय बोलते हैं।

उत्तर प्रदेश के पर्वतीय अंचल में होली के दो रूप होते हैं--खड़ी होली और बैठकी होली। सामूहिक रूप से घूमकर या खड़े होकर गाई जाने वाली होली 'खड़ी' कहलाती है। इनमें शास्त्रीय रागों की झलक के साथ लोकसंगीत की प्रधानता होती है। बैठकी होली में ब्रजभाषा के गीत शास्त्रीय पद्धति से विलम्बित लय में गाये जाते हैं। बैठकी होली के गायकों को 'बैठक्यार' और खड़ी होली वालों को 'होलक्यार' कहते हैं। पूस की संक्रान्ति से बैठकी होली के गीत गाये जाने लगते हैं। इन गीतों में विशेष रूप से राग कल्याण, खमाज, झिंझोटी, काफी, सहाना, बिहाग, देस, परज, जैजैवन्ती आदि का प्रयोग किया जाता है।

खड़ी होली शिवरात्रि से आरम्भ होती है। रात होते ही गाँव घर के चौपालों में होलक्यार आग जलाकर 'चौताला' गीत गाते हैं।

ब्रज की होली

ब्रज प्रदेश में वसन्त पंचमी से ही होली की बहार उठती है। फागुन सुदी दूज को हरगुल्ली (गृहहोली) रखी जाती है। संध्या समय आटे की टिकुलियाँ रखी जाती हैं। होली जलने से पूर्व स्त्रियाँ उसे पूजने जाती है और कोई आभूषण न होने की शिकायत पति से करती हैं। पति आगामी फसल अच्छी होने पर आभूषण बनवाने का आश्वासन देता है। इसके बाद होली जलाई जाती है और जौ की बालें भूनी जाती हैं।

ब्रज में होली के अवसर पर होली और रसिया का चोली दामन का साथ होता है। इस समय गीतों का समाँ रात दिन बँधा रहता है-

आज बिरज में होरी रे रसिया
बाजत ताल मृदंग झाँझ डफ
और नगारे की जोरी रे रसिया।

वसन्त पंचमी से आरंभ होकर ब्रज में चैत्र के अन्त में फूलडोल तक होली के रंगों की वर्षा होती रहती है। मंदिरों में भगवान् का गुलाल से श्रृंगार होता है---

वृन्दावन आज मची होरी
बरसे रे चहुँ ओर कुमकुमा
अबीर गुलाल भरी झोरी।

इन गीतों का प्रधान विषय राधाकृष्ण की होली है, जिसमें अबीर, गुलाल और पिचकारी का विशेष उल्लेख है। 'उड़त गुलाल लाल भये बादर' का चित्र सजीव हो

उठता है। किसी-किसी गीत में शिव भी होली खेलने का प्रस्ताव करते दीखते हैं। हुरियारिन कहती है -

ताते होरी को खेले
तोरी लट में विराजति गंग ।

बरसाने और नन्दगाँव की होली तो प्रसिद्ध ही है

या नन्दगाम को बास बुरो री
पहले ही सब गुन के पूरे
दूजे फागुन मास जुरो री ।

'रसिया' के साथ व्रज का जनप्रिय गीत होली है। रसिया सदा गाया जा सकता है किन्तु होली-धमार फागुन में ही गाये जाते हैं। होली मुक्तक गीत है जिसके दो भेद माने जाते हैं--एक साधारण होली और दूसरी राजपूती होली। साधारण होली में 'रसिया' जैसे विषयों और भावों के साथ होली खेलने का उत्साहपूर्ण वर्णन रहता है। राजपूती होली की अनोखी तर्ज में किसी कथा-प्रसंग का एक छोटा-सा टुकड़ा लिया जाता है और पाँच छः पंक्तियों में गीत समाप्त हो जाता है --

जाके पाँच पुत्र बलदाई
जुलमु हैगो मैया, जुलमु है गयौ
तू काहे रही घबराइ, ऐरावत मँगाइ
तो पै दउँ पुजवाइ
एक करि दऊँ जमीं आसमाँ
सुत अरजुन सो पाइ ।

राजपूती होली में कहीं महाभारत की कथा है, कहीं राम के निराश विलाप का वर्णन है। ऐसे ही मार्मिक कथा स्थल इनके विषय हैं। राजपूती होली की एक और विशेषता यह है कि इनमें किसी पात्र के मुख से आत्माभिव्यक्ति होती है यानी उत्तम पुरुष प्रधान होता है। किसी होली में अर्जुन माँ को आश्वासन देते हैं, कहीं राम-लक्ष्मण के लिये दुखी होते हैं, कहीं शैव्या का विलाप पाया जाता है तो कहीं गोपियों का विरह प्रकट होता है। राजपूती गीतों की शैली विशेष सशक्त होती है। इसमें एक ही चरण विविध गतियों से युक्त बहुधा किसी कथा में गुंफित होता है। इस शैली का आविष्कारक, आगरे का 'पतोला' माना जाता है, जो अपने संबंध में कहता था --

जाकी द्वै रोटी की भूख, सूखि गयो चोला
ताईं ते जाको परिगौ नाम पतोला ।

व्रज से चौरासी कोस की यात्रा में मथुरा से बरसाने जाते हुए आमने-सामने दो कुण्ड आते हैं--राधाकुण्ड और कृष्णकुण्ड। दोनों का पानी अलग-अलग रंग का है। दोनों कुण्डों के मध्य एक पथरीला फर्श है, जहाँ व्रज के रसिया जुटते हैं। फाल्गुन पूर्णिमा के दिन यहाँ पगड़ियों में सवैया सुनाने की होड़ लगती है। एक ओर गुलाबी पगड़ी वाले बैठते हैं और दूसरी तरफ केसरिया पगड़ी वाले। गुलाबी पगड़ी आगे आकर कहती है--

इत खेलत फाग वधूगन में, लै अबीर सुकेसरि रंग सनै
इत चाहभरी वृषभानुसुता, उमग्यो हरि के उत मोद मनै
जब नैनन में तकि डार्यो लला अपने कर सों बहराय घनैं
अति बाढ़त हैं दृग पीर तऊ वह काढ़न नाहि अबीर बनैं ।

ब्रज के रसिया लोग वाह वाह करते है, तब तक केसरिया पगड़ी ठुमक कर आगे आती है और कहती है --

फाग की भीर में पाय कै दाव गोविन्दहि लै गई भीतर गोरी
भाई करी मन की पद्माकर, ऊपर नाह अबीर की झोरी
छीन पीताम्बर लै लकुटी, सु बिदा दई मींजि कपोलन रोरी
नैन नचाय कही मुस्काय लला फिर आइयो खेलन होरी ।

ब्रज की 'लट्ठमार' होली को ध्यान में रखते हुए कहा जाता है कि और जगह तो 'होरी' होती है पर ब्रज मे 'हुरंगा' या 'होरा' होता है।

ब्रज मे नन्दगाँव, बरसाने की लट्ठमार होली, दाऊजी मन्दिर का हुरंगा और विभिन्न मन्दिरों में रास एवं फूलडोल का समाँ देखते ही बनता है। ऐसा कहा जाता है कि ब्रज की होली का छैले ही खेल सकते हैं। यहाँ चार पहियों वाली चार डण्डों वाली तथा हाथ से खींची जाने वाली चौपड़ गाड़ियों पर बड़े बड़े नक्कारे रखे रहते हैं, जिनके ताल पर लोग नाचते गाते हैं।

होली के पहले की नवमी को श्री जी के मन्दिर में नन्दगाँव के ग्वाल, हुरिहारों और बरसाने की गोपियों के बीच होली की धूम मचती है। पहले बरसाने और नन्दगाँव के गुसाइयों द्वारा गीतों में सवाल-जवाब होते है, फिर हुरिहार युवक टोलियों में मन्दिर की सीढ़ियों से रसिया गाते हुए गली में उतरते हैं, जहाँ पहुँचते ही बरसाने की गोपियाँ उन पर लट्ठ बरसाना शुरू करती हैं। ये ढालों से प्रहार बचाते हैं और देखने वाले 'लाड़िली लाल की जय' बोलते हैं। सूर्य डूबने के पहले गोपियाँ किसी हुरिहार को पकड़ कर उससे कुआँ पुजवा लेती हैं, इसके बाद उस दिन की होली समाप्त होती है। दूसरे दिन भी यही क्रम होता है किन्तु इस बार नन्दगाँव की गोपियाँ होती हैं और बरसाने के हुरिहार।

ब्रज में चैत्र कृष्ण द्वितीया को दाऊजी के मन्दिर में 'हुरंगा' होता है, जहाँ बलदेव जी की मूर्ति के समक्ष इतनी होली खेली जाती है कि मन्दिर में रंग अबीर की कीच भर जाती है। एक ओर स्त्रियाँ होती हैं, दूसरी ओर पुरुष। नीचे से रंग की पिचकारियाँ छोड़ी जाती हैं, ऊपर से अबीर-गुलाल की वर्षा होती है। पुरुष वर्ग दाड़ा (झण्डा) लेकर गाता हुआ मन्दिर से निकलता है। स्त्रियाँ दाड़ा लूटने की कोशिश करती हैं और दाड़ा लूट लिये जाने पर हुरंगा समाप्त हो जाता है।

ब्रज के कुछ इलाकों में होलिकादहन की रात में महिलाएँ 'चरकला' लोकनृत्य करती हैं। किसी महिला के सिर पर एक के बाद एक मिट्टी के कई घड़े होते हैं। उन पर लगी बाँस की चौखटों में दीप जलते हैं। महिला तेजी से नाचती है। उस समय जलते दीपों की शोभा अनोखी होती है।

व्रज के मन्दिरों मे धुलेंडी के दिन स्त्री पुरुष शृंगार करके रास करते हैं। एक मंच के ऊपर बीच में राधा कृष्ण का सिंहासन रहता है और बगल मे गोपियों के लिये स्थान रहता है। मंच के आगे खाली स्थान में नृत्य होता है। वादक लोग झाँझ, करताल, मुरचंग, ढोल, मँजीरा, बीन, डफ, सारंगी, मृदंग आदि लेकर बैठते हैं।

चैत्र के अन्त तक फूलडोल के मेलो में भी संगीत-नृत्य की धूम रहती है। व्रज के 'फालैन' नामक स्थान मे होलिकादहन की रात में गाँव के बीच चौक के पास प्रह्लाद मन्दिर के निकट ऊँची ऊँची लपटों के बीच से एक पण्डा चलता हुआ निकल जाता है। आग की लपटें उसे नहीं छूतीं।

बनारस की होली

यहाँ कहार, चमार, कुम्हार, धोबी आदि जातियों के लोग होली का आनन्द लेते हैं। इनके दल में आगे आगे एक पुरुष स्त्री के वेश मे नाचता चलता है और पुरुष गीत गाते हैं चंग और डमरू के साथ। गाँव की एक टोली गाती है-

होली खेलत रंग बनाय ठाकुर धाम में ।

दूसरी टोली सवाल जवाब करती है

केकरि भींजेले कुसुमी चुनरिया
केकर भींजेला सिरपाग ।
सीता के भींजेला कुसुमी चुनरिया
राम के भींजेला सिरपाग ।

तीन लोक से न्यारी काशी की होली का रंग ही निराला है। होली के एक माह पहले से सड़को, गलियों मे लोगों को बेवकूफ बनाने का सिलसिला शुरू हो जाता है। होलिका दहन की लकड़ी जुटाने के लिये हर चौराहे पर बच्चों और युवकों की टोली चन्दा लेने के लिए खड़ी रहती है। दुकानों पर नारियल, छुहारे, मखाने की मालाएँ बिकने लगती हैं।

होली से पहले रंगभरी एकादशी को लोग मन्दिर मे जाकर देवी देवताओं को अबीर-गुलाल चढ़ाते हैं। होली की शाम को लोग दशाश्वमेध घाट के पास चौसट्टी घाट पर चौसट्टी देवी के मन्दिर में जाकर पूजा-अर्चना करते हैं।

बनारस के पास के पड़ोसी नगरों-- मिर्जापुर, इलाहाबाद, जौनपुर आदि तथा आसपास के गाँवों में 'सिर पर फागुन चढ़ने की बात' कही गई है।

फागुन मास शिव का जागरण पर्व है। फागुन का होली पर्व शिव की कृपा का ही शृंगार है। ऐसी मान्यता है कि तुलसी ने शिव की जिस बरात का वर्णन किया है, होली के स्वाँगों और दिल्लगी के खेलो के रूप मे महाशिवरात्रि के बाद उसी की नकल में हम होली का हुड़दंग मचाकर उसकी याद ताज़ा करते हैं। काशी मे होली के अवसर पर भाँग और ठंढाई की मस्ती देखते ही बनती है।

अवध प्रदेश

अवधी क्षेत्र में होली का उत्सव पूर्ण उत्साह के साथ सम्पन्न होता है।

होलिकादहन के दूसरे दिन मिट्टी, रंग, गुलाल से होली खेली जाती है। संध्या समय फाग गाने वालों का दल गाँव का चक्कर लगाकर मुखिया के द्वार पर आता है और सामूहिक रूप में फाग गाता है। होली के अवसर पर अवध प्रदेश में गाये जाने वाले गीत होली, फाग, फगुआ और चौताल नाम से प्रसिद्ध हैं। अवधी में 'रेखता' नामक एक विशेष प्रकार का लोकगीत भी गाया जाता है। रेखता गाने वाले लोग हाथों में मोरछल लिये रहते हैं और गीत के ताल के साथ दूसरे हाथ से उसे ठोंकते रहते हैं। इस तरह के गीतों में विभिन्न देवों के प्रति भावोपासना, दशावतार कथा, कम्पनीकालीन शासन-व्यवस्था तथा अन्य अनेक प्रेम प्रसंगों का वर्णन भी उपलब्ध होता है -

गोरी लाल ही लाल दिखावे, ललन ललचावे।

यहाँ के फागों में विप्रलंभ श्रृंगार का भी वर्णन होता है---

पिया बिन् बैरिन होरी आई।

पहले रेखता गायकों की विशेष मण्डलियाँ रहती थीं, पर अब इनका लोप हो चला है। मुद्दू नामक एक प्रसिद्ध गायक हुआ, जिसका रेखता इस प्रकार है--

यह गद्दी मृदीन की, सो कवि बरनि न जाय
हुकुम होय उस्ताज् का स् मुरछल् लेउँ उठाय।

रेखता गीत के अन्तर्गत दशावतार का प्रसंग इस प्रकार है -

चक्र सुदरसन राम का रखवाली पर ठाढ
किरपा होय रघुनाथ की सो पढ़ौ दसौं अवतार।

राम की भूमि होने पर भी अवध के बारह जिलों में जबर्दस्त होली होती है। कहते हैं 'होरी' शब्द अवधी का है, जिसका खड़ी बोली रूप होली है। जहाँ फ़ैजाबाद में 'गुबरैली' और 'डामर धूल' की होली होती है, वहीं लखनऊ में नवाबी नज़ाकत और नफासत वाली होली होती है। अवध में नवाब आसिफुद्दौला वाजिदअली शाह के दरबार में होली के उत्सव को सार्वजनिक रूप में मनाने की प्रथा थी। 'मीर' ने इसका जिक्र इस प्रकार किया है --

होली खेलत आसिफुद्दौला वज़ीर
रंगे-सोहबत से अजब है खुर्दो-पीर।

कुमाऊँ

यहाँ होली गायन वसन्त पंचमी से शिवरात्रि तक होता है तथा उसकी चरम सीमा होलिकादहन के दूसरे दिन 'छलड़ी' या 'छरड़ी' के दिन तक होती है। स्नान के बाद होली गायन समाप्त हो जाता है। सम्मिलित भण्डारे का आयोजन करके प्रसाद बाँटा जाता है। यह सांस्कृतिक परम्परा गढ़वाल में भी है।

फाग वर्णन के रूप में यहाँ भी होली के 'खड़ी' और 'बैठकी' दो नामकरण किये गये हैं। रस की दृष्टि से श्रृंगार तथा शान्त रस की प्रधानता है। कुछ फाग गीत भक्तिपरक होते हैं। फागेतर वर्ण्य विषयों में आधुनिक समस्या का स्थूल प्रतिविम्ब भी मिलता है। इन गीतों में प्रेम-भावना के साथ परिवार के लिये शुभकामनाएँ भी की जाती हैं।

व्रज के हुरिहार की तरह यहाँ होलियार होते हैं। बालिकाएँ होली में 'भ्यौंस्यला' नृत्य करती हैं। यहाँ खड़ी होली में कुमाऊँनी भाषा के गीत होते है जिनमें भूपाली, सारंग, दुर्गा आदि रागों की झलक होती है। 'बैठकी' होली में व्रजभाषा के गीत शास्त्रीय ढंग से धीमी विलम्बित लय में गाये जाते हैं।

कुमाऊँ के होली-गीतों में फगुआ, खेलवइया, फाग, रसिया, चौताल आदि अधिक गाये जाते हैं जिनमें क्रमशः सिर से पैर तक आगे बढ़ने वाला वर्णन रहता है और अश्लीलता क्रमशः बढ़ती जाती है। कुमाऊँ की खड़ी बोली में एक गीत इस प्रकार है --

झुकि आयो शहर में व्यौपारी
इस व्यौपारी को भूख लगी है
पूड़ी पकै दे नथवारी ।

यह क्रम भूख, प्यास से नींद तक चलता है। यहाँ गाये जाने वाले होली गीतों में गणेश, शिव, पार्वती के प्रसंग भी आते हैं -

सिद्धि को दाता विघ्न विनाशन
होरी खेलें गिरिजापति नन्दन ।

गढवाल

होली का त्योहार गढ़वाल के कुछ क्षेत्रों में वहाँ के कस्बों और छोटे छोटे नगरों तक सीमित है। होली के अधिकांश गीत गढ़वाली की अपेक्षा व्रजभाषा में मिलते है। यहाँ के खाई क्षेत्र में भी व्रजभाषा के होली गीत मिलते हैं ---

मोरे साँवरे कन्हैया बिन कैसे खेलूँ होरी
दिन चार सखी री अपने बलम को
हम सो मांगन दो फागुन के दिन
सोना सी होला है तोला सी दूँगी
पिया तोला न जाय, पिया न दिया जाय ।

गढ़वाल का एक और प्रसिद्ध गीत इस प्रकार है --

होरी कैसे खेलूँ रे साँवरिया के संग
कोरी कोरी मटकी मँगाई उसमें घोला रंग
भरि पिचकारी सम्मुख मारी गोरी हो गई तंग ।

इन गीतों में मुख्य रूप से कृष्ण की प्रणय लीलाओं की ही अभिव्यक्ति होती है। कुछ गीतों में वसन्त शोभा का वर्णन प्रधान होता है, किन्तु वसन्त की भावना का आरोप कर नायिका का रूप-वर्णन उन गीतों में विशेष रूप से होता है। राम और शिव को होली के प्रसंग में सम्मिलित कर लोक की समन्वय भावना को बल दिया गया है। 'रसिया' टेक से भी यहाँ होली गीत गाये जाते हैं, जो इधर-उधर से लिये गये हैं —

व्रजमंडल देस देखो रसिया
हमरे मुलुक में गेहूँ बहुत हैं

पीसत नारी, पकावत पूरी, छको रसिया
हमरे मुलुक में धान बहुत हैं
कूटत नारी, पकावत भात, छको रसिया ।

यहाँ होली का विशेष जोर उत्तरपक्ष में होता है। माघ सुदी पूर्णिमा को पंडित कैर का डण्डा गाँव के बाहर गाड़ता है। एक महीने तक गाँव वाले उस डण्डे के चारों ओर लकड़ियाँ डालते रहते हैं। उत्तरपक्ष में होली गाई जाती है। रात में लोग डफ बजाकर होली धमार गाते हैं।

कनउजी होली गीत

यहाँ राधा-कृष्ण के अतिरिक्त कुछ गीतो में शिव का भी नाम आता है। होली के समय भाँग का प्रयोग संभवतः शिव का होली से संबंध होने के कारण है। यहाँ का एक होली गीत इस प्रकार है—

होली खेल रहे नन्दलाल
मथुरा की कुंज गलिन में ।

निमाडी प्रदेश

निमाड़ी क्षेत्र के होली-गीतों में राधा-कृष्ण द्वारा खेली जाने वाली होली का वर्णन है। गीत की प्रत्येक प्रथम दो पंक्तियो में प्रश्न और उसके बाद की दो पंक्तियों में उसका उत्तर है –

कानां धरो रे मुगुट खेलो होरी
कहाँ से आया कुँवर कन्हैया
कहाँ से आई राधा गोरी
गोकुल से आया कुँवर कन्हैया
मथुरा से आई राधा गोरी
बारा बरस का कुँवर कन्हैया
भर जोबन राधा गोरी
श्याम बरन का कुँवर कन्हैया
गोर बरन राधा गोरी ।

कुछ गीतों में राधा-कृष्ण का उल्लेख प्रकृति-पुरुष अथवा स्त्री-पुरुष के प्रतीक रूप में आया है। एक निमाड़ी गीत में रणुबाई अपने पति पणीयर से होली खेलना चाहती है किन्तु जब वह अपनी सास से इस बात के लिये आज्ञा चाहती है तो सास अपने पुत्र को तप का लोभी बताकर कहती है कि वह स्त्रियों से होली खेलना पसन्द नहीं करता—

रंग का आ रणुबाई भया
ओ कचोला कंचन की पिचकारी
पैरी ओढ़ी ओ रणुबाई सासु कने गया
देवो हुकुम खेलाँ होली

हमारा कुँवर रणुबाई तप का लोभी
नी खेलें तिरिया से होली ।

मालवा

मालवा में होली बड़े उल्लास के साथ गाई जाती है, जिसमें लालित्य, रस और उछाह मिलता है। पुरुषों और स्त्रियों के गीत भिन्न-भिन्न श्रेणी के होकर भी भाव की दृष्टि से एक-से होते हैं। मालवा के होली गीतों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है--

(क) **राधा-कृष्ण संबंधी गीत**—राधा के रूप में नायिका का शृंगार इन होली गीतों में निखरा है। नन्द बाबा के द्वार पर होली मची है। मनों गुलाल उड़ रहा है। कई मन केसर घोली गई है। इधर से राधा निकलीं, उधर से कान्हा। दोनों की भेंट हुई और होली का रंग उड़ाया गया। कहीं नायिका कृष्ण से हाथ में पहुँची पहनाने का आग्रह करती है, क्योंकि उसके हाथ रंग से भरे हैं। इन गीतों में कृष्ण की उम्र बारह वर्ष और राधा तेरह वर्ष की बताई गई है।

(ख) **शिव-पार्वती संबंधी गीत**- मादक वस्तुओं का सेवन करने के फलस्वरूप शिव की महत्ता इन गीतों में वर्णित है। कुछ गीत आरती एवं शिव महिमा के हैं। पाँच प्रकार के रंगों से शिव जी पार्वती के साथ कैलाश पर्वत पर होली खेलते हैं। पार्वती जी का अम्मी कली का लँहगा और साड़ी भींग जाती है। पार्वती जी पहले रूठती हैं फिर शिव जी से क्षमा माँगती हैं। शिव जी प्रसन्न होकर डमरू बजाते हैं।

(ग) **प्रणय संबंधी होली**—इस तरह की होलियों में नायिका के सौन्दर्य को उभारा गया है। इन गीतों में पति पत्नी के मान-मनुहार के सुन्दर चित्र मिलते हैं। रसिया की ढप से प्रिया का महल गूँज उठा और उसका मन चंचल हो उठा। प्रिया के कानों में आभूषण झलक रहे हैं। वह लज्जावश धूप में जल भरने जाना नहीं चाहती क्योंकि धूप की तीव्रता से उसकी चुनरी का रंग उड़ जायेगा। फिर भी होली खेलने के लिए उसका मन आतुर होता है। उसे चिन्ता है कि भींगने पर वह अपनी सुरंग चुनरी कहाँ धोयेगी और कहाँ सुखाएगी।

(घ) **चन्द्रसखी की होलियाँ**—मालवी स्त्रियों में होली के कुछ गीत चन्द्रसखी से संबंधित प्रचलित हैं। इनमें राधा-कृष्ण का प्रसंग है। इन गीतों में गूजरियों का उल्लेख और कृष्ण की शृंगारिक चेष्टाओं का वर्णन मर्यादित भावों में है।

(ङ) **फुटकर गीत**—होली के फुटकर गीतों में हास-परिहास, चुटकियाँ, शृंगारिक दोहे, फाग और गेर के गीत सम्मिलित हैं। पुरुषों के गीतों में

नायिकाओं के मोहक चित्रों के साथ छेड़छाड़ भरी उक्तियाँ हैं। उनमें उल्लास और गति है। एक गीत इस प्रकार है --

काजलियो सारी ने छोरी जल भरवाने चाली रे
आगे मिल गया छैल भँवर नी दाँतन भोले रे
लाजाँ मर गई रे ।

स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले मालवी होली गीत पुरुषों की अपेक्षा अधिक भावनाप्रधान होते हैं। होलिकादहन के दूसरे दिन संबंधी एवं परिवार की महिलाओं के यहाँ रंग गुलाल डालने के लिये जाने वाली स्त्रियाँ मार्ग में फाग के गीत गाती हैं। उनके गीतों का मूल स्वर कहीं ननद का बरजना है-

ननदबाई म्हने बरजे मति
म्है तो बंसीवाला रो खेलूँगी फाग
वोई बंसीवाला ने वोई मुरलीवाला
वोई म्हारा जीव को अधार
माथे के म्हारे मम्मर मोबे ने
टीको भांत हजार
सूरज सामे पानी नी जाऊँ
म्हारी चुनड़ी को रंग उड़ो जाय ।

उद्यानगत आल्हा के गीतों में केसरिया सायबा का उल्लेख प्रियतम के मनोगत भावों को व्यक्त करता है। एक गीत मे नर्मदा का रग से भरपूर होना, केसर का रंग घोलना, कंचन की पिचकारी और गुलसारी के भींजने का वर्णन है---

नरबदा के रंग से भरी पिचकारी
बंसीवाला मे खेलाँगा फाग
कच्ची कली को रंग बनायो
कंचन की बनी पिचकारी
भरी पिचकारी राधा के माथे डारी
तो भींग गई जी गुलसारी ।

स्त्रियों द्वारा गेय इन होली गीतों मे राधा कृष्ण के माध्यम से मालव की स्त्रियों द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले आभूषणों और वस्त्रो का भी वर्णन हुआ है। साथ ही रंग डालने और छेड़छाड़ के चित्र भी हैं। होली खेलने में लगी एक नायिका को शरीर भींगने का उतना डर नहीं है, जितना नैनों के भींग जाने का —

गेल म्हारी छोड़ो, डगर म्हारी छोड़ो
श्याम भींज जावांगा नैनन में
नैनन में जो थारे मन में होली खेलने की
श्याम मने लई चालो कुंजन में ।

मध्य प्रदेश

मध्य प्रदेश में होलिकादहन के साथ हिरण्यकशिपु, उसकी बहन होलिका और

भक्त प्रह्लाद की कथा प्रचलित है। यहाँ होलिका को राक्षसी प्रवृत्ति की स्त्री और बुराई का प्रतीक माना गया है। जबलपुर में प्रह्लाद और होलिका की मूर्तियाँ बनाई जाती हैं। होलिकादहन के समय मूर्ति के आसपास लकड़ियाँ, उपले आदि रखकर आग लगा देते हैं, फिर प्रह्लाद को होलिका की गोद से खींच लेते हैं। कुछ ही देर में होलिका जलकर राख हो जाती है, फिर इसी राख को लेकर अनेक स्वाँग किये जाते हैं।

यहाँ के होली गीतों में कुछ अश्लीलता भी मिलती है। एक होली गीत इस प्रकार है-

कटारी काहे मारी राजा मोरे
पहली कटारी मोरे घुँघटा पे मारी
घुँघट पट खुल गये राजा मोरे।

यह क्रम अंगिया, चोली से होता हुआ क्रमश: आगे बढ़ता है

सुख की निंदिया जब लगे, सोबै बालम साथ
कैसे करोटा ले लउँ, धर छाती पे हाथ
दीवाने हो रए मोरे बालमा।

बुन्देलखण्ड

बुन्देली फाग वसन्त गीत या होली गीत कहलाते है। ये कई तरह के होते हैं- फाग, होली, कबीर, चौकड़याऊ, छन्दयाऊ, डिड़खुरयाऊ, साखी आदि। ईसुरी की चौकड़याऊ (चतुष्पदी) फागें प्रसिद्ध हैं। ये नरेन्द्र छन्द में बँधी हैं। यह छन्द अट्ठाईस मात्राओं का होता है। सोलह और बारह मात्राओं के बीच यति और अन्त में गुरु होता है।

साखी की फाग में पहले दोहा और अन्त में टेक रहती है। डिड़खुरयाऊ फागों में केवल एक पंक्ति रहती है।

उत्तर भारत की खयालबाजी की तरह बुन्देलखण्ड में भी फाग कहने की सुन्दर प्रथा है। एक टोली की ओर से एक फाग कही जाती तो दूसरी टोली उसका उत्तर देती है। जो टोली उत्तर नहीं दे पाती, वह हारी हुई मानी जाती है।

बुन्देलखण्ड के भील युवक इस अवसर पर 'बुन्देला' और 'राई' का स्वाँग करते हैं। दोनों नाचते-नाचते महुआ पीने लगते हैं और गुलाल फेंकने लगते हैं। इन्हीं दिनों प्रदेश के गोंड आदिवासी नुकीली तलवार, भाला, बर्छी आदि लेकर 'सैलारिना' नृत्य करते हैं जो बिजली की सी तेज़ी से चलता है।

बुन्देली फागों के छ: प्रकार किये गये हैं---(१) सख्याऊ फाग, (२) ढप या डहका, (३) चौकड़िया या टहूका, (४) छन्दयाऊ या लावनी, (५) खड़ी फागें और (६) खुरयाऊ फाग। इनके अतिरिक्त होली के समय रसिया, दादरे एवं लेद भी गाई जाती हैं। ईसुरी की फागों में साहित्यिकता, रसिकता, मादकता एवं शृंगार की अधिकता है।

बुन्देलखण्ड के कुछ फाग गीत इस प्रकार हैं---

मोपै रंग न डारो साँवरिया
मैं तो ऊँसई रंगों में डूबी लला।

❑ ❑ ❑

बुरा मानते हो तो माना करो
हम तो डारेंगे तुम पै ही रंग
फागुन की मस्ती में दुनिया डूबी
हिरदे में लेके उमंग
रंग अबीर उड़े गलियन में
सारी दिशाएँ दंग ।

पिचकारी हमपै काए मारी ?
मारो बदन तर बत्तर कर दऔ
ऊपर से रंग दई नई सारी
ना हमने तुमरौ रस्ता रोकौ
ना हमने तुमखों दई गारी
लाज सरम तुमखों ना आवै
हँस गए तुम दै दै तारी ।

फिर अइयो खेलन होरी लला
होरी लला रस बोरी लला
होरी में कोऊ बुरौ न मानै
लइयो अबीर गुलाल लला
जनम जनम की प्रीत हमारी
रंगों से करियो उजागर लला ।

बुन्देली की फाग के साथ ईसुरी कवि का नाम न आवे तो चर्चा अधूरी लगती है। उनके एक गीत में एक सपने की चर्चा है-

सपनन दिखा परे मोरे सैंया
सुनो परोसन गुइयाँ
आपन आय उसी में ठाड़े
झपट परी मैं पैंया
उनके दोऊ दृग भर आये
मोरी भरी डबैया
'ईसुर' आँख दगा में खुल गई
हतो उते कोउ नैंया ।

एक विरहिणी भाभी से ननद पूछती है --

कैसी भौजी अनमनी, कैसे बदन मलीन
कैसे नैना लाल दोउ, कैसे भई छबि दीन
मनयारे की मनि लई, कै काऊ ने दीन
कै हिरना हिरनी तजी, कै मांजो व्यापो मीन ।

आँसू पोंछती भावज फाग का उत्तर फाग में देती है--

होय सयाने भये बिराने
बीज बिथा मैंने बोये
जो होली की रितु दारुन
हूक कलेजे होय।

बघेली होली

बघेली वसन्त गीतों का वर्गीकरण फाग, होली और कबीर के रूप में किया जाता है। फाग पुरुष वर्ग गाता है, होली गीत स्त्रियाँ गाती हैं और कबीर के नाम पर कुछ अश्लील गीत होते हैं। फाग गीत कई प्रकार के होते हैं जिनमें लेजम, बँसवारा, उग्गा, तिनताला, दहका, छुटका, टहूका, नारदी, ढेवरा और राई गीत मुख्य हैं।

एक बघेली फाग इस प्रकार है--

अमरइया मां कोइली बोली करै सुन मुगना रे
रंगभरी मोरी देहियाँ गमना माँगै रे।

छत्तीसगढ़ी होली

यहाँ की एक होली में फागुन को आगामी वर्ष के लिये निमंत्रित किया गया है

फागुन महराज, फागुन महराज
अबके गये ले कब आवे
अरे कउन महीना हरेली
अउर कउन महीना तीजा तिहार।

कौरवी होली

अंबाला, मेरठ आदि क्षेत्रों में वसन्त धरे जाने के दिन से ढप, झाँझ, घण्टा और थाली सवा महीने तक होली के साथ गाँव गाँव में सुनाई देती हैं। होली वस्तुत: इस प्रदेश में केवल ऋतुगान नहीं, बल्कि सर्वकाल और समस्त विषयों के वर्णन वाली तर्ज़ है। इसमें पिछले डेढ़ सौ वर्षों में विषय, रचना और छन्द की दृष्टि से विभिन्न परिवर्तन हुए हैं। पहले की एक होली इस प्रकार है --

अर ऊँधे नगाड़े सूधे होय
जिणकी घोर गगण हरराणीं।

छन्द के रचना-विधान में भी परिवर्तन हुआ है। इसमें कभी ढोला और निहालदे की तर्ज़ रखी जाती है और कभी मिश्रित। होली के अवसर पर यहाँ स्त्रियाँ मण्डलाकार घूमती हुई एक दूसरे के हाथ में हाथ मारती हुई पटका गीत गाती हैं --

राजा नल के बार मची होली
हमणे तो राज्जा सिल्वा बी ना है
म काहे कु पहर खेलूँगी होली

अबके हँस गोरी होगी खेल्यो
पर कूँ गढ़ा दूँ माढ़े नौ जोड़ी ।

कांगडी होली

होली के दो तीन दिन पूर्व यहाँ की स्त्रियाँ होली पूजती है और एक दूसरी से यह कहती हुई विदा होती हैं

जो मैं पूजि के चलियाँ
सासू नूहए दोआँ ।
गले बालियाँ बंगा लेइ बंजारा आया
तिने सासू सुहागणी चूड़ा चढ़ाया ।

कुलुई होली

यहाँ वसन्त ऋतु में स्त्रियाँ 'छींजा गीत' गाती हैं। एक कुलुई फाग इस प्रकार है—

फागुण मास में खेलण ऋतु आयो सजनी
सब रंग लाल गुलाल डले गली माँहीं
सबके मुख पर लाल आयो रंगा ।

राजस्थान

राजस्थान की होली का एक अलग रंग है। यहाँ के होली गीतों में आनन्द और मस्ती का प्रवाह दिखाई पड़ता है। 'रसिया फागण आयो' के साथ यहाँ लूर, घूमर नृत्य होता है। होली पर यहाँ चंग और डफ बजाने की पुरानी प्रथा है -

रंगीली चंग बाजणू
म्हारे वीरै जी मंढ़ायो चंग बाजणू
म्हारो रेगर मैंढ़ के लायो जे
रंगीली रंग बाजणू ।

राजस्थान में होली के अवसर पर लड़कियाँ और स्त्रियाँ गहनों और वस्त्रों से सजकर गातीं और नाचती हैं। इस समय एक विशेष प्रकार का नृत्य होता है, जिसे 'लूर' या 'लूहर' कहते हैं। इसमें स्त्रियाँ हाथ बाँधकर चक्राकार नाचती हैं। इसे लूवर या घूमर भी कहते हैं। कोई स्त्री अपनी सखी से लूर खेलने के लिये चलने को कहती है---

होली आई ए सहेल्याँ
मिल खेलाँ लूर होली आई ए
कोई कोई ओढ्याँ झीणी झीणी चूनर
कोई कोई ओढ्याँ दिखणी चीर ।

इस त्योहार से मिलता-जुलता पर्व 'लोहड़ी' पंजाब के नर-नारी मनाते हैं। माघ संक्रान्ति से पहली रात को यह पर्व मनाया जाता है। बालक-बालिकाएँ होली की तरह घर-घर लोहड़ी यानी लकड़ी, उपले माँगना शुरू करते हैं। यह विवाहिता पुत्री और

जामाता की मंगलकामना का पर्व है। इस दिन लड़की के पिता के घर से ससुराल में त्योहार रूप मे वस्त्र, मिष्ठान्न आदि भेजे जाते हैं। स्त्रियों के गीतो मे सन्तान प्राप्ति की कामना रहती है।

राजस्थान मे श्रीराम से संबंधित एक प्रसिद्ध होली गाई जाती है

गढ़सूँ तो होली माता उतरी
बीराँ हाथ कँवल सिर मोड़ ए रायाँ होली
बीर रामचन्द्र जी होली में खाँडो घालसी
बीर लिछमण जी देसी मदगी दात ए ।

राजस्थान की भूमि बड़ी रंगीली है, जहाँ हर सुबह पर्व होता है, हर शाम संगीत। श्रृंगार काव्यो से भरा मनोहर वातावरण होता है। नारी पुरुष की अलमस्त टोलियाँ गाती हैं --

ऐसो रंग मलो रे सजना
छूटे न लाख उपाय ।

राजस्थान की रंगीली, चटकीली और रसीली होली का गढ़ है वहाँ का ब्यावर नगर, जो जयपुर से जोधपुर जाने वाले मार्ग के बीच स्थित है। यहाँ होली से दस दिन पहले पंचमी से गेर नृत्य आरंभ हो जाता है। होली के दूसरे दिन धुलैंडी से लेकर कई स्थानों पर इस नृत्य का आयोजन होता है। ढोलक की थाप पर नर्तकों का चमत्कारपूर्ण नृत्य होता है। यह थाप 'डाका' कहलाती है।

होली के बाद वाला गेर नृत्य रात के बारह एक बजे अपने स्थान से घुमेर लेकर चलता है और कई स्थलो पर होता हुआ फिर मुख्य स्थान पर आ जाता है। इस बीच नृत्य क्षणभर भी नही रुकता। एक एक व्यक्ति छः छः, आठ- आठ घण्टे तक लगातार नाचता है। डण्डों की ताल पर नाचने वाले को 'चिढ्ढ़ाए' कहते हैं।

इन सुन्दर गेर नृत्यो का आयोजन और वेशभूषा का प्रबन्ध बहुत बड़े पैमाने पर होता है। लगभग एक मंजिल से लेकर दो तीन मंजिल तक ऊँचे ऊँचे लकड़ी के पाटे तख्ते मोटे और लम्बे बाँस की बल्लियों के सहारे लगाये जाते हैं। ये दुहरे तिहरे छतनुमा मंच देखते ही बनते हैं। इनके साथ गूँजते हैं रसिया और फागुनी धमार के स्वर - -

गोरी थे तो दीनो केसर डाल
हिरणी चाल निजर रतनारी थारी
मृँणारी देह पे सुरंग गुलाल
थारे प्रीतम नागर पान
रचो तो अधरां ने कां मण मरमरी ए ।

रंग-अबीर खेलने वाली धुलैंडी होली के दिन दोपहर दो बजे से शाम सात आठ बजे तक मालियों का यह घूमर गेर नृत्य होता है।

मालियां वाली गेर के लिये जगह- जगह भाँग--ठंढाई घुटती है, पर नाचने वाला उसका सेवन नहीं करता। इस दिन राजस्थान में कोड़ामार होली और मोटामार होली का मंजर देखते ही बनता है। ब्यावर के बाजार में बड़े-बड़े देगों में लम्बी लम्बी भारी

पिचकारियाँ और डोलचियाँ रखी होती हैं। इससे मोचियों की होली होती है। यहाँ की महिलाएँ कई दिन पहले से फटे पुराने कपड़ों, गूदड़ों, सन सूत की डोरियों और मूँज की रस्सी को बँटकर तेल-पानी में भिगोकर तैयार करती हैं। इन ऐंठे हुए कोड़ों के बीच पतली लकड़ियों या बाँस की खपच्चियों के टुकड़े लगा लिये जाते है और इन कोड़ों का मज़ा चखाने के लिये बुलाया जाता है जँवाई, देवर आदि को। भाभी-देवर, जीजा-साली के बीच इस कोड़ामार और सोटामार होली का दृश्य, उनकी चुहलबाजियाँ देखते ही बनती हैं। इनके बीच-बीच में चग पर रसियों की लहर सुनाई पड़ती है।

बरसों पहले बाड़मेर में पत्थरमार होली होती थी, जो बाद में धूल-कीचड़ और रंग गुलाल से खेली जाने लगी। वहाँ होली के दिन ईलोजी की बैठी हुई एक विराट् आदमकद प्रतिमा बनाकर उसे सजाया जाता है। राजस्थान के प्रसिद्ध जैनतीर्थ श्रीमहावीरजी के मन्दिर में भी चैत्र शुक्ल द्वितीया को जाट-गूजर-गूजरियों द्वारा लट्ठमार होली खेली जाती है।

राजस्थान में यह दिन 'गुलाल भरी बादशाह होली' का दिन कहलाता है। धुलैंडी के अगले दिन बादशाह होली का ठाठ बाट देखने को मिलता है। इस मेले की पूरी व्यवस्था अग्रवाल समाज की ओर से की जाती है। इसमें हर जाति के लोग शामिल होते हैं किन्तु बादशाह अग्रवाल समाज का ही कोई व्यक्ति बनता है। बीरबल बनता है--- ब्राह्मण। बादशाह सब पर गुलाल फेंकता है। जिस पर गुलाल पड़ता है, वह उसे सँभाल कर रख लेता है। ऐसी मान्यता है कि ऐसा करने से सालों भर लक्ष्मी की कृपा बनी रहती है।[१]

हरियाणा

हरियाणा में वसन्तस्थापना तथा फाल्गुन के प्रारंभ से ही संगीत की मन्द गंभीर धारा बहने लगती है। फाल्गुन पूर्णिमा को बड़े उल्लास और उत्साह से यहाँ होलिकोत्सव मनाया जाता है। फाग एवं होली गाई जाती है। लोग परस्पर होली खेलकर अपना प्रेम प्रकट करते हैं। आचार की दृष्टि से यह पर्व अनुपम है क्योंकि होली का यह उत्सव भ्रातृभाव, मित्रभाव एवं प्रीतिभाव का सृजन कर मन के मैल को धो देता है।

हरियाणा में होली के अवसर पर 'धमाल' राग गाया जाता है, जिसे वहाँ के वीर पुरुष बड़े जोश के साथ तारस्वर से डफ पर गाते हैं। इन धमालों में इतिहास, पुराण, शृंगार एवं घरेलू वातावरण के चित्र होते हैं। यहाँ फाग के गीतों में संयोग और वियोग उभयपक्ष मिलते हैं। यह समशीतोष्ण ऋतु है। इसीलिये इस समय का एक अनोखा ही उल्लास होता है, जो यौवन का प्रतीक है--

फागण के दिन चार री सजनी
मध जोबन आया फागण में
फागण भी आया जोबन में
झाल उठैं सैं मेरे मन में
जिनका वार न पार री सजनी।

---

१. *बादशाह होली में बीरबल नाचे*--- लेख, सावित्री परमार, धर्मयुग, १९ मार्च, १९७८।

हरियाणा के होली गायन में पौराणिक आख्यान के रूप में प्रह्लाद होलिका का संदर्भ अवश्य दिया जाता है। हरियाणा का एक होली गीत इस प्रकार है --

होली बी खेले ढप बीबजा के गलियाँ में उड़ए गुलाल
कहियो मुरैहण से होली खेलण आवै नवाब
ऐसी होली खेलो मिरगानेणी
म्हारा सामा की रखियो लाज।

हरियाणा के एक होली नृत्य में केवल महिलाएँ भाग लेती हैं। वे एक घेरा बनाकर तालो बजा बजा कर गीत गाती हुई नृत्य करती हैं। धीरे- धीरे नृत्य की गति और घेरा बढ़ता चला जाता है। बाद मे एक दो युवतियाँ घेरे के बीच में आकर युगल नृत्य कर अपने- अपने स्थान को लौट जाती हैं।

यहाँ चैत्र कृष्ण प्रतिपदा को भी होली जलाई जाती है। उसी दिन धूल भी खेली जाती है। हरियाणा मे होलिका द्वारा भक्त प्रह्लाद को जलाये जाने के प्रयत्न को लेकर एक 'हरजस' (भजन) गाया जाना है। इस पद में यह कल्पना की गई है कि होलिका का शील-वस्त्र तीव्र पवन के झोकों से उड़कर बालभक्त प्रह्लाद पर आ गया है और भक्त की प्राणरक्षा हो गई है।

यहाँ होलिकादहन के समय जौ बोना लोक-विपत्ति के विरुद्ध रामबाण समझा जाता है। यहाँ होलिका पर गोबर की माला चढ़ाई जाती है और उसकी आग में गेहूँ की बालियाँ भूनी जाती हैं। पंजाब मे 'वीरां दी होली है' के नारे होते हैं। होली के दूसरे दिन 'सिखो का होला' होता है।

होली जलाने के समय हरियाणा में एक लोकाचार होता है। एक युवक जलता उपला लेकर अथवा उस स्तंभ को लेकर, जो वसन्त के दिन होलीदहन के स्थान पर गाड़ा जाता है, समीप के जलाशय में बुझाने के लिये ले जाता है। ऐसा विश्वास है कि भक्त प्रह्लाद की ताप शान्ति के लिये यह उपाय किया जाता है।

आदिवासी क्षेत्र के वसन्त गीत

आदिवासी क्षेत्र मे गाया जाने वाला एक वसन्त गीत इस प्रकार है—

सरसे[१] भँवर रितु[२] आये
सतमै[३] भँवर[४] मँडराये
चुहुकि चुहुकि[५] रस ले
रस लेके लंका उड़ि जाये
माजन फूलले परासे[६] कऽ गाँछ[७]
साजन सरसे भँवर रति पाख[८]
सरसे भँवर रितु आये।

---

१. सरस, २. वसन्त ऋतु, ३. सात सौ, ४ भँवरे, ५. चूस-चूस कर, ६. पलाश के, ७ वृक्ष, ८. वसन्त ऋतु।

होली के समय इस क्षेत्र में गाया जाने वाला एक गीत 'करमहियाँ होरी' कहलाता है। इस गीत में आनन्द के क्षणों में भी परिस्थितिजन्य आपदाओं की चर्चा आती है। जहाँ एक तरफ प्रकृति के मोहक दृश्य केकी और पिक के मादक स्वर विरहिणी को प्रिय की याद में विकल बना देते हैं, वहीं दूसरी ओर पुरवा हवा चलने से फसल में 'गंधी' कीट के लगने और उससे होने वाली खेती की हानि की कल्पना से वह कम चिन्तित नहीं है -

परबत चढ़ि मोरवा टिकोरे[1]
बालम नाहीं आयल घरे
झारे[2] चढ़ल आवत
ककूरी[3] चढ़ल आवत
टिकुरी[4] बिरहनी तान तोड़े हे
बालम नाहीं आयल घरे
पुरबे ले आवे पुरबाइया[5]
सबके गंधी[6] मार देल
कइसे जिआवे लरिकवा हे
बालम नाहीं आयल घरे।

मणिपुर, असम, बंगाल और उड़ीसा की होली

उत्तर पूर्व क्षेत्र के पहाड़ी प्रदेश मणिपुर में पूर्णिमा की रात में मणिपुरी बालाएँ राधा कृष्ण और गोपियों का रूप रखकर सारी रात राधा कृष्ण की प्रणय कथा पर नृत्य और कीर्तन करती हैं।

असम, बंगाल और उड़ीसा में होली 'दोलयात्रा' के रूप में मनाई जाती है। 'दोल' का अर्थ है -- झूलना। सूर्य जिस समय उत्तरायण और दक्षिणायन के बीच झूलता है, उस समय बंगाल में लोग श्रीकृष्ण की मूर्ति को झूले में बिठाकर पूजा करते हैं। असम और मणिपुर में इस अवसर पर श्रीकृष्ण की सवारी भी निकाली जाती है। कालान्तर में यही दोलयात्रा वसन्तोत्सव के रूप में परिणत हो गई। असम और उड़ीसा में होली पर खूब रंग खेलते हैं।

असम में घास की होलिका बनाई जाती है। दिनभर उपवास रखने के बाद पुरोहित उसमें आग लगाता है। उड़ीसा के मंदिरों में कीर्तन होता है तथा बताशे बाँटे जाते हैं। बंगाल में शान्तिनिकेतन के वसन्तोत्सव का अपना अलग ही रंग रहा है। यहाँ की होली हृदय और चेतना को यौवन के रंग में रँग देती है। फाल्गुनी पूर्णिमा के दिन प्रातः पाँच बजे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का गीत 'आजि बसन्त जाग्रत द्वारे' के साथ आश्रम परिक्रमा, नृत्य, गीत, नाटक आदि का आयोजन होता है।

गुजरात की होली

गुजरात में होली 'हुस्तासिनी पर्व' के नाम से मनाई जाती है। यहाँ होलिका की

---

१. पुकारे, २. झाड़ी में, ३. वृक्ष विशेष ४. टिकुली, ५. पुरवा हवा, ६. फसल की हानि करने वाला एक कीड़ा।

स्थापना के पूर्व मिट्टी के एक घड़े मे पानी भरकर उसमे गेहूँ, मूँग, बाजरी और मोठ डालकर उसे जमीन में गाड़ देते हैं और उसी पर होली जलाते हैं। लोग रातभर घड़े की चौकसी करते हैं। जब होली की अग्नि से घड़े के भीतर की सामग्री पक जाती है तो दूसरे दिन उसे प्रसाद रूप मे बाँटा जाता है। लोग रंग-कीचड़ खेलते हैं और बहुरूपियों का स्वाँग करते हैं। घरों में तेल की पूरियाँ और फापड़ा बनता है।

महाराष्ट्र की होली

उत्तर प्रदेश और बिहार की तरह यहाँ भी लकड़ी चुराकर लाई जाती है तथा जलाई जाती है। दूसरे दिन पास-पड़ोस के बच्चों तथा इष्टमित्रों को निमंत्रित करते है और बच्चों को शक्कर के खिलौनों से बनी मालाएँ, गोठी और कगन भेंट करते हैं। घरों में दाल भरी मीठी रोटी, 'पूरणपोली' खाई जाती है। होली गीतों मे व्यंग्य की भरमार होती है। नृत्य कई तरह के होते हैं, जैसे— शिमगा, कोलियाचा, नकदा, काठखेल, डेरा, लेजिम, पालकी, राधा और घेगचा। रंग और गुलाल की वर्षा में सराबोर नाच गान होता रहता है---

श्रीकृष्ण ने झारी भर ली गुलाब पाण्याची
नको रे कृष्णा रंग टाकू चुनरी भिजते ।

ढोल, मजीरे, वशी की धुन पर नृत्य गीत पूर्णिमा की रात बीतने तक चलता रहता है। महाराष्ट्र और गुजरात के तटवर्ती इलाके के मछुआरे स्त्री पुरुष होलिकादहन के इर्द-गिर्द नाचते हैं। इस नृत्य में नवविवाहित जोड़े को भी शामिल किया जाता है।

महाराष्ट्र की सीमा से लगने वाले आंध्र प्रदेश मे मराठी प्रभाव के कारण होली बड़ी धूमधाम और उत्साह से मनाई जाती है। हैदराबाद और सिकन्दराबाद में बड़े पैमाने पर होली मनाई जाती है।

दिल्ली की होली

मुगल सम्राट् शाह आलम 'सानी' अपने अन्त:पुर मे होली के उत्सवों में भाग लेते थे। उनकी होली संबंधी कविताएँ 'नादिराते शाही' मे संग्रहीत हैं--

हो बरजोरी तोको तो बरजोरी लाय
शाहे आलम सूँ खेलन के होरी
ले गुलाल अंगिया भर दीनी
मुख ऊपर लाय, गह अंचर झकझोरी
मेरो कहो न मानो तब सूँ
अब कैसे कहे री, राज करो ऐसी होरी ।

अमीर खुसरो ने तो होली के उल्लास में उन्मादित अपनी आत्मा को गुरु पीर के रंग से रँगने का वर्णन किया है---

आज रंग है ऐ मां रंग है
मेरे महबूब के घर रंग है
साजन मिला वारा, मोरे घर आज रंग है ।

होली के दिन रूठे यार गले मिल जाते हैं, इसका चित्र खींचा है नज़ीर अकबराबादी ने --

मियां तू हमसे न रख कुछ गुबार होली में
कि रूठे मिलते हैं आपस में यार होली में
मची है रंग की कैसी बहार होली में
हुआ है जोरे-चमन आशकार होली में
अजब ये हिन्द की देखी बहार होली में।

होली की बहारों का, छेड़छाड़ का, पिचकारियों के निशानों का भी सुन्दर वर्णन नज़ीर की रचनाओं में है

गुलज़ार खिले हों परियों के और मजलिस की तैयारी हो
कपड़ों पर रंग के छींटों से खुशरंग अजब गुलकारी हो
मुँह लाल गुलाबी आँखें हों और हाथों में पिचकारी हो
सीनों से रंग ढलकते हों, तब देख बहारें होली की।

मीर तकी 'मीर' का होली संबंधी एक चित्र देखें

आओ साकी बहार फिर आई
होली में कितनी शादियाँ लाई
एवान भर भर अबीर लाते हैं
गुल की पत्ती मिला उड़ाते हैं
जश्ने-नौरोज हिन्द होली में
राग और रंग बोली ठोली है।

मीर से पहले दिल्ली में शाह हातिम नामक शायर हुए, जिन्होंने होली के हुड़दंग का सुन्दर वर्णन किया है--

मुहैया सब है अब असबाब उठाओ यारो
भरो रंगों से झोली
गुलाल अबीर से सब भर भर के झोली
पुकारे यक-ब-यक होली है होली।

सदरुद्दीन मुहम्मद फाइज देहलवी दिल्ली के राजदरबार में उच्चपद पर आसीन थे। अपनी एक होली संबंधी रचना में उन्होंने दिल्ली के उस मीना बाजार का चित्र खींचा है जहाँ मुगल शहजादियाँ और रईसजादियाँ आनन्द उल्लास के साथ बाजारों में घूम रही हैं—

रूबरू सब बन रहे हैं लाल जर्द
बाग का बाजार है इस वक्त सर्द
नाचती गा-गा के होली दम-ब-दम
ज्यों सभा इन्दर की हो दर-बागे इश्क
ज्यों नाड़ी हर सू हैं पिचकारी की धार
दौड़ती हैं नारियाँ बिजली के सार।

उत्तर भारत के ही कुछ स्थानों पर भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा पूतना वध के उपलक्ष्य में

होली और होलिकादहन मनाया जाता है। ऐसा कहते हैं कि वध के बाद पूतना का शव गायब हो गया और ग्वाल बालों ने उसका पुतला बनाकर जलाया। मथुरा में होली विशेष उल्लास से मनाई जाती है। जो लोग सभी त्योहारों को ऋतुचक्र से जोड़ते हैं, उनके अनुसार पूतना 'जाड़ा' और उसका वध 'जाड़ा समाप्त होने' का प्रतीक है।

दक्षिण भारत

कर्नाटक में होलिकादहन का त्योहार 'कामदहन', 'मदनदहन' या 'कामनहब्बा' का रूप ग्रहण कर लेता है। मदनदहन में उत्तर भारत की तरह ही होली जलाई जाती है। इसका जुलूस काफी तैयारी के बाद निकाला जाता है। यहाँ ऐसी मान्यता है कि इसी दिन अपना तीसरा नेत्र खोलकर शिव ने अपने ऊपर कुसुम बाण चलाने वाले को जलाकर भस्म कर दिया था, इसलिये उसी के प्रतीक के रूप में यहाँ कामाग्नि को भस्मीभूत किया जाता है। यहाँ होली पर गाये जाने वाले गीतों में रति-विलाप का मार्मिक वर्णन रहता है।

दक्षिण भारत में तमिलनाडु में केवल मद्रास और केरल और भारतीय नौसेना के बन्दरगाहों में होली का त्योहार मनाया जाता है। कर्नाटक में होली तो मनाते हैं किन्तु रंग नहीं खेला जाता। बंगलोर, शिमोगा, मैसूर, धारवाड़ आदि नगरों में होली के दृश्य उत्तर भारत की तरह ही दिखाई पड़ते हैं।

कश्मीर

नीलमतपुराण के अनुसार कश्मीर मे होली का त्योहार उस पिशाच को डराने के लिये मनाया जाता है, जिसके बारे मे लोगों की आम धारणा है कि वह उसी रोज़ लोगों के घरों में प्रवेश करता है। लोग उस दिन एक दूसरे के ऊपर कीचड़ फेंकते है, अश्लील गालियाँ बकते हैं और हँसी-मज़ाक करते हैं ताकि पिशाच डरकर भाग जाए और लोगों के घरों मे न घुसे।

भील-बजारो की होली

गुजरात, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और राजस्थान के वनवासी भीलों की होली 'होलिकादहन' के एक सप्ताह पहले शुरू हो जाती है। इसे 'भगोरिया' कहते हैं। सभी अविवाहित युवक-युवतियाँ सजधज कर 'भगोरियावास' में एकत्र होते हैं और अपना जीवन साथी चुनते हैं। युवक ढोल बजाकर गीत गाते हैं, युवतियाँ नृत्य करती हैं। दोनों एक दूसरे को रिझाते हैं। युवक के हाथ में गुलाल रहता है। वह जिस युवती को पसन्द करता है, उसके गाल में गुलाल लगाकर एक कोने में चला जाता है। यदि युवती भी उसके गाल पर गुलाल लगा देती है तो भील समाज उन्हें विवाह की अनुमति दे देता है। अक्सर इस नृत्य में लोग अश्लील गीत गाते तथा उन्मुक्त होकर नाचते हैं।

आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु और कर्नाटक क्षेत्र के बंजारों को 'लंबादी' कहते हैं। ये होली के लिये आपस में चन्दा जुटाते हैं और होलिकादहन पर कामदेव और रति की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर पूजा करते हैं। पूजा से पहले इस कबीले का मुखिया दिनभर

उपवास करता है। होलिकादहन पर जलती हुई अग्नि के चारों ओर कबीले के पुरुष-स्त्रियाँ उन्मुक्त होकर नृत्य करते है। दूसरे दिन स्त्री-पुरुष लड़ाई का नाटक करते हैं। स्त्रियां घड़ा में मादक पेय लेकर आती हैं। पुरुष उन पर हमला करते हैं और घड़ों को लेकर भागते हैं। स्त्रियाँ उनका पीछा करती हैं और उन्हें पकड़ कर दण्ड देती हैं।

पूरे कुनबे के साथ देश में जगह जगह घूमने वाले बंजारों की टोली का अपना रंग होता है। होली की तैयारी दो माह पहले से शुरू होती है। रात के समय गैरिया (युवक) और गैरिनी (युवती) की टोलियाँ ढोल और डफ के ताल पर नाचती हैं। यह त्योहार चार दिन तक मनाया जाता है। पहले दिन श्रृंगार भरे अश्लील गीत होते हैं। दूसरे दिन कई स्थानों पर बड़े-बड़े घड़े और लकड़ियाँ गाड़ी जाती हैं। गैरियों की टोली इन घड़ों और लकड़ियों को निकालने का प्रयत्न करती है। गैरिनियों की टोली घेरा बनाकर घूमती हुई अपने पति या देवर की पीठ पर डंडे से प्रहार करती है। घड़ा और लकड़ी के जमीन से निकलने तक यह क्रम चलता है। तीसरे दिन गैरिये-गैरिनियाँ एक स्थान पर इकट्ठे होते हैं। गैरिनी अपने पति को पकड़कर बैलों को बाँधने के स्थान पर बाँध देती है। पति रस्सी से छूटने के प्रयास में तरह तरह की मुद्राएँ बनाता है, जिससे लोगों का मनोरंजन होता है। चौथे दिन होलिका की राख लेकर मुखिया के घर सब लोग पहुँचते हैं। वहाँ सब रंग खेलते हैं, एक दूसरे को गालियाँ देते हैं और सामूहिक नृत्य करते हैं। शाम को सामूहिक भोज में लोग बकरे का माँस खाते हैं। इस तरह होली पर्व समाप्त होता है।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों के अतिरिक्त विश्व के कई देशों में भी होली से मिलते जुलते त्योहार मनाये जाते हैं।[१]

मिस्र

यहाँ के आदिवासी क्षेत्रों में मार्च के तीसरे सप्ताह में एक त्योहार मनाया जाता है, जिसे 'अंगारों की होली' कहते हैं। इस दिन आदिवासी घने जंगल में एक स्थान पर आग लगाते हैं और उसमें अपने पूर्वजों के बाल तथा कपड़े जलाते हैं। इसके बाद अधजली होली के अँगारे वे एक दूसरे पर फेंकते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से होलिका राक्षसी का अन्त होता है।

श्रीलंका और तिब्बत

यहाँ भारतीय ढंग से होली मनाई जाती है। यहाँ के निवासी होलिकादहन से पहले पूजा करते हैं।

पोलैंड

यहाँ का 'आरशिना' त्योहार होली की तरह होता है। इस दिन लोगों की टोलियाँ

---

१. लेख — *होली : विश्वभर में हर्ष का पर्व* — कमल सौगानी, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, १८ मार्च, १९८४।

सामूहिक रूप से एक दूसरे पर फूलों से बना हुआ रंग डालती हैं तथा लोग पुरानी शत्रुता भूलकर आपस में गले मिलते हैं।

इटली

यहाँ होली के समान त्योहार 'रेडिका' है। यह मार्च के अन्तिम सप्ताह में मनाया जाता है। अन्न की देवी फ्लोरा को प्रसन्न करने के लिये और खेतों में फसल की वृद्धि क लिये शाम को एक ऊँचे चबूतरे पर लकड़ी इकट्ठी करके जलाई जाती है। इस अग्नि के चारो ओर लोग नाचते हैं और अग्नि की एक सौ बार परिक्रमा करते हैं।

जर्मनी

यहाँ होली ईस्टर के दिन मनाई जाती है। इस दिन लोग लकड़ियों का एक ढेर इकट्ठा करके जलाते हैं। एक दूसरे पर रंग डालते और नाचते-गाते हैं।

स्वीडन

इस दिन यहाँ अग्निकुंड को लाँघने और उसके इधर-उधर खड़े होकर रंग और फूल बरसाने का एक अनोखा पर्व मनाया जाता है। यह पर्व अग्नि के प्रति समर्पित किया जाता है।

चीन

यहाँ होली को 'च्वेज' नाम से पुकारा जाता है। इस दिन लोग रंगीन वस्त्राभूषण पहन कर नाचते-गाते हैं। एक दूसरे के गले मिलते और बधाई देते हैं। इसके बाद आग का खेल खेला जाता है।

बर्मा

यहाँ होली के समान 'तेच्या' नामक पर्व मनाया जाता है, जो भगवान् बुद्ध के स्वागतार्थ होता है। इस दिन काम काज बन्द रहता है। रास्ते में लोगों पर पिचकारियों से रंग डाला जाता है, लोग नाचते-गाते हैं।

जापान

यहाँ लोग बौद्धभिक्षुओं के मठ मे जाकर सोना दान करते हैं और भिक्षुओं पर सुगंधित रंग का पानी डालते हैं।

इंगलैंड, जावा, मलाया, सुमात्रा, नार्वे

इन देशों में लोग होली के दिन नाचते-गाते हैं।

चेकोस्लोवाकिया

यहाँ इस त्योहार को 'बेलिया' नाम से जाना जाता है। इस अवसर पर लड़के-लड़कियाँ एक दूसरे पर इत्र फेंकते हैं और एक अनोखी घास के बने हुए वस्त्र एक दूसरे को भेंट करते हैं।

अफ्रीका

यहाँ 'ओमेना वोगा' नामक त्योहार होली की तरह मनाया जाता है। इस दिन वोगा नामक एक जंगली देवता को लोग जलाते हैं और प्रसन्न होते हैं।

फ्रांस

यहाँ १९ मार्च को हँसी-मज़ाक का एक खेल होता है। इस दिन सामूहिक रूप से इकट्ठे होकर लोग दो आदमियों को चुनते हैं। एक को 'राजा पीते' और दूसरे को 'रानी पीते' कहा जाता है। जो लोग इस आयोजन में भाग नहीं लेते, उनका मुँह काला करके, सिर पर सींग लगाकर उन्हें गधा बना दिया जाता है। रात में हर व्यक्ति अपने पुराने जूते जलाता है।

अमेरिका

इस दिन युवक युवतियाँ एक नदी किनारे जुटते है और कीचड़ तथा गोबर की बनी रंगीन गेंदों और गुब्बारों से होली खेलते है।

ईरान

ईरान का 'नौरोज पर्व' होली के समान है। यह पर्व पूर्ण उत्साह और उल्लास से मनाया जाता है। समस्त ईरान इस पर्व के आने पर रंग और नूर से नहा जाता है। इस अवसर पर होली की रंगीनी और दीवाली की रोशनी भी होती है।

मॉरिशस

मॉरिशस में भारत के, विशेष रूप से बिहार प्रदेश के बहुत लोग पाये जाते हैं, अत: वहाँ आज भी होली का त्योहार धूमधाम से मनाया जाता है। यहाँ होली का कार्यक्रम लगभग चालीस दिन तक चलता है। वसन्त पंचमी के दिन इसकी शुरुआत हो जाती है। लोग ढोलक और झाल लेकर होली के गीत गाते हैं। इन गीतों को धमाल और चौताल कहा जाता है। इन गीतों में शास्त्रीयता नहीं होती। इस आयोजन मे आपस का भेदभाव मिट जाता है। भारत की तरह यहाँ भी होली की कथाएँ प्रचलित हैं।

यहाँ हर गाँव के द्वार पर एक चौराहा होता है, जहाँ गाँव की रक्षक देवी काली माई का मन्दिर होता है। यहाँ होलिकादहन होता है तथा रात भर गाना-बजाना चलता है। अगली सुबह रंग से शुरू होती है। लाल रंग यहाँ विशेष प्रिय है। बाँस, रबर और पीतल की पिचकारियों का प्रयोग होता है। दोपहर बारह बजे के बाद रंग खेलना बन्द हो जाता है। यहाँ होली के साथ गाली गीतों का भी प्रचलन है। चौताल में रसीले सवाल-जवाब चलते हैं।

होली गीतों की विषयवस्तु

होली के समय गाये जाने वाले गीतों की प्रमुख दो श्रेणियाँ होती हैं—एक क्रीड़ा

विलास की और दूसरी ओजपूर्ण। ओजपूर्ण गीतों में महाभारत तथा रामायण के विविध युद्धों का बड़ा सजीव वर्णन होता है। इनमें सीता-वनवास तथा लक्ष्मण के शक्तिबाण आदि प्रसंग भी होते हैं। कुछ गीतों मे उपदेश भी होते हैं।

धार्मिक भावना की प्रधानता के कारण राम, कृष्ण के जीवन की मधुर झाँकियाँ भी इन गीतों में मिलती हैं -

दसरथ सुत रघुराई, विनय यह गाई
नगर अजोध्या में जनम लियो है
भगतन के सुखदाई
लंका में रावन के कारन
मनुज प्रगट लरवाई।

एक होली गीत में अर्जुन अपनी माता को आश्वासन दे रहे हैं

जाके पाँच पुत्र बलदाई
जुलुम हैगौ मैया
तू काहे रही घबराइ, ऐरावत मँगाइ
तो पै दऊँ पुजवाइ
एक करि दऊँ जमीं आसमाँ
सुत अरजुन सौ पाइ।

कहीं राम अपना दुःख प्रकट करते हैं। किसी में शैव्या का विलाप है, किसी में विरहिणी गोपियों का।

इन होलियों मे स्त्री-पुरुष के संबंधों का भी चित्रण है। होली पूजने के पूर्व एक गीत में स्त्री शिकायत करती है कि मेरे पास कोई आभूषण नहीं है, मैं होली कैसे पूजूँ? पति कहता है इस बार ऐसे ही पूजो, अगली बार दो दो बनवा दूँगा।

होली गीतों में सामाजिक कुरीतियों का भी चित्रण है। एक होली में बाल-विवाह का चित्र है —

बारौ बलमा रे बारौ बलमा
तगड़ी ए घर नारि के बारौ बालमा।

और यह है बहु विवाह का चित्र —

अकेलौ बलमा रे अकेलौ बलमा
घर में द्वै नारि, अकेलौ बलमा।

अवध क्षेत्र में राम, सीता और शिव के होली खेलने का भी वर्णन आता है —

होली खेलें रघुवीर अवध में
किनके हाथ कनक पिचकारी
किनके हाथ अबीर
राम के हाथ कनक पिचकारी
सीता के हाथ अबीर।

❑ ❑ ❑

तोसे बबाजी से को होरी खेले
तोरी लट में विराजत गंग।

आजु सदाशिव खेलत होरी।

लेइ गुलाल शंभु पर छिरके
रंग में उनका के बोरी
भइल लाल सब देह शंभु के
गौरी शंकर करेले ठिठोरी।

शिवंकर गावत फाग समाज बटोरी।

कहीं पवनसुत हनुमान लंका में होरी की धूम मचाते पाये जाते हैं, तो कहीं राम के बाल-रूप का वर्णन मिलता है। वैसे होली गीतों में राधाकृष्ण की होली का ही विशेष वर्णन रहता है----

ब्रज में हरि होरी मचाई
इत तें आवत नवल राधिका
उत तें कुँवर कन्हाई
हिलमिल फाग परस्पर खेलत
सोभा बरनी न जाई।

गोपी और कृष्ण की पावन क्रीड़ा-केलि में होली खेलने का विशेष महत्त्व है। प्रेम की जो सरसता, मधुरता व्रज की भूमि को सराबोर कर गई है, वह अपूर्व और अनुपम है। होली में अधिकांश गीत संयोग शृंगार से युक्त होते हैं। शृंगार के नायक-नायिका राधा-कृष्ण हैं अत: उनसे संबंधित ही अनेक गीत हैं -

राधावर खेलत होरी
नन्दगाँव के ग्वाल सखा हैं
बरसाने की गोरी
खेलत फाग परस्पर हिलमिल
सुख रंग में रस भोरी
घरे-घरे फाग भयो री।

सामान्य शृंगार गीत भी होली में गाये जाते हैं—

फगुआ तेरी अजब बहार रे।

फागुन के गीतों में मादकता, मस्ती, ललक और उन्माद मिलता है—

फागुन मस्त महीना हो लाला।

किसी-किसी होली में दार्शनिक तत्त्व-विवेचन भी मिलता है। संत कवियों ने होली के माध्यम से साधना और योग का उपदेश दिया है। संत गुलाल ने फागु को आध्यामित्क रूप दिया है—

अनुभौ फाग मनोरवा, दहु दिसि परलि धमार
कायानगर में रंग रचो, प्राननाथ बलिहार ।

सत गुलाल के शिष्य भीखा साहब ने होली को साधनावस्था पर घटित कर दिया है। जिस समय साधक कुण्डलिनी को जाग्रत कर उसे ऊर्ध्वोन्मुखी बनाता है, वही समय साधक के फाग का है। उस समय इड़ा, पिंगला नाड़ियाँ तान पूरती हैं। सुषुम्ना होली गाती है। गगन मण्डल मे अनहद ध्वनि होती है, वही होलिकोत्सव पर बजाये जाने वाले यंत्रों से उठी ध्वनि है। संत-संगति रूपी अबीर को घोल लिया गया है--

मन में आनन्द फाग उठो री
इंगला पिंगला ताना देवे, सुखमन गावत होरी
बाजत अनहद डंक तहाँ धुनि, गगन में ताल परो री
सतसंगति चोबा अबीर करि दृष्टरूप लै घोरी ।

अष्टछाप के कवियो ने होली गीतों मे 'फगुआ' माँगने की प्रथा का उल्लेख किया है। गोपियाँ कृष्ण से कहती हैं--यदि फगुआ न दे सको तो राधा के पैर छुओ। फगुआ न मिलने पर गाली दी जाएगी।

सूरदास ने इस तरह के गीतों मे सामान्य लोक परम्पराओं का चित्र खींचा है। सूरदास की राधा अपनी सखियो सहित कोई साधारण छड़ी या बाँस लेकर कृष्ण की ओर दौड़ती हैं --

लै लै छरी कुमारी राधिका
कमलनयन पर धाई ।

मीरा ने स्वयं को कृष्ण के साथ होली खेलने के लिये पात्री बनाया है। उसने होली और वसन्त के माध्यम से विरहानुभूति को व्यंजित किया है। झाँझ, मृदंग, मुरली, इकतारा बज रहे हैं, पर प्रिय नहीं हैं--

होली पिया बिनु लागां खारी
सूने गाँव देस सब सूनो, सूनो सेज अटारी
बाज्यो झाँझ, मृदंग, मुरलिया, बाज्यां कर इकतारी
आयो वसन्त पिया घर नूँ री
म्हारी पीड़ा भारी ।

रसखान का अनुभाव भी बड़ा सुन्दर है। छबीली पिचकारी चला रही है और छबीला छककर छबिपान कर रहा है---

मिलि खेलत फाग बढ़यो अनुराग
सुहाग सनी सुख की रमकैं
कर कुंकुम लै करि कंजमुखी
प्रिय के दृग लावन को झमकैं
रसखानि गुलाल की घूँघर में
ब्रजबालन की द्युति यों दमकै
मनो सावन साँझ ललाई के माँझ
चहूँ दिसि तें चपला चमकैं ।

घनानन्द का फाग-वर्णन भी अत्यन्त मनमोहक बन पड़ा है--

फागुन महीना की कहानी ना परें वातें दिन
गतैं जैमे बीतत सुने ते डफ घोर को
मची है चुहल चहूँ दिसि चोप चाँचरि सों
का मो कहो मंहो हो वियोग झकझोर को ।

सूरदास ने होली में गाली देने का भी वर्णन किया है-

उत होरी पढ़त ग्वार, इत गारी गावत ये
नन्द नाहि जाये तुम महरि गुन निभारी
कुलटी उनतें को है नन्दादिक मन मोहे
बाबा वृषभानु की वै सूर सुनहु प्यारी ।

सूर, कुंभनदास और चतुर्भुजदास की रचनाओं में होली के अवसर पर बजने वाले निम्न वाद्य यंत्रों का उल्लेख आया है -मृदग, झाँझ, डफ, बाँसुरी, महुअरि, रुंज, वीणा, किन्नरि, तंबूरा, रबाब, पटह, गोमुख, झल्लरि, भृंगवेत्र, गिरगिरी, डिमडिम, अघौटी, शंख, अमृतकुंडली, ढोल, पखावज, मजीरा, शहनाई, मुरज आदि।

इन रचनाओं मे होली के उपादान हैं --चोवा, चंदन, अबीर, गुलाल, कुमकुम, टेसू के फूलों का रंग, अरगजा, मृगमद, कपूर, केसर और अगर।

होली गायन की पद्धति

शास्त्रीय विधि

रागों के नियम के साथ गायक जब अपनी कल्पना और अभ्यास से बंदिश और तान आदि गाता है तो खयाल होता है। ख़यालों के माध्यम से होली गायन पद्धति कई स्थानों पर प्रचलित है। विभिन्न स्थानों पर निश्चित समय पर दंगल होते हैं, जिनमें प्रतिद्वन्द्विता होती है।

होली गायन पद्धति भी विशिष्ट प्रकार की है। खयाल गायक जब होली को विभिन्न तालों में गाते हैं तो वह गीत होली का गीत कहलाता है। होली और धमार में केवल वाद्यों का अन्तर होता है। फाग संबंधी पदों को ख़यालगायक दीपचन्दी, त्रिताल आदि में गाते हैं। इनमें तान, आलाप और पलटो का भी प्रयोग करते हैं।

जहाँ तक रागों का प्रश्न है, होली गीत बहुधा बिलावल, वृन्दावनी सारंग, पीलू, भूपाली, सारंग, दुर्गा आदि रागों में गाये जाते हैं किन्तु सबसे अधिक प्रचलित है काफी राग, जिसमें होली गीतों का निखार उभर कर आता है।

शास्त्रीय विधि से गाई जाने वाली होली खड़ी और बैठकी दो प्रकार की होती है किन्तु खड़ी होली में शास्त्रीयता होते हुए भी लोकसंगीत की प्रधानता होती है। बैठकी होली शास्त्रीय विधि से स्वरों का विस्तार करते हुए धीमी विलंबित लय में गाई जाती है।

गाँवों में फगुआ गाने की दो विधियाँ हैं—

(१) पहली विधि में गायक एक दल बनाकर ढोल, मजीरा या करताल के साथ मस्ती में झूम-झूम कर गाते हैं।

(२) दूसरी विधि में फगुआ के गवैये दो दलों में विभक्त होकर बैठ जाते हैं। एक व्यक्ति के हाथ में ढोलक रहता हैं और कुछ अन्य लोगो के हाथ में झाँझ, झाल या जोड़ी। दोनों दलों का एक-एक अगुआ होता है। एक दल का अगुआ गीत की प्रथम कड़ी कहता है—

आजु कन्हैया जी खेलत हैं होरी ।

दूसरा दल गाता है--

गोपियन मार रहल पिचकारी ।

इसी क्रम में यह समूहगान ढोलक-झाल के साथ तेज होता हुआ पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। दोनों दल फिर एक होकर गाते-गाते विभोर हो जाते हैं। पराकाष्ठा पर पहुँच कर गीत बन्द हो जाता है। इन गीतों की गति, इनकी भाषा का बन्ध और स्वरसंधान अत्यन्त मधुर होता है। गाने की शैली भी अत्यन्त आकर्षक होती है। एक-एक टेक की बार-बार आवृनि से गाँव का चौपाल हर्ष-विभोर हो जाता है।

दो दलों वाली होली गायन विधि में कबीर और जोगीड़ा गाने की भी प्रथा है, जिसमें पहला दल सवाल करता है और दूसरा दल जवाब देता है।

होली गीतों के प्रकार

छन्दयाऊ या होरी

इसे छन्दशास्त्र के नियमों मे बाँधना कठिन है, फिर भी पिंगल के नियमों का कुछ पालन हुआ है। इसमें पहले टेक, फिर छन्द की पंक्तियाँ और अन्त में वही टेक का पद आता है

उड़त गुलाल लाल भये बादर
कै मन प्यारे रंग बनाये
कै मन केसर घोरी ।
नौ मन प्यारे रंग बनाये
दस मन केसर घोरी ।

चौकडी

ईसुरी की फागें चौकड़ी अथवा चतुष्पदी कहलाती हैं। इनमें चार या पाँच कड़ी होती हैं। कहीं-कहीं छन्द के साथ दोहा भी जोड़ दिया गया है। ईसुरी की फागों का मुख्य विषय प्रेम रहा है—

बाँके नैन कजरवा आँजौ
बलम बिना ना साजौ ।

राई

यह बुन्देलखण्ड का प्रसिद्ध नृत्य गीत है। इस फाग में केवल एक पंक्ति रहती है—

चाहैं कछु हौ जाइ उमरि भरि
मोरी निभाइ देउ बालमा ।

साखी की फाग

इस फाग मे पहले दोहा और अन्त में टेक रहती है --

नई गोरी नये बालमा, नई होरी की झाँक
ऐसी होरी दागियो, तोरे कुल को न आवे दाग
सम्हरि के यारी करो मोरे बालमा ।

रसिया

'रसिया' रास की एक विशेष धुन है, जिसे निश्चित स्वर में गाकर रासलीला करते हैं। यह एक शृंगार प्रधान गीत है

काँटा लगो रे देवरिया
मोपै गैल चली ना जाय ।

रसिया की व्युत्पत्ति 'रसिक' से हुई है। रसिया और होली का घनिष्ठ संबंध है। रसिक कृष्ण की संपूर्ण लीलाओं का वर्णन रसिया में हुआ। बाद में शृंगारिक बातों का चित्रण ही रसिया का प्रतीक बन गया। एक रसिया मे बरसाने की होली का सुन्दर चित्रण है

बरसाने में सामरे की होरी रे
लाल गुलाल लाल भये बदरा
मारत भरि भरि झोरी रे ।

स्वांग

स्वांग एक प्रकार का अभिनय है। गीतों भरे स्वाग भी किये जाते हैं--

लगा आई गिरधारी से नेह
एक दिना गउअन में गये ते
भारी बरसो मेह
अपनी कमरिया उन्हें उड़ा दई
तासे लगो सनेह ।

रजपूती

भिंड, भदावर तथा उत्तर प्रदेश के ग्रामों में इनका विशेष प्रचलन है। इन स्थानों पर होली के साथ ख़याल भी गाये जाते हैं—

चन्दा बेईमान अधरमी, सब कोई जाने
लै लै आगि उहतु है ।

लेद

इसके गाने में स्वरों का आरोह-अवरोह विशेष रूप से करना पड़ता है। यह विशेष रागिनी में गाया जाता है। कहते हैं, कुदऊँ उस्ताद ने इसका आविष्कार किया था---

हँसि दे लए झँझर किवार
सजन ककना बनवाउ देउ सोने के

वारे दिवरा ने दुलरी दे दई
रुचि गढ़ि दई सुघर सुनार।

फाग, फागुन या फगुआ

वसन्त पंचमी से बुढ़वा मंगल तक गाये जाने वाले गीतों को फाग, फागुन अथवा फगुआ कहते हैं। इस समय बूढ़े भी सुध-बुध भूल जाते हैं

फागुन में बुढ़ऊ देवर लागे।

होरी

यह वसन्त ऋतु में गाया जाने वाला एक सहगान है, जिसके प्रत्येक चरण का पूर्वार्द्ध विलम्बित और उत्तरार्द्ध द्रुत होता है--

धनि धनि हो मिया तोर भाग
राम बर पाये
लिखि लिखि चिठिया बिस्वामित्र भेजे
मुनियन हाथ पठाये
साजि बरात चले राजा दसरथ
देखि जनक हरसाये।

वैशिक होरी की लय अपेक्षाकृत विलंबित होती है। स्वर का आरोह अवरोह भी नियंत्रित होता है। वैशिक होरी एक स्वर का गान है -

मत मारो स्याम पिचकारी, भींजी मोरी सारी
गाल गुलाल मलो नहिं प्यारे
मैं अति ही सुकुमारी
मैं तो अबहीं उमिरिया की बारी
भींज गई तन सारी।

होरी की एक आवृत्ति युक्त लय भी है, जो चौताल से द्रुत किन्तु बेलवरिया से विलंबित होती है। इस प्रकार की एक होली इस प्रकार है -

होरी खेलें रघुबीरा अवध में होरी
केकर हाथे कनक पिचकारी
केकरे हाथे अबीर
सखी री केकरे हाथे अबीर।

बेलवरिया में अन्तरा में अन्तिम शब्द की तीन बार आवृत्ति होती है किन्तु होरी में 'हाय' अथवा 'सखी री' कहकर अन्तरा का अन्तिम अंश दुहरा दिया जाता है।

चौताल

यह वसन्त ऋतु में गाया जाने वाला विलम्बित लय का सहगान है। चार आघात और दो खाली होने के कारण इस ताल को 'चौताल' कहते हैं। चौताल और होरी के छन्द-विधान में विशेष अन्तर नहीं है। होरी के बोल टेक से ही द्रुत होते हैं जबकि चौताल के

विलम्बित। पुनरावृत्ति में इसकी लय क्रमशः द्रुत होती जाती है। अन्तरा की समाप्ति पर चौताल की लय फाग के गीतों में सबसे अधिक द्रुत होती है। किन्तु दूसरा अन्तरा आरंभ करते ही गायक पुनः विलम्बित लय पकड़ लेते हैं। यही क्रम चलता रहता है -

कोइलरि मोहे बिरही सुनाई, बलम सुधि आई
अरे बहे बतास, झकोरन लागै, हवा बहै चौआई ।

चौताल दुगुन

यह साधारण चौताल की अपेक्षा दूनी लय का होता है। तुक और अन्त्यानुप्रास का प्रयोग इसमें अधिक होता है। अन्तरों में बहुधा चौपाई, कभी बरवै, दोहा, कवित्त और सवैया का भी प्रयोग होता है। चौपाई वाले अन्तरा का गान प्रायः समूह में होता है। चौताल की तरह ही चौताल दुगुन की टेक के बोल आरंभ से विलंबित किन्तु चौताल की अपेक्षा द्रुत होते हैं और पुनरावृत्ति में द्रुत होते-होते चरमविन्दु पर पहुँच जाते हैं—

सिव चाप खंड करि डारे, अवधपुर वारे
बाजत संख, मृदंग, झाँझ, डफ,
ढोल, तरंग, सितारे
सखिन सहित हरखित सब रानी
सूखे धान परा जनु पानी
धनि धनि भाग हमारे, अवधपुर वारे ।

बेलवरिया

वसन्त ऋतु के गीतों में यह सर्वाधिक द्रुतगति का गीत है। चौताल की लय क्रमशः द्रुत होती है किन्तु बेलवरिया की लय का आरंभ ही द्रुत होता है। पदों की आवृत्ति इस गीत की विशेषता है। इसे 'रागलहरी' भी कहा जाता है—

डारो ना अबीर, डारो ना अबीर
कान्हा मुरलिया वाले
होइहैं जरद मोरी अंगिया रे
बुंदा भींजे पंचरंगिया
सिगरो तन चीर, सिगरो तन चीर ।

बेलवरिया पूर्णतः लय पर आधारित अतुकान्त गीत है किन्तु कुछ गीत ऐसे भी हैं जिनके चरणान्त में तुकों का प्रयोग होता है। इस तरह के गीत की धुन बरवै के विकसित रूप से निकली जान पड़ती है।

कबीर

यह फागुन के महीने में गाया जाने वाला एक एकल, अश्लील, लघु, मुक्तक गीत है—

बाबा मोरा ब्याह करावहु
आछा बरहिं तकाइ

जो लौं आछा ना मिलै
तुम ही लेहु बियाहि ।

और भी

सगरो गाँव काकी, त केकरे ओर ताकी ।

उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण में राष्ट्रीय पुनरुत्थान हुआ, तब सामाजिक और राष्ट्रीय कबीर भी लिखे गये--

अर रर रर कबी ऽऽर
प्रजा बिचारी मरै भूख से, परे काल विकराल
राजदंड बिन बचै न कोई, बेचो तन की खाल
भला अस हुकुम बड़े श्रीसाहब का ।

कबीरपंथी लोग निर्गुणियों के प्रश्नों को कबीर कहते हैं। एक उदाहरण इस प्रकार है--

प्रश्न—

कौन काठ की बनी पलंगिया, काहे की मसहरी
काहे का बिस्तर लगवाकर सोवै प्रानपियारी
फिर देख चली चल सा रा रा रा रम ।

उत्तर--

चन्दनकाठ की बनी पलंगिया, रेसम की मसहरी
मखमली बिछौना लगाके सोवै प्रानपियारी
फिर देख चली चल सा रा रा रा रम ।

जोगीड़ा

यह होली के अवसर पर गाया जाने वाला एक प्रकार का चलता एकल गीत है। जोगीड़ा 'जोगी' शब्द में 'ड़ा' प्रत्यय लगाकर बना है। सिद्ध सामन्त युग में नाथपंथियों और कबीरपंथियों में उलटबाँसियों के माध्यम से शास्त्रार्थ होता था। गोरख और कबीर के प्रश्नोत्तर से संबद्ध अनेक जोगीड़े गंगाघाटी में प्रचलित हैं।

गोरख का प्रश्न है---

कौन तुम्हारी नगरी है, और कौन तुम्हारा देस
कौन तुम्हारा है दुलेचा, कौन गुरु दीना उपदेस ।

कबीर का उत्तर है-

काया मेरी नगरी है, और पानी मेरा देस
धरती हमारा है दुलेचा, गुरु गोविन्द दीना उपदेस ।

लोकगीतों के जोगीड़ों की प्रेरणा के स्रोत निर्गुण संतों के वाद-विवाद वाले जोगीड़े ही हैं। आज भी जोगीड़ा में उलटबाँसियाँ मिलती हैं। जोगीड़ा गायन एक प्रकार का शास्त्रार्थ है। जोगीड़ा गायक एक दूसरे को 'जोगी जी' कहकर संबोधित करते हैं। दो गायक आमने सामने खड़े होकर सवाल-जवाब करते हैं। ढोल-मजीरा बजाने वाले तथा स्त्री वेषधारी नाचने वाला लड़का दोनों गायकों का साथ देता है और गायक को 'वाह जोगी जी' या 'वाह यार' कहकर दाद दी जाती है। कुछ जोगीड़े प्रेम, नीति और ज्ञान पर आधारित होते हैं—

अरे जोगीजी चुप रह जा सुन लो मोरी बानी
प्रीति करे तो अस करे जस मजीठ का रंग
धोये पर छूटे नहि जाये जीव के संग
प्रीति करे तो अस करे जस लोटा औ डोर
आपन गला फँसाय के पानी लावे बोर ।

महफिल गरम होने पर प्रतिद्वन्द्वी लोग आध्यात्मिक धरातल से उतर कर ठेठ भौतिकवाद पर आ जाते है

कहीं त मररर ए मोरे भइया मररर
आठ काठ के जोगिन देखा
सोने के खड़ाऊँ
तोहार बिटिया जवान पउली
लेइ के पराऊँ
मुगलसराय से छूटी गाड़ी
उसमें लादा लाची ।

जोगीड़ा के तीन अन्य प्रकार और हैं - बीसा, मुखताल और बात।

बीसा और मुखताल प्रायः निरर्थक होते हैं। बीसा मुखताल की अपेक्षा अधिक द्रुतलय में गाया जाता है और इसके प्रत्येक चरण में प्रायः बीस मात्राएँ होती हैं -

रामनगर रामनगर जमुना गहरी
फेंकत मल्लाह जल बाझत मउरी
मउरी के अंडे बच्चे सुमंगल गावें
कूदत हनुमान कहीं थाह न पावें ।

मुखताल का रूप, शिल्प, यति और तुक दोहे जैसा ही होता है—

तेरी सौं अररर झप। तू खाले लड्डू गप
भुजंगा लकड़ी चीरे कोठे के अन्दर
मेरा तो आधा लड्डू, कोठे पे ले गया बन्दर
कौन घड़ी वह राजा जनमा, कौन घड़ी वह रानी
कौन घड़ी मिरगा को मारा, हमें बता दो ज्ञानी ।

'बात' लावनी और दोहे से मिलते-जुलते छन्द मे गाया जाने वाला प्रबन्धगीत है। गंगाजी की बात, रेल की बात, राजा भरथरी की बात आदि आख्यानों पर इसकी कथावस्तु आधारित रहती है।

पटका

स्त्रियाँ मण्डलाकार घूमती हुई एक दूसरे के हाथ पर हाथ मारती हुई गाती हैं—

राजा नल के बार मची होली
हमपे तो राजा सिल्वा बी ना है
म काहे कु पहर खेलूँगी हो होली

अबके हँस गोरी, होली खेल्यो
पर कूँ गढ़ा दूँ साढ़े नौ जोड़ी ।

उलारा

प्राय: चौताल के बाद 'उलारा' बीच में थोड़े विश्राम के लिये गाया जाता है, जो थोड़ा हल्का होता है। चौताल में सुर अधिक खींचना पड़ता है और वह बड़ा भी होता है, इसीलिये 'उलारा' गाने की प्रथा है--

मोरा सोवत लाल झुकैं कनिया
सोने की थारी मां ज्वेना परोसूँ
जेवउ कि उठि जाउ पिया ।

काजलियो

राजस्थान में होली के अवसर पर 'काजलियो' नामक गीत गाया जाता है। राजस्थान में स्त्रियों के अलावा पुरुष भी आँखों में काजल डालते हैं। इस गीत की लय चलती हुई होती है। यह गीत होली के अवसर पर चंग पर गाया जाता है। इसमें प्राय: कहरवा ताल का प्रयोग होता है। यह शृंगारिक गीत है। प्राय: इसमें सारंग के स्वर लगते हैं

काजल भरियो कूपलो कई धर्‌यो पलंग अध बीच
कोरो काजलियो ।
सेजां में सवायो लागे रे कोरो काजलियो
मुं थाने बरजूँ सायबा कोई सीयाले भल आव
सीयालारी रुत प्यारी कामण कंठ लगाय
कोरो काजलियो ।

कांगसियो

राजस्थान में यह गीत होली के अवसर पर डफ पर गाया जाता है। यह गीत रेगिस्तानी और मेवाड़ के भागों में अधिक प्रचलित है। यह 'मिश्र कल्याण' में गाया जाता है—

म्हारा छैल भँवर रो कांगसियो, पणिहारां ले गई रे
पणिहारां ले गई रे, मारी सोकड़ियाँ ले गई रे
डोड़ मोहर रो कांगसियो मैं हटबाड़ा सै लाई रे
दाँते दाँते मोती जड़िया अद बिच हीरा जड़िया रे
मारा आलीजा छैल रो काँगसियो पणिहाराँ लै गई रे ।

चैती

चैत्र कृष्ण-प्रतिपदा यानी होली की रात बारह बजे से चैती गान आरंभ हो जाता है। चैत के महीने में गाये जाने के कारण इस गीत का नाम 'चैता' या 'चैती' पड़ गया है। वैसे चैती गीतों की नींव वसन्त में पड़ जाती है पर चैत के पहले चैती गीतों को गाने की

प्रथा लगभग नहीं है। वसन्त की बहार चैत मास तक बनी रहती है। इस समय चैत के माधुर्य का क्या कहना! नदी के तीर पर घनी अमराइयों में जहाँ देखो वहाँ चैता की धुनें कानों में अमृत उड़ेलने लगती हैं। भोजपुरी में इसे 'घाटो' या 'घाँटो' भी कहते हैं। मैथिली मे इन्हें 'चैतावर' तथा मगही मे 'चैतार' कहा जाता है। लोकगीतों के अन्य जितने भी प्रकार हैं, उनमें माधुर्य, सरलता एवं कोमलता के लिहाज से चैती बेजोड़ है।

चैती का स्वरूप : एक साहित्यिक पर्यवेक्षण

'चैत्र' शब्द 'चित्रा' मे 'अण्' प्रत्यय लगाकर बना है। यह एक चान्द्रमास का नाम है, जिसमें चन्द्रमा चित्रा नक्षत्र में स्थित रहता है। यह महीना अंग्रेजी के मार्च-अप्रैल महीने में पड़ता है। इससे बनने वाले अन्य पद हैं--- चैत्री (चैत्र + इञ्), चैत्रिक (चित्रा + इक्) और चैत्रिन् (चित्रा + इनि)। इन सभी शब्दों का अर्थ चैत्र मास होता है। चैत्री (चित्रा + अण् + ङीप्) का अर्थ चैत्र मास की पूर्णिमा है। लोकभाषा का 'चैती' शब्द इसी चैत्री का अपभ्रंश कहा जा सकता है।

महाकवि कालिदास ने 'ऋतुसंहार' के षष्ठम सर्ग मे चैत्र मास का प्रयोग मधुमास कहकर किया है

आलम्बिहेमरसना: स्तनसक्तहारा
कंदर्पदर्प शिथिलीकृतगात्रयष्टय:
मासे मधौ मधुरकोकिलभृंगनादै:
नार्यो हरन्ति हृदयं प्रसभं नराणाम् ।[1]

चैत में जब कोयल कूकने लगती है, भौंरे गुंजार करने लगते हैं, उस समय कमर में सोने की करधनी बाँधे, स्तनों पर मोती के हार लटकाए, कामोत्तेजना से शिथिल शरीर वाली स्त्रियाँ बलपूर्वक लोगों का मन अपनी ओर खींच लेती हैं।

चैत की रातों का शृंगारभाव बहुर्चर्चित है। वसन्त का अवसान काल इन्हीं रातों के साथ होता है, इसलिये शृंगार का सम्मोहन बढ़ जाता है। काव्यप्रकाशकार आचार्य मम्मट ने काव्य की परिभाषा के क्रम में एक श्लोक उद्धृत किया है, जिसमें एक नायिका के मनोभावों का चित्रण है-- कभी वह अपने प्रिय से रेवा नदी के किनारे, मालती और कदम्ब की वायु से सुरभित वेतसी वृक्षों के नीचे छिप-छिप कर मिला करती थी। आज वह अपने प्रिय की प्रेयसी न रहकर भार्या बन चुकी है, किन्तु चैत की रातों में चोरी-चोरी फिर वैसे ही मिलन की उत्कंठा उसे हो रही है -

य: कौमारहर: स एव हि वर: ता: एव चैत्रक्षपा:
ते चोन्मीलित मालती सुरभय: प्रौढ़ा: कदम्बानिला:
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरुतले चेत: समुत्कण्ठते ।[2]

यहाँ रस के साथ-साथ विभावना अलंकार भी है, क्योंकि कारण न रहने पर भी

---

१. *ऋतुसंहार* ६/२६, २. *हिन्दी काव्यप्रकाश*, डॉ. सत्यव्रत सिंह।

यहाँ कार्य की उत्पत्ति दिखाई गई है।

एक सुभाषित ग्रन्थ में चैत्र मास के सौन्दर्य एवं विरही जनों के लिये इस समय की कष्टकर स्थिति का चित्रण किया गया है—

स्तोत्रं चैत्रगुणोदयस्य विरहिप्राणप्रयाणानकः
टंकारः स्मरकार्मुकस्य सुदृशां श्रृंगारशिक्षागुरुः
दोलाकेलिकलासु मंगलपदं बन्दी वनान्तश्रियां
नादोयं कलकण्ठकण्ठकुहरे प्रंखोलितः श्रूयते ।[1]

रीतिकालीन कवि बिहारी ने भी चैत की चाँदनी से उत्पन्न विरह वेदना का चित्रण किया है—

भौ यह ऐसोई समौ जहाँ सुखद दुख देत
चैत चाँद की चाँदनी डारत किये अचेत ।[2]

चैत मास के कुछ विशेष लक्षणों को देखते हुए किसानों के लिये जो ज्योतिष गणना हुई है, उसका वर्णन पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपने 'ग्रामसाहित्य' में किया है। कुछ उदाहरण देखें—

चैत पूर्णिमा होइ जो सोम गुरौ बुधवार
घर-घर होय बधावड़ा घर-घर मंगलचार ।

—अर्थात् चैत की पूर्णिमा को यदि सोमवार, बुधवार या वृहस्पतिवार हो तो घर घर मंगलचार होगा।

चैत मास जो बीज बिजोवै
भरि बैसाखाँ टेसू धोवै ।

—अर्थात् चैत के महीने में अगर बिजली चमके तो बैशाख में ऐसी वर्षा होगी कि टेसू के फूल तक धूल मे मिल जाएँगे।

चैती गीतों मे कलापक्ष एव भावपक्ष दोनो का प्रभाव है। इन गीतो की प्रतीक योजना में भाषासौष्ठव है, सुन्दर शैली है और लाक्षणिकता है। इनमें जो अनायास भाव-सौन्दर्य एवं अनुभूति प्राप्त होती है उसका कारण है इनकी स्वाभाविक रचना प्रणाली। चैती गीतों में कहीं-कहीं भावव्यंजना अत्यन्त अनुपम हो उठी है और उनमें व्यंग्य तथा लाक्षणिकता भी आ गई है—

आम मजरि महु तूअल
तइयो न पहु मोरा घूरल ।

इस चैतावर में व्यक्त लक्षणा देखते ही बनती है —

चइत मास जोवना फुलाएल हो रामा
कि सैंया नहिं आएल ।

यहाँ 'जोवना' के साथ 'फुलायल' शब्द का प्रयोग अत्यन्त सटीक है।

ध्वनि और व्यंजना की दृष्टि से एक चैती देखें—

---

१. *सुभाषितरत्नभाण्डागारम्*, २. *बिहारी सतसई*, दोहा, ५३०।

बैंगन तोड़े गैलों ओही बैंगन बरिया
गड़ि गेल छतिया में काँट हो रामा ।

इस गीत में काँटा गड़ जाने का तात्पर्य विरह वेदना की तीव्रता से है।

जायसी के पद्मावत में चैत्र मास का वर्णन विरहिणी के मुख से इस प्रकार हुआ है---

चैत वसन्ता होय धमारी
मोहि लेखें संसार उजारी
पंचम विरह पंच सरमारै
रकत रोइ सगरो वन ढारै
बूड़ि उठे सब तरुवर पाता
भीज मजीठ टेसू वनराता ।

भाव है कि चैत्र मास में धमार हो रहा है, पर मेरे लिये तो संसार उजड़ गया है। पंचम राग के विरह स्वर 'पिउ पिउ' द्वारा कोयल पंचबाण मार रही है। रक्त के आँसुओं से समूचा वन सींचा गया है। उस रक्त में डूबकर वृक्षों के नये पत्ते ताम्रवर्ण के हो गये हैं। मजीठ उसी से भीग गया है। वन का टेसू भी उसी से लाल हो गया है।

चैत के महीने में चम्पक, सहकार मुकुलित हो जाते हैं। वृक्ष कुसुमित हो उठते हैं। भ्रमर गुंजार करने लगते हैं। कामदेव मन को घायल करने लगता है। ऐसा चैत्र विरहिणी का मित्र नही हो सकता क्योंकि चैत्र मास के सुखद उपादान वियोगिनी को विपरीत प्रभाव वाले प्रतीत होते हैं --

चैत्रि चंदन छाँटणां, गरल गुणां मुझ थाय
शशिहरशें पूँजिउँनिशां तु ते तपन तपाय ।[१]

चैती गीतों की अलंकार योजना भी अपने ढंग की है। समासोक्ति अलंकार का एक उदाहरण देखिये—

नइ भेजे पतिया
आयल चैत उतपतिया हो रामा ।

इस पद में चैत पर उपद्रव करने वाले प्राणी के व्यवहार का समारोप किया गया है। आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्यदर्पण' में समासोक्ति का लक्षण इस प्रकार किया है—

समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिंगविशेषणैः
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः ।[२]

चैत के लिये जिस तरह 'उत्पाती' शब्द का प्रयोग किया गया है, उसी तरह एक चैती गीत मे नींद को 'बैरिन' कहा गया है---

रामा चइत के निंदिया
बड़ी बइरिनिया हो रामा
सुतलो बलमुआ नहिं जागे हो रामा ।

एक चैती गीत में प्रियतम कृष्ण के लिये 'मानिक' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसमें रूपक अलंकार है—

---

१. *माधवानल-कामकन्दला*, अंग, ६-५३४, २. *साहित्यदर्पण* १०-५६।

आहो रामा मानिक हमरो हेरइले हो रामा, जमुना में
केहू नाहीं खोजेला हमरो पदारथ, जमुना में ।

चैती के अधिकतर पदों में शृंगार एवं करुण रस की व्यंजना है। शृंगार रस का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

आहो रामा सूतल रहलीं पिया संगे सेजिया हो रामा, बाते-बाते
रामा लागि गइले पियवा से रेरिया हो रामा, बाते-बाते ।

इसी प्रकार एक चैतावर में करुण रस की व्यंजना देखिये--

बहत बयरिया हो रामा
कि धीमी धीमी रे
पवन झकोरा मधुर-मधुर
कथिला बहि दुख देउ
जाऊ बुझाऊ पाहुना
धनिक बिरह सुधि लीऊ
कि धीमी धीमी रे ।

चैत के पदों में भाव-विदग्धता और करुण रस की व्यंजना करते हुए एक कवि ने लिखा है -

चैत फूले वन टेसुल ऊधो
भँवरा पइठि रस लेइ
का भँवरा तू लोटा पोटा
काहे दरद मोहि देइ ।

इसी प्रकार एक विरहिणी अपने प्रियतम को संदेश भेजती है---'चैत्र मास में वन में टेसू फूल गये हैं। तुम्हारी प्रतीक्षा करते-करते वियोगजन्य दुःख से दुखी होकर रुदन करते हुए मैंने अपने नेत्रों को गँवा दिया है।'

इस तरह चैती गीतों में काव्य के सभी पक्ष उपलब्ध हैं। रस, अलंकार, लक्षणा, व्यंजना के अतिरिक्त इन गीतों में छोटे छोटे कथाचित्र भी मिलते हैं।

चैती का वर्ण्य विषय

चैती गीतों में प्रेम के विविध रूपों की व्यंजना हुई है। इनमें संयोग शृंगार की कहानी रागों में लिखी गई है। कहीं आलसी पति को सूर्योदय के बाद सोने से जगाने का वर्णन है तो कहीं पति-पत्नी के प्रणय-कलह की झाँकी देखने को मिलती है। कहीं ननद और भावज के पनघट पर पानी भरते समय किसी दुश्चरित्र पुरुष द्वारा छेड़खानी का उल्लेख है तो कहीं सिर पर मटका रखकर दही बेचने वाली ग्वालिनों से कृष्ण के गोरस माँगने का वर्णन है। कहीं कृष्ण-राधा के प्रेम-प्रसंग हैं, तो कहीं राम-सीता का आदर्श दाम्पत्य प्रेम है। कहीं दशरथनन्दन के जन्म का आनन्दोत्सव चित्रित हुआ है तो कहीं राम और उनके भाइयों के बीच का नैसर्गिक प्रेम प्रदर्शित हुआ है। कहीं स्वकीया तथा कहीं परकीया नायिका के प्रेम के विविध रूप दिखाये गये हैं। तात्पर्य यह कि चैती गीतों में

विविध कथानकों का समावेश पाया जाता है। इन गीतों में वसन्त की मस्ती एवं रंगीन भावनाओं का अनोखा सौन्दर्य है। इनके भावों से छलकती रसमयता निश्चय ही लोगों को मंत्रमुग्ध कर देती है।

एक मुग्धा नायिका बाग में फूल चुनने की कल्पना में विभोर है। वह एक ही फूल के रंग में अपनी चुनरी और प्रिय की पगड़ी रंगाकर दोनों के बीच एकरूपता लाना चाहती है--

कुसुमी लोढ़न हम जाएब हो रामा
राजा केर बगिया
मोर चुनरिया सैंया तोर पगड़िया
एकहिं रंग रंगाएब हो रामा ।

यहाँ फूल कोमल भावों के प्रतीक है। इसी प्रकार प्रियतम के साथ अखण्ड प्रेम में डूबी एक स्त्री कोयल का स्वर सुनकर बहेलिये से प्रार्थना करती है कि मेरी सुखनिद्रा में विघ्न डालने वाली इस कोयल को मार डालो -

अहो रामा गोड़ तोर लागेली बाबा के बहेलिया हो रामा
बिरही कोइलिया मारि ले आऊ हो रामा ।

ननद के आचरण पर आशंका प्रकट करने वाली भाभी की उक्ति एक चैती गीत में देखें--

आहो रामा हम तोसे पूछेलीं ननदी सुलोचनी हो रामा
तोहरे पिठिया, धुरिया कइसे लागल हो रामा, तोहरे पिठिया
आहो रामा बाबा के दुअरवा नाचेला नेटुअवा हो रामा
भितिया सटल धुरिया लागल हो रामा, भितिया सटल ।

आलसी पति को जगाते-जगाते एक स्त्री जब हार जाती है, तो वह ननद से उसे जगाने की प्रार्थना करती है। ननद के अस्वीकार करने पर वह कहती है कि तुम्हारे लिये तो भाई सो रहा है, पर मेरे लिये उसका सो जाना सूरज-चाँद के अस्त होने जैसा है –

रामा तोरा लेखे ननदो भइया अलसइले हो रामा
मोरा लेखे, चान सुरुज छपित भइले हो रामा, मोरा लेखे ।

चैत मास की हवा शरीर को पुलक से भरती हुई प्राणिमात्र को आलस्य से भर देती है। मीठी नींद तथा स्वप्न में डूबी हुई एक नायिका सखी के जगाने पर खीझ उठती है—

सुतला में काहेला जगौलऽ हो रामा, भोरे ही भोरे
रस के सपनमा में हलइ अँखिया डूबल
अंग ही अंग अलसाये हो रामा ।

एक चैती गीत में पति-पत्नी के कलह का चित्रण किया गया है। पति के साथ बातों ही बातों में तकरार हो जाती है और पति रूठकर योगी हो जाता है। तब पत्नी व्यग्र होकर आने-जाने वाले बटोहियों से अपने प्रियतम का पता पूछती है।

एक गीत में संयोग शृंगार का अप्रत्यक्ष वर्णन है—

एही ठैंया झुलनी हेरानी हो रामा, एही ठैंया
घरवा में खोजलीं, दुअरा पे खोजलीं
खोजि अइलीं सैंया के संजरिया हो रामा ।

उत्पाती चैत आ गया। प्रिय की पाती भी आई होती तो प्रिया को धीरज होता। चैत के मादक महीने में प्रियतम नहीं आए तो बाद में आना निरर्थक होगा। इस भाव को लेकर एक नायिका कहती है—

चैत बीति जयनइ हो रामा
तब पिया की करे अयतइ ।

एक चैती गीत में एक मानिनी नायिका का मनोभाव व्यंजित हुआ है। उसके प्रियतम चैत में पियरी लेकर आये हैं। रूठी हुई नायिका कहती है कि मैं प्रियतम की लाई हुई साड़ी नहीं पहनूँगी, न उनकी सेज पर सोऊँगी। मैं अपने भाई के लड़के को खिलाऊँगी और फटे-पुराने कपडे पहनूँगी।

एक चैती गीत में गहरी करुणा व्यंजित हुई है। इसमें राम को वन भेजने के कारण सारी अयोध्या नगरी कैकेयी को उपालंभ दे रही है -

रामजी के बनमा पेठौलऽ हो रामा
कठिन तोरा जियरा
मरियो न गेलइ केकइ निरदइया
जारे मुख कठिन बचनमा हो रामा
कठिन तोरा जियरा ।

बंगाल प्रदेश तंत्र-मंत्र के लिये प्रसिद्ध है। एक गीत के अनुसार एक स्त्री का आलसी पति गहरी नींद में सो रहा है। वह हारकर बंगालिन के यहाँ जाती है और कहती है कि किसी मंत्र से ही मेरे पति को जगाओ, मैं तुम्हें डलिया भर सोना दूँगी।

चैत के एक गीत में ऐसा उल्लेख है कि नदी के उस पार कोई योगी धूनी रमाए है और इस पार कोई स्त्री सूर्य को अर्घ्य दे रही है। दोनों की एक दूसरे पर दृष्टि पड़ती है, तो जन्म-जन्म की प्रीत उमड़ आती है। वस्तुतः वह योगी उस स्त्री का पति ही था—

रामा ओही पार जोगिया धुनिया रमावे हो रामा
एही पारे साँवरि सुरुज मनावे हो रामा, एही पारे
रामा जोगिया के टूटेला जोगवा हो रामा
साँवरो के जूटेला जनम सनेहिया हो रामा, साँवरो के ।

इन गीतो मे दैनिक जीवन के शाश्वत क्रिया-कलापो का चित्रण हुआ है। साथ ही इनमें चित्र-विचित्र कथा-प्रसंगों एवं भावों के अतिरिक्त सामाजिक जीवन की कुरीतियाँ भी चिर्त्रित हुई हैं। एक चैती गीत में बाल-विवाह के दुःखद परिणाम को चित्रित किया गया है—

रामा छोटका बलमुआ बड़ा नीक लागे हो रामा
अँचरा ओढ़ाई सुलाइबि भरि कोरवा हो रामा, अँचरा ओढ़ाई

रामा करवा फेरत पछुअवा गड़ि गइले हो रामा
सुसुकि सुसुकि रोवे सिरहनवा हो रामा, सुसुकि सुसुकि ।

छोटी उम्र में विवाह और उधर पति का व्यापार के लिये विदेश जाने का चित्रण बहुत से लोकगीतों तथा चैती गीतों में हुआ है। विवाह हुआ था, उस समय कन्या बहुत छोटी थी। अब वह युवती हो गई है परन्तु परदेसी प्रियतम नहीं लौटा। उसके मन में तरह-तरह की बातें आती हैं। देवर अबोध है। वह अपने मन का दर्द आख़िर किसे सुनाए?

एक चैती गीत में कंजूस पति का चित्रण किया गया है। नायिका नील के रंग मे चुनरी रँग रही है, ऐसे में उसे पसीना छूट गया। वह धीरे धीरे पंखा झलने लगी तो बाँह मुरक गई। वह पटना से वैद्य बुलवाने के लिये पति से प्रार्थना करती है। साठ रुपये खर्च होने की डर से वह वैद्य को नहीं बुलाना चाहता और पत्नी को मुसीबत समझने लगता है।

विवाह करके कन्या पराई हो जाती है। वह एक नये समाज में, नई दुनिया में प्रवेश करती है। नये नये लोगो को उसे अपनाना होता है। पति का प्रेम पाकर भी वह भोले बचपन की वे बातें नहीं भूल पाती, जब वह सखियों के साथ झाका झूमर खेलती थी। पिता और भाई की स्मृति धुँधली पड़ सकती है, किन्तु जिन सखियों के साथ सपनों के घरौंदे बनाये हो, उन्हें भूलना कैसे संभव है?

एक छोटी उम्र वाली कन्या पति के यहाँ जाने से घबरा रही है। कम उम्र होने के कारण वह गौना नहीं कराना चाहती। गौना होने पर पति की सेज पर नहीं सोना चाहती और यदि सेज पर सोना पड़े तो पति से बोलना नहीं चाहती क्योंकि उसकी उमर बाली है।

एक पत्नी के मना करने पर भी पति बंगाल चला गया। संभवत: वह वहाँ किसी बंगालिन के जादू में फँस गया। बारह वर्ष बीत गए। वह न लौटा, न कोई संदेश भेजा। नायिका के साथ की सारी सखियाँ पुत्रवती हो गई, किन्तु नायिका की गोद सूनी है और इधर आ गया चंचल चैत--

रामा पूरब देसवा में बसे बंगलिनिया हो रामा
हरि लीन्हें तोर मन सुरति देखाइ हो रामा
रामा बारहो बरिस पर चिठियो न भेजे हो रामा
कइसे काटबि चइत दिन चंचल हो रामा ।

एक चैती पद में देवर-भाभी का परिहास है। देवर आगे बढ़ता है और आँचल पकड़ लेता है। भाभी उससे आँचल छोड़ने की प्रार्थना करती है, क्योंकि उसे सास-ननद का डर है।

पारम्परिक चैती गीतों में शृंगार एवं देवता संबंधी पद मिलते हैं। कुछ नये गीतकारों ने भी चैती गीतों में इन्हीं रसों का आश्रय लिया है किन्तु उनका वर्ण्य विषय कहीं-कहीं भिन्न है। एक कवि ने एक चैती गीत में नायिका के स्वप्न का वर्णन किया है। वह सपना देखती है कि उसके पति आये हैं। उनके लिये वह जलपान लाती है, बातचीत करती है, फिर पान खिलाती है। प्रियतम उसके लिये साड़ी और कंगन लाये हैं और उसे ज्यों ही गले लगाना चाहते हैं, उसकी नींद टूट जाती है।

एक अन्य गीत में सौत के कष्ट से कुढ़ने वाली नायिका का चित्र मिलता है। प्रियतम की झूठी प्रीत से निराश हो वह जोगिन बन जाना चाहती है, प्राण दे देना चाहती है। एक गीत में ऐसा वर्णन है कि कोई कन्या अपने पिता से प्रार्थना करती है कि मुझे धान उपजने वाले मुल्क में मत ब्याहना, क्योंकि धान उबालते, सुखाते और गीला माड़-भात खाते-खाते मैं परेशान हो जाऊँगी।

इस तरह इन चैती गीतों में लोकमानस का समग्र रूप चित्रित हुआ है। जीवन में हर्ष-विषाद, कारुण्य-शृंगार आदि से इन गीतों का सृजन हुआ है।

चैत के गीतों में धार्मिक भावना

चैत का महीना बहुत से धार्मिक पर्वों एवं धार्मिक भावनाओं से जुड़ा है। चैत्र शुक्ल नवमी को रामनवमी त्योहार का आयोजन बड़ी धूमधाम से होता है। इस दिन मर्यादापुरुषोत्तम राम ने अयोध्या के राजा दशरथ के यहाँ अवतार लिया था। रामनवमी के दिन लोग उपवास या फलाहार करते हैं। इसके पूर्व चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक मंदिरो में रामायण का नवाह्न पाठ होता है। इस नवरात्रि में भगवती दुर्गा की भी स्तुति होती है। रामनवमी के दिन चैता गाने का एक उद्देश्य होता है, जो रामजन्म एवं उनके जीवन की अन्य घटनाओं से संबद्ध रहता है। चैती धुनों में कुछ अन्य बोल लगाकर रामायण गाने की भी प्रथा इस अवसर पर देखी जाती है। चैत में श्रीराम का जन्म होता है। घर-घर में बधावे बजते हैं। राजा दशरथ सोना लुटाते हैं। रानी कैकेयी सोने की अँगूठी दान में देती हैं। ऐसे में प्रजा के उल्लास का कहना ही क्या—

रामा चढ़ले चइतवा राम जनमले हो रामा
घरे घरे बाजेला अनध बधइया हो रामा
रामा दसरथ लुटावे अनधन सोनवा हो रामा
कैकेयी लुटावे सोने के मुनरिया हो रामा।

कहीं-कहीं चैता गाने के पहले उस स्थान के देवी-देवताओं का स्मरण भी किया जाता है, फिर पृथ्वी को स्मरण करके कहा जाता है—हे राम, आज हम इसी स्थान पर चैती गायेंगे—

रामा सुमिरीले ठुइयाँ, सुमिरि मति भुइयाँ हो रामा
एही ठइयाँ, आजु चइति हम गाइबि हो रामा, एही ठइयाँ।

एक विनय संबंधी चैता में आदिभवानी पार्वती से कण्ठ में मधुर स्वर देने की प्रार्थना की गई है—

रामा पहिले मैं सुमिरौं आदि भवानी हो रामा
कंठे सुरवा, होखऽ ना सहइया हो रामा, कंठे सुरवा।

एक चैता में धनुष-यज्ञ का वर्णन किया गया है। राजा जनक ने कठिन प्रण किया है कि जो शिव के धनुष को तोड़ेगा, उसी से वे अपनी बेटी जानकी का विवाह करेंगे—

रामा राजा जनक जी कठिन प्रन ठाने हो रामा
देसे देसे लिखि लिखि पतिया पठावे हो रामा।

इस प्रण में विष्णु रूप श्रीराम की विजय निश्चित है। एक चैता में आदिदेव भगवान् शंकर एवं आदिभवानी पार्वती का सुन्दर संवाद चित्रित हुआ है। शिवजी उत्तर दिशा से भाँग धतूरा ले आए। सबेरे शिवजी गौरी को जगाकर भाँग पीसने के लिये कहते हैं। पार्वतीजी कहती हैं--'हे महादेव, मैं कैसे उठूँ? मेरी गोद में तो गणपति हैं।' शिवजी कहते हैं- 'गणपति को पलंग पर सुला दो।' तब पार्वतीजी भाँग तैयार करती हैं और शिवजी भाँग खाकर उन्मत्त हो जाते हैं--

रामा सिव बाबा गइले उतरी बनिजिया हो रामा
लेई अइले, भँगिया धतुरवा हो रामा, लेइ अइले
रामा होत भिनुसरवा सिवजी जगावसु हो रामा
उठु गउरा, भंगिया रगरि ले आव हो रामा, उठु गउरा।

एक चैती गीत में शिवजी के ताण्डव नृत्य का वर्णन किया गया है

भोला बाबा हे डमरू बजावे रामा
कि भोला बाबा हे
भूत पिचास संग सब खेले
ताण्डव नाच दिखावे हो रामा
संग अर्धंग मातु पारबती
गले मुंडमाल लगावे रामा।

रामनवमी के ठीक चौथे दिन यानी चैत्र शुक्ल त्रयोदशी को जैनधर्म के प्रवर्त्तक तथा चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर का जन्म होता है -

जनमे त्रिशला के ललना, कुंडलपुर के भवना
हो चान सुरुजवा उतर आये री
चैत महिनवाँ के पाख अँजोरिया
भरि गइले मैया के सून रे गोदिया
भइल धरती अकमवा में अइसन हुलसवा
कि बगियन फुलवा महक आये री।

अत: चैत्र मास जैन संप्रदाय के लिये भी धार्मिक दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण मास है। उड़ीसा में चैत के प्रत्येक सोमवार को जगन्नाथ जी की पूजा के साथ-साथ गीत भी गाये जाते हैं। मालवा में चैत्र के कृष्णपक्ष से चैत्र शुक्ल तृतीया तक गौरी-पूजा के उपलक्ष्य में गीत गाये जाते हैं।

चैती शैली के गीतों में भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं से संबंधित पद भी पाये जाते हैं। कहीं वे गोकुल में दही बेचने वाली ग्वालिन से छेड़खानी करते हुए पाये जाते हैं--

रामा छोटी मुकि ग्वालिनि अँगिया की पातरि हो रामा
चलि भइली गोकुला नगरिया दहिया बेचन हो रामा, चलि भइली
रामा गोकुला मथुरवा के साँकरि गलिया हो रामा
ताहि बीचे, कान्हा धरे मोरे अँचरा हो रामा, ताहि बीचे।

तो कहीं वे गोपियों को छेड़ने के लिये यमुना में छिप जाते हैं। श्रीकृष्ण के रूप में हृदयरूपी रत्न खो जाने के कारण गोपियाँ अत्यन्त चिन्तित हो उठती हैं।

हिन्दी का संत साहित्य लोकगीतों से बहुत प्रभावित रहा है। कबीर, धर्मदास, दरिया साहब, यारी साहब आदि के भक्तिगीतों में लोकगीतों की झलक स्पष्ट है। दरिया साहब का एक निर्गुण पद तो घाँटो नाम से ही उपलब्ध है —

कुबुधि कलवारिनि बसेले नगरिया हो रे
उन्हक मोरे मनुआँ मतावल हो रे।
भूलि गैले पिया पंथवा दृस्टिया हो रे
अवघट परलीं भुलाए हो रे।
भवजल नदिया भेआवन हो रे
कवने के विधि उतरब पार हो रे।
दरिया साहब गुन गावल हो रे
सतगुर सब्द सजीवन पावल रे।

— अर्थात् इस शरीररूपी नगर में दुष्टबुद्धि माया बसी हुई है। उसने वासना की शराब पिलाकर मेरे मन को मतवाला बना दिया है। इस कारण वह पिया के घर का रास्ता भूल गया है और दृष्टि भी धुँधली हो गई है। मन विषयों के बीहड़ रास्ते में भटक गया है। संसाररूपी भयावनी नदी को यह जीवात्मा कैसे पार करेगी ? दरिया साहब गुरु का गुणगान करते है कि सतगुरु से प्राप्त उपदेशरूपी संजीवनी उन्हें प्राप्त हो गई है, इसलिये अब वह निश्चिन्त हैं।

सत कबीरदास की एक चेती मे आत्मारूपी दुल्हन शृगार करके परमात्मा प्रियतम से मिलने जाती है—

पिया से मिलन हम जाएब हो रामा
अतलस लँहगा कुसुम रंग सारी
पहिर पहिर गुन गाएब हो रामा।

एक भोजपुरी चैता में बाद के रचनाकार श्रीकेवल ने शिवजी के रूप का वर्णन किया है—

भोला त्रिपुरारी भइले मतवलवा हो रामा
अरे जेही के सीस पर गंग बिराजे
सोहेला चन्द्रभालवा हो रामा
कि सेई भोला हो पहिरे मुण्डमालवा हो रामा
अरे जोगी बीन बजावे गावे आरे भूतवा हो रामा
कि केवल डरपि गये भोला सरनवा हो रामा।

चैती गीतों की सामयिकता वर्ष के पहले महीने में है। हिन्दी का यह प्रथम मास धार्मिक भावनाओं का महीना है। संभवत: यह आगे के ग्यारह महीनों में लगातार आस्था जगाये रखने की नींव हो। चैती गीतों में धार्मिक भावना के मूल में चैत महीने के अनुष्ठानों का सहज प्रभाव देखा जा सकता है।

चैती का उद्‌भव और विकास

'चैती' शब्द संस्कृत के 'चैत्री' का अपभ्रंश रूप है। चैत्री का अर्थ है— चैत्र

पूर्णिमा। हिन्दू धर्म में पूर्णिमा अर्थात् पूर्णमासी का बड़ा महत्त्व है। धार्मिक दृष्टि से पूजा संबंधी विशेष अनुष्ठान के लिये पूर्णिमा के दिन को विशेष मान्यता प्राप्त है। श्रावणी पूर्णिमा के दिन रक्षाबन्धन का पवित्र पर्व मनाया जाता है। भादों की पूर्णमासी के दिन जैन संप्रदाय के लोगों का एक बहुत बड़ा धार्मिक त्योहार 'दशलक्षण पर्व' संपन्न होता है। शरदपूर्णिमा अपनी अद्वितीय सुषमा के लिये काव्य में बहुचर्चित है। कार्तिक पूर्णिमा के दिन गंगास्नान करने से पापमुक्ति होती है, ऐसी धारणा प्राय: पाई जाती है। फाल्गुन पूर्णमासी के दिन होली की समाप्ति एवं चैत का आगमन होता है। चैत्र पूर्णिमा के दिन इसी प्रकार चैत की विदाई होती है।

चैती के उद्भव का प्रश्न कुछ जटिल है। लोक संगीत के उद्भव की बात पहले आ चुकी है। लोक संगीत मानव की आदिम एवं अपरिष्कृत अवस्था का संगीत है। स्पष्ट है कि लोक संगीत का बीज सृष्टि के आदिकाल में ही पड़ चुका था। जाति विशेष में लोक संगीत की अपनी -अपनी शैली और अपनी अपनी बोली निर्धारित हुई। चैती लोक संगीत का एक प्रकार मात्र है, अत: इसका उद्भव भी लोक संगीत के उद्भव के साथ ही माना जा सकता है। हाँ, एक अन्तर यहाँ अवश्य हो सकता है। लोक संगीत उस युग की वस्तु है, जब मानव जाति जंगली जाति के रूप में थी। उस समय का लोक संगीत शब्द की दृष्टि से सार्थक भले न रहा हो, किन्तु उसका अस्तित्व था। कालान्तर में लोक संगीत का परिष्कार तथा वर्गीकरण हुआ। संस्कारों की दृष्टि से, रस, व्रत एवं ऋतुओं के क्रम से, जाति के आधार पर, श्रमगीत अथवा कुछ विविध गीत लोक संगीत के अन्तर्गत आये। यह निश्चित है कि ये गीत मानव के दैनिक जीवन के इतिहास है। जन्म से लेकर मृत्यु तक की गाथा इन गीतों में है। यही नहीं, मानव मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म भावनाओं की अभिव्यक्ति इन गीतों में हुई है। चैती गीत ऋतुगीतों के अन्तर्गत आते हैं, जिन्हें मौसमी गीत भी कहा जा सकता है।

वसन्त आता है तो मन-प्राण पर छा जाते हैं वसन्त के रसीले गीत। इसे ऋतु-परिवर्तन भी कहा जा सकता है। इसी समय फसल काटी जाती है। चैत का महीना भी ग्रामीणों के उत्सव का महीना है। वसन्त पंचमी के दिन से रंग-अबीर भरे गीत गूँजते हैं। चौपाल धमार से गूँज उठता है। फाल्गुन पूर्णिमा की रात को होली के गीतों की समाप्ति होती है और उभर आते हैं चैती के स्वर।

फाग और चैती रथ के दो पहियों की भाँति, दूसरे शब्दों में पुरुष और नारी की भाँति आपस में जुड़े हुए हैं। फागुन और चैत के क्रमश: पुरुष और नारी का प्रतीक होने से संबद्ध कहावत भी गाँव में खूब प्रचलित है। यों भी, होली में पुरुष और स्त्री की आपस की हँसी-ठिठोली सामान्य रूप से वर्णित है, किन्तु चैती पूर्णरूपेण नारी का प्रतीक प्रतीत होती है। जितने भी चैती गीत परम्परागत रूप से उपलब्ध होते हैं, उनमें नारी की ओर से ही निवेदन पाया जाता है। इस प्रकार के एक-दो उदाहरण देखिये—

चैत मास चुनरी रंगा दे हो सैंया लाली रे लाली
चुनरी रंगा दे, अंगिया सिया दे
बिच बिच घुँघरू लगा दे हो सैंया लाली रे लाली ।

एक अन्य गीत में व्यक्त मानिनी का भाव देखिये---

आइल चैत महिनवाँ हो रामा, पियरी ना पेन्हब ।

इस प्रकार के कुछेक अपवादों को छोड़कर अधिकतर चैती गीतों में स्त्री की ओर से ही निवेदन होता है। इसी कारण चैती गीतों में लालित्य भी अधिक मिलता है। शीत के चार महीनों में चैत का महीना अन्तिम माना जाता है और इस माह का जाड़ा इतना प्रसिद्ध है कि इसके संबंध में एक कहावत प्रचलित है--'एक ब्राह्मण को बछिया बेचकर कम्बल खरीदना पड़ा।' जिस प्रकार दिया बुझने से पहले लौ एक बार ज़ोरों से जलती है, उसी प्रकार जाड़े की विदाई के पूर्व एक बार शीत का रंग और गहरा हो जाता है। इस मौसम में जिसे 'मधुमास' भी कहते हैं, प्राणिमात्र विशेष रूप से शृंगारप्रिय हो उठता है। मधुमास मात्र प्रकृति में ही नहीं आता, जनमानस पर भी छा जाता है और ऐसे में नारी की ओर से प्रणय की बातें निश्चय ही पुरुष-हृदय को पुलकित करने लगती हैं।

चैत के गीतों में जो अलमस्ती है, वह पुरुष स्वर में ही उभर कर आती है। निवेदन नारी का होता है, परन्तु मुखर होता है वह पुरुष स्वर में। होली गीतों में प्रयुक्त होने वाला 'हो रामा' पद चैती गीतों की एक विशेष पहचान है। अत: निश्चय ही गायन शैली, शृंगार भाव और वसन्तकालीन होने के कारण होली और चैती परस्पर जुड़ी हुई हैं। खेतों में फसल तैयार होने के बाद जब अनाज घर में आ जाता है तो उत्सव की अभिलाषा जाग उठती है और चौपालो में गूँजने लगते हैं फाग और चैती के स्वर। चैत के पूरे महीने भर गाँव-गाँव में चैती के स्वर गूँजने लगते हैं। चैत के महीने में चित्त की चंचलता चैती गीतों में चित्रित हुई है—

चढ़ल चइतवा चित मोरा चंचल हो राम
कवने करनवाँ पियवा रूसि भगलइ हो राम, कवने करनवाँ ।

चैती का उद्‌भव फसल कटने से संबंधित है किन्तु चैती के विकास में हमें इसके साहित्यिक एवं सांगीतिक दूसरे शब्दों में, भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों को देखना होगा। चैती के सांगीतिक पक्ष में उसकी धुनों पर आद्योपान्त दृष्टि डालने पर इस निष्कर्ष पर आना पड़ता है कि इसकी धुन की मौलिकता अपने आप में अक्षुण्ण एवं स्थायी है। यह दूसरी बात है कि जैसे-जैसे गायन शैली में परिष्कार होता जाता है, वैसे-वैसे प्रस्तुति की शैली भी परिवर्तित होती जाती है। यह सत्य है कि शास्त्रीय संगीत लोक संगीत से उद्‌भूत है। लोक संगीत परिष्कृत होकर सीमाबद्ध हुआ और शास्त्रीय संगीत की परिधि में आया। गाँव-गाँव में चैती की जो धुनें प्रचलित हैं, उन धुनों का विकास अब तक नहीं हुआ है, यही कहना अधिक युक्तिसंगत लगता है, क्योंकि विकास के अन्तर्गत उन धुनों में जो परिवर्तन अपेक्षित था, वह नहीं हो सका है अर्थात् उनकी मौलिकता अभी भी ज्यों की त्यों बनी हुई है। यह दूसरी बात है कि इसका प्रसार और क्षेत्र बढ़ रहा है। इसे लोककण्ठ से लेकर शास्त्रीयकंठ ने भी अपनाया। शास्त्रीय संगीतकारों ने चैती गीतों को ध्रुपद, धमार शैली में तथा ठुमरी के रूप में भी प्रस्तुत किया है लेकिन इसके विशिष्ट रूप को नहीं बदला गया है। धुनें वही हैं और मौलिकता सुरक्षित है, मात्र शैली में थोड़ा अन्तर आया है।

चैती के साहित्यिक विकास के क्रम में हम देखते हैं कि चैती के जो गीत मौखिक परम्परा से प्रचलित हैं, उनमें शृंगार रस का पुट अधिक है तथा नारी भावना का प्राधान्य है। कालान्तर में इन गीतो में धार्मिक भावना तथा अन्य विषयों का प्रवेश भी हुआ। जैसे चैत में रामजन्म से संबंधित, शिव पार्वती के संवाद, कृष्ण की लीला आदि विषयों ने भी इन गीतो मे स्थान पाया। धीरे धीरे जब चैती का प्रसार काफी होने लगा तो गीतों में भी परिवर्तन हुआ। चैती दूर-दूर के क्षेत्रो की वस्तु नहीं है, मात्र बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में ही यह प्रचलित है। बिहार के दक्षिण भाग मे इसका विशेष प्रचार है। वस्तुत: यह मिथिला की स्वानुभूत वस्तु नही है। धुनों की यात्रा के साथ यह मिथिला पहुँची और वहाँ चैती गीत प्रचलित हुए। भोजपुरी एवं मगही के चैती गीतों का भाव लेकर कुछ विषय परिवर्तन के साथ उनके यहाँ मैथिली भाषा के गीत प्रचार मे आये। निश्चय ही ये रचनाएँ नई होंगी। ऐसे गीतों का एक उदाहरण देखिये--

अँगुली में बिन्हलक नगिनिया हो रामा
ससुर के कहबै भैंसुर पतियायत
स्वामी मोर बिखिया उतारि देत हो रामा ।

इस चैती गीत का भाव निश्चय ही भोजपुरी के इस झूमर से लिया गया है -

अंगुरी में डँसले बिया नगिनिया
हे ननदिया मोरी रे दियरा जरा द
दियरा जरा द आपन भैया के बोला द
नस नस में फैलल जाता जहरिया ।

मैथिली का एक और चैती गीत इस प्रकार है -

चैतक गरमी बेसरमी हो रामा
इहो हम जनितौं पिया दुबैरता
पियाजी लै पूड़ी छकावितौं हो रामा ।

चैती गीतों में रचयिताओं के नाम प्राय: नहीं मिलते किन्तु बुलाकीदास के 'चैती घाँटो' पद बहुचर्चित हैं। उनका नाम बुल्ला साहब भी है। इनकी रचनाओं में कुन्दकुँवरि का नाम आता है जो संभवत: उनकी पत्नी रही हों

दास बुलाकी चइत घाँटो गावे हो रामा
गाइ गाइ, कुन्दकुँवरि समुझावे हो रामा, गाइ-गाइ ।

किन्तु कालान्तर में और भी चैती गीतों की रचना हुई। संत साहित्य में भी चैती गीतो की शैली अपनाई गई। सन् १७३१ के दरिया साहब की एक घाँटो रचना उपलब्ध है, जिसका विषय आत्मा, परमात्मा और सांसारिक माया से संबद्ध है।

सन् १८४६ में पटना में एक उर्दू कवि सैयद अली मुहम्मद 'शाद' हुए, जिन्होंने 'फ़िकरे वलीग' नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में एक चैती गीत भी है—

काहे अइसन हरजाई हो रामा
तोरे जुलुमी नयना तरसाई हो रामा

सास ननद मोका ताना देत हई
छोटा देवरा हँसि के बोलाई हो रामा।

बुलाकीदास के एक शिष्य रामदास के रामजन्म एवं कृष्ण संबंधी चैती गीत मिलते हैं।

सन् १८४० के संत कवि केसोदास ने चैती शैली में निर्गुण भक्तिपरक गीत की रचना की है—

भावे नाहीं मोहि भवनवाँ हो रामा बिदेस गवनवाँ
जो एह मास निरास मिलन भैले
सुन्दर प्रान गवनवाँ हो रामा
केसोदास गावे निरगुनवाँ
ठाढ़ी गोरी करे गुनगनवाँ हो रामा।

१९वीं सदी के अन्त में सारन जिले के बिजईपुर गाँव में कवि सुरुजमल के चैती गीतों में परम्परा से कुछ हटकर चैती गीतों का वर्ण्य विषय पाया जाता है, यद्यपि भाव वही है—

सपना देखीला बलखनवाँ हो रामा
कि सैंया के अवनवाँ
'सुरुज' चाहेले गरवा लगावल
कि खुलि गइले पलक पपनवाँ हो रामा।

बनारस निवासी कवि देवीदास ने अपनी 'बाँका छबीला गवैया' नामक पुस्तिका में एक चैती पद दिया है—

नाजुक बलमा रे रतिया नहि आवे हो रामा
एक त मोरी चढ़ली जवानी
दूजे बिरहा मतावे हो रामा
चैतवा की गरमी निंदिया न आवे हो रामा।

श्रीकेवल नामक एक कवि के चैती पद में शिव के स्वरूप का वर्णन है। बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में शाहाबाद जिले में 'राजकुमारी सखी' नामक एक कवयित्री हुईं, जिन्होंने अपने चैती गीत में परम्परागत वर्ण्य विषय को बिल्कुल ही छोड़ दिया है—

गोड़ तोही लागले बाबा हो बढ़इता से आहो रामा
धनवाँ मुलुक जनि ब्याह हो रामा
सासु मोरा मरिहें गोतिनि गरिअइहें हो रामा
लहुरी ननदिया ताना मरिहें आहो रामा।

मैथिली चैतावर में भी दुखमोचन एवं गोपीनाथ के नाम कहीं-कहीं देखे जाते हैं—

दुखमोचन नन्दलाल मिलन करि
जुग सँ जामिनि जाथि हो रामा।

❑ ❑ ❑

कहत मे गोपीनाथ रहब ने काहू साथ
हरि हरि करु ने जपनमा हो रामा।

भोजपुरी, मगही, मैथिली आदि बोलियों में आगे ऋतु संबंधी और भी रचनाएँ प्रकाश में आ रही हैं, जो परम्परागत लोकगीत न होते हुए भी उनसे जुड़ी हैं। रचनाएँ नई हैं, किन्तु उनके भाव पुरानी रचनाओं के बहुत समीप हैं। भोजपुरी गीतों में चैत संबंधी एक आधुनिक रचना इस प्रकार है—

चैत के रतिया अकसवा में चढ़ले
धीमे धीमे चाँदी के चन्दा हो रामा
गछिया के डारी से बीचे बीचे झाँके
धीमे धीमे गोरकी चँदनिया हो रामा ।[1]

भोजपुरी, मगही, मैथिली के अतिरिक्त चैती गीतों में बोली का भी विकास हुआ। चैती की ललित शैली अनेक बोलियों में अपनाई जाने लगी। बिहार के प्राचीन अंग प्रदेश, संप्रति भागलपुर क्षेत्र की अंगिका बोली में एक चैती देखिये—

एइन्ना फुलैले फुलगेनबा हो रामा
पिया नहि ऐलै
मँजरल बगिया में कोयलिया बोलै
चुबी चुबी महुआ मधुर रस घोलै
मधुवन में कुसुम फुलैलै हो रामा
भँवरा लोभैलै ।[2]

प्राचीन वैशाली सम्प्रति मुजफ्फरपुर क्षेत्र की वज्जिका बोली में डॉ० अजित नारायण सिह 'तोमर' का एक चैती गीत इस प्रकार है—

चइत माह परम सोहाओन हो रामा चइत माहे
महुआ फुलाएल, आम महुआएल
धरती जे लगइ लोभाओन हो रामा चइत माहे ।

भारतेन्दु प्रभृति कवियों ने भी कुछ चैती गीत लिखकर इनकी साहित्यिक गरिमा को बढ़ाया। तत्कालीन कवियों में पं० अम्बिकादत्त व्यास और किशोरीलाल गोस्वामी के भी कुछ सुन्दर पद मिलते हैं।

साहित्य की परम्परा अविराम गति से आगे बढ़ रही है। निश्चय ही और भी कड़ियाँ आगे जुड़ेंगी। किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जनजीवन से जुड़ रही लोक संस्कृति को लोगों ने बड़ी आत्मीयता से अपनाया है। इस तरह चैती का भावपक्ष या साहित्यिक पक्ष विकास के पथ पर निरन्तर अग्रसर है।

चैती का सांगीतिक दृष्टिकोण

संगीत की दृष्टि से चैती अत्यन्त मधुर एवं कर्णप्रिय गायन शैली है। जहाँ तक लोक संगीत की परिधि में चैती का पर्यवेक्षण है, वह अपने आप में ठोस एवं संपूर्ण है।

---

१. *साँझ घिरे लागल*— डॉ. शान्ति जैन (भोजपुरी गीत संग्रह)।

२. *पछिया बयार* (अंगिका गीत संग्रह), परमानन्द पाण्डेय।

अधिकतर चैती गीतो को सुनने के बाद इस निष्कर्ष पर आना पड़ता है कि चैती विशेष रूप से सात एवं आठ मात्रा में गाई जाती है। सात मात्रा में अधिकतर रूपक या कहीं-कहीं चौदह मात्रा वाले 'जतताल' का प्रयोग किया जाता है। आठ मात्रा में गाई जाने वाली चैती का गाँवों के अनुसार जो प्राचीन विभाजन है, वह पाँच मात्रा एवं तीन मात्रा का है, जबकि आधुनिक विभाजन के अनुसार आठ मात्रा का विभाजन चार-चार मात्रा करके, यानी 'कहरवा' ताल के अनुसार ही होता है। दादरा तथा अन्य तालों में चैती नहीं पाई जाती। कम से कम अब तक की खोज में तो ऐसा ही पाया गया है।

जहाँ तक इसमें प्रयुक्त होने वाले स्वर समूह को बात है, चैती किसी थाट विशेष की उपज नहीं है। हाँ, इसके स्वर समुदाय को देखते हुए इन्हें थाट विशेष में रखा जा सकता है। विशुद्ध चैती मात्र लोकधुन है, किन्तु स्वर संयोजन को देखते हुए लगता है कि चैती गीत अधिकतर 'खमाज' थाट में रखे जा सकते हैं। कभी कभी चैती 'बिलावल' थाट में भी पाई जाती है। कुछ शास्त्रीय गायकों ने इसे 'पीलू' तो कुछ ने 'देस' एवं 'तिलककामोद' में ही बाँधा है। चैती गीत राग 'गारा' एवं 'जैजैवन्ती' में भी गाये जा सकते हैं। इन रागों में बँधकर भी चैती सहज सग्राह्य होती है। लोकधुनों को अपनाने के संबध मे शास्त्रीय संगीतकारों का अपना दृष्टिकोण रहा है। कुछ ऐसे संगीतज्ञ हुए हैं, जिन्होंने चैती की मौलिकता को बनाये रखकर उसे ठुमरी की सरस शैली मे प्रस्तुत किया।

स्व० श्री रामप्रसाद मिश्र उर्फ रामू जी—ये मूलतः बनारस के रहने वाले थे और बड़े रामदास जी के शिष्य थे। ये शास्त्रीय संगीत में तो निष्णात् थे ही, ठुमरी में इनकी अनोखी पैठ थी। कई वर्षों से वे बिहार के गया क्षेत्र में निवास कर रहे थे। इनकी गाई हुई एक चैती बहुत प्रचलित हुई-

एहीं ठैंया झुलनी हेरानी हो रामा, एहीं रे ठैंया।

स्व० बाबू श्यामनारायण सिंह—ये पटना के रहने वाले थे। मूलतः ये प्रसिद्ध हारमोनियमवादक थे, साथ ही गाते भी थे। इनकी गाई हुई कुछ चैतियाँ तो सुनने वालों को मंत्रमुग्ध कर देती थीं। जैसे---

आइल चैत महिनवाँ हो रामा, पियरी ना पेन्हब।

इस चैती को इन्होंने पीलू की ठुमरी शैली में बाँधा था। गीत में एक मानिनी नायिका का भाव दर्शाया गया है। उनकी गाई हुई एक चैती में शृंगारभाव का सुन्दर चित्रण देखते ही बनता है---

सेज चढ़त डर लागे हो रामा, पायल मोरी बाजे।

स्व० पं० रामचतुर मलिक—आप दरभंगा निवासी थे और आमता घराने से संबद्ध थे। आप संगीत के प्रकाण्ड विद्वान् और ध्रुपद-धमार गायन में राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त गायक थे। कभी-कभी आपके स्वर में ध्रुपद-धमार शैली में गाई गई चैतियाँ भी सुनी जाती थीं।

बनारसी चैती गाने वाले कलाकारों में पं० महादेव मिश्र, पं० हरिशंकर मिश्र एवं श्रीमती गिरिजा देवी को भुलाया नहीं जा सकता। कुछ चैतियाँ जानकी बाई इलाहाबादी, राधा बाई और सिद्धेश्वरी देवी आदि के स्वरों में भी उपलब्ध हैं।

लोकगीत गायकों में ऐसे अनेक कलाकार हैं जिनके पास चैती की विभिन्न धुनें हैं, उनकी विभिन्न शैलियाँ हैं। ऐसे लोग भी हैं, जिनके पास लोकगीतों का अक्षय भण्डार है। बहुचर्चित एवं परिचित व्यक्तित्व में पटना की पद्मश्री श्रीमती विन्ध्यवासिनी देवी का नाम अग्रगण्य है, जिनके पास विभिन्न प्रकार के लोकगीतों के अतिरिक्त चैती गीतों का भी अनुपम संग्रह है। यह संग्रह धुनों का भी है और गीतों का भी।

चैती की सांगीतिकता उसके ललित साहित्य मे भी जुड़ी हुई है। चैती के शब्द-शब्द में रस है और उसी रस मे सींचे जाते हैं सरस स्वर। सीधी-सादी भाषा में कही गई चैतियाँ भी अत्यन्त मार्मिक एवं प्रभावशाली होती हैं। देखने में शृंगारिक होते हुए भी उनके किसी कोने में वेदना अवश्य छिपी होती है, जो संगीत की आत्मा है। लोकधुनों के रूप में चैती का सांगीतिक पक्ष अपना अलग अस्तित्व रखता है। शास्त्रीय गायकों ने ठुमरीनुमा मिज़ाज से चैती की प्रस्तुति कर उनमें शास्त्रीयता का पुट भर दिया है। यह कहना कठिन है कि दोनों में किसका प्रभाव अधिक है। इतना अवश्य है कि चैती में मधुर स्वरों का संयोजन होने के कारण उसमें हल्के रागों का प्रयोग किया गया है, विशेष रूप से उन रागों का, जिनमें ठुमरी अधिक मधुर प्रतीत होती है।

ताल विशेष में गाई जाने वाली चैती में एक ओर ध्रुपद-धमार की छाया स्पष्ट होती है तो दूसरी ओर रस और भाव की दृष्टि से चैतियों में ठुमरी का-सा आनन्द आता है। इन गीतों में लोकधुनों का सहज लालित्य मात्र नहीं, शास्त्रीयता भी होती है।

शास्त्रीय गायकों ने चैती की मौलिकता में कोई परिवर्तन नहीं किया, बल्कि उसकी मौलिकता को सुरक्षित रखते हुए अपनी ओर से कहीं-कहीं सुन्दर स्वर जरूर भर दिये। तरह-तरह से कण्ठ का काम करके उन्होंने चैती गीतों का शास्त्रीयकरण किया। चैती को उन्होंने ठुमरी शैली में गाया और उसे ऐसा रंग-रूप प्रदान कर दिया ताकि उसका आनन्द ग्रामीण एवं शहरी दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से लिया जा सके।

चैती के प्रकार

चैत के महीने में गाये जाने वाले गीतों को 'चैती' या 'चैत गीत' कहते हैं। भोजपुरी में इसके एक प्रकारविशेष को 'घाँटो', मगही में 'चैतार' और मैथिली में 'चैतावर' कहते हैं। लोकगीतों के जितने प्रकार हैं उनमें माधुर्य, सरलता एवं कोमलता की दृष्टि से चैती अद्वितीय है। सामान्यतया चैती गीत तीन प्रकार के होते हैं --

(१) साधारण चैती

(२) झलकुटिया चैती

(३) घाँटो चैती

(१) साधारण चैती—बहुधा एक ही गायक ढोल आदि वाद्यों के साथ इसे गाता है। यद्यपि यह समूह में भी गाई जाती है, किन्तु इसमें जोश और मस्ती का वह उत्कर्ष नहीं दिखाई पड़ता, जो घाँटो चैती में होता है। साधारण चैती के भी कुछ प्रभेद किये जा सकते हैं—

(क) खड़ी चैती

(ख) निर्गुण चैती

(ग) झूमर चैती

(क) खड़ी चैती—यह एक स्वर में भी गाई जा सकती है। इसमें प्रयुक्त होने वाले स्वर अधिक परिष्कृत एवं ललित होते हैं। कहरवा ताल का प्रयोग इसमें अच्छा लगता है। नारी स्वर में भी इसे सुना जा सकता है---

सैंया मोरा रे कुसुमी बोअइहऽ हो रामा
चम्पा लगइहऽ चमेली लगइहऽ
खेतवनि कुसुम फुलइहऽ हो रामा।

(ख) निर्गुण चैती— इस प्रकार के चैती गीतों का भाव भक्तिपरक होता है। एक उदाहरण देखिये----

पिया से मिलन हम जाएब हो रामा
अतलस लहँगा कुसुम रंग मारी
पहिर पहिर गुन गाएब हो रामा।

(ग) झूमर चैती---इसका ताल अधिकतर द्रुत कहरवा होता है। विषय लोकगीत की झूमर शैली की तरह शृंगारिक होता है-- -

पाकल पाकल पनवा के खिलिया लगवलीं अहो रामा
ओही पनवा पिया के खिलवलीं अहो रामा।

(२) झलकुटिया चैती—'झलकुटिया' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है- झाल+कूट+इया (प्रत्यय)। झाल कूटने की कल्पना से ही इस गीत का नाम 'झलकुटिया' पड़ा है। स्पष्ट है कि इस प्रकार की चैती सामूहिक रूप मे झाल कूटकर या बजाकर गाई जाती है। सामूहिक रूप मे इस गीत को गाते समय गाने वाले दो दलों में विभक्त हो जाते हैं। पहला दल एक पंक्ति कहता है, तो दूसरा दल उसके टेक पद को जोरों से गाता है। उदाहरणार्थ, यह गीत देखिये -

पहला दल-- रामा चइत की निंदिया बड़ी बइरिनियाँ

दूसरा दल—हो रामा सुतलो बलमुआ

पहला दल—नाहीं जागे हो रामा

दूसरा दल---सुतलो बलमुआ।

इस प्रकार गाने के बीच में उसका क्रम नहीं टूटता और प्रत्येक दल को गाते समय कुछ विश्राम भी मिल जाता है। पहला दल पहली पंक्ति को जिस स्वर में गाता है, दूसरा दल उससे उच्च स्वर में टेक पद को गाता है। जब चैता गायन पराकाष्ठा पर पहुँचता है तो गायक-वृन्द मुक्तकण्ठ से उच्चतम स्वर का प्रयोग करते हैं। दोनों ओर से लगातार झूम-झूम कर तेजी से झाल बजाया जाता है। गवैये भावावेश में आकर घुटनों के बल खड़े हो जाते हैं। 'हो रामा', 'आहो रामा' की गगनव्यापी ध्वनि से धरती गूँज उठती है। चैत का महीना, चैत की रातें, चैत के राग, झाँझ की झनकार तथा ढोलक और कण्ठ के स्वर मिलकर एक अजीब खुशनुमा समाँ बाँध देते हैं। इस प्रकार की चैतो की तरह 'खँजरिया चैती' भी होती है।

खँजरी+इया=खँजरिया। इस व्युत्पत्ति से स्पष्ट है कि इस प्रकार की चैती में खँजरी का प्रयोग होता है। इसे पुरुष समूह ही गाता है। इसमें वर्ण्य विषय की स्वतंत्रता है किन्तु गायन शैली में एक व्यक्ति या एक दल आधी पंक्ति कहता है और दूसरा व्यक्ति या दल उसे दुहराता है, जैसे—

पहला दल— अहो रामा कहमा के कुम्हरा

दूसरा दल— अहो रामा कहमा के कुम्हरा

पहला दल— अरे रचले घइलिया

दूसरा दल— अहो रामा रचले घइलिया हो रामा।

बीच-बीच में विविधता लाने के लिये कभी-कभी चौदह मात्रा के 'जत ताल' को बदल कर गायक इसे आठ मात्रा के कहरवा में भी गाने लगते हैं। उसके तरह-तरह के बोल बनाये जाते हैं। कभी मध्य लय रहती है तो कभी द्रुत लय हो जाती है। इस तरह कहरवा में गाते-गाते फिर जत ताल में गीत पकड़ लिया जाता है। इस प्रकार की शैली से गीतों की सरसता बनी रह जाती है। स्वरों के आरोह अवरोह में भी दोनों दलों के बीच यही परिवर्तन-क्रम चलता रहता है।

(३) घाँटो चैती— मगही में इसे 'चैतार घाँटो' भी कहा जाता है। 'घाँटो' शब्द सभवत: 'घोटना' क्रिया से बना है। घोटने का अर्थ है— खूब मथना या बिलोना। इस प्रकार के चैती गीत में गायक बड़ी मस्ती से झूम-झूम कर गाते हैं। यत्रवत् इतनी तेजी से वे ढोल या झाल बजाते हैं कि 'घाँटो' शब्द बड़ा सार्थक प्रतीत होने लगता है। जहाँ तक घाँटो चैती गाने का प्रश्न है, यह गीत ठीक झलकुटिया चैती की तरह गाया जाता है। उसमें भी गायकों के दो दल हो जाते है। यह गीत विशेषकर पुरुष वर्ग ही गाता है। इस गीत में जैसा जोश और अलमस्ती है, उस ढंग से गाना पुरुष-कण्ठ को ही शोभा देता है। एक बात यह भी है कि इस गीत को इस जोश के साथ स्त्री-कण्ठ से गाये जाने पर वह स्वरमाधुर्य निश्चय ही नहीं रह पाएगा। पुरुष-कण्ठ से यह गीत अधिक प्रभावशाली प्रतीत होता है। इस गीत के साथ गवैये ही ढोल और झाल बजाते हैं। पहला दल एक पंक्ति गाता है, दूसरा दल टेक पद को उससे ऊँचे स्वर में गाता है। इस गीत मे भी ताल-परिवर्तन होता है यानी सात मात्रा गाते-गाते विविधता या वेग लाने के लिये कहरवा का प्रयोग किया जाता है। एक उदाहरण देखिये—

पहला दल— हरि मोरा गेलन मधुबनवाँ

दूसरा दल— हो रामा चइत रे मासे

पहला दल— रामा बिरही पपीहा बोलइ आधी रतिया

दूसरा दल— हो रामा चइत रे मासे।

घाँटो चैती में एक और पद देखिये—

लागइ सुन्न भवनवाँ हो रामा, कान्हा रे बिनु
मुनहर घरवा में सुतली सेजरिया
हरिजी के देखली सपनमा हो रामा, कान्हा रे बिनु ।

इस गीत का अन्तरा दो पंक्तियों का है। दूसरे दल के लोग दो पंक्तियों के बाद टेक पद 'हो रामा', 'कान्हा रे बिनु' को जोरों से दुहराते हैं।

झलकुटिया चैती की तरह ही घाँटो चैती को गाते समय भी प्रत्येक दल को विश्राम मिलता है। पहला दल जिस स्वर में गाता है, दूसरा दल उससे उच्च स्वर में टेक पद को दुहराता है। गीत जब अन्तिम अवस्था में पहुँचने लगता है तो गाने वाले उच्चतम स्वर में पहुँच कर एकाएक गाना समाप्त कर देते हैं।

उत्तर प्रदेश के चैती गीतों के तीन भेद किये गये हैं— चैती, घाँटो और गौरी।

गायन शैली के अनुसार तीनों का स्वरूप भिन्न हो जाता है। चैता गौरी का एक उदाहरण है—

सेज चढ़त डर लागे हो रामा, पायल बाजे ।

कुछ लोग चैता और घाँटो में अन्तर मानते हैं परन्तु वास्तव में ये अलग नहीं हैं। बुलाकीदास का नाम 'घाँटो' से संबद्ध अवश्य है, परन्तु इनकी रचनाओं को देखने से ज्ञात होता है कि चैता और घाँटो में कोई अन्तर नहीं है। हाँ, गायन शैली की दृष्टि से साधारण चैता और घाँटो में अन्तर मात्र इतना ही देखा जा सकता है कि साधारण चैता के गायन का ढंग उतना अलमस्त एवं ओजपूर्ण नहीं होता, जितना घाँटो का होता है, इसलिये यह नारी-स्वर में भी गाया जा सकता है। विशेष स्वरों के प्रयोग के कारण यह धीमी लय में गाया जाता है जबकि चैता घाँटो हमेशा उच्चतम स्वरों के प्रयोग के साथ द्रुत से द्रुततर लय में गाया जाता है।

चैता या घाँटो चैत के महीने में गाया जाने वाला विप्रलंभ शृंगार-प्रधान विलम्बित लय का लघु एकल गीत है। घाँटो छन्द के प्रत्येक चरण में छः, चार-चार, दो मात्राएँ होती हैं। इसकी लय इतनी विलम्बित होती है कि करुण रस का स्वाभाविक उद्रेक हो जाता है। चैता के गीतों में प्रायः प्रोषितपतिका की मर्मव्यथा होती है। कुछ ऐसे चैती गीत भी होते हैं, जिनका प्रारंभ विप्रलंभ से और अन्त संयोगभाव से होता है। प्रतीकों के माध्यम से कुछ गीतों में आध्यात्मिक भावों की अभिव्यक्ति होती है—

चलऽ सखि मलिया के बगिया हो रामा
लोढ़ि लोढ़ि फुलवा त भरली खोइँछवा
आय गैल मलिया रखवरवा हो रामा
नैन झरत हम देखहू न पइलीं
सूतल भइल भिनुसरवा हो रामा ।

चैता मूलतः मुक्तक गीत हैं किन्तु कुछ गीतों के अन्तरों मे स्थायी के भावों का विस्तार कर उन्हें बड़ा बनाया गया है—

एही ठैंया मोतिया हेरानी हो रामा
कोठवा में ढुँढ़लीं अटरिया में ढुँढ़लीं
देवरा से पूछत लजानी हो रामा
सेजिया पे ढुँढ़लीं सेजरिया पे ढूँढ़लीं
सैंया से पूछत लजानी हो रामा ।

चैती गायन की विभिन्न शैलियाँ

चैती गायन की अपनी एक विशेष शैली है, अपना एक विशेष ढंग है - -

(१) इसमें गीत की प्रत्येक पंक्ति के आरंभ में 'अहो रामा' या 'रामा' पद का प्रयोग होता है। यद्यपि पंक्ति के पूर्व ऐसे प्रयोग का कठोर नियम नहीं है। उदाहरणार्थ--- 'अहो रामा' या 'रामा' से आरंभ होने वाले निम्न पद देखें -

आहो रामा सूतल रहलीं पिया संगे सेजिया हो रामा
बाते-बाते, लागि गइले पियवा से रेरिया हो रामा।

रामा नदिया के तीरवा चनन गाछि बिरवा रामा
रामा मोर पिछुवरवा कोंहार भइया हितवा हो रामा।

कुछ ऐसे भी चैती गीत हैं, जिनके आरंभ में 'रामा' या 'हो रामा' का प्रयोग नहीं है। जैसे -

हमरे अँगनवा चइत रे मासे
चइत मासे फूलेला गुलबवा हो रामा, चइत रे मासे।

इस तरह पंक्ति के आरंभ में उक्त नियम का कठोर बन्धन नहीं है किन्तु पंक्ति के अन्त में 'हो रामा' पद का प्रयोग आवश्यक है। जैसे -

कुसुमी लोढ़त कँटवा गड़ि गेल हो रामा,
राजाजी के बगिया।

पंक्ति के अन्त में 'हो रामा' पद का प्रयोग साधारण, झलकुटिया एवं घाँटो चैती में सामान्य रूप से अवश्य होता है।

(२) चैती गायन को दूसरी विशेषता यह है कि इसमें दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पदों की आवृत्ति उस पंक्ति का गायन समाप्त हो जाने के बाद पुनः की जाती है, अर्थात् दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पद टेक का काम करते हैं। एक उदाहरण देखें--

मोर चुनरिया सैंया तोर पगड़िया
एकहि रंगे रंगायब हो रामा, एकहि रंगे।

इस गीत की दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पद 'एकहि रंगे' है, ये ही पद इस पंक्ति के गाने के बाद टेकपद के रूप में पुनः गाये जाते हैं। गाने के बीच में यही क्रम क्रमशः चौथी, छठीं आदि सम पंक्तियों में चलता रहता है।

(३) चैती गाने में प्रथम अवरोह, फिर आरोह और पुनः अवरोह होता है अर्थात् प्रारंभ में मन्द स्वर, बीच में उच्च स्वर और अन्त में पुनः मन्द स्वर का प्रयोग किया जाता है। चैती गीतों की स्वरलिपि देखने पर यह बात स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

(४) आरोह-अवरोह के क्रम से घाँटो चैती का गायन इस प्रकार होता है कि इसमे प्रथम तो उच्चतम स्वर का प्रयोग होता है, फिर उच्च स्वर का व्यवहार होता है और अन्त में मन्द स्वर आता है। आरोह-अवरोह के क्रम से गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है---

अहो रामा कवना दहे बोलेले चकवा चकइया हो रामा
कवना दहे, बोलेले बिरही कोइलिया हो रामा, कवना दहे।

इस गीत में 'हो रामा' और 'कवना दहे' में लम्बित स्वर का प्रयोग किया जाता है —

(५) चैती गैतों में बहुधा लय-परिवर्तन होता है। कोई पद जो सात मात्रा में गेय होता है, वह तो टेक पंक्ति हो जाती है और अन्तरे की दो पंक्तियों में से दूसरी पंक्ति आठ मात्रा में बदल जाती है। उदाहरणार्थ, एक चैती गीत देखें—

चइत मासे चुनरी रंगा दे हो बालम
झमकि झूमि चलबो ।
चुनरी रंगा दे, अंगिया सिया दे
कोरे कोरे गोटवा टँका दे हो बालम,
झमकि झूमि चलबो ।

यह गीत पहले सात मात्रा से आरंभ होता है। अन्तरे की प्रथम पंक्ति को कहने के बाद ही गायक ढोलक वाले को लय-परिवर्तन का संकेत देता है और 'कोरे कोरे गोटवा टँका दे हो बालम' इस पंक्ति में तुरन्त ही आठ मात्रा की लय पकड़ ली जाती है। इस लय में आने के बाद गायक स्वेच्छा से उसे तरह-तरह से गाते हैं। दो-तीन आवृत्तियों तक उसमें अपना कलाज्ञान दिखलाते हैं और फिर स्थाई की पंक्ति पकड़ने के पूर्व पुनः वादक सहयोगी को संकेत देकर सात मात्रा पर आ जाते हैं।

यह तो सर्वविदित है कि चैती गायन की एक विशिष्ट शैली है, किन्तु इस शैली में सिर्फ चैत के गीत गाये जाते हों, ऐसा कोई नियम-बन्धन नहीं है। यह अवश्य है कि इस शैली के गीत एक अवधि विशेष के अन्तर्गत ही गाये जा सकते हैं। गाँवों में बहुधा कीर्तन, रामायण आदि का गायन चैत के महीने में चैती गायन शैली में होता है। रामायण की चौपाई की दो पंक्तियाँ कहकर चैती शैली में एक बोल लगाकर उसे गाया जा सकता है। यथा—

जनम लिये रघुरैया हो रामा, चइत महिनवाँ ।

अथवा

घरे घरे बाजेला बधइया हो रामा, अवध नगरिया ।

इस बोल के बाद चौपाई की दो पंक्तियाँ गाई जायेंगी —

नौमी तिथि मधुमास पुनीता ।
सुकल पच्छ अभिजित हरिप्रीता ॥
मध्यदिवस अति सीत न घामा ।
पावनकाल लोक विश्रामा ॥

इसके बाद बोल की दो-तीन बार या दो-तीन तरह से आवृत्ति करने के बाद आगे की चौपाइयाँ गाई जाती हैं। इस तरह का एक और उदाहरण देखें, जो रामचरितमानस के फुलवारी प्रसंग से लिया गया है—

बोल— राम लखन आए बगिया हो रामा, फुलवा लोढ़न को ।

चौपाई— **देखन बाग कुँअर दुइ आए ।**
बय किसोर सब भाँति सुहाए ॥
स्याम गौर किमि कहौं बखानी ।
गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥

प्राय: चैती धुन में सात मात्रा में रामायण की चौपाइयाँ गाई जाती हैं, उनके बीच के बोल आठ मात्राओं में गाये जाते हैं। तीन-चार आवृत्ति के बाद पुन: दूसरी चौपाई गाने के पूर्व गायक सात मात्रा पर आ जाता है। लेकिन इस तरह का कोई कठोर नियम नहीं है। गायक अपनी इच्छा से इसे ठीक विपरीत ढंग से भी गा सकते हैं यानी चौपाइयों को आठ मात्रा में कहकर बीच के बोलों को भी सात मात्रा में गाया जा सकता है। गोस्वामी तुलसीदास की 'दोहावली' और 'कवितावली' से भी इस प्रकार की रचनाएँ सुनने को मिलती हैं।

ऐसा कहा जाता है कि चैती वैष्णवों की देन है। मूलत: चैती लोक-संगीत है। चैत में हर कहीं गौनिहारिनें, शहनाईनवाज चैती गाते-बजाते दिखाई पड़ते हैं, पर शास्त्रीय चैती ने लोकधुनों को परिष्कृत करके अनूठी लोच के साथ बनारसी बाना पहनाया है। भरत के अनुसार चैती हिंडोल के पुत्र-पुत्रवधुओं में एक नाम है। कुछ गायक चैती गायन में पूर्वी दादरा, चैती ठुमरी, चैता-भैरव एवं चैती भैरवी को भी शामिल करते हैं।

चैती गीतों की सामयिकता, स्थानीयता और बोली

चैती की सामयिकता का प्रश्न विवादास्पद नहीं है। नाम के अनुरूप चैत मास से संबंधित होने के कारण इसका संबंध चैत मास से ही होना चाहिए, किन्तु चैत के महीने को कहीं कहीं मधुमास की भी संज्ञा दी गई है।[१] मधुमास वसन्त का प्रतीक है। स्पष्ट है कि वसन्त के आरंभ होते ही चैती गीतों की मानसिकता बन जाती है। माघ की पंचमी से वसन्त गीतों की स्वरलहरियाँ गूँजने लगती हैं। चैती की भूमिका के रूप में होली गीतों से गाँव के गाँव गूँज उठते हैं। चैत का महीना आते-आते यह उल्लास अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है और नदी किनारे, अमराइयों में, खेतों में, गाँव के चौपालों में गूँजने लगते हैं चैती के मादक शृंगार गीत। चैती गीत विशेष रूप से बिहार तथा उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों में प्रचलित हैं। यों चैत्र मास में विभिन्न पर्वों से संबंधित गीत भारत के अन्य प्रान्तों में भी गेय हैं। किन्तु अपनी विशिष्ट शैली में चैती के इन पदों की स्थानीयता निश्चय ही सीमित है।

भोजपुर चैता की सबसे विस्तृत भूमि है। मगध और मिथिला क्षेत्र में भी इसका महत्त्व है। छोटानागपुर में 'सदानी' बोली बोलने वालों के बीच चैता प्रचलित है। वहाँ सदानी बोली भोजपुरी का ही स्थानीय रूप है।

कुछ लोगों की धारणा है कि चैत में सती सावित्री के पति सत्यवान को प्राणदान मिला था। इसलिये पटना के रानीपुर स्थित 'सावित्री-सत्यवान' के एक मन्दिर में विशाल मेला लगता है और वहाँ चैता शैली में खँजरिया भजन गाया जाता है, जिसमें खँजरी का प्रयोग किया जाता है।[२] यहाँ सतुवानी के अवसर पर विशेष 'चैता मेला' का आयोजन होता है और रामजन्म के उपलक्ष्य में तो चैता के आयोजन का कहना ही क्या!

बिहार के मिथिला प्रदेश में 'चैतावर' गाया जाता है। यह मिथिला जनपद की भाषा है, जिसमें दरभंगा, तिरहुत, मधुबनी आदि भाग आते हैं। मैथिली भाषा का एक चैती गीत देखें—

---

१. *ऋतुसंहार* ६/२६।

२. लेख — *रामजी कऽ भइले जनमवाँ हो रामा, ख़ास नौमी दिनवाँ,* जहीर नियाजी, धर्मयुग, ४ अप्रैल, १९८२।

गहरी नदिया गगरियो ने डूबइ
कौने ठाढ़ पछिताउ हो रामा, श्याम रे बिनु ।

मगही बोली मगध प्रान्त के अन्तर्गत पटना, गया तथा आसपास के क्षेत्रों में बोली जाती है। यहाँ चैती गीतों को 'चैतार' कहा जाता है---

राम घरे अइहें पहुनमा मोरे रामा
रात सबरी देखलन सपनमा हो रामा ।

बिहार के प्राचीन अंग जनपद अर्थात् वर्तमान भागलपुर एवं कोशी प्रमण्डलों में अंगिका बोली का प्रयोग होता है। एक चैती गीत देखिये-

एडन्ना फुलैलै फुलगेनबा हो रामा, पिया नहि ऐलै ।

वज्जिका बोली के क्षेत्र चम्पारण, मोतिहारी, मुज़फ्फरपुर, वैशाली आदि हैं। यहाँ का एक चैती गीत इस प्रकार है----

लाल लाल टेस पलास बन झलकइ
लाल लाल पतिओं में टिकोलो जे झमकइ
चुनरी लगइ मनभाओन हो रामा, चइत माहे ।

भोजपुरी पूरे बिहार की ही नहीं, उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग तथा कुछ अन्य स्थानों की भी भाषा है। भोजपुरी का एक चैती गीत देखिये -

सैंया मोरा रे कुसुमी बोअइहऽ हो रामा
चम्पा लगइहऽ चमेली लगइहऽ
खेतवनि कुसुम लगइहऽ हो रामा ।

शुद्ध भोजपुरी में मिश्रित बोली का प्रयोग बहुधा मुस्लिम लोकगीतों मे होता है। ऐसे गीत बिहार तथा उत्तर प्रदेश में सुने जाते हैं -

काहे अइसन हरजाई हो रामा
तोरे जुलुमी नयन तरसाई हो रामा ।

उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग मे भोजपुरी भाषा से मिलती-जुलती बोली में चैती गीत मिलते हैं। यहाँ की भोजपुरी बिहार की भोजपुरी से कुछ भिन्न प्रतीत होती है किन्तु इनमें अनोखा लालित्य मिलता है। मधुर गायन शैली एवं मन लुभाने वाली भाषा श्रोताओं को आत्मविभोर कर देती है। अवध की शामें रामजन्म संबंधी चैती पदों एवं रामायण के स्वर से सजी होती हैं। अवध का एक चैती गीत देखिये---

चइत मासे चुनरी रंगाये हो रामा, लाली रे लाली ।

बलिया, गाजीपुर, मिर्जापुर, गोरखपुर, इलाहाबाद और वाराणसी आदि स्थानों पर गाई जाने वाली चैतियों में यों भोजपुरी भाषा ही प्रयोग में लाई जाती है किन्तु वाराणसी, मिर्जापुर आदि जगहों की बोली की सरसता का एक अपना ही रंग है। कवि 'छबीले' की रचनाओं की छबीली छटा मन को मुग्ध कर देती है---

सुगना बोले रे हमरी अटरिया हो रामा
ए री छाये छबीले रे बिदेसवा
रहि रहि मारे रे बिरही कटरिया हो रामा ।

बोलचाल की भाषा में हम इसे बनारसी बोली भी कह सकते हैं। बनारस में वसन्त पंचमी से चैत्र पूर्णिमा तक वसन्तोत्सव की धूम मची रहती है। होली के बाद पहले मंगल को 'बुढ़वा मंगल' कहते हैं। इस अवसर पर तीन दिन का 'जलोत्सव' मनाया जाता है। बुढ़वा मंगल के बाद वहाँ 'गुलाबबाड़ी' सजा करती थी, जिसमें चैती गायन होता था।

चैती की सामयिकता का प्रश्न बिल्कुल सीमित है किन्तु स्थानीयता में विस्तार पाया जाता है। चैत संबंधी पद अनेक स्थानों पर गाये जाते हैं किन्तु विशुद्ध चैती मात्र बिहार तथा उत्तर प्रदेश तक ही सीमित है।

विभिन्न बोलियों का समावेश होने पर भी चैती गीतों के भावों में साम्य है। प्रकृति के शाश्वत सत्य की भाँति हर मनुष्य की ऊपर की भाषा भिन्न हो सकती है, पर मन की भाषा एक होती है।

वसन्त ऋतु में विभिन्न प्रदेशों में गाये जाने वाले कुछ गीत

लोकजीवन में वसन्त यौवन और फलते-फूलते दाम्पत्य सुख का प्रतीक है। इसीलिये वासन्ती गीतों में वसन्त का आह्वान और अभिनन्दन ही मुख्य होता है।

कश्मीर का सोंत गीत

कश्मीर में वसन्त में 'सोंत गीत' गाया जाता है। वसन्त ऋतु का उद्घाटन 'नवरेह' यानी कश्मीरी वर्ष के आरंभ अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से होता है। प्रातः उठकर सब लोग धान की टोकरी में रखे हुए रुपये, लेखनी, अखरोट, दही, दूध, चीनी आदि के दर्शन करते हैं। इस अवसर पर मेले लगते हैं और लोग नये कपड़े पहनते हैं। महिलाएँ इस त्योहार पर निम्न गीत गाती हैं—

नोव नवरेह सोन्त है आवय
यि कुसुम द्यदिये वोय म्योन आवय
हस्त्यन खसिथ आँगनस चावय
आँगनस प्येयम छतरे छावय
तथ तल लभिमय मोक्त फलि ढाये
तिमनय करिमय मालअये।

—सखियों, नववर्ष और वसन्त ऋतु आ गई। देखो, यह कौन आया है? लगता है, मेरा भाई है। हाथी पर चढ़कर यह आँगन में आ गया और उसकी छाया में बैठकर मैंने मोती पिरोये। सखियों, नववर्ष और वसन्त हमारे लिये सुख का सन्देश लेकर आया है। वसन्त के आगमन पर ही लोगों के मन में तीर्थयात्रा करने की इच्छा उत्पन्न होती है।[1]

डुग्गर क्षेत्र में गाया जाने वाला वसन्त ऋतु से संबंधित एक डोगरी गीत इस प्रकार है—

दयां माए मिकी ओडनू, कन्नै गोडनू
में मरुआ गुड्डुन जानां
ओ लोभी मरुए दा।

---

१. *कश्मीर का लोकसाहित्य*— मनमोहन कृष्ण दर, पृ० १६९।

कांगड़ा प्रदेश में वसन्त ऋतु के अन्तर्गत चैत के महीने में 'छिंज्ज गीत' गाया जाता है --

उपरा ले पेईये डोरडिये
कि बहुती कुसुम्भेयां लाल
वीरण ता आया भैणे पाहुणा
कि केहड़े आदर देऊँ ।

गढ़वाल के वसन्त गीत

गढ़वाल यानी मध्य हिमालय में वसन्त सबसे अधिक लोकप्रिय है और उसके गीत समस्त पर्वतीय क्षेत्रों में विविध नामों से जाने जाते हैं। कुमाऊँ में इन्हें 'वसन्ती' तथा 'रितुरैण', खाईं में 'वसन्ती' और अन्य भागों में 'चैती', 'झुमैलो' आदि इनके नाम मिलते हैं। गढ़वाल के वसन्त गीतों के चार प्रकार पाये जाते हैं---

वसन्ती, झुमैलो, खुदेड़ गीत और चैती नाच।

यहाँ वसन्त का अभिनन्दन एक त्योहार के रूप में एक महीने तक मनाया जाता है, जो यहाँ तथा कुमाऊँ में 'फूलदेई' तथा कहीं कहीं 'गोना' कहलाता है।

गढवाल के चैती गीत

गढ़वाल में चैत को 'नाच का महीना' भी कहा जाता है। ऐसा अनुमान है कि वसन्त के उल्लास में वहाँ लोग चैत के महीने में नाचते होंगे, किन्तु अब यह प्रथा केवल हरिजनों तक ही सीमित है। वे इस महीने में ढोल, दमामा बजाते हुए सवर्णों के दरवाजों पर नाचते-गाते हैं तथा 'चैती पसारा' माँगते हैं। इस अवसर पर अनेक प्रकार के गीत गाये जाते हैं। उनमें कुछ गीतों में चैत के वासन्ती सौन्दर्य का वर्णन होता है किन्तु अधिकतर आख्यान गीत ही होते हैं। राजा हरिश्चन्द्र, चन्द्रावली, जसी, फ्यूँली, मरू आदि की लोकगाथाएँ उल्लेख्य हैं। खुदेड़ गीतों में मायके के स्मृति विषयक गीतों का मुक्तक रूप होता है। चैती गीतों में वही भाव प्रबन्ध रूप में होता है।

इन गाथाओं में वसन्त की शोभा का वर्णन, मायके के प्रति अनुराग और ससुराल के कटु वातावरण की घटनाओं के चित्र मिलते हैं।

खुदेड़ गीत

वसन्त ऋतु में मुख्य रूप से गाये जाने वाले ऋतुगीतों में 'खुदेड़ गीत' उल्लेखनीय हैं। इन गीतों में वसन्त की शोभा का वर्णन पाया जाता है। गीतों के पूर्वार्द्ध में उद्दीपन रूप में प्रकृति की शोभा का वर्णन रहता है और उत्तरार्द्ध में जीवन की कठोरताओं के बीच ससुराल में संघर्षमय जीवन बिताती हुई बहुओं की मायके के प्रति होने वाली स्मृति का करुणपक्ष व्यक्त होता है। एक बहू अपनी सास को उलाहना देती हुई कहती है---

माँजी तू मेरी जनम की बैरी
मेरी टकौं की नथुली पैरी ।

मायके जाने वाली अपनी सखियो से वह माँ के पास संदेश भेजती है कि तुम्हारी बेटी रो रही है।

इन गीतों में पक्षियों को आत्मीय बनाकर उन्हे उपालंभ देना, अनुनय-विनय करना अथवा उनसे संदेश भेजना हृदय की विरहानुभूतियों की भावात्मक अभिव्यक्ति है। फूलों, पेड़ पौधों, वन पर्वतों, नदी झरनों को आत्मीय मानना सरल हृदय की निश्छल भावना है। खुदेड़ गीतों का वातावरण पारिवारिक होता है। इन गीतों का एक दूसरा पक्ष है - पति पत्नी की विरह भावना। मनमोहक महीना आया है। लाल पीले फूलों से पर्वत का शिखर शोभित हो रहा है। उधर मेरे स्वामी परदेस में हैं। उनका कोई संदेश नहीं आया। मेरा यह करुण हृदय आँसुओं से भीग रहा है।

प्यारा वसन्त आया है। कोई फूल कल खिला, कोई आज खिलेगा। कली-कली पर भौंरों का राज होगा। वसन्त ऋतु की चाँदनी मे खेतों में चकोर बोलेंगे। मैंने सोचा था कि प्रिय घर लौटेंगे

कली-कली मा भौंरों कू राज
रितु वसन्त की चाँदना मांझे
बासला चकोर खेतु मा
मैन सोचे स्वामी घर आला।

गढ़वाल के लोकगीतों में अत्यन्त कारुणिक गीत शैली 'खुदेड़ गीत' नाम से जानी जाती है। इसका 'खुद' शब्द स्मृत्यात्मक 'क्षुध' कर्म का द्योतक है। आत्मा की क्षुधा को स्मृति के द्वारा प्राप्त करने की मार्मिक भावव्यंजना को 'खुदेड़' संज्ञा प्राप्त है।

मायके से दूर रहने वाली नारियों के हृदय विदारक गीत होते हैं 'खुदेड़ गीत'। 'खुद' शब्द गढ़वाली में इतना व्यापक है कि अपने किसी भी प्रिय से दूर रहने पर उसके मिलन की अभिलाषा उत्पन्न होना इसका प्रतीक माना जाता है। प्राकृतिक ऋतु परिवर्तन एवं प्रकृति व्यापार के भी खुदेड़ गीत हैं। एक गीत में कोई स्त्री अपनी माँ के हृदय में अपने को बुलाने का भाव जगाती है -

फूली जालो काँस ब्वै, फुली जालो काँस
मेल्वड़ी बासली ब्वै, फूली गैं बुरांस
मौलि गैने डाली ब्वै, हरी ह्वैन डाँडी
गौं की दीदी भूलि ब्वै, मैतु आई गैन।

- माँ, वसन्त (फुलारी) आ गया है। वनों में काँस के फूल खिलेंगे। पहाड़ों की चोटियों पर बुरांस के फूल खिल गये हैं। मेल्वड़ी पक्षी अपनी तान छेड़ेगा। संपूर्ण वनस्पति लहलहा उठी है। सारे वन हरे भरे हो गये हैं। मायके आने की ऋतु आ गई है।

ससुराल का जीवन कटु होने पर तो नारी जीवन पहाड़ हो उठता है। ऐसे में वह पहाड़ की चोटी पर पहुँच कर पिता का गाँव देखना चाहती है। किन्तु ऊँची पहाड़ियो और चीड़ के घने वृक्ष उसके दृष्टि-पथ में बाधक हो जाते हैं --

हे ऊँची डाँड्यो तुम नीसि जावा
थैणी कुलायूँ तुम छाँटि ह्वावा
मैकूँ लगी च खुद मैतुड़ा की
बाबाजी को देस देखणी द्यावा।

— हे ऊँचे-ऊँचे पर्वतों, तनिक झुक जाओ। घनी चीड़ की डालियों, छँट जाओ। मुझे अपने मायके की 'खुद' (स्मृति) लगी है। बाबा के देश को थोड़ा तो देखने दो।

इन गीतों मे सिर्फ़ नारी की ही नहीं पुरुष की भी व्यथा परिलक्षित होती है।

रोजी रोटी के लिये कोई युवक दूर चला जाता है। अभावों में घिर जाता है। बरसात में वह अपने माँ-बाप, भाई-बहन, घर-गाँव, नदी-नाले और पत्नी की याद (खुद) में विह्वल हो जाता है—

रिटी फिरी ऐगे ब्वै, बसगाल प्यारू
विदेस माँ रोंद ब्वै, अभागी यू त्यारू ।

—माँ, घूम-फिर कर फिर बरसात आ गई है, तेरा यह अभागा पुत्र परदेस की सड़कों पर रो-रो कर दिन काट रहा है। पत्नी की याद आने पर वह कहता है—

तू होली ऊँची डाँड्यो माँ वीरा, घस्यारी का भेषमां
'खुद' माँ तेरी सड़क्यूँ माँ, रुणूँ छौं पर देश मां ।

—मेरी प्यारी वीरा, तू इस समय घास काटने पहाड़ की चोटी पर होगी। मैं तुम्हारी 'खुद' में तड़पता और रोता हुआ इन परदेसी सड़कों पर मारा-मारा फिर रहा हूँ।

इस तरह गढ़वाल के खुदेड़ गीत हृदयस्पर्शी स्मृतियों के दर्दीले गीत हैं, जिनके वर्ण-वर्ण, शब्द शब्द और वाक्य-वाक्य में गढ़वाल की संस्कृति है।

झुमैलो गीत

'झुमैलो' गीत की हर पंक्ति में यह शब्द दुहराया जाता है। गाँव मे कन्याएँ तथा मायके आई हुई नवविवाहिताएँ संध्या समय मण्डल बनाकर झुमैलो गाती हैं। खुदेड़ गीतो की तरह इन गीतों में भी वासन्ती शोभा के वर्णन के साथ मायके की स्मृति करुण शब्दों में अभिव्यक्त होती है। इस गीत को सिर्फ महिलाएँ ही गाती हैं —

राडा की रडवाड़ियों म्वारी रुणाली, झुमैलो
झपन्याली डाल्यों हिलांस बांसली, झुमैलो
काँदू माँ हलसुगी लीक हल्या, खेतू माँ जाला, झुमैलो
जौंका होला भाई, मैत बुलाला झुमैलो
मेरा मैत्यों का डांडा कांठा झुमैलो
लाल डोला बुरांस का सजला झुमैलो ।

— अर्थात् सरसों के खेतों में भौंर मँडराते होंगे। घने वृक्षों के ऊपर हिलांस पक्षी बोल रहा होगा। कंधे पर हल थामे हलिया खेतों में जा रहे होगे; जिनके भाई होंगे, अपनी बहनों को मायके बुलाएँगे। मेरे मायके के पर्वत-शिखर बुरांस के फूलों की लाल डोली से सज़ रहे होंगे।

गढ़वाली झुमैलो गीत में प्रवासी प्रिय के प्रति विरह निवेदन पाया जाता है। विषय दृष्टि से यह खुदेड़ गीत की तरह है। खुदेड़ गीत जब नृत्य के साथ गाये जाते रहे होंगे तो झुमैलो टेक की पुनरावृत्ति के कारण ही झुमैलो कहलाने लगे होंगे—

आई गैन रितु बौड़ी, दाई जसो फेरो झुमैलो
मेरा मैत्यों की पुगड़यो का मेंड़ा झुमैलो
फ्यूँलीन पिगला ह्वै ला रिगला झुमैलो ।

--वासन्ती ऋतु आ गई। मेरे मायके वालों के खेतों की मेड़ें फ्यूँली से पीली हो गई होंगी। मेरे मायके के पर्वत-शिखर डोली की तरह सज रहे होंगे।

गढ़वाल मे ऋतु-परिवर्तन को 'दाई का फेरा' कहते हैं। यह चैत में यानी मधुमास में होता है। इन लोकगीतों में मधुमास में विकसित होने वाली फ्यूँली के प्रति बड़ी ममता दिखाई गई है। चैत्र मास मे कुमारी कन्याएँ फ्यूँली के पुष्प चुन चुन कर सुबह-सुबह घर की देहरियों पर डाल जाती हैं और वसन्त के स्वागत में वासन्ती गीत गाती हैं।

कुमाऊँ का ऋतुरैण तथा कफलिया गीत

कुमाऊँ मे वहाँ की स्थानीय बोली में प्रचलित वसन्त गीतो को 'ऋतुरैण' कहा जाता है। इस शब्द की उत्पत्ति 'ऋतुराज', 'ऋतुराजण' या 'ऋतुरायण' से हुई है। ये चैत्र मास में गेय हैं, जिन्हें 'चैतू' की संज्ञा भी दी गई है –

यो आयो चैतां को महीना
ईजू मेरी रोली
मेरी ईजू की बाँधी लटी
छे महीना में खोली ।

—भाव है कि चैत का महीना आ गया है। मेरी माँ रोयेगी। माँ की बाँधी हुई लट छ: महीने में खुलेगी।

चैत्र मास में नववर्ष का आगमन माना जाता है। अत: पुष्प-मंजूषाओ मे फूल भरकर ऋतुराज वसन्त का स्वागत किया जाता है। बालिकाएँ पहले गाँव के मुखिया के घर जाकर नववर्ष के लिये मंगलगीत गाकर धन-धान्य से पूर्ण तथा दीर्घजीवी होने की कामना करती हैं। यह पर्व 'फलसंज्ञान' या 'पुष्पसंक्रान्ति' कहलाता है।

यहाँ ऋतुरैण और चैतू के अतिरिक्त 'कफलिया' भी वसन्तकालीन गीत है। इन गीतों में चैत्र मास में पकी फसल 'काफल' को वर्ण्य वस्तु बनाया जाता है। कुमाऊँ में चैत के महीने में नववर्ष के साथ बारामासी गीत गाया जाता है। इसे गाने वाले 'हुड़कियाँ' या 'बादी' कहे जाते हैं। वसन्त गीतों में वसन्त का स्वागत करते हुए कुछ प्रश्न किये जाते हैं –

कैसूँ लै राच्यौ छौ यौ मनमा रे हाँ?
कैसूँ लै राच्यौ छौ सुक्यालो संसार हाँ?
कैसूँ लै राच्यौ छौ दिन को सुरिजा रे हाँ?
कैसूँ लै राच्यौ छौ रात को चनरमा हाँ?

जातिविशेष के लोग चैत के पूरे महीने यह गीत घर-घर जाकर सुनाते और इनाम पाते हैं---

फुलवो बिंदिया, फूलै बुरूँसी
सबै फूल फूलीगो चैतोई मासा ।

'रितुरैण' गीत कुमाऊँ की 'भेंटौली' प्रथा से संबद्ध है। इस प्रथा के अनुसार चैत्र मास में भाई अपनी बहन से भेंट करने आता है और उसे तरह-तरह के उपहार देता है। बहन को ऋतु के आगमन की सूचना वसन्त में गाने वाले पक्षियों, कोयल, न्यौली, कफुवा आदि से मिलती है और वह भाई की प्रतीक्षा में बेचैन हो जाती है।

बुन्देलखण्ड के चैती फसल संबंधी गीतों में 'रामारे', 'रमटेरा', 'दिनर्रा' और 'बिलवारी' मुख्य हैं।

कनौजी फुलेरा गीत

कन्नौज प्रदेश में होरी और फाग के अतिरिक्त फाल्गुन मास में 'फुलेरा' नामक गीत भी गाये जाते हैं। इन गीतों के गाने का समय फाल्गुन शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा तक है। इसे केवल बालिकाएँ गाती हैं। शाम के समय चौक पूरने के बाद बालिकाएँ समूह-स्वर में ये गीत गाती हैं। इन गीतों के भाव बड़े गंभीर होते हैं। इनमें बालिकाओं का माता-पिता, भाई-बहनों के प्रति प्रेम तथा माता पिता का उनके प्रति प्यार, फटकार, मायके का मोह आदि चित्रित होता है--

ऊँचो चौतरा चौखुटो
जहाँ बेटी खेलन जायँ
हो राधा भामिन बनवारी री
खेलत खेलत भोर भयो है
बाबुल के दरबार।

कुछ फुलेरा गीतों में ससुराल में सास के व्यवहार तथा बहू पर उसकी प्रतिक्रिया की कल्पना की गई है। एक गीत में यह कहा गया है कि माता-पिता के राज में खेल कूद लो, ससुराल में सास खेलने नहीं देगी---

डग डग डोना डाडागी डुडौरी देय
खेलि लेव री खेलि लेव री
माई बाबुल के राज
फिर दुरि जइयाँ सासुरे डूडौरी देयें।

फुलेरा से संबद्ध कुछ संवादात्मक गीत भी मिलते हैं, जिनमें स्त्री अपने भाई के आने की प्रतीक्षा करती है और आने पर मायके की स्मृति तथा ससुराल के कष्टों का वर्णन करती है।

महाराष्ट्र का चैत्रांगणा

महाराष्ट्र में स्त्रियाँ 'चैत्रांगणा' गाती हैं। संभवत: इसीलिये इस गीत का नाम 'चैत्र+अंगणा' पड़ा है। इन गीतों में मराठी भाषा का प्रयोग होता है।

*

अध्याय ४

व्रत एवं त्योहारों के गीत

अक्षय तृतीया

वैशाख महीने के शुक्लपक्ष की तृतीया को अक्षय तृतीया कहते हैं। यह तिथि सौभाग्य देने वाली है। इस तिथि से सतयुग का आरंभ माना जाता है। ऐसी मान्यता भी है कि भगवान् परशुराम का अवतार भी इसी दिन हुआ था। इसीलिए इसे युगादि तृतीया या परशुराम तीज भी कहते हैं। यह सनातन धर्मियों का प्रधान त्योहार है। इस दिन दिये हुए दान और किये हुए स्नान, होम, जप आदि का फल अक्षय, अनन्त होता है, इसीलिये इसका नाम अक्षया हुआ। इसी तिथि को नरनारायण परशुराम और हयग्रीव अवतरित हुए थे। इसलिये इस दिन उनकी जयन्ती मनाई जाती है। इसी दिन त्रेतायुग भी आरंभ हुआ था। अक्षय तृतीया बड़ी पवित्र और महान् फल देने वाली तिथि है, इसलिये इस दिन सफलता की आशा से व्रतोत्सवादि के अतिरिक्त वस्त्र, शस्त्र और आभूषण आदि बनवाये या धारण किये जाते हैं तथा नवीन स्थान आदि का उद्घाटन भी किया जाता है।

गंगा-स्नान तथा पितृ-तर्पण का इस दिन बड़ा माहात्म्य समझा जाता है। इस दिन पूर्वाह्ण में स्नान, जप, तप, होम, स्वाध्याय एवं पितृ तर्पण आदि किये जाते हैं। स्नान के बाद लक्ष्मी और नारायण के दर्शन किये जाते हैं। स्नान और दर्शन के बाद घड़ा, पंखा, सत्तू, शक्कर, चावल, नमक, सोना, वस्त्र, खड़ाऊँ, इत्र, ककड़ी, खरबूजा, तरबूज, लड्डू तथा दही आदि का दान किया जाता है।

भविष्यपुराण में अक्षय तृतीया के महत्त्व को बतलाते हुए श्रीकृष्ण ने कहा है—

वैशाखस्य सितामेकां तृतीयां शृणुपाण्डव ॥ १ ॥
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम्
यदस्याः क्रियते किञ्चिद् सर्वं स्यान्तदिहाक्षयम् ॥ २ ॥

—हे पाण्डव! वैशाख मास के शुक्लपक्ष की तृतीया के बारे में सुनो। स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, पितृ-तर्पण जो कुछ भी इस तिथि में किया जाता है, वह सभी अक्षय हो जाता है। यह सब प्रकार के पापों का प्रशमन करने वाली तथा सभी प्रकार के सुख प्रदान करने वाली है।

इस व्रत की एक कथा भविष्यपुराण में मिलती है। शाकल नगर में कोई धर्म नाम का बनिया रहता था। वह प्रिय भाषण करने वाला, सत्यवादी और देवों तथा ब्राह्मणों का पूजन करने वाला था। उसने सुना था कि यह तृतीया रोहिणी तथा बुधवार से जब भी संयुक्त होती है तो उस समय महान् फल देने वाली होती है। उसमें जो कुछ भी दिया

जाता है, वह अक्षय हो जाता है। यह सुनकर वह गंगा के पास पहुँचा और वहाँ पितृगण तथा देववृन्द की भली प्रकार स्तुति की फिर वापस अपने घर आकर अन्न तथा जल भरे घड़े ब्राह्मणों को दिये। वह बार-बार वासुदेव का स्मरण करता हुआ मृत्यु को प्राप्त कर कुशावती में क्षत्रिय नरेश होकर उत्पन्न हुआ। धर्म के कारण उसकी अक्षय समृद्धि हो गई थी क्योंकि उसने तृतीया में श्रद्धापूर्वक दान दिया था।

पुराण में इस बात का भी निर्देश है कि इस व्रत में जल से पूर्ण घड़ों का दान करना चाहिए। ग्रीष्म के लिये उपयोगी वस्तुएँ तथा शस्त्र भी दान में देवें। छाता, उपानह, गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र आदि का भी दान देना चाहिये, क्योंकि इस तिथि में दिया गया दान अक्षय होता है।

लोकसाहित्य में यह व्रत आखातीज या अखतीज के नाम से मशहूर है। इस दिन घट, कुल्हड़, सीरा, फुलका से पूजे जाते हैं। चार मिट्टी के ढेल लगाये जाते हैं। जितने ढेल भींगे, उतने महीने वर्षा होगी, ऐसा अनुमान है। इसमें आसचौथ की कहानी होती है। पट्टे पर चार औरतें मिट्टी से काढ़ी जाती हैं तथा घी-गुड़ से पूजा होती है।

बुन्देलखण्ड के बरुआ सागर में यह व्रत बड़ी धूमधाम से वैशाख शुक्ल तीज से पूर्णिमा तक मनाया जाता है। इस दिन कुमारी कन्याएँ अपने-अपने भाइयों, काका, बाप एवं गाँव के सभी लोगों को सगुन बाँटती हुई गाती हैं--

अखती खेलन कैसे जाऊँ री,
वर तरे मेले लिबउआ।
पैलऊ लिबौआ नौआ जो आओ,
नउआ के संग नईं जाऊँ री।.

राजस्थान के त्योहारों में इस व्रत को बहुत महत्त्व दिया गया है। इस दिन सात खाद्यान्नों—गेहूँ, चना, तिल, जौ, बाजरी, मूँग और चावल की पूजा करके शीघ्र वर्षा की कामना की जाती है। शकुन निकाले जाते हैं। इस दिन पतंग उड़ाने का भी रिवाज है। यह दिन अनदेखा मुहूर्त माना जाता है, इसलिये इस दिन निश्चिन्त होकर विवाह की तिथि रख दी जाती है। लड़कियाँ समूह बनाकर घर-घर मंगलगीत गाती हैं---

कोरी ता कुलड़ा राज दही जमायो
सासू री जायो राज, इमरत बोले
केसरियो राज इमरत बोले।

ससुराल जाने वाली लड़कियाँ अपनी सहेलियों से दूर रहने का दु:ख प्रकट करती हुई गाती हैं----

आई आई ए माँ ए मोरी आखातीज
मने ने मेली माँ सासरे
साथ सहेलिया माँ ए मोरी रमण जा
माने भोलायो सासू सावणो
सोयो सोयो ए माँ ए मोरी छाज दो छाज।

मालवा, कृषिप्रधान देश है। यहाँ इस दिन पानी का नया मटका और ऊपर से

खरबूजा तथा आम्रपत्र रखकर पूजा की जाती है। गुड़ की भेली, मीठी रोटी का भोजन, घी-गुड़ का धूपदान और बैलों की आरती के बाद हल द्वारा खेतों की बोआई की जाती है। यह दिन किसानों के लिये नये वर्ष के प्रारंभ में शुभ दिन समझा जाता है। इस दिन की बोआई फसल की वृद्धि को लक्ष्य में रखकर की जाती है। आखातीज इस तरह एक महत्त्वपूर्ण अनुष्ठान है। आखा अक्षय का अपभ्रंश है। वह माता, जो कभी समृद्धि में क्षय नहीं आने देती, आखातीज कहलाती है।

वटसावित्री

जेठ महीने में कृष्णपक्ष की त्रयोदशी से अमावस्या तक तीन दिन का व्रत वट-सावित्री कहलाता है। इसे सधवा स्त्रियाँ अचल सुहाग की कामना से करती हैं। चतुर्दशी के दिन सावित्री की पूजा होती है। यह चौदह वर्ष का व्रत है। इसमें चौदह फल या चौदह नैवेद्य अर्पित किये जाते हैं। मंगल कलश रखा जाता है। ऐसी मान्यता है कि इसी व्रत के प्रभाव से सावित्री ने अपने मृत पति को यमलोक से लौटाया था।

उत्तर प्रदेश में इस दिन सोने या मिट्टी की सावित्री, सत्यवान और महिषारूढ़ यमराज की प्रतिमा बनाकर उन्हें फल, मिठाई, धूप, चन्दन, हल्दी, रोली आदि से पूजा जाता है। इस व्रत को 'बड़मावस' भी कहते हैं।

वटसावित्री व्रत दक्षिण भारत में भी किया जाता है, किन्तु वहाँ यह व्रत ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को होता है। उस दिन मध्याह्न के बाद सर, सरिता या कूपस्नान के बाद वट-वृक्ष के मूल को शुद्ध पवित्र जल से सींचकर पति-पुत्र के कल्याण के लिये प्रार्थना की जाती है। फिर कच्ची हल्दी में रँगे सूत के डोरे को वटवृक्ष से बाँधकर पुष्प और अक्षत से उसकी पूजा कर वट और सावित्री को प्रणाम कर प्रदक्षिणा की जाती है। घर आकर हल्दी और चन्दन से घर की भीत पर वटवृक्ष अंकित किया जाता है और उसके सामने सावित्री की मूर्ति बनाकर व्रत की निर्विघ्न समाप्ति के लिये प्रार्थना की जाती है। पूजा, अर्चना के बाद सौभाग्यवती, पुत्रवती स्त्री को पान, कुमकुम, सिन्दूर से पूजा करनी चाहिये। पूजा समाप्त कर सत्पात्रों को प्रतिमा सहित नये बाँस से बनी डलिया में फूल, वस्त्र और सौभाग्य द्रव्य दिये जाते हैं।

वटवृक्ष की पूजा लोक में बहुत प्रचलित है। कहा जाता है कि वट के मूल में ब्रह्मा, मध्य में विष्णु, अग्रभाग में शिव और समग्र में सावित्री है। देवी सावित्री की स्तुति तो वेदों में भी गाई गई है। इनकी पूजा पहले ब्रह्माजी ने की, फिर देवताओं ने, तदनन्तर राजा अश्वपति ने। बाद में सभी वर्णों के लोग इनकी उपासना करने लगे. वट के संपूर्ण भाग में सावित्री देवी का अस्तित्व मानकर स्त्रियाँ वटवृक्ष को जल से सींचती हैं, फल, फूल और अक्षत से पूजती हैं तथा इसमें सूत लपेटती हुई प्रदक्षिणा करती हैं। जहाँ वटवृक्ष की सुविधा नहीं होती, वैसी जगहों में घर की दीवार पर हल्दी और चन्दन से वटवृक्ष बनाकर तीन दिन तक उसका पूजन होता है। ब्राह्मण सावित्री की कथा कहता है, जो इस प्रकार है—

राजा अश्वपति निस्सन्तान थे। उन्होंने ब्रह्मदेव की पत्नी सावित्री देवी की चौदह वर्षों तक उपासना की। तब उन्हें एक कन्या हुई, जिसका नाम सावित्री रखा गया। उसके

युवती होने पर जब राजा को अनुकूल वर नहीं मिला, तो उन्होंने सावित्री को स्वयं ही वर खोजने के लिये कहा। सावित्री ने कई स्थानों पर भ्रमण करने के बाद सत्यवान नामक युवक को अपना पति चुना। इधर नारद ने बताया कि सत्यवान से विवाह करने पर सावित्री वर्ष भर में विधवा हो जायेगी। राजा ने सावित्री को बहुत समझाया, किन्तु वह अपने निश्चय पर अटल रही। विवाहोपरान्त संकटकाल के तीन दिन पहले से सावित्री ने व्रत किया। साल बीतने पर संकट का समय आया, किन्तु अपनी तपस्या के बल पर सावित्री ने अपने पति को पुन. प्राप्त किया। उसने अपने दृढ़ सतीत्व के कारण सत्यवान को यमराज के हाथों से लौटा लिया।

इस व्रत के तीसरे दिन ब्राह्मण को फल, वस्त्र और सौभाग्यसूचक पदार्थ दान किये जाते हैं। व्रत से संबंधित कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं

जेठ मास बरसाइत होय
वटपूजन निकरीं सब लोय
सखी सब करके सोरहो सिंगार
मथवा क बेंदिया अजब बहार ।

मिथिला में वटसावित्री के गीत बहुत गाये जाते हैं। इससे सबंधित फतुरलाल का लिखा एक गीत है

जेठ मास अमावस सजनि गे, सब धनि मंगल गाउ ।
भूखन बसन जतन कय सजनि गे, रचि रचि अंग लगाउ ।
काजर रेख सिनुर भल सजनि गे, पहिरथु सुबुद्धि सयानि ।
हरखित चललि अछयवट सजनि गे, गवइत मंगल खानि ।
घर घर नारि हँकारल सजनि गे, आदर सँ संग गेलि ।
आइ थिक बरसाइत सजनि गे, तैं आकुल सब भेलि ।
उमड़ि घुमड़ि जल ढारल सजनि गे, बाँटत अछत सुपारि ।
'फतुरलाल' देत आसिस सजनि गे, जीवथु दुल्हादुलारि ।

वटवृक्ष मे वासुदेव का निवास भी माना जाता है। वटसावित्री के दिन स्त्रियाँ झुण्ड बनाकर वटवृक्ष-पूजन को जाती हैं। ये वटवृक्ष को जल से सींचती है। उस पर फल, फूल, अक्षत चढ़ाती है तथा सूत लपेटती हुई सात प्रदक्षिणा करती हैं -

आई बरगदाही बरगद पुजावै ।
काचे ही सूत का हरदी रंगावौ, बट बाबा फेरे लगावउ ।
एक फेरा माँगौं लाली चुनरिया, दूजे माँ चुरिया भरबाँह ।
तीजे माँ माँगौं माँ के सेनुरा, चौथे माँ बिछिया जड़ाव ।
पंचमे मैं माँगौं बाबा गोदी बलकवा, दूध पूत कोखि जुड़ाव ।
छठै में बाढ़ै बाबा नैहर ससुरा, सतये में बाढ़ै सुहाग ।

गंगा दशहरा

ज्येष्ठ शुक्ल दशमी को गंगा दशहरा होता है। गंगा लोकमाता मानी गई है। लोक साहित्य गंगा के गीतों मे समृद्ध है। इस दिन लोग गंगास्नान करके गंगाजी की पूजा करते

है। ब्राह्मणों और गरीबों को दान दिया जाता है। स्त्रियाँ गंगा के गीत गाती हैं—

हो गंगा मैया अगम लहराय
सिव की जटा जूट में निकरीं
पाप और ताप नसाय
एक लहर हमें देहु बरदानी
जुग जुग जीवन केरि कल्यानी
जो पावैं तरि जायँ।

इस दिन स्नान करके दही, चावल, मिश्री, अन्न, वस्त्र, छाता, जूता, खड़ाऊँ, पंखा, मिट्टी का जलपात्र, खरबूजा, ककड़ी, तरबूज आदि का दान किया जाता है। इस महीने में प्याऊ, कुआँ, तालाब, बावड़ी, छायादार वृक्ष आदि लगाने में विशेष फल मिलता है। एक वृत्त के अनुसार गंगा इसी दिन धरती पर उतरी थीं, इसीलिये इस दिन से गंगा में बाढ़ आने लगती है। मर्त्यलोक में आने पर जब गंगा क्रुद्ध हुई थीं, तब भगवान् शिव ने उन्हें जटाओं में धारण किया था। गंगास्नान का एक गीत इस प्रकार है—

पनवा कतरि कतरि भाजी बनावउ
लौंगा दिहौं धौंपारि
अच्छे अच्छे जेवना बनावो मोरी कामिनी
हमहूँ जाबै गंगा नहाय।

ऐसी मान्यता है कि इस पर्व पर स्नान, तर्पण करने से दस पाप कट जाते हैं। कहते हैं, इसी दिन राजा भगीरथ ने गंगा को प्रसन्न किया था। एक गीत इस प्रकार है—

मातु गंगा लागि भगीरथ बेहाल
कोउ लीपै अगुआ त कोउ पिछवार
भगीरथ लीपै छथ सिव कै दुआर
कोउ माँगै अनधन कोउ धेनु गाय
भगीरथ माँगै गंगाजी के धार
आगे आगे भगीरथ जावैं
पाछे पाछे सुरसरि पसैं।

निर्जला एकादशी व्रत

ज्येष्ठ में निर्जला एकादशी होती है। इसमें खरबूजा, ककड़ी, आम, पंखा और घडों का दान ब्राह्मणों को किया जाता है। इस अवसर का एक गीत इस प्रकार है—

चरतु भरतु लछिमनु राम
पढ़ौ तो हरि की एकादशी
झूठी कहते झूठी सुनते
झूठी साखै जे भरते
अरे इन पापिन सों भये कूकरा
घर घर घूँसत जे फिरते।

एकादशी व्रत हिन्दुओं में सबसे अधिक प्रचलित है। प्रत्येक एकादशी या कामदा एकादशी पर व्रत किया जाता है, किन्तु ज्येष्ठ की एकादशी का विशेष महत्त्व है। यह व्रत निर्जला किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी के व्रत से साल भर की एकादशी के व्रत का फल मिलता है।

आजु एकादसिया के बरती रहब हम
माई बाप केर सेवा करिबौ
उनहूँ के दुधवा से उरिन होब हम।

एक बार बहुभोजी भीमसेन ने व्यासजी के मुख से प्रत्येक एकादशी को निराहार रहने का नियम सुनकर कहा — महाराज, मुझे तीव्र क्षुधा रहती है। मुझसे व्रत नहीं किया जाता। कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे मुझे भी इस व्रत का फल मिल सके। तब व्यासजी ने कहा - तुम वर्ष भर संपूर्ण एकादशी नहीं कर सकते, तो ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी को निर्जला व्रत कर लो तो इसी से वर्ष भर की एकादशी का फल मिलेगा। उनके अनुसार भीम वैसा ही करके स्वर्ग को प्राप्त हुए।

ज्येष्ठ शुक्ल एकादशी की एक अन्य कथा मिलती है, जिसके अनुसार इस व्रत को करने वाले की समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

कोई ब्राह्मण बहुत पूजा-पाठ करता था। वह हमेशा निर्जला एकादशी का व्रत रखता था, किन्तु उसके घर में इतनी दरिद्रता थी कि उसकी पत्नी को भरपेट भोजन नहीं मिलता था। इस कारण एक बार वह बहुत नाराज हुई। ब्राह्मण ने भी यह कहकर घर छोड़ दिया कि जब तक वह पत्नी को खिलाने लायक नहीं हो जायेगा, घर नहीं लौटेगा। भूख प्यास से बेहाल वह रास्ते में बैठा था, तभी उसके पास एक बड़ी सुन्दर बालिका रोती हुई आई और बोली—मेरा कोई नहीं है, अब तुम्हीं मेरे बापू हो। ब्राह्मण ने उसे ढाँढ़स बँधाया और उसके लिये भीख माँगने निकला। उस दिन उसे सोलह रोटियाँ मिलीं। वह बालिका के साथ घर लौटा तो ब्राह्मणी ने पश्चात्ताप करते हुए ब्राह्मण और उस लड़की का स्वागत किया। लड़की के आते ही घर की अवस्था में सुधार होने लगा। एकादशी के दिन लड़की ने माता से धूप और फूल लाने को कहा। उसने सारे घर को लीपा-पोता। फिर पूजा पर बैठने के पहले माँ से कहा—मैं जब तक न उठूँ, मुझे पुकारना मत।

जब बहुत देर हुई तो ब्राह्मणी से रहा नहीं गया। वह पूजाघर में आई तो लड़की लुप्त हो चुकी थी, पर पूजाघर हीरे, मोती, माणिक और अशर्फियों से भर गया था। दोनों की समझ में आया कि फूल नाम की लड़की के रूप में एकादशी ही उनके संकट हरने आई थी। तब से ब्राह्मणी भी एकादशी का व्रत करने लगी।

मातापूजी या बसियौरा

आषाढ़ कृष्ण अष्टमी को यह व्रत होता है। पूजा की प्रथम रात्रि में सारे पकवान बना लिये जाते हैं जिससे वे दूसरे दिन पूजा के समय तक ठण्डे और बासी हो जाएँ। 'बसियौरा' शब्द 'बासी' से ही बना है। शीतला देवी की पूजा शीतल पदार्थों अर्थात् ठण्डे पकवानों, फल-फूल, दूध आदि से की जाती है। ज्वाला की देवी होने के कारण इन्हें

शीतल पदार्थ बहुत प्रिय हैं। इसी से इन्हें 'शीतला माता' या 'शीतला मैया' भी कहा जाता है। इनकी मन्नत मानकर बलि भी चढ़ाई जाती है। देवी पर दूध या अर्घ्य दिया जाता है, जिसे 'दूध ढालना' कहते हैं। पूजा की सारी विधियाँ शीतला देवी के मन्दिर में सम्पन्न होती हैं। इस दिन शीतला देवी के गीत गाये जाते हैं—

शीतला महारानी की जै जै बोलो ।

शीतला देवी का लोकजीवन में बड़ा माहात्म्य है। देवियाँ प्राय: सात बहनों के रूप में स्मरण की जाती हैं। इसीलिये सप्तमातृकाओं की पूजा का विधान है। सातों बहनों को निमंत्रण देकर आदर-सत्कार किया जाता है ताकि सब विघ्न-बाधाएँ दूर हों।

आओ न काली मैया बैठो मोरे अँगना
देउँ सतरंगिया बिछाय ।

शीतला मैया के बारे में ऐसा लोकविश्वास है कि वह देवी सभी बहनों से अधिक दयालु और करुणामयी है।

सोमेश्वर व्रत

इस व्रत का संबंध आषाढ़ शुक्ल द्वितीया को होने वाली जगन्नाथ स्वामी की रथयात्रा से है जिसे पुरी अर्थात् उड़ीसा में बड़ी धूमधाम से मनाया जाता है। यों सोमेश्वर व्रत का पौराणिक विधान श्रावण के प्रथम सोमवार से प्रारंभ करने का है जो साढ़े तीन महीने तक किया जाता है। किन्तु बहुधा श्रावण के प्रथम सोमवार की प्रतीक्षा में रथयात्रा का पर्व निकल चुका होता है। इसीलिये जगन्नाथ स्वामी की दृष्टि से आषाढ़ और सोमेश्वर के प्रभाव से सोमवार को ग्रहण कर लिया गया है। वैसे यह व्रत चैत, वैशाख या आषाढ़ के किसी भी सोमवार को किया जा सकता है।

इस व्रत के संबंध में शिवपुराण में एक कथा है-- श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि सोमेश्वर व्रत शुभ करने वाला और लक्ष्मी की वृद्धि करने वाला है तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को देने वाला है।

सोम नाम का एक राजा क्षात्रधर्म में कुशल और प्रजापालन में तत्पर था। उसके राज्य में सब सुखी और सुख देने वाले थे। उसके नगर में एक तालाब था, जहाँ सोमेश्वर शिव का वास था। उसकी पत्नी बड़ी सुशील थी। निर्धनता से दुखी होकर सोमशर्मा सोमेश्वर के तालाब में स्नान कर शंकरजी की पूजा करने लगा। उसकी अटल भक्ति को देखकर सोमेश्वर भगवान् वृद्ध ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुए और सोमशर्मा को सर्वसिद्धिदायक सोमेश्वर व्रत का विधान बतलाया।

भगवान् जगन्नाथ का रथोत्सव पुरी में आषाढ़ शुक्ल द्वितीया से लेकर नवमी तक मनाया जाता है। सुदर्शन, बलभद्र, सुभद्रा के रथारोहण को 'बाडंडी विजय' कहते हैं। मूर्तियों को रथ पर यथास्थान प्रतिष्ठित करने के बाद उन्हें वस्त्राभरण एवं पुष्पों से सजाया जाता है। इसे 'छेरापहाराँ उत्सव' भी कहते हैं।

लौटती रथयात्रा 'बाहुड़ा' नाम से नवमी को मनाई जाती है। मूर्तियों को पूजा के बाद रथ से जगन्नाथ मन्दिर में सिंहद्वार के पास लाया जाता है, जहाँ लक्ष्मी जगन्नाथ वार्त्ता

होती है। इसे 'वचनिका उत्सव' भी कहते हैं।[१] इस अवसर पर भक्तगण भगवान् जगन्नाथ की स्तुति गाते हैं।

काड़ीया धनो बारे नौ देलू दरसन
तोलागी जाउ ए जीबनो
बारे नौ देलू दरसन
काड़ीया काड़ीया त्रिपुण्डा काड़ीया
पिधीछी झीनो बसन
काड़ीया अंगोरू बहे श्रम झड़
काड़िन्दी नदीर पाणी - काड़ीया धनो
नन्दी घोष रथे बसीछी काड़ीया
जगत मोहिबा पाई
हरी हरी बोली सबद सुभुछी
मन रे आनन्द होई
काड़ीया धनो बारे नौ देलू दरसन ।

हरयागोंद्या या दिवासा

वर्षाकाल में मालवी कन्याओं एवं सुहागिन महिलाओं का त्योहार 'हरयागोंद्या' या 'दिवासा' उल्लेखनीय है। यह त्योहार देवशयनी एकादशी को मनाया जाता है। इस दिन अर्थात् आषाढ़ शुक्ल एकादशी को भगवान् विष्णु क्षीरसागर में शेषशय्या पर सोते हैं। कहीं-कहीं ऐसा वर्णन है कि इस दिन भगवान् की मूर्ति को रथ पर बिठाकर घण्टा आदि वाद्यों की ऊँची आवाज के साथ जलाशय में ले जाकर जल में शयन कराया जाता है।

आषाढ़ की वर्षा में जब वन और खेतों में हरियाली छा जाती है तो मालवीय कन्याएँ इस अवसर पर आनन्दसूचक त्योहार मनाती हैं। आषाढ़ शुक्ल एकादशी को वे वनस्थित किसी देवमन्दिर में जाकर गुड़धानी और ज्वार की फूली ले जाकर सहेलियों के साथ खेलती हैं। एक मुट्ठी गुड़धानी भरकर किसी सहेली की पीठ पर जोर से मुक्का लगाया जाता है। इस प्रेम की मार के बाद पुरस्कार के रूप में वही गुड़धानी मुट्ठी भरकर दी जाती है। इसी दिन से चातुर्मास आरंभ होता है। हिन्दुओं के देवता सो जाते हैं, किन्तु वनों के देवता जागृत होकर हरियाली का उल्लास बिखेर देते हैं। बालिकाएँ एवं उनके उत्सव में योग देने वाली महिलाएँ इस दिन से झूला झूलना आरंभ कर देती हैं। झूले के गीत आरंभ हो जाते हैं।

'दिवासा' को 'हरियाली की अमावस्या' भी कहते हैं। उक्त दिन से मानो किसी दिव्य आशा का संचार होता है। श्रावण मास की अमावस्या को हरयागोंद्या के समान ही स्त्रियों द्वारा उल्लास व्यक्त किया जाता है। झूले के गीत गाये जाते हैं—

बादल घेर घुमेर सावन सेवरो बरसे जी ।

इस अवसर पर भाँगड़ली गीत भी गाये जाते हैं। सौत के प्रति नारी की ईर्ष्याग्नि किसी किसी गीत में मुखर होती है—

सुख प्यारी का मेलाँ मति जाजो
ओ राज म्हारी भाँड़ली
नदी किनारे बैठा बना मारू जी
बैठा बैठा भाँगड़ी घोटावे ओ राज
आप पियो ने ढोला साथ काने पावो
मारुणी ने अदरख चखाओ।

भाँग के नशे में मस्त पति से पत्नी का निवेदन है कि वह अपनी प्रेयसी के महल में न जाये। वह यहीं बैठकर पिये, इष्ट मित्रों को पिलावे। पत्नी को अदरक का कड़वा रस भी पर्याप्त होगा।

गुरुपूर्णिमा

यह व्रत आषाढ़ मास की पूर्णिमा तिथि को स्त्री-पुरुष दोनों करते हैं। व्रत के दिन गुरु का विशेष महत्त्व रहता है। गुरु के घर जाकर उन्हें दक्षिणा या उपहार दिया जाता है। प्राचीन काल में विद्यार्थियों को आश्रम में निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी। विद्यार्थीगण इस दिन अपने गुरु की पूजा करते थे और यथाशक्ति दक्षिणा भी देते थे तथा गुरु का आशीर्वाद प्राप्त करते थे। गुरुपूर्णिमा के कुछ गीत इस प्रकार हैं—

अँगनेहिं ठाड़ी सीता रानी रहिया निहारत
रामा आवत हैं गुरुजी हमार त पीछे लछिमन देवर
पतवा के दोनवा बनाइन गंगाजल पानी
सीता धोवै लागी गुरुजी के चरन औ मथवा चढ़ावैं।

एक अन्य गीत इस प्रकार है—

तुमरा कहा गुरु करबै परण दुइ चलबै
गुरु अब न अयोध्या जाब औ विधि न मिलावैं।

इस तिथि को 'व्यासपूर्णिमा' भी कहते हैं क्योंकि इसी दिन महर्षि व्यास का जन्म हुआ था और उनकी समस्त रचनाओं, विशेषकर महाभारत का श्रीगणेश इसी दिन हुआ था। इसी कारण इस दिन गुरु के चरणों पर फूल-फल, वस्त्रादि अर्पित कर उनका उपदेश सुना जाता है तथा महाभारत सुना-पढ़ा जाता है।

कुछ लोग व्यासपूजा के साथ आदिगुरु शंकराचार्य की पूजा को भी जोड़ते हैं। ऐसी मान्यता है कि आदिशंकराचार्य व्यास के अवतार हैं। इनकी पूजा की एक विशेष विधि है। इस तिथि को एक नये कपड़े का टुकड़ा जमीन पर बिछा दिया जाता है। उस पर भात रखकर नीबू निचोड़ दिया जाता है। फिर आदिशंकर एवं चार शिष्यों का आवाहन करके विधिवत् पूजा की जाती है। पूजा की समाप्ति के बाद प्रसाद का वितरण किया जाता है।

कहते हैं अन्न और वस्त्र में लक्ष्मी निवास करती हैं और गुरुजनों के पास नीबू

भेंट में ले जाने की प्रथा है। इस तरह व्यासपूजा लक्ष्मीपूजा है, जिसमें लक्ष्मी सहित भगवान् विष्णु की पूजा की जाती है और सबके कल्याण की कामना की जाती है।

आषाढ़ी पूर्णिमा की यह तिथि व्यास, लक्ष्मी, विष्णु, आदिशंकराचार्य और गुरुपूजा से संपृक्त है। इस दिन का पूजा-विधान सभी प्रकार से मंगलकारी माना गया है।

मधुश्रावणी तीज

श्रावण शुक्ल तृतीया को बालिकाएँ तीज अथवा हरियाली तीज नामक एक विशेष उत्सव मनाती हैं। दक्षिण में यही व्रत भाद्रपद शुक्ल तीज को किया जाता है जो हरियाली तीज के ही नाम से जाना जाता है। इसे स्वर्णगौरी व्रत या कजरीतीज भी कहते हैं। जन्म जन्मान्तर में अक्षय सौभाग्य, वैभव, पुत्रादि तथा ईश्वरभक्ति के लिये संकल्प करती हुई स्त्रियाँ इस व्रत में गौरी का आह्वान करती हैं। इसे गणगौर भी कहते हैं जो चैत्र शुक्ल तीज के अलावा श्रावण शुक्ल तीज को भी मनाई जाती है।

इस शुभ अवसर पर कन्याएँ बहुधा अपने नैहर जाती हैं। जो नहीं जा पातीं, उन्हें 'सिधारा' भेजा जाता है। एक गीत में भाई बहन के यहाँ सिधारा लेकर गया है। बहन को दुबली देखकर भाई कारण पूछता है---

मीट्ठी तो कर दे रे मोस्सी कोथली
सामण री आया गूँजता
जाऊँगा री मेरे बेब्बे के देस
सामण आया री गूँजता
किसीयाँ क्रे दुख में बेब्बे दूबली
किसीयाँ नै बोल्लैं सैं बोल
सामण आया री गूँजता
सामड़ के दुःख में दूबली
नणदी नैं बोल्लैं सैं बोल ।

मिथिला में यह त्योहार विशेष रूप से सुहागिनें करती हैं। इस अवसर पर एक क्रूर पद्धति अब तक प्रचलित है। वहाँ इस त्योहार के दिन नवविवाहिता को जलती बत्ती से दागा जाता है। यदि फफोले खूब उठते हैं तो स्त्रियाँ उन्हें सधवापन का चिह्न समझती हैं। इससे स्पष्ट है कि यह त्योहार शाक्तधर्म से प्रभावित है, क्योंकि शाक्तधर्म से ही टोने-टोटके का उद्भव माना जाता है। कालान्तर में अन्धविश्वास को भी शाक्तधर्म की देन माना गया। मधुश्रावणी तीज पर नववधू को दागा जाना उसकी सुहागबेला की कठिन घड़ी होती है जिसमें उसे अग्निपरीक्षा देनी होती है। इस अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत इस प्रकार है---

कदलिक दल सन थर थर काँपए
मधुश्रावणी विधि आज ए
वथ करि हाथ कमल कर बाती
देखि सागर तन काँपए

आजु सुहागिनि सह मिलि बइसल
मुख किय पड़ल उदासे
बड़ अजगुत थिक मधुश्रावणी विधि
परम कठिन एहो रीति ।

मधुश्रावणी के गीतों का विषय कुछ भी हो सकता है। एक गीत में यह बताया गया है कि पिता गरीबी के कारण अपनी बेटी को चुनरी नहीं खरीद पाता है तो उसका दामाद ही परदेस से चुनरी लाता है। इसमें पिता की कातरता और विवशता में वात्सल्य की झलक है--

निर्धन घर गे बेटी, तोहरो जनम भेल
निर्धन घर गे बेटी, तोहरो बियाह भेल
कतय पैब गे बेटी, लाल रंग कंचुआ
कतय पैब गे बेटी, हम चित्तसारी
से हो सुनि अमुक बर चलला बेमा हो ।

मिथिला के सांस्कृतिक जीवन में इस पर्व का बड़ा महत्त्व है। यह पर्व तेरह दिनों तक चलता है, जिसमें नववधुओं को घर की बड़ी-बूढ़ी स्त्रियाँ कथा सुनाती हैं। पहले दिन 'मौना पंचमी' की कथा होती है तथा अन्तिम दिन 'श्रीकर राजा' की। अन्य कथाओ में बिसहरवारा, सती, महादेव आदि की लोककथाएँ होती हैं। यह पर्व जहाँ नववधुओं के मैके में मनाया जाता है, वहाँ मधुश्रावणी की कथा उनके पति भी सुनते। उसी दिन वे अपनी पत्नी की माँग मे सिन्दूर डालते हैं। इस दिन नवविवाहिता अपनी ससुराल से आई सामग्री लेकर सुहागिनों तथा कुमारी लड़कियों को भोज देती है। मधुश्रावणी-पूजा के लिये आकर्षक अरियन तैयार किया जाता है, जिस पर गाय के गोबर से पाँच साँप, नाग-नागिन आदि के चित्र अंकित किये जाते हैं।

इस पर्व की शुरुआत के विषय में कोई निश्चित मत नहीं है, किन्तु कहीं-कहीं कहा जाता है कि मधुश्रावणी नाम की एक स्त्री ने किसी साधु को हाथ दिखाया। उसके पति को कुष्ठ रोग था। साधु के कहने पर उसने यह व्रत किया जिससे उसका पति अच्छा हो गया। तभी से इस व्रत का प्रचलन हुआ।

कालक्रम के अनुसार मधुश्रावणी गीत की रचनाशैली दो भागों में विभक्त हुई--- पूर्व मधुश्रावणी काल और उत्तर मधुश्रावणी काल। दोनों की रूपरेखा में अन्तर करते हुए डॉ० रामइकबाल सिंह 'राकेश' कहते हैं-- "पूर्व मधुश्रावणी काल की प्राचीन गीतशैली बौद्धकालीन इमारती कला के सदृश है, जिसके गुम्बद, दीवारों, बुर्जियों, खंभों वगैरह पर किसी प्रकार की तड़क-भड़क या बारीक मीनाकारी का काम नहीं। लेकिन उत्तर मधुश्रावणी काल की चिरनवीन गीतशैली उस इमारती कला के सदृश है जिसकी मेहराबदार छतों, दीवारों और खंभों पर किमखाब के बूटों की तरह की नक्काशी और सुप्रसिद्ध चित्रकारों की कल्पना से अंकित मूर्तियुक्त चित्रावलियाँ हैं।[१]

---

१. *मैथिली लोकगीत*--- डॉ० रामइकबाल सिंह 'राकेश', पृ० ३४२

राजस्थान में इस त्योहार को हरियाली तीज भी कहते हैं। वर्षा शुरू होते ही घर गीतों से गूँज उठता है। खेती संबंधी गीत भी गाये जाते हैं। तीज के गीत बालिकाएँ तथा स्त्रियाँ ही गाती हैं---

आई आई माँ सावणियारो तीज लो
सामले रे सांवण धोया सासरे रे लाल ।

नागपंचमी

नागपंचमी का त्योहार प्रतिवर्ष श्रावण शुक्ल पंचमी को मनाया जाता है। इसे 'नागपचैयाँ' भी कहते हैं। इस दिन सर्प की पूजा होती है। लड़कियाँ प्रात:काल उठकर मकान की भित्ति पर गोबर से एक रेखा खींचती हैं तथा घर के प्रधान दरवाजे पर सर्प की दो मूर्तियाँ गोबर और चूने की बनाती हैं। इस दिन साँप की आकृतियों पर सिन्दूर भी डाला जाता है। इसके बाद नागदेवता की पूजा होती है। फिर एक कटोरे में दूध और धान का लावा भरकर एकान्त स्थान में रख दिया जाता है। लोगों का विश्वास है कि इस दिन नागदेवता आते हैं और दूध पीते हैं। नाग की पूजा करने वाले को इस दिन सर्प काटने का भय नहीं होता। कहीं-कहीं दूध में कोयला घिसकर भी दीवार पर नाग बनाये जाते हैं और उनकी पूजा होती है। नागपंचमी के गीत इस प्रकार गाये जाते हैं-

मोरा नाग दुलरुआ हो मोरा नाग दुलरुआ
जे मोरा नाग के भिखिया न दीहैं
दूनो बेकति जरि जइहैं हो मोरे नाग दुलरुआ
जे मोरा नाग के भीखि उठि दीहें
दूनो बेकति सुखी रहिहैं हो मोरे नाग दुलरुआ ।

निमाड़ी के क्षेत्रविशेष में नागपंचमी के दिन उपवास करके रात्रि में पूजा की जाती है। स्त्रियों द्वारा इस दिन नागनाथन लीला के गीत गाये जाते हैं---

नाग नाथीन बाळ्ठो हुयो असवार रे
बोली ते नागेण तवे
म्हारा हात का चूड़ा की लाज राखो
मखऽ जुग जुग दीजो अव्हात
मोहन थारो गेंद बणी रे ।

बंगाल में सर्पों की अधिष्ठात्री देवी मनसा की पूजा का बहुत प्रचार है। मिथिला में इस त्योहार को 'बिसहरा' भी कहते हैं--

सावन मास नागपंचमी भेल
घर-घर बिसहर पूजा भेल
सावन बिसहरि लेल परबेस
भादव बिसहरि खेलू झिलहेर
आसिन बिसहरि गुआ माँगु पान,
नित उठि संग खेलथि हनुमान ।

इस त्योहार में आम की मंजरी में गुड़ मिलाकर थोड़ा जीभ पर रखते हैं और आम की गुठली भी खाते हैं। गाय के गोबर और साँप के बिल की पूजा होती है। साँप के बिल पर कटहल के पत्ते, धान की खील और दूध रखते हैं। इस प्रकार यह नागपूजा का त्योहार अतिप्राचीन जान पड़ता है। यद्यपि नागपूजा की चर्चा वेद में नहीं है तथापि ऐसा अनुमान किया जाता है कि यह आर्येतर समाज से प्रधानतः आस्ट्रिक और नीग्रो संस्कृतियों से आकर हिन्दू धर्म में मिल गई है, लेकिन आत्मरक्षा की भावना से ही आदिमानव ने नाग की पूजा प्रारंभ की होगी, क्योंकि साँप के डँसने का भय तो बराबर ही बना रहता होगा।

अवधी क्षेत्र में नागपंचमी के त्योहार को 'गुड़िया' कहते है। नागपूजा से यद्यपि गुड़ियों का कोई संबंध नहीं है, फिर भी इस दिन लड़कियाँ सुन्दर सुन्दर गुड़िया-गुड्डे बनाकर उनका विवाह करती हैं। लड़कों को ये खेल अच्छे नहीं लगते, फलतः ये बहनों के मनोरंजन में व्यवधान डालते हैं। वे बहनों के गुड्डे-गुडियों को तोड़ मरोड़ कर नदी पोखरों में फेंक देते है। इसलिये आज का यह पर्व वस्तुतः गुड़ियों को पीटने का पर्व बन गया है।

गुड़ियों के इस खेल और झूला झूलने के अतिरिक्त आज के दिन नागपंचमी का त्योहार भी अवध में मनाया जाता है जिसमें नागों के दर्शन का विशेष महत्त्व माना जाता है। आज के दिन नागों की पूजा होती है और श्रावण मास में साँप मारना मना है। यदि पूरे श्रावण मास नहीं तो कम से कम नागपंचमी के दिन धरती नहीं खोदी जाती। इस निषेध के पीछे एक कथा है

इसी महीने में एक किसान के हल की नोंक से खेत जोतते समय साँप के बच्चे बिधकर मर गये थे और नागिन ने उसी रात किसान के घर जाकर उसके माँ-बाप, बच्चों को मारकर अपना प्रतिशोध लिया। केवल एक लड़की बच गई थी। नागिन उसे डँसने गई तो लड़की ने दूध का कटोरा उसके सामने रख दिया। दूध पीकर नागिन बड़ी प्रसन्न हुई और उसने लड़की से वर माँगने को कहा। लड़की ने अपने माँ-बाप और भाइयों का जीवन माँगा। नागिन वरदान देकर चली गई और उस घर के सभी प्राणी जीवित हो गए।

तभी से नागों को प्रसन्न रखने के लिये नागपंचमी का त्योहार मनाया जाने लगा। बरसात में सर्पों का प्रकोप अधिक होता है, इसलिये श्रावण के महीने में इनकी पूजा की जाती है, इन्हें दूध पिलाया जाता है। घरों में साँपों के चित्र बनाये जाते हैं और उन पर नैवेद्य चढ़ाया जाता है। गाँव के आसपास साँप की बाँबी में दूध चढ़ाया जाता है और पूजा की जाती है। नागों की पूजा का प्रचार आर्य, अनार्य सभी में है और सभी का उद्देश्य एक ही है। यह पर्व साँपों से अभय प्राप्त करने की याचना का पर्व है। भविष्यपुराण में नागपंचमी भाद्रमास के शुक्लपक्ष में बताई गई है।

मासे भाद्रमासे या तु शुक्लपक्षे महीपते ।
सा च पुण्यतमा प्रोक्ता ग्राह्य सद्गतिकाम्यया ।।

(नागपंचमी व्रत माहात्म्य, श्लोक-४१)

श्रीकृष्ण कहते हैं—हे राजन्, भाद्रमास के शुक्लपक्ष में जो पंचमी है, वह परम पुण्यतम कही गई है। सद्गति की कामना से इसे ग्रहण करना चाहिये। इस दिन नागों का घृत और क्षीर आदि से पूजन करना चाहिये।

इस पंचमी को 'दयितापंचमी' भी कहते हैं, जो नागों के आनन्द को बढ़ाने वाली है। इस पंचमी में नागों का एक महान् उत्सव होता है। जो मनुष्य पंचमी तिथि में नागों को क्षीरस्नान कराते हैं उनके कुल में नागदेवता प्राणियों को अभयदान देते हैं।

युधिष्ठिर ने पूछा -- माता के द्वारा नागों को क्यों शाप दिया गया था और उसका निवारण कैसे हुआ? श्रीकृष्ण बोले - उच्चैःश्रवा नामक श्वेतवर्ण अश्वों का राजा है, जिसकी उत्पत्ति अमृत से हुई है। उसे देखकर नागमाता कद्रू अपनी बहन विनता से बोली-- देखो, इस श्वेत अश्व के कृष्णवर्ण वाले बाल भी श्वेत दिखाई पड़ते हैं। विनता ने कहा -- इनमें कहीं कृष्णवर्ण नहीं है, ये तो श्वेत ही हैं। इस पर दोनों में शर्त लग गई। विनता ने कहा---यदि इसके कृष्ण केश आपने दिखला दिये तो मैं आपकी दासी हो जाऊँगी और यदि नहीं दिखा सकी तो आपको मेरी दासी बनना होगा।

इसके बाद कद्रू ने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा --तुम सब कृष्ण केश बनकर उस उत्तम अश्व में स्थित हो जाओ, ताकि मैं शर्त जीत सकूँ। नागों ने कहा---यह तो महान् अधर्म है, हम ऐसा नहीं करेंगे। तब कद्रू ने क्रोध में भरकर उन पुत्रों को शाप दिया कि पावक तुम्हें जलाएगा। बहुत समय बीतने पर पाण्डव जनमेजय सर्पयज्ञ करेंगे, जिसमें तुम्हें पावक खा जाएगा। माता के द्वारा ऐसा शाप पाकर नाग बहुत दुखी हुए। वासुकि को दुखी देखकर ब्रह्माजी ने सान्त्वना देते हुए कहा -- तुम लोग शोक मत करो। जिस समय उक्त यज्ञ होगा उस समय जरत्कारु नामक महान् तेजस्वी ब्राह्मण का मुनिपुत्र आस्तीक इस यज्ञ का निषेध करेगा। यह यज्ञ पंचमी को होने वाला था, इसी कारण यह पंचमी 'शुभादयिता' कही जाती है। यह नागों में हर्ष उत्पन्न करने वाली है।

नागों की बारह जातियाँ प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रायः पाँच प्रकार के नागों के चित्र घर-घर में अंकित किये जाते हैं। ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है। नागों को नागपंचमी के दिन दूध पिलाना विश्वप्रेम का ही उदाहरण है।

रक्षाबन्धन

श्रावण पूर्णिमा को श्रावणी, सलोनो या रक्षाबन्धन होता है। घर में विविध पकवान बनाये जाते हैं। बन्धु-बान्धवों के साथ सावन की पूजा करके भोजन किया जाता है। ब्राह्मण रेशम या सूत की राखी हाथ में बाँधते और दक्षिणा लेते हैं।

ऐसी मान्यता है कि श्रावणी पौर्णमासी या संक्रान्ति तिथि में राखी बाँधने से बुरे ग्रह कटते हैं। श्रावण की अधिष्ठात्री देवी द्वारा ग्रह-दृष्टि निवारण के लिये महर्षि दुर्वासा ने रक्षाबन्धन का विधान किया। एक और पौराणिक कथा है कि एक बार देवों और दैत्यों में बारह वर्ष तक युद्ध हुआ, पर देवता विजयी नहीं हुए। तब वृहस्पति ने युद्ध रोक देने का निश्चय किया। किन्तु इन्द्राणी ने दूसरे दिन इन्द्र को राखी बाँधी जिसके कारण इन्द्र और संपूर्ण देवता विजयी हुए।

पूर्णिमा तथा श्रावण नक्षत्र का योग केवल श्रावण में होता है, इसलिये श्रावणी पर्व से चन्द्रमा तथा विष्णु की कृपा प्राप्त होती है। रक्षाबन्धन के दिन घर को गोबर से शुद्ध करके हल्दी आदि से चौक पूरकर उस पर जलभरा घड़ा रखकर पुरोहित यह कहकर

रक्षाबन्धन का विधान करता है---

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षेमाचलमाचल ॥

कहा जाता है कि रक्षाबन्धन से वर्ष भर सुख रहता है।

प्रत्येक सोमवार को सावन भर सोमवारी मेला लगता है। संपूर्ण सावन में एवं विशेष रूप से पूर्णिमा को मन्दिर में झूला होता है। दर्शनार्थियों की भीड़ होती है। यह वर्षाऋतु के स्वागत का पर्व है। इसी समय कृषि का आरंभ होता है। इससे स्वभावतः इस पर्व में आनन्द एवं उल्लास की मात्रा अधिक रहती है।

रक्षाबन्धन भाई-बहन के प्रेम का पर्व है। बहन की भाई के प्रति निष्ठा और भाई का बहन के प्रति सुरक्षाभाव ही इस पर्व का उद्देश्य है। इसीलिये इस पर्व का नाम रक्षाबन्धन पड़ा है। बहन जिस प्रेम से रेशम का धागा भाई की कलाई में बाँधती है, वह भाई के लिये एक कर्त्तव्य का बन्धन होता है, जिसके कारण उसे हर स्थिति में बहन की रक्षा के लिये तत्पर होना पड़ता है।

रक्षाबन्धन के गीत प्रायः नहीं मिलते फिर भी कुछ रचनाकारों ने इस विषय से संबंधित गीत लिखे है—

रखिया बन्हा लऽ भइया सावन आइल
जियऽ तू लाख बरीस हो
तोहरा के लागे भइया हमरी उमिरिया
बहिना ना देहीं असीस हो ।

रंग रंग के रखिया सजल
सावन के दोर
भइया बान्हब कलइया तोहरे
रेसम के डोर ।

इतिहास साक्षी है कि रानी कर्णावती ने हुमायूँ को बड़े कठिन क्षण में राखी भेजी थी और हुमायूँ ने उस स्नेह के धागे की मर्यादा को रखते हुए रानी कर्णावती की रक्षा के लिये अपनी जान की बाज़ी लगा दी। इसी राखी के लिये महाराजा राजसिह ने रूपनगर की राजकुमारी का उद्धार कर औरंगज़ेब के छक्के छुड़ाये।

इस दिन बहन जब तक भाई को राखी नहीं बाँध लेती, तब तक अन्न ग्रहण नहीं करती। राखी बाँधकर तथा टीका करके बहन भाई को फल, मिष्ठान्न देती है। बदले में भाई भी बहन को उपहार देता है। इस दिन खाद्य पदार्थ में सेंवई बनाने की प्रथा है।

श्रावणी पूर्णिमा राखी का त्योहार है। पर काठमाण्डू उपत्यका के लिये श्रावणी पूर्णिमा 'गाई जात्रा' का पर्व है। यह उल्लास और मनोविनोद का पर्व है। नेपाल में श्रावणी पूर्णिमा के दिन नेपाली वाद्ययंत्रों एवं भयाली की आवाजें वातावरण में गूँजने लगती हैं। कभी देवी नाच, कभी ध्यांताघिसी नाच, कभी महाकाली नाच तो कभी रामायण नाच। हर्ष-उल्लास में लोग गा उठते हैं—

पाकूँ छ्याइँ, छ्याइँ, छ्याइँ।

यह पर्व दिवंगत परिजनों की स्मृति में भी मनाया जाता है----

हे बुवा राम मान, हाई हाई
हाई हाई बुवा (पिता) राम मान
नरलोक होता सुरलोक बिजा झाल ।

आजकल 'गाई जात्रा' पर्व विशेषत: प्रतिपदा के दिन मनाया जाता है, जिसे 'सापारू' कहते हैं। परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु इस साल अगर हो गई हो तो उसकी स्मृति में उस रोज गाय की देशपरिक्रमा करते हैं और गाय की पूजा करके उसे पंच पकवान खिलाते हैं। धारणा है कि ऐसा करने से मृतात्मा को सुख मिलता है।

नेवारी में इसे 'बाच्छा लुईकेगु' कहते हैं। श्रावण पूर्णिमा वर्ष की नवीं पूर्णिमा है, इसलिये नेवार लोग इसे 'गुंगू पुन्हि' (नवीं पूर्णिमा) के रूप में मनाते हैं। वे इस दिन अपने-अपने खेत में मेढ़क की पूजा करते हैं।

'ललितविस्तर' नामक बौद्धग्रन्थ के अनुसार गौतम बुद्ध ने इस दिन 'काम और मॉम' (कामभूख) के ऊपर विजय प्राप्त की थी।

इसी दिन गोसाईं कुण्ड में विशाल मेला लगता है। कहा जाता है कि जब समुद्र मंथन में महादेव ने विषपान किया तो उन्हें भयंकर दाह हुआ। वे उस दाह से मुक्त होने के लिये गोसाईं कुण्ड में बैठ गए।

गोसाईं कुण्ड जाने वाले यात्रियों के सुमधुर 'सिलुमे' लोकगीतों की ध्वनि भी इसी दिन से आने लगती है—

हो हो तिम्रै सरनमा खेलन आयो
आज्ञा देउ धरती माता ।
हो हो सत्य को कीर्ति गनपति
लंबोदर विधाता ।

इस दिन भारी संख्या में लोग पाटन स्थित 'कुंनि महादेव' (कुंभेश्वर) के दर्शन करने जाते हैं। ऐसी धारणा है कि इसके दूसरे दिन भक्तपुर के नौ प्रस्तर जलस्रोतों में नहाकर, नौ प्रकार के वस्त्र पहनकर, नौ बार देशाटन करने और नौ बार खाने से मोक्ष प्राप्त होता है।[१] इस दिन श्रावण-पूजन तथा ऋषितर्पण व्रत भी किया जाता है।

भुजलियों का त्योहार

यह बुन्देलखण्ड का विशेष त्योहार है। श्रावणी पूर्णिमा के दूसरे दिन यानी भादों की कृष्ण प्रतिपदा के दिन भुजलियों का त्योहार मनाया जाता है। श्रावण शुक्ल पंचमी, सप्तमी या नवमी को पूजन करके मिट्टी के सकोरों या किसी पात्र में मिट्टी और खाद भरकर उसमें गेहूँ बो देते हैं। नित्य पानी देने से उनमें अंकुर निकल आते हैं, जो भुजलियों के दिन तक लगभग १०-१५ सेंटीमीटर लम्बे पौधे हो जाते हैं। इस बीच रात में

---

१. लेख— *हास-परिहास का पर्व, गाई जात्रा*--दुर्गाप्रसाद श्रेष्ठ, धर्मयुग-८ अगस्त, १९७६